गायत्री महाविज्ञान

(संयुक्त संस्करण)

– वेदमूर्ति तपोनिष्ठ पं. श्रीराम शर्मा आचार्य

गायत्री साधना से विशिष्ट उपलब्धि

गायत्री विद्या का सर्वसुलभ प्राचीन साहित्य इस पुस्तक में संकलित किया गया है। यद्यपि हमारे तत्संबंधी संकलित साहित्य का एक अंशमात्र ही है, फिर भी इससे यह तो जाना जा सकता है कि गायत्री विद्या का कितना अधिक महत्त्व है।

गायत्री मंत्र अकेला ही इतना सारगर्भित है, कि उसे समझने में कई जन्म लग सकते हैं। साथ ही उसके गर्भ में वह सभी तत्त्व ज्ञान भरा हुआ है जिसकी व्याख्या के लिए वेद, शास्त्र, पुराण, इतिहास, दर्शन, उपनिषद, ब्राह्मण, आरण्यक, स्मृति, नीति, संहिता एवं सूत्र ग्रंथों की रचना की गई है। इस पुस्तक में वर्णित गायत्री संबंधी लघु संग्रहों से पाठक इस बात का अनुमान कर सकते हैं कि गायत्री विद्या कितनी अगाध है।

मानसिक कष्ट में गायत्री साधना से तत्काल शांति मिलती है। साधक को ऐसा आत्मबल मिलता है, ऐसी आंतरिक दृढ़ता एवं आत्म निर्भरता प्राप्त होती है, जिसके कारण अपनी कठिनाई उसे तुच्छ दिखाई पड़ने लगती है और विश्वास हो जाता है कि वर्तमान का जो बुरे से बुरा परिणाम हो सकता है, उसके कारण भी मेरा कुछ नहीं बिगड़ सकता।

हमारा सुनिश्चित विश्वास है कि मनुष्य के लिए गायत्री से बढ़कर और कोई तत्त्वज्ञान एवं जीवनक्रम नहीं हो सकता। सद्ज्ञान की उपासना का ज्ञान ही गायत्री साधना है। जो इस साधना के साधक हैं उन्हें आत्मिक, सांसारिक सुखों की कमी नहीं रहती, ऐसा हमारा सुनिश्चित विश्वास और दीर्घकालीन अनुभव है।

गायत्री महाविज्ञान

(संयुक्त संस्करण)

—वेदमूर्ति तपोनिष्ठ पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

गायत्री महाविज्ञान

[संयुक्त संस्करण]

लेखक
वेदमूर्ति तपोनिष्ठ पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

प्रकाशक :
युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट
गायत्री तपोभूमि, मथुरा
फोन : (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९
मो. ०९९२७०८६२८७, ०९९२७०८६२८९
फैक्स नं०- २५३०२००

पुनरावृत्ति सन् २०१० मूल्य : १६० रुपये

वेदमाता गायत्री
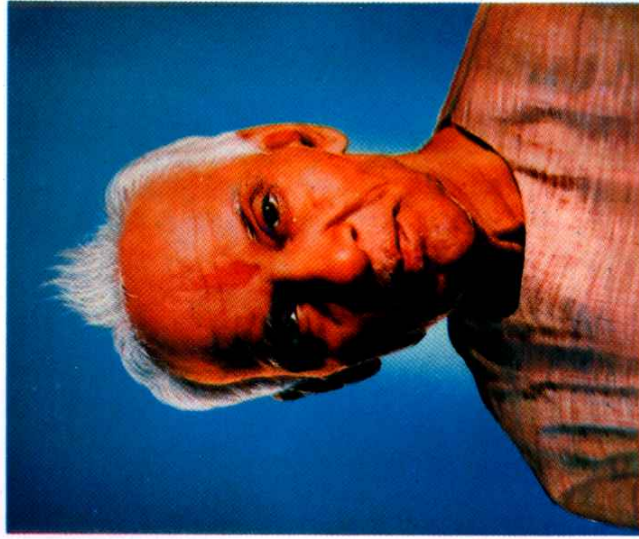
पू० गुरुदेव पं. श्रीराम शर्मा आचार्य

वन्दनीया माता भगवती देवी शर्मा

ॐ

भूर्भुवः स्वः
तत्सवितुर्वरेण्यं
भर्गो देवस्य धीमहि
धियो यो नः प्रचोदयात्।

– यजु० ३६.३

भावार्थ- उस प्राण स्वरूप, दुःख नाशक, सुख स्वरूप, श्रेष्ठ, तेजस्वी, पाप नाशक, देव स्वरूप परमात्मा को हम अन्तरात्मा में धारण करें। वह परमात्मा हमारी बुद्धि को सन्मार्ग में प्रेरित करें।

प्रकाशकीय

वेदमूर्ति, तपोनिष्ठ, पं० श्री राम शर्मा आचार्य ने अपने जीवनकाल में ३००० से अधिक छोटी—बड़ी पुस्तकें लिखी हैं । गायत्री महाविज्ञान उनकी अनुपम कृतियों में से एक है । गायत्री महाविद्या को लेकर उन्होंने विलक्षण प्रयोग कर दिखाये । उनकी विशिष्ट गायत्री साधना के नाते उन्हें महर्षि वशिष्ठ और गायत्री विद्या के युगानुरूप क्रान्तिकारी प्रयोग के कारण इस युग के विश्वामित्र के रूप में स्वीकार किया गया ।

आर्ष ग्रन्थों में गायत्री की महिमा का गान अनेक प्रकार से किया गया है । इसे वेदमाता, देवमाता, सर्व कामधुक् (सभी श्रेष्ठ कामनाओं को पूरा करने वाली) आयु, प्राण, प्रजा, पशु, कीर्ति, धन, ब्रह्मवर्चस आदि विभूतियाँ प्रदान करते हुए ब्रह्मलोक तक गति देने वाली कहा गया है; लेकिन फिर भी उसे विशिष्ट साधकों को दी जाने वाली गुह्य विद्या ही माना जाता रहा है । आचार्य श्री ने इस युग में मनुष्य मात्र को दुर्बुद्धि के चंगुल में जकड़ते-पिसते देखा, तो सद्बुद्धि-सद्भाव प्रदायिनी गुह्य गायत्री महाविद्या को जन सुलभ बनाने के लिए भागीरथी तप-पुरुषार्थ किया । उनके इस पुण्य पुरुषार्थ के फलस्वरूप गायत्री महाविद्या के युगानुरूप सफल प्रयोग के लिए 'गायत्री महाविज्ञान' का सृजन और प्रकाशन हुआ ।

पुस्तकाकार में उन्होंने गायत्री महाविज्ञान को तीन भागों में प्रकाशित किया था । इसके अब तक ३३ संस्करण निकल चुके हैं । जिज्ञासु जन उन्हें अपनी-अपनी आवश्यकता के अनुरूप अलग-अलग या एक साथ खरीदते रहे हैं । गायत्री महाविद्या के बारे में लोगों के भ्रमों का निवारण और जिज्ञासाओं का समाधान नाना प्रकार से होता रहा है तथा इस विद्या में लोकरुचि बढ़ती गयी । लोकप्रियता के इसी उभार के साथ विचारशीलों की ओर से यह प्रस्ताव आने लगे कि तीनों भाग मिलाकर इसे एक संग्रहणीय ग्रन्थ के रूप में प्रकाशित किया जाए । विज्ञजनों की इस माँग का सम्मान करते हुए ही इस संयुक्त संस्करण का प्रकाशन किया गया है ।

इस संस्करण में तीनों भागों की विषय सूची प्रारम्भ में ही एक साथ दे दी गयी है, लेकिन प्रत्येक भाग के लिए पूज्य आचार्यवर द्वारा लिखी गयी भूमिकाओं को उन भागों के प्रारम्भ में यथावत् दे दिया गया है ।

इस संस्करण में उद्धरणों एवं सन्दर्भों को विशेष रूप से शुद्ध करने एवं यथासम्भव सन्दर्भ ग्रन्थों का उल्लेख करने का प्रयास किया गया है । पाठ भेदों को प्रमाणित ग्रन्थों एवं महाविज्ञान के प्रथम संस्करण (१९५०) से मिलाकर ठीक किया गया है । एक संशोधन और भी किया गया है, जो गायत्री मन्त्र के २४ वर्ण के सम्बन्ध में है । गायत्री मन्त्र के चौबीस वर्णों के उल्लेख क्रम में महाविज्ञान प्रथम खण्ड के 'गायत्री साधना से शक्तिकोशों का उद्भव' नामक निबन्ध में तथा द्वितीय खण्ड के गायत्री रामायण, वर्णानाम् ध्यानम् तथा 'अक्षर शक्ति कवच' नामक निबन्ध में 'ण्यं' को 'णि यं'- इस प्रकार व्यूहन करके २४ वर्णों की स्थिति स्वीकार की गयी है । यही शास्त्र सम्मत (इयादि पूरणे-पिंगल सूत्रानुसार 'इय' की वृद्धि) भी है । गायत्री महाविज्ञान के कुछ अन्य प्रकरणों में सम्भवत: प्रेस की भूल या किसी अन्य असावधानी से मन्त्र के २४ वर्णों का वर्गीकरण कुछ भिन्न अंकित हो गया था । इस संस्करण में उस भूल को संशोधित कर दिया गया है । सभी स्थानों पर उक्त शास्त्रीय क्रम के अनुसार ही वर्णों का क्रम व्यवस्थित कर दिया गया है ।

आशा की जाती है कि यह ग्रन्थाकार संयुक्त संस्करण लोक रुचि के अनुरूप सिद्ध होगा ।

—ब्रह्मवर्चस

गायत्री महाविज्ञान

संकेत–विवरण

अथर्व०	=	अथर्ववेद
अ०	=	अध्याय
कूर्म पुराण उ० विभा०	=	कूर्म पुराण उत्तरविभाग
खं०	=	खण्ड
गरुड़ पुराण/उ०खं०/ब्रह्म०का०	=	गरुड़ पुराण उत्तर खण्ड ब्रह्म काण्ड
गो० ब्रा० पू०	=	गोपथ ब्राह्मण पूर्वार्द्ध
चरक चि० खण्ड	=	चरक चिकित्सा खण्ड
छा०	=	छान्दोग्योपनिषद्
तारानाथ कृ०गा०व्या०	=	तारानाथ कृत गायत्री व्याख्या
तै० आ०	=	तैत्तिरीय आरण्यक
तैत्तिरीय ब्रा०	=	तैत्तिरीय ब्राह्मण
तैत्तिरीय सं०	=	तैत्तिरीय संहिता
दु० वृ०	=	दुर्गवृत्ति
दे० भा० स्क०	=	देवी भागवत पुराण स्कन्ध
नृसिंह पूर्वतापनीयोप०	=	नृसिंहपूर्वतापनीयोपनिषद्
प०	=	पद्धति
पद्म पु० सृ० खं०	=	पद्म पुराण सृष्टि खण्ड
पु०	=	पुराण
पृ०	=	पृष्ठ
बृ० पाराशर स्मृति	=	बृहत् पाराशर स्मृति
बृ० यो० याज्ञ०	=	बृहद् योगी याज्ञवल्क्य स्मृति
बृह०	=	बृहदारण्यकोपनिषद्
ब्र०वै० पु० कृ०ज० अ०	=	ब्रह्मवैवर्त पुराण कृष्ण जन्म अध्याय
मनु०	=	मनुस्मृति
महा०	=	महाभारत
महाभारत आश्व०	=	महाभारत आश्वमेधिक पर्व
यजु०	=	यजुर्वेद
यो० या०	=	योगी याज्ञवल्क्य
वा० रा०	=	वाल्मीकि रामायण
शंख०	=	शंख स्मृति
शत० ब्रा०	=	शतपथ ब्राह्मण
स्मृ०	=	स्मृति

विषय-सूची

प्रथम भाग

द्वितीय भाग

तृतीय भाग

गायत्री महाविज्ञान

प्रथम भाग

भूमिका

गायत्री वह दैवी शक्ति है, जिससे सम्बन्ध स्थापित करके मनुष्य अपने जीवन-विकास के मार्ग में बड़ी सहायता प्राप्त कर सकता है । परमात्मा की अनेक शक्तियाँ हैं, जिनके कार्य और गुण पृथक्-पृथक् हैं । उन शक्तियों में गायत्री का स्थान बहुत ही महत्त्वपूर्ण है । यह मनुष्य को सद्बुद्धि की प्रेरणा देती है । गायत्री से आत्म-सम्बन्ध करने वाले मनुष्य में निरन्तर एक ऐसी सूक्ष्म एवं चैतन्य विद्युद्धारा सञ्चरण करने लगती है, जो प्रधानत: मन, बुद्धि, चित्त और अन्त:करण पर अपना प्रभाव डालती है । बौद्धिक क्षेत्र के अनेकों कुविचारों, असत् संकल्पों, पतनोन्मुख दुर्गुणों का अन्धकार गायत्री रूपी दिव्य प्रकाश के उदय होने से हटने लगता है । यह प्रकाश जैसे-जैसे तीव्र होने लगता है, वैसे-वैसे अन्धकार का अन्त उसी क्रम से होता जाता है ।

मनोभूमि को सुव्यवस्थित, स्वस्थ, सतोगुणी एवं सन्तुलित बनाने में गायत्री का चमत्कारी लाभ असंदिग्ध है और यह भी स्पष्ट ही है कि जिसकी मनोभूमि जितने अंशों में सुविकसित है, वह उसी अनुपात में सुखी रहेगा; क्योंकि विचारों से कार्य होते हैं और कार्यों के परिणाम सुख-दु:ख के रूप में सामने आते हैं । जिसके विचार उत्तम हैं, वह उत्तम कार्य करेगा, जिसके कार्य उत्तम होंगे; उसके चरणों तले सुख-शान्ति लोटती रहेगी ।

गायत्री उपासना द्वारा साधकों को बड़े-बड़े लाभ प्राप्त होते हैं । हमारे परामर्श एवं पथ-प्रदर्शन में अब तक अनेकों व्यक्तियों ने गायत्री उपासना की है । उन्हें सांसारिक और आत्मिक जो आश्चर्यजनक लाभ हुए हैं, हमने अपनी आँखों से देखे हैं । इसका कारण यही है कि उन्हें दैवी वरदान के रूप में सद्बुद्धि प्राप्त होती है और उसके प्रकाश में उन सब दुर्बलताओं, उलझनों, कठिनाइयों का हल निकल आता है, जो मनुष्य को दीन-हीन, दु:खी, दरिद्री, चिन्तातुर एवं कुमार्गगामी बनाती हैं । जैसे प्रकाश का न होना ही अन्धकार है, जैसे अन्धकार स्वतंत्र रूप से कोई वस्तु नहीं है । इसी प्रकार सद्ज्ञान का न होना ही दु:ख है, अन्यथा परमात्मा की इस पुण्य सृष्टि में दु:ख का एक कण भी नहीं हैं । परमात्मा सत्-चित्-आनन्द स्वरूप है, उसकी रचना भी वैसी ही है । केवल मनुष्य अपनी आन्तरिक दुर्बलता के कारण, सद्ज्ञान के अभाव के कारण दु:खी रहता है, अन्यथा सुर-दुर्लभ मानव-शरीर "स्वर्गादपि गरीयसी" धरती माता पर दु:ख का कोई कारण नहीं, यहाँ सर्वत्र, सर्वथा आनन्द ही आनन्द है ।

सद्ज्ञान की उपासना का नाम ही गायत्री- साधना है । जो इस साधना के साधक हैं, उन्हें आत्मिक-सांसारिक सुखों की कमी नहीं रहती, ऐसा हमारा सुनिश्चित विश्वास और दीर्घकालीन अनुभव है । इस पुस्तक में सम्भवत: सभी उपयोगी बातें लिख दी गई हैं, फिर भी कोई शंका- निवारण, परामर्श एवं सहयोग आवश्यक हो, तो जवाबी पत्र द्वारा शान्तिकुञ्ज, हरिद्वार से पूछताछ की जा सकती है ।

गायत्री की शास्त्रीय चर्चा, ऋषियों का अनुभव तथा उनकी रचनायें गायत्री महाविज्ञान के दूसरे भाग में प्रकाशित की जा रही हैं, पाठक उसे भी अवश्य पढ़ें ।

– श्रीराम शर्मा आचार्य

गायत्री महाविज्ञान

वेदमाता गायत्री की उत्पत्ति

वेद कहते हैं-ज्ञान को । ज्ञान के चार भेद हैं-ऋक्, यजुः, साम और अथर्व । कल्याण, प्रभु-प्राप्ति, ईश्वरीय-दर्शन, दिव्यत्व, आत्म-शान्ति, ब्रह्म-निर्वाण, धर्म-भावना, कर्त्तव्य-पालन, प्रेम, तप, दया, उपकार, उदारता, सेवा आदि ऋक् के अन्तर्गत आते हैं । पराक्रम, पुरुषार्थ, साहस, वीरता, रक्षा, आक्रमण, नेतृत्व, यश, विजय, पद, प्रतिष्ठा यह सब 'यजुः' के अन्तर्गत हैं । क्रीड़ा, विनोद, मनोरंजन, संगीत-कला, साहित्य, स्पर्श इन्द्रियों के स्थूल भोग तथा उन भोगों का चिन्तन, प्रिय कल्पना, खेल, गतिशीलता, रुचि, तृप्ति आदि को 'साम' के अन्तर्गत लिया जाता है । धन, वैभव, वस्तुओं का संग्रह, शास्त्र, औषधि, अन्न, वस्तु, धातु, गृह, वाहन आदि सुख-साधनों की सामग्रियाँ 'अथर्व' की परिधि में आती हैं ।

किसी भी जीवित प्राणधारी को लीजिये, उसकी सूक्ष्म और स्थूल, बाहरी और भीतरी क्रियाओं और कल्पनाओं का गम्भीर एवं वैज्ञानिक विश्लेषण कीजिये, प्रतीत होगा कि इन्हीं चार क्षेत्रों के अन्तर्गत उसकी समस्त चेतना परिभ्रमण कर रही है । (१) ऋक्-कल्याण (२) यजुः-पौरुष (३) साम-क्रीड़ा (४) अथर्व-अर्थ । इन चार दिशाओं के अतिरिक्त प्राणियों की ज्ञान-धारा और किसी ओर प्रवाहित नहीं होती । ऋक् को धर्म, यजुः को मोक्ष, साम को काम, अथर्व को अर्थ भी कहा जाता है । यही चार ब्रह्माजी के मुख हैं । ब्रह्मा को चतुर्मुख इसलिये कहा गया है कि वे एक मुख होते हुए भी चार प्रकार की ज्ञान धारा का निष्क्रमण करते हैं । वेद शब्द का अर्थ है-'ज्ञान' इस प्रकार वह एक है, परन्तु एक होते हुए भी वह प्राणियों के अन्तःकरण में चार प्रकार का दिखाई देता है । इसलिये एक वेद को सुविधा के लिए चार भागों में विभक्त कर दिया गया है । भगवान् विष्णु की चार भुजाएँ भी यही हैं । इन चार विभागों को स्वेच्छापूर्वक विभक्त करने के लिये चार आश्रम और चार वर्णों की व्यवस्था की गयी । बालक क्रीड़ावस्था में, तरुण अर्थावस्था में, वानप्रस्थ पौरुषावस्था में और संन्यासी कल्याणावस्था में रहता है । ब्राह्मण ऋक् है, क्षत्रिय यजु; है, वैश्य अथर्व है, साम शूद्र है । इस प्रकार यह चतुर्विध विभागीकरण हुआ ।

यह चारों प्रकार के ज्ञान उस चैतन्य शक्ति के ही स्फुरण हैं, जो सृष्टि के आरम्भ में ब्रह्माजी ने उत्पन्न की थी और जिसे शास्त्रकारों ने गायत्री नाम से सम्बोधित किया है । इस प्रकार चारों वेदों की माता गायत्री हुई । इसी से उसे 'वेदमाता' भी कहा जाता है । इस प्रकार जल तत्त्व को बर्फ, भाप (बादल, ओस, कुहरा आदि), वायु (हाइड्रोजन-ऑक्सीजन) तथा पतले पानी के चार रूपों में देखा जाता है, जिस प्रकार अग्नि-तत्त्व को, ज्वलन, गर्मी, प्रकाश तथा गति के रूप में देखा जाता है, उसी प्रकार एक 'ज्ञान-गायत्री' के चार वेदों के चार रूपों में दर्शन होते हैं । गायत्री माता है, तो चार वेद इसके पुत्र हैं ।

यह तो हुआ सूक्ष्म गायत्री का, सूक्ष्म वेदमाता का स्वरूप । अब उसके स्थूल रूप पर विचार करेंगे । ब्रह्मा ने चार वेदों की रचना से पूर्व चौबीस अक्षर वाले गायत्री मन्त्र की रचना की । इस एक मन्त्र के एक-एक अक्षर में सूक्ष्म तत्त्व समाहित हैं, जिनके पल्लवित होने पर चार वेदों की शाखा-प्रशाखाएँ उद्भूत हो गयीं । एक वट बीज के गर्भ में महान् वट वृक्ष छिपा होता है । जब वह अंकुर रूप में उगता है, वृक्ष के रूप में बड़ा होता है, तो उसमें असंख्य शाखाएँ, टहनियाँ, पत्ते, फूल, फल लद जाते हैं । इन सबका इतना बड़ा विस्तार होता है- जो उस मूल वट बीज की अपेक्षा करोड़ों-अरबों गुना बड़ा होता है । गायत्री के चौबीस अक्षर भी ऐसे ही बीज हैं, जो प्रस्फुटित होकर वेदों के महा विस्तार के रूप में अवस्थित होते हैं ।

व्याकरण शास्त्र का उद्गम शंकर जी के वे चौदह सूत्र हैं, जो उनके डमरू से निकले थे । एक बार महादेवजी ने आनन्द-मग्न होकर अपना प्रिय वाद्य डमरू बजाया । उस डमरू में से चौदह ध्वनियाँ निकलीं । इन (अइउण्, ऋलृक्, एओङ्, ऐऔच्, हयवरट्, लण् आदि) चौदह सूत्रों को लेकर पाणिनि ने महाव्याकरण शास्त्र रच डाला । उस रचना के पश्चात् उसकी व्याख्याएँ होते-होते आज इतना बड़ा व्याकरण शास्त्र प्रस्तुत है, जिसका एक भारी

संग्रहालय बन सकता है । गायत्री मन्त्र के चौबीस अक्षरों से इसी प्रकार वैदिक साहित्य के अंग-प्रत्यंगों का प्रादुर्भाव हुआ है । गायत्री सूत्र है, तो वैदिक ऋचाएँ उनकी विस्तृत व्याख्या हैं ।

ब्रह्म की स्फुरणा से गायत्री का प्रादुर्भाव

अनादि परमात्म तत्त्व ब्रह्म से यह सब कुछ उत्पन्न हुआ । सृष्टि उत्पन्न करने का विचार उठते ही ब्रह्म में एक स्फुरणा उत्पन्न हुई, जिसका नाम है-शक्ति । शक्ति के द्वारा दो प्रकार की सृष्टि उत्पन्न हुई- एक जड़, दूसरी चैतन्य । जड़ सृष्टि का संचालन करने वाली शक्ति 'प्रकृति' और चैतन्य सृष्टि का संचालन करने वाली शक्ति का नाम 'सावित्री' है ।

पुराणों में वर्णन मिलता है कि सृष्टि के आदिकाल में भगवान् की नाभि में से कमल उत्पन्न हुआ । कमल के पुष्प में से ब्रह्मा हुए, ब्रह्मा से सावित्री हुई , सावित्री और ब्रह्मा के संयोग से चारों वेद उत्पन्न हुए । वेद से समस्त प्रकार के ज्ञानों का उद्‌भव हुआ । तदनन्तर ब्रह्माजी ने पंचभौतिक सृष्टि की रचना की । इस आलंकारिक गाथा का रहस्य यह है-निर्लिप्त, निर्विकार, निर्विकल्प परमात्म तत्त्व की नाभि में से, केन्द्र भूमि में से-अन्तःकरण में से कमल उत्पन्न हुआ और वह पुष्प की तरह खिल गया । श्रुति ने कहा कि सृष्टि के आरम्भ में परमात्मा की इच्छा हुई कि **'एकोऽहं बहुस्याम्'** मैं एक से बहुत हो जाऊँ । यह उसकी इच्छा, स्फुरणा नाभि देश में से निकल कर स्फुटित हुई अर्थात् कमल की लतिका उत्पन्न हुई और उसकी कली खिल गयी ।

इस कमल पुष्प पर ब्रह्मा उत्पन्न होते हैं । ये ब्रह्मा सृष्टि-निर्माण की त्रिदेव शक्ति का प्रथम अंश है । आगे चलकर यह त्रिदेवी शक्ति उत्पत्ति, स्थिति और नाश का कार्य करती हुई, ब्रह्मा, विष्णु, महेश के रूप में दृष्टिगोचर होती है । आरम्भ में कमल के पुष्प पर केवल ब्रह्माजी ही प्रकट होते हैं, क्योंकि सर्वप्रथम उत्पन्न करने वाली शक्ति की आवश्यकता हुई ।

अब ब्रह्माजी का कार्य आरम्भ होता है । उन्होंने दो प्रकार की सृष्टि उत्पन्न की-एक चैतन्य, दूसरी जड़ । चैतन्य शक्ति के अन्तर्गत सभी जीव आ जाते हैं, जिनमें इच्छा, अनुभूति, अहंभावना पाई जाती है । चैतन्य की एक स्वतंत्र सृष्टि है, जिसे विश्व का 'प्राणमय कोश' कहते हैं । निखिल विश्व में एक चैतन्य तत्त्व भरा हुआ है, जिसे 'प्राण' नाम से पुकारा जाता है । विचार, संकल्प, भाव, इस प्राण तत्त्व के तीन वर्ग हैं और सत्, रज, तम यह तीन इसके वर्ण हैं । इन्हीं तत्त्वों को लेकर आत्माओं के स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर बनते हैं । सभी प्रकार के प्राणी इसी प्राण तत्त्व से चैतन्यता एवं जीवन सत्ता प्राप्त करते हैं ।

जड़ सृष्टि निर्माण के लिए ब्रह्माजी ने पंचभूतों का निर्माण किया । पृथ्वी, जल, वायु, तेज, आकाश के द्वारा विश्व के सभी परमाणु मय पदार्थ बने । ठोस, द्रव, गैस इन्हीं तीन रूपों में प्रकृति के परमाणु अपनी गतिविधि जारी रखते हैं । नदी, पर्वत, धरती आदि का सभी पसारा इन पंच- भौतिक परमाणुओं का खेल है, प्राणियों के स्थूल शरीर भी इन्हीं प्रकृति जन्य पंच-तत्त्वों के बने होते हैं ।

क्रिया जड़-चेतन, दोनों सृष्टि में है । प्राणमय चैतन्य सृष्टि में अहंभाव, संकल्प और प्रेरणा की गतिविधियाँ विविध रूपों में दिखलाई पड़ती हैं । भूतमय जड़ सृष्टि में, शक्ति, हलचल और सत्ता इन आधारों के द्वारा विविध प्रकार के रंग-रूप, आकार-प्रकार बनते-बिगड़ते रहते हैं । जड़ सृष्टि का आधार परमाणु और चैतन्य सृष्टि का आधार संकल्प है । दोनों ही आधार अत्यन्त सूक्ष्म और अत्यन्त बलशाली हैं, इनका नाश नहीं होता केवल रूपान्तर होता रहता है ।

जड़-चेतन सृष्टि के निर्माण में ब्रह्माजी की दो शक्तियाँ काम कर रही हैं—(१) संकल्प शक्ति (२) परमाणु शक्ति । इन दोनों में प्रथम संकल्प शक्ति की आवश्यकता हुई, क्योंकि बिना उसके चैतन्य का आविर्भाव नहीं होता और बिना चैतन्य के परमाणु का उपयोग किस लिए होता । अचैतन्य सृष्टि तो अपने में अचैतन्य थी, क्योंकि न तो उसको किसी का ज्ञान होता और न उसका कोई उपयोग होता है । 'चैतन्य' के प्रकटीकरण की सुविधा के लिए उसकी साधन- सामग्री के रूप में 'जड़' का उपयोग होता है । अस्तु, आरम्भ में ब्रह्माजी ने चैतन्य बनाया, ज्ञान के संकल्प का आविष्कार किया, पौराणिक भाषा में यह कहिये कि सर्वप्रथम वेदों का प्राकट्‌य हुआ ।

पुराणों में वर्णन मिलता है कि ब्रह्मा के शरीर से एक सर्वांग सुन्दरी तरुणी उत्पन्न हुई, यह उनके अंग से उत्पन्न होने के कारण उनकी पुत्री हुई। इसी तरुणी की सहायता से उन्होंने अपना सृष्टि निर्माण कार्य जारी रखा। इसके पश्चात् उस अकेली रूपवती युवती को देखकर उनका मन विचलित हो गया और उन्होंने उससे पत्नी के रूप में रमण किया। इस मैथुन से मैथुनी संयोजक परमाणुमय पंचभौतिक-सृष्टि उत्पन्न हुई। इस कथा के आलंकारिक रूप को-रहस्यमय पहेली को न समझकर कई व्यक्ति अपने मन में प्राचीन तत्त्वों को उथली और अश्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं। वे भूल जाते हैं कि ब्रह्मा कोई मनुष्य नहीं है और न ही उनसे उत्पन्न हुई शक्ति पुत्री या स्त्री है और न पुरुष-स्त्री की तरह उनके बीच में समागम होता है। इस सृष्टि निर्माण काल के एक तथ्य को गूढ़ पहेली के रूप में आलंकारिक ढंग से प्रस्तुत करके कवि ने अपनी कलाकारिता का परिचय दिया है।

ब्रह्मा, निर्विकार परमात्मा की शक्ति है, जो सृष्टि का निर्माण करती है। इस निर्माण कार्य को चालू करने के लिये उसकी दो भुजाएँ हैं, जिन्हें संकल्प और परमाणु शक्ति कहते हैं। संकल्प शक्ति चेतन सत्- सम्भव होने से ब्रह्मा की पुत्री है। परमाणु शक्ति स्थूल क्रियाशील एवं तम-सम्भव होने से ब्रह्मा की पत्नी है। इस प्रकार गायत्री और सावित्री ब्रह्मा की पुत्री तथा पत्नी नाम से प्रसिद्ध हुईं।

गायत्री सूक्ष्म शक्तियों का स्रोत है

पिछले पृष्ठों पर बतलाया जा चुका है कि एक अव्यय, निर्विकार, अजर-अमर परमात्मा की 'एक से अधिक हो जाने' की इच्छा हुई। ब्रह्म में स्फुरण हुआ कि 'एकोऽहं बहुस्याम्' मैं अकेला हूँ, बहुत हो जाऊँ। उसकी यह इच्छा ही शक्ति बन गयी। इस इच्छा, स्फुरणा या शक्ति को ही ब्रह्म पत्नी कहते हैं। इस प्रकार ब्रह्म एक से दो हो गया। अब उसे लक्ष्मी-नारायण, सीता-राम, राधे-श्याम, उमा-महेश, शक्ति-शिव, माया-ब्रह्म, प्रकृति- परमेश्वर आदि नामों से पुकारने लगे।

इस शक्ति के द्वारा अनेक पदार्थों तथा प्राणियों का निर्माण होना था, इसलिए उसे भी तीन भागों में अपने को विभाजित कर देना पड़ा; ताकि अनेक प्रकार के सम्मिश्रण तैयार हो सकें और विविध गुण, कर्म, स्वभाव वाले जड़, चेतन पदार्थ बन सकें। ब्रह्मशक्ति के ये तीन टुकड़े- (१) सत् (२) रज (३) तम-इन तीन नामों से पुकारे जाते हैं। सत् का अर्थ है- ईश्वर का दिव्य तत्त्व। तम का अर्थ है- निर्जीव पदार्थों में परमाणुओं का अस्तित्व। रज का अर्थ है- जड़ पदार्थों और ईश्वरीय दिव्य तत्त्व के सम्मिश्रण से उत्पन्न हुई आनन्ददायक चैतन्यता, ये तीन तत्त्व स्थूल सृष्टि के मूलकारण हैं। इनके उपरान्त स्थूल उपादान के रूप में मिट्टी, पानी, हवा, अग्नि, आकाश-ये पाँच स्थूल तत्त्व और उत्पन्न होते हैं। इन तत्त्वों के परमाणुओं तथा उनकी शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श तन्मात्राओं द्वारा सृष्टि का सारा कार्य चलता है। प्रकृति के दो भाग हैं—सूक्ष्म प्रकृति जो शक्ति प्रवाह के रूप में, प्राण संचार के रूप में कार्य करती है, वह सत्, रज, तममयी है। स्थूल प्रकृति जिससे दृश्य पदार्थों का निर्माण एवं उपयोग होता है, परमाणुमयी है। यह मिट्टी, पानी, हवा आदि स्थूल पञ्चतत्त्वों के आधार पर अपनी गतिविधि जारी रखती है।

उपरोक्त पंक्तियों से पाठक समझ गये होंगे कि पहले एक ब्रह्म था, उसकी स्फुरणा से आदिशक्ति का आविर्भाव हुआ। इस आदिशक्ति का नाम ही गायत्री है। जैसे ब्रह्म ने अपने तीन भाग कर लिये- (१) सत्- जिसे 'ह्रीं' या सरस्वती कहते हैं (२) रज- जिसे 'श्रीं' या लक्ष्मी कहते हैं (३) तम- जिसे 'क्लीं' या काली कहते हैं। वस्तुतः सत् और तम दो ही विभाग हुए थे, इन दोनों के मिलने से जो धारा उत्पन्न हुई, वह रज कहलाती है। जैसे गंगा, यमुना जहाँ मिलती हैं, वहाँ उनकी मिश्रित धारा को सरस्वती कहते हैं। सरस्वती वैसे कोई पृथक् नदी नहीं है। जैसे इन दो नदियों के मिलने से सरस्वती हुई वैसे ही सत् और तम के योग से रज उत्पन्न हुआ और यह त्रिधा प्रकृति कहलाई।

अद्वैतवाद, द्वैतवाद, त्रैतवाद का बहुत झगड़ा सुना जाता है, वस्तुतः यह समझने का अन्तर मात्र है। ब्रह्म, जीव, प्रकृति यह तीनों ही अस्तित्व में हैं। पहले एक ब्रह्म था यह ठीक है, इसलिये अद्वैतवाद भी ठीक है। पीछे ब्रह्म और शक्ति (प्रकृति) दो हो गये, इसलिए द्वैतवाद भी ठीक है। प्रकृति और परमेश्वर के संस्पर्श से जो रसानुभूति

और चैतन्यता मिश्रित रज सत्ता उत्पन्न हुई, वह जीव कहलायी। इस प्रकार त्रैतवाद भी ठीक है। मुक्ति होने पर जीव सत्ता नष्ट हो जाती है। इससे भी स्पष्ट है कि जीवधारी की जो वर्तमान सत्ता मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार के ऊपर आधारित है, वह एक मिश्रण मात्र है।

तत्त्व-दर्शन के गम्भीर विषय में प्रवेश करके आत्मा के सूक्ष्म विषयों पर प्रकाश डालने का यहाँ अवसर नहीं है। इन पंक्तियों में तो स्थूल और सूक्ष्म प्रकृति का भेद बताया था, क्योंकि विज्ञान के दो भाग यहीं से होते हैं, मनुष्यों की द्विधा प्रकृति यहीं से बनती है। पञ्चतत्त्वों द्वारा काम करने वाली स्थूल प्रकृति का अन्वेषण करने वाले मनुष्य, भौतिक विज्ञानी कहलाते हैं। उन्होंने अपने बुद्धि बल से पञ्चतत्त्वों के भेद-उपभेदों को जानकर उनसे अनेक लाभदायक साधन प्राप्त किये। रसायन, कृषि, विद्युत्, वाष्प, शिल्प, संगीत, भाषा, साहित्य, वाहन, गृह-निर्माण, चिकित्सा, शासन, खगोल विद्या, अस्त्र-शस्त्र, दर्शन, भू- परिशोध आदि अनेक प्रकार के सुख-साधन खोज निकाले और रेल, मोटर, तार, डाक, रेडियो, टेलीविजन, फोटो आदि विविध वस्तुयें बनाने के बड़े-बड़े यंत्र निर्माण किये। धन, सुख, सुविधा और आराम के साधन सुलभ हुए। इस मार्ग से जो लाभ मिलता है, उसे शास्त्रीय भाषा में 'प्रेय' या 'भोग' कहते हैं। यह विज्ञान, भौतिक विज्ञान कहलाता है। यह स्थूल प्रकृति के उपयोग की विद्या है।

सूक्ष्म प्रकृति वह है, जो आद्यशक्ति गायत्री से उत्पन्न होकर सरस्वती, लक्ष्मी, दुर्गा में बँटती है। यह सर्वव्यापिनी शक्ति-निर्झरिणी पंचतत्त्वों से कहीं अधिक सूक्ष्म है। जैसे नदियों के प्रवाह में, जल की लहरों पर वायु के आघात होने के कारण 'कल-कल' से मिलती-जुलती ध्वनियाँ उठा करती हैं, वैसे ही सूक्ष्म प्रकृति की शक्ति- धाराओं से तीन प्रकार की शब्द-ध्वनियाँ उठती हैं। सत् प्रवाह में 'ह्रीं', रज प्रवाह में 'श्रीं' और तम प्रवाह में 'क्लीं' शब्द से मिलती-जुलती ध्वनि उत्पन्न होती है। उससे भी सूक्ष्म ब्रह्म का ॐकार ध्वनि प्रवाह है। नादयोग की साधना करने वाले ध्यान मग्न होकर इन ध्वनियों को पकड़ते हैं और उनका सहारा पकड़ते हुए सूक्ष्म प्रकृति को भी पार करते हुए ब्रह्म सायुज्य तक जा पहुँचते हैं। यह योग साधना-पथ गायत्री महाविज्ञान के तीसरे खण्ड में पाठकों के सामने प्रस्तुत किया जायेगा।

प्राचीन काल में हमारे पूजनीय पूर्वजों ने, ऋषियों ने अपनी तीक्ष्ण दृष्टि से विज्ञान के इस सूक्ष्म तत्त्व को पकड़ा था, उसी की शोध और सफलता में अपनी शक्तियों को लगाया था। फलस्वरूप वे वर्तमान काल के यशस्वी भौतिक विज्ञान की अपेक्षा अनेक गुने लाभों से लाभान्वित होने में समर्थ हुए थे। वे आद्यशक्ति के सूक्ष्म शक्ति प्रवाहों पर अपना अधिकार स्थापित करते थे। यह प्रकट तथ्य है कि मनुष्य के शरीर में अनेक प्रकार की शक्तियों का आविर्भाव होता है। हमारे ऋषिगण योग-साधना के द्वारा शरीर के विभिन्न भागों में छिपे पड़े हुए शक्ति-केन्द्रों को, चक्रों को, ग्रन्थियों को, मातृकाओं को, ज्योतियों को, भ्रमरों को जगाते थे और उस जागरण से जो शक्ति प्रवाह उत्पन्न होता था, उसे आद्यशक्ति के त्रिविध प्रवाहों में से जिसके साथ आवश्यकता होती थी, उससे सम्बन्धित कर देते थे। जैसे रेडियो का स्टेशन के ट्रांसमीटर यन्त्र से सम्बन्ध स्थापित कर दिया जाता है, तो दोनों की विद्युत् शक्तियाँ सम श्रेणी होने के कारण आपस में सम्बन्धित हो जाती हैं तथा उन स्टेशनों के बीच आपसी वार्त्तालाप का, सम्वादों का आदान-प्रदान का सिलसिला चल पड़ता है। इसी प्रकार साधना द्वारा शरीर के अन्तर्गत छिपे हुए और तन्द्रित पड़े हुए केन्द्रों का, जागरण करके सूक्ष्म प्रकृति के शक्ति प्रवाहों से सम्बन्ध स्थापित हो जाता है, तो मनुष्य और आद्यशक्ति आपस में सम्बन्धित हो जाते हैं। इस सम्बन्ध के कारण मनुष्य उस आद्यशक्ति के गर्भ में भरे हुए रहस्यों को समझने लगता है और अपनी इच्छानुसार उनका उपयोग करके लाभान्वित हो सकता है। चूँकि संसार में जो कुछ है वह सब आद्य-शक्ति के भीतर है, इसलिये वह सम्बन्धित व्यक्ति भी संसार के सब पदार्थों और साधनों से अपना सम्बन्ध स्थापित कर सकता है।

वर्तमान काल के वैज्ञानिक पंचतत्त्वों की सीमा तक सीमित, स्थूल प्रकृति के साथ सम्बन्ध स्थापित करने के लिए बड़ी-बड़ी कीमती मशीनों को विद्युत्, वाष्प, गैस, पेट्रोल आदि का प्रयोग करके कुछ आविष्कार करते हैं और थोड़ा-सा लाभ उठाते हैं। यह तरीका बड़ा श्रम-साध्य, कष्ट-साध्य, धन-साध्य और समय-साध्य है। उसमें

खराबी टूट-फूट और परिवर्तन की खटपट भी आये दिन लगी रहती है । उन यन्त्रों की स्थापना, सुरक्षा और निर्माण के लिए हर समय काम जारी रखना पड़ता है तथा उनका स्थान परिवर्तन तो और भी कठिन होता है । यह सब झंझट भारतीय योग-विज्ञान के विज्ञानवेत्ताओं के सामने नहीं थे । वे बिना किसी यन्त्र की सहायता के, बिना संचालक, विद्युत्, पेट्रोल आदि के केवल अपने शरीर के शक्ति - केन्द्रों का सम्बन्ध सूक्ष्म प्रकृति से स्थापित करके ऐसे आश्चर्यजनक कार्य कर लेते थे, जिनकी सम्भावना तक को आज के भौतिक विज्ञानी समझने में समर्थ नहीं हो पा रहे हैं ।

महाभारत और लंका युद्ध में जो अस्त्र-शस्त्र व्यवहृत हुए थे, उनमें से बहुत थोड़ों का धुँधला रूप अभी सामने आया है । रडार, गैस बम, अश्रु-बम, रोग कीटाणु बम, परमाणु बम, मृत्यु किरण आदि का धुँधला चित्र अभी तैयार हो पाया है । प्राचीनकाल में मोहक शस्त्र, ब्रह्मपाश, नागपाश, वरुणास्त्र, आग्नेय बाण, शत्रु को मारकर तरकस में लौट आने वाले बाण आदि व्यवहृत होते थे, शब्द वेध का प्रचलन था । ऐसे अस्त्र-शस्त्र किन्हीं कीमती मशीनों से नहीं, मन्त्र बल से चलाये जाते थे, जो शत्रु को जहाँ भी वह छिपा हो, ढूँढ़कर उसका संहार करते थे । लंका में बैठा हुआ रावण और अमेरिका में बैठा हुआ अहिरावण आपस में भली प्रकार वार्तालाप करते थे, उन्हें किसी रेडियो यन्त्र या ट्रांसमीटर की जरूरत नहीं थी । विमान बिना पेट्रोल के उड़ते थे ।

अष्ट-सिद्धि और नव-निधि का योग शास्त्रों में जगह-जगह पर वर्णन है । अग्नि में प्रवेश करना, जल पर चलना, वायु के समान तेज दौड़ना, अदृश्य हो जाना, मनुष्य से पशु-पक्षी और पशु-पक्षी से मनुष्य का शरीर बदल लेना, शरीर को बहुत छोटा या बड़ा, बहुत हल्का या भारी बना लेना, शाप से अनिष्ट उत्पन्न कर देना, वरदानों से उत्तम लाभों की प्राप्ति, मृत्यु को रोक लेना, पुत्रेष्टि यज्ञ, भविष्य का ज्ञान, दूसरों के अन्तस् की पहचान, क्षण भर में यथेष्ट धन, ऋतु, नगर, जीव-जन्तु गण, दानव आदि उत्पन्न कर लेना, समस्त ब्रह्माण्ड की हलचलों से परिचित होना, किसी वस्तु का रूपान्तर कर देना, भूख, प्यास, नींद, सर्दी-गर्मी पर विजय, आकाश में उड़ना आदि अनेकों आश्चर्य भरे कार्य केवल मन्त्र बल से, योगशक्ति से, अध्यात्म विज्ञान से होते थे और उन वैज्ञानिक प्रयोजनों के लिये किसी प्रकार की मशीन, पेट्रोल, बिजली आदि की जरूरत न पड़ती थी । यह कार्य शारीरिक विद्युत् और प्रकृति के सूक्ष्म प्रवाह का सम्बन्ध स्थापित कर लेने पर बड़ी आसानी से हो जाते थे । यह भारतीय विज्ञान था, जिसका आधार था-साधना ।

साधना द्वारा केवल तम तत्त्व से संबंध रखने वाले उपरोक्त प्रकार के भौतिक चमत्कार ही नहीं होते वरन् रज और सत् क्षेत्र के लाभ एवं आनन्द भी प्रचुर मात्रा में प्राप्त किये जा सकते हैं । हानि, शोक, वियोग, आपत्ति, रोग, आक्रमण, विरोध, आघात आदि की विपन्न परिस्थितियों में पड़कर जहाँ साधारण मनोभूमि के लोग मृत्यु तुल्य मानसिक कष्ट पाते हैं, वहाँ आत्म-शक्तियों के उपयोग की विद्या जानने वाला व्यक्ति विवेक, ज्ञान, वैराग्य, साहस, आशा और ईश्वर-विश्वास के आधार पर इन कठिनाइयों को हँसते-हँसते आसानी से काट लेता है और बुरी अथवा साधारण परिस्थितियों में भी अपने आनन्द को बढ़ाने का मार्ग ढूँढ़ निकालता है । वह जीवन को इतनी मस्ती, प्रफुल्लता और मजेदारी के साथ बिताता है, जैसा कि बेचारे करोड़पतियों को भी नसीब नहीं हो सकता । जिसका शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य आत्मबल के कारण ठीक बना हुआ है, उसे बड़े अमीरों से भी अधिक आनन्दमय जीवन बिताने का सौभाग्य अनायास ही प्राप्त हो जाता है । रज शक्ति का उपभोग जानने का यह लाभ भौतिक विज्ञान द्वारा मिलने वाले लाभों की अपेक्षा कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है ।

'सत्' तत्त्व के लाभों का वर्णन करना तो लेखनी और वाणी दोनों की ही शक्ति के बाहर है । ईश्वरीय दिव्य तत्त्वों की जब आत्मा में वृद्धि होती है तो दया, करुणा, प्रेम, मैत्री, त्याग, संतोष, शान्ति, सेवा-भाव, आत्मीयता, सत्यनिष्ठा, ईमानदारी, संयम, नम्रता, पवित्रता, श्रमशीलता, धर्मपरायणता आदि सद्‌गुणों की मात्रा दिन-दिन बड़ी तेजी से बढ़ती जाती है । फलस्वरूप संसार में उसके लिए प्रशंसा, कृतज्ञता, प्रत्युपकार, श्रद्धा, सहायता, सम्मान के भाव बढ़ते हैं और उसे प्रत्युपकार से सन्तुष्ट करते रहते हैं । इसके अतिरिक्त यह सद्‌गुण स्वयं इतने मधुर हैं कि जिस हृदय में इनका निवास होता है, वहीं आत्म-संतोष की शीतल निर्झरिणी सदा बहती रहती है । ऐसे लोग

चाहे जीवित अवस्था में हों, चाहे मृत अवस्था में, उन्हें जीवन-मुक्ति, स्वर्ग, परमानन्द, ब्रह्मानन्द, आत्म-दर्शन, प्रभु-प्राप्ति, ब्रह्म-निर्वाण, तुरीयावस्था, निर्विकल्प समाधि का सुख प्राप्त होता रहता है। यही तो जीवन का लक्ष्य है। इसे पाकर आत्मा परितृप्ति के आनन्द सागर में निमग्न हो जाती है।

आत्मिक, मानसिक और सांसारिक तीनों प्रकार के सुख-साधन आद्य-शक्ति गायत्री की सत्, रज, तममयी धाराओं तक पहुँचने वाला साधक सुगमतापूर्वक प्राप्त कर सकता है। सरस्वती, लक्ष्मी और काली की सिद्धियाँ पृथक्-पृथक् प्राप्त की जाती हैं। पाश्चात्य देशों में भौतिक विज्ञानी 'क्लीं' तत्त्व की काली शक्ति का अन्वेषण आराधना करने में निमग्न हैं।बुद्धिवादी, धर्म-प्रचारक, सुधारवादी, गाँधीवादी, समाजसेवी, व्यापारी, श्रमिक, उद्योगी, समाजवादी, कम्युनिष्ट यह 'श्रीं' शक्ति की सुव्यवस्था में, लक्ष्मी के आयोजन में लगे हुए हैं। योगी, ब्रह्मवेत्ता, अध्यात्मवादी, तत्त्वदर्शी, भक्त, दार्शनिक, परमार्थी व्यक्ति 'ह्रीं' तत्त्व की, सरस्वती की आराधना कर रहे हैं। यह तीनों ही वर्ग गायत्री की आद्य-शक्ति के एक-एक चरण के उपासक हैं। गायत्री को 'त्रिपदा' कहा है। उसके तीन चरण हैं। यह त्रिवेणी उपर्युक्त तीनों ही प्रयोजनों को पूरा करने वाली है। माता बालक के सभी काम करती है। आवश्यकतानुसार वह उसके लिये मेहतर का, रसोइये का, कहार का, दाई का, घोड़े का, दाता का, दर्जी का, धोबी का, चौकीदार का काम बजा देती है। वैसे ही जो लोग आत्म-शक्ति को आद्य-शक्ति के साथ जोड़ने की विद्या को जानते हैं, वे अपने को सुसन्तति सिद्ध करते हैं।वे गायत्री रूपी सर्वशक्तिमयी माता से यथेष्ट लाभ प्राप्त कर लेते हैं।

संसार में दुःखों के तीन कारण हैं—(१) अज्ञान (२) अशक्ति (३) अभाव। इन तीन दुःखों को गायत्री की सूक्ष्म प्रकृति की तीनों धाराओं के सदुपयोग से मिटाया जा सकता है। ह्रीं अज्ञान को, श्रीं अभाव को, क्लीं अशक्ति को दूर करती है। भारतीय सूक्ष्म विद्या-विशेषज्ञों ने सूक्ष्म प्रकृति पर अधिकार करके अभीष्ट आनन्द प्राप्त करने के जिस विज्ञान का आविष्कार किया था, वह सभी दृष्टियों से असाधारण और महान् है। उस आविष्कार का नाम है—साधना। साधना से सिद्धि मिलती है। गायत्री साधना भी अनेक सिद्धियों की जननी है।

गायत्री साधना से शक्तिकोशों का उद्भव

पिछले पृष्ठों में लिखा जा चुका है कि गायत्री कोई देवी-देवता, भूत-पलीत आदि नहीं, वरन् ब्रह्म की स्फुरणा से उत्पन्न हुई आद्यशक्ति है, जो संसार के प्रत्येक पदार्थ का मूल कारण है और उसी के द्वारा जड़-चेतन सृष्टि में गति, शक्ति, प्रगति-प्रेरणा एवं परिणति होती है। जैसे घर में रखे हुए रेडियो यन्त्र का सम्बन्ध विश्वव्यापी ईथर तरंगों से स्थापित करके देश-विदेशों में होने वाले प्रत्येक ब्राडकास्ट को सरलतापूर्वक सुन सकते हैं, उसी प्रकार आत्म-शक्ति का विश्वव्यापी गायत्री शक्ति से संबंध स्थापित करके सूक्ष्म प्रकृति की सभी हलचलों को जान सकते हैं और सूक्ष्म शक्ति को इच्छानुसार मोड़ने की कला विदित होने पर सांसारिक, मानसिक और आत्मिक क्षेत्र में प्राप्त हो सकने वाली सभी सम्पत्तियों को प्राप्त कर सकते हैं। जिस मार्ग से यह सब हो सकता है उसका नाम है—साधना।

कई व्यक्ति सोचते हैं—हमारा उद्देश्य ईश्वर प्राप्ति, आत्म- दर्शन और जीवन मुक्ति है। हमें गायत्री के, सूक्ष्म प्रकृति के चक्कर में पड़ने से क्या प्रयोजन है ? हमें तो केवल ईश्वर आराधना करनी चाहिये। सोचने वालों को जानना चाहिए कि ब्रह्म सर्वथा निर्विकार, निर्लेप, निरंजन, निराकार, गुणातीत है। वह न किसी से प्रेम करता है, न द्वेष। वह केवल द्रष्टा एवं कारण रूप है। उस तक सीधी पहुँच नहीं हो सकती, क्योंकि जीव और ब्रह्म के बीच सूक्ष्म प्रकृति (एनर्जी) का सघन आच्छादन है। इस आच्छादन को पार करने के लिए प्रकृति के साधनों से ही कार्य करना पड़ेगा। मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, कल्पना, ध्यान, सूक्ष्म शरीर, षट्चक्र, इष्टदेव की ध्यान प्रतिमा, भक्ति, भावना, उपासना, व्रत, अनुष्ठान, साधना यह सभी तो माया निर्मित ही हैं। इन सबको छोड़कर ब्रह्म प्राप्ति किस प्रकार होनी सम्भव है ? जैसे ऊपर आकाश में पहुँचने के लिए वायुयान की आवश्यकता पड़ती है, वैसे ही ब्रह्म-प्राप्ति के लिए भी प्रतिमामूलक आराधना का आश्रय लेना पड़ता है। गायत्री के आचरण में होकर पार जाने

पर ही ब्रह्म का साक्षात्कार होता है। सच तो यह है कि साक्षात्कार का अनुभव गायत्री के गर्भ में ही होता है। इससे ऊपर पहुँचने पर सूक्ष्म इन्द्रियाँ और उनकी अनुभव शक्ति भी लुप्त हो जाती है। इसलिए मुक्ति और ईश्वर प्राप्ति चाहने वाले भी गायत्री मिश्रित ब्रह्म की, राधेश्याम, सीताराम, लक्ष्मीनारायण की ही उपासना करते हैं। निर्विकार ब्रह्म का सायुज्य तो तभी होगा, जब ब्रह्म 'बहुत से एक होने' की इच्छा करेगा और सब आत्माओं को समेटकर अपने में धारण कर लेगा। उससे पूर्व सब आत्माओं का सविकार ब्रह्म में ही सामीप्य, सारूप्य, सायुज्य आदि हो सकता है। इस प्रकार गायत्री मिश्रित सविकार ब्रह्म ही हमारा उपास्य रह जाता है। उसकी प्राप्ति के साधन जो भी होंगे, वे सभी सूक्ष्म प्रकृति गायत्री द्वारा ही होंगे। इसलिए ऐसा सोचना उचित नहीं कि ब्रह्म प्राप्ति के लिए गायत्री अनावश्यक है। वह तो अनिवार्य है। नाम से कोई उपेक्षा या विरोध करे, यह उसकी इच्छा, पर गायत्री तत्त्व से बचकर अन्य मार्ग से जाना असंभव है।

कई व्यक्ति कहते हैं कि हम निष्काम साधना करते हैं। हमें किसी फल की कामना नहीं, फिर सूक्ष्म प्रकृति का आश्रय क्यों लें? ऐसे लोगों को जानना चाहिए कि निष्काम साधना का अर्थ-भौतिक लाभ न चाह कर आत्मिक साधना का है, बिना परिणाम सोचे यदि चाहें तो किसी कार्य में प्रवृत्ति हो ही नहीं सकती, यदि कुछ मिल भी जाय, तो उससे समय एवं शक्ति के अपव्यय के अतिरिक्त और कुछ परिणाम नहीं निकलता। निष्काम कर्म का तात्पर्य दैवी, सतोगुणी, आत्मिक कामनाओं से है। ऐसी कामनायें भी गायत्री के प्रथम पाद के 'ह्रीं' तत्त्व में सरस्वती भाग में आती हैं। इसलिए निष्काम भाव की उपासना भी गायत्री क्षेत्र से बाहर नहीं है।
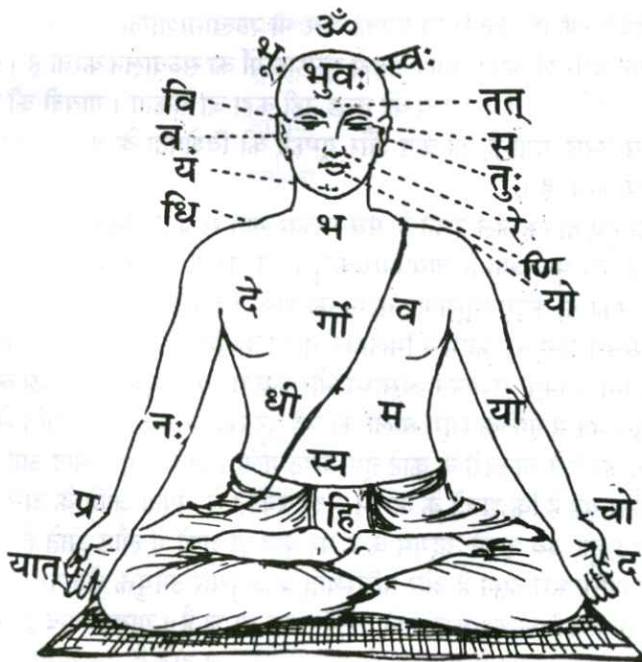
मन्त्र विद्या को वैज्ञानिक जानते हैं कि जीभ से जो भी शब्द निकलते हैं, उनका उच्चारण कण्ठ, तालु, मूर्धा, ओष्ठ, दन्त, जिह्वामूल आदि मुख के विभिन्न अंगों द्वारा होता है। इस उच्चारण काल में मुख के जिन भागों से ध्वनि निकलती है, उन अंगों के नाड़ी तन्तु शरीर के विभिन्न भागों तक फैलते हैं। इस फैलाव क्षेत्र में कई ग्रन्थियाँ होती हैं, जिन पर उन उच्चारणों का दबाव पड़ता है। जिन लोगों की कुछ सूक्ष्म ग्रन्थियाँ रोगी या नष्ट हो जाती हैं, उनके मुख से कुछ खास शब्द अशुद्ध या रुक-रुककर निकलते हैं, इसी को हकलाना या तुतलाना कहते हैं। शरीर में अनेक छोटी-बड़ी, दृश्य-अदृश्य ग्रन्थियाँ होती हैं। योगी लोग जानते हैं कि उन कोशों में कोई विशेष शक्ति-भण्डार छिपा रहता है, सुषुम्ना से सम्बद्ध षट्चक्र प्रसिद्ध हैं, ऐसी अगणित ग्रन्थियाँ शरीर में हैं। विविध शब्दों का उच्चारण इन विविध ग्रन्थियों पर अपना प्रभाव डालता है और इसके प्रभाव से उन ग्रन्थियों का शक्ति भण्डार जाग्रत् होता है। मन्त्रों का गठन इसी आधार पर हुआ है। गायत्री मन्त्र में २४ अक्षर हैं। इसका सम्बन्ध शरीर में स्थित ऐसी २४ ग्रन्थियों से है, जो जाग्रत् होने पर सद्बुद्धि प्रकाशक शक्तियों को सतेज करती हैं। गायत्री मन्त्र के उच्चारण से सूक्ष्म शरीर का सितार २४ स्थानों से झंकार देता है और उससे एक ऐसी स्वर-लहरी उत्पन्न होती है, जिसका प्रभाव अदृश्य जगत् के महत्त्वपूर्ण तत्त्वों पर पड़ता है। यह प्रभाव ही गायत्री साधना के फलों का प्रभाव हेतु है।

शब्दों का ध्वनि प्रवाह तुच्छ चीज नहीं हैं। शब्द-विद्या के आचार्य जानते हैं कि शब्द में कितनी शक्ति है और उसकी अज्ञात गतिविधि के द्वारा क्या-क्या परिणाम उत्पन्न हो सकते हैं? शब्द को ब्रह्म कहा गया है। ब्रह्म की स्फुरणा कम्पन उत्पन्न करती है। वह कम्पन ब्रह्म से टकराकर ॐ ध्वनि के रूप में सात बार ध्वनित होता है। जैसे घड़ी का लटकन घण्टा पेंडुलम झूमता हुआ घड़ी के पुर्जों में चाल पैदा करता रहता है, इसी प्रकार वह "ॐ" कार ध्वनि-प्रवाह सृष्टि को चलाने वाली गति पैदा करता है। आगे चलकर उस प्रवाह में ह्रीं, श्रीं, क्लीं की तीन प्रधान सत्, रज, तममयी धारायें बहती हैं। तदुपरान्त उसकी और भी शाखा-प्रशाखायें हो जाती है, जो बीज मन्त्र के नाम से पुकारी जाती हैं। यह ध्वनियाँ अपने-अपने क्षेत्र में सृष्टि कार्यों का सञ्चालन करती हैं। इस प्रकार सृष्टि का संचालन कार्य शब्दतत्त्व द्वारा होता है। ऐसे तत्त्व को तुच्छ नहीं कहा जा सकता। गायत्री की शब्दावली ऐसे चुने हुए शृंखलाबद्ध शब्दों से बनाई गयी है, जो क्रम और गुम्फन की विशेषता के कारण अपने ढंग का एक अद्भुत ही शक्ति प्रवाह उत्पन्न करती है।

दीपक-राग गाने से बुझे हुए दीपक जल उठते हैं, मेघ-मल्हार गाने से वर्षा होने लगती है, वेणुनाद सुनकर सर्प लहराने लगते हैं, मृग सुध-बुध भूल जाते हैं, गायें अधिक दूध देने लगती हैं। कोयल की बोली सुनकर काम भाव जाग्रत् हो जाता है। सैनिकों के कदम मिलाकर चलने की शब्द ध्वनि से लोहे के पुल तक गिर सकते हैं, इसलिए पुलों को पार करते समय सेना को कदम न मिलाकर चलने की हिदायत कर दी जाती है। अमेरिका के डॉक्टर हचिंसन ने विविध संगीत ध्वनियों से अनेक असाध्य और कष्ट साध्य रोगियों को अच्छा करने में सफलता और ख्याति प्राप्त की है। भारतवर्ष में तांत्रिक लोग थाली को घड़े पर रखकर एक विशेष गति से बजाते हैं और उस बाजे से सर्प, बिच्छू आदि जहरीले जानवरों के काटे हुए, कण्ठमाला, विषवेल, भूतोन्माद आदि के रोगी बहुत करके अच्छे हो जाते हैं। कारण यह है कि शब्दों के कम्पन सूक्ष्म प्रकृति से अपनी जाति के अन्य परमाणुओं को लेकर ईथर का परिभ्रमण करते हुए जब अपने उद्गम केन्द्र पर कुछ ही क्षणों में लौट आते हैं, तो उसमें अपने प्रकार की एक विशेष विद्युत् शक्ति भरी होती है और परिस्थिति के अनुसार उपयुक्त क्षेत्र पर उस शक्ति का एक विशिष्ट प्रभाव पड़ता है। मन्त्रों द्वारा विलक्षण कार्य होने का भी यही कारण है। गायत्री मन्त्र द्वारा भी इसी प्रकार शक्ति का आविर्भाव होता है। मन्त्रोच्चारण में मुख के जो अंग क्रियाशील होते हैं, उन भागों में नाड़ी तन्तु कुछ विशेष ग्रन्थियों को गुद-गुदाते हैं। उनमें स्फुरण होने से एक वैदिक छन्द का क्रमबद्ध यौगिक संगीत प्रवाह ईथर तत्त्व में फैलता है और अपनी कुछ क्षणों में होने वाली विश्व परिक्रमा से वापस आते-आते एक स्वजातीय तत्त्वों की सेना साथ ले आता है, जो अभीष्ट उद्देश्य की पूर्ति में बड़ी सहायक होती है। शब्द संगीत के शक्तिमान् कम्पनों का पञ्च भौतिक प्रवाह और आत्म-शक्ति की सूक्ष्म प्रकृति की भावना, साधना, आराधना के आधार पर उत्पन्न

किया गया सम्बन्ध, यह दोनों कारण गायत्री-शक्ति को ऐसा बलवान् बनाते हैं, जो साधकों के लिए दैवी वरदान सिद्ध होता है ।

गायत्री मन्त्र को और भी अधिक सूक्ष्म बनाने वाला कारण है साधक का 'श्रद्धामय विश्वास' । विश्वास से सभी मनोविज्ञानवेत्ता परिचित हैं । हम अपनी पुस्तकों और लेखों में ऐसे असंख्य उदाहरण अनेकों बार दे चुके हैं, जिनसे सिद्ध होता है कि केवल विश्वास के आधार पर लोग भय की वजह से अकारण काल के मुख में चले गये और विश्वास के कारण मृतप्राय लोगों ने नवजीवन प्राप्त किया । रामायण में तुलसीदासजी ने **'भवानीशंकरौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ'** गाते हुए श्रद्धा और विश्वास को भवानी-शंकर की उपमा दी है । झाड़ी को भूत, रस्सी को सर्प, मूर्ति को देवता बना देने की क्षमता विश्वास में है । लोग अपने विश्वासों की रक्षा के लिए धन, आराम तथा प्राणों तक को हँसते-हँसते गँवा देते हैं । एकलव्य, कबीर आदि ऐसे अनेक उदाहरण हैं, जिससे प्रकट है कि गुरु द्वारा नहीं केवल अपनी श्रद्धा के आधार पर गुरु द्वारा प्राप्त होने वाली शिक्षा से भी अधिक विज्ञ बना जा सकता है । हिप्नोटिज्म का आधार रोगी को अपने वचन पर विश्वास कराके उससे मनमाने कार्य करा लेना ही तो है । तान्त्रिक लोग मन्त्र सिद्धि की कठोर साधना द्वारा अपने मन में कितनी अगाध श्रद्धा जमाते हैं । आमतौर पर जिसके मन में उस मन्त्र के प्रति जितनी गहरी श्रद्धा जमी होती है, उस तांत्रिक का मन्त्र भी उतना काम करता है । जिस मन्त्र से श्रद्धालु तान्त्रिक चमत्कारी काम कर दिखाता है, उस मन्त्र को अश्रद्धालु साधक चाहे सौ बार बके कुछ लाभ नहीं होता । गायत्री मन्त्र के सम्बन्ध में भी यह तथ्य बहुत हद तक काम करता है । जब साधक श्रद्धा और विश्वासपूर्वक आराधना करता है, तो शब्द विज्ञान और आत्म-सम्बन्ध दोनों की महत्ता से संयुक्त गायत्री का प्रभाव और भी अधिक बढ़ जाता है और वह एक अद्वितीय शक्ति सिद्ध होती है ।

पिछले २२ पृष्ठ पर दिये हुए चित्र में दिखाया गया है कि गायत्री के प्रत्येक अक्षर का किस-किस स्थान से सम्बन्ध है ? उन स्थलों पर कौन यौगिक ग्रन्थिचक्र हैं, इसका परिचय इस प्रकार है—

अक्षर	ग्रन्थि का नाम	उसमें भरी हुई शक्ति
१. तत्	तापिनी	सफलता
२. स	सफला	पराक्रम
३. वि	विश्वा	पालन
४. तुर्	तुष्टि	कल्याण
५. व	वरदा	योग
६. रे	रेवती	प्रेम
७. णि	सूक्ष्मा	धन
८. यं	ज्ञाना	तेज
९. भर्	भर्गा	रक्षा
१०. गो	गोमती	बुद्धि
११. दे	देविका	दमन
१२. व	वराही	निष्ठा
१३. स्य	सिंहनी	धारणा
१४. धी	ध्याना	प्राण

१५. म	मर्यादा	संयम
१६. हि	स्फुटा	तप
१७. धि	मेधा	दूरदर्शिता
१८. यो	योगमाया	जागृति
१९. यो	योगिनी	उत्पादन
२०. न:	धारिणी	सरसता
२१. प्र	प्रभवा	आदर्श
२२. चो	ऊष्मा	साहस
२३. द	दृश्या	विवेक
२४. यात्	निरञ्जना	सेवा

गायत्री उपरोक्त २४ शक्तियों को साधक में जाग्रत् करती है । यह गुण इतने महत्त्वपूर्ण हैं कि इनके जागरण के साथ-साथ अनेक प्रकार की सफलतायें, सिद्धियाँ और सम्पन्नता प्राप्त होना आरम्भ हो जाता है । कई लोग समझते हैं कि यह लाभ अनायास कोई देवी-देवता दे रहा है । कारण यह है कि अपने अन्दर हो रहे सूक्ष्म तत्त्वों की प्रगति और परिणति को देख और समझ नहीं पाते । यदि वे समझ पाएँ कि उनकी साधना से क्या-क्या सूक्ष्म प्रक्रियायें हो रही हैं, तो यह समझने में देर न लगेगी कि यह सब कुछ कहीं से अनायास दान नहीं मिल रहा है, वरन् आत्म-विद्या की सुव्यवस्थित वैज्ञानिक प्रक्रिया का ही यह परिणाम है । गायत्री साधना कोई अन्ध-विश्वास नहीं, एक ठोस वैज्ञानिक कृत्य है और उसके द्वारा लाभ भी सुनिश्चित ही होते हैं ।

गायत्री ही कामधेनु है

पुराणों में उल्लेख है कि सुरलोक में देवताओं के पास कामधेनु गौ है, वह अमृतोपम दूध देती है । जिसे पीकर देवता लोग सदा सन्तुष्ट, प्रसन्न तथा सुसम्पन्न रहते हैं । इस गौ में यह विशेषता है कि उसके समीप कोई अपनी कुछ कामना लेकर आता है, तो उसकी इच्छा तुरन्त पूरी हो ही जाती है । कल्पवृक्ष के समान कामधेनु गौ भी अपने निकट पहुँचने वालों की मनोकामना पूरी करती है ।

यह कामधेनु गौ गायत्री ही है । इस महाशक्ति की जो देवता, दिव्य स्वभाव वाला मनुष्य उपासना करता है, वह माता के स्तनों के समान आध्यात्मिक दुग्ध धारा का पान करता है, उसे किसी प्रकार कोई कष्ट नहीं रहता । आत्मा स्वत: आनन्द स्वरूप है । आनन्द मग्न रहना उसका प्रमुख गुण है । दु:खों के हटते और मिटते ही वह अपने मूल स्वरूप में पहुँच जाता है । देवता स्वर्ग में सदा आनन्दित रहते हैं । मनुष्य भी भूलोक में उसी प्रकार आनन्दित रह सकता है, यदि उसके कष्टों का निवारण हो जाए । गायत्री कामधेनु मनुष्य के सभी कष्टों का समाधान कर देती है ।

त्रिविध दु:खों का निवारण

समस्त दु:खों के कारण तीन हैं - (१) अज्ञान (२) अशक्ति (३) अभाव । जो इन तीनों कारणों को जिस सीमा तक अपने से दूर करने में समर्थ होगा, वह उतना ही सुखी बन सकेगा ।

अज्ञान के कारण मनुष्य का दृष्टिकोण दूषित हो जाता है, वह तत्त्वज्ञान से अपरिचित होने के कारण उल्टा-सीधा सोचता है और उल्टे काम करता है, तदनुरूप उलझनों में अधिक फँसता जाता है और दु:खी बनता है । स्वार्थ, भोग, लोभ, अहंकार, अनुदारता और क्रोध की भावनायें मनुष्य को कर्तव्यच्युत करती हैं और वह दूरदर्शिता को छोड़कर क्षणिक, क्षुद्र एवं हीन बातें सोचता है तथा वैसे ही काम करता है । फलस्वरूप उसके विचार और कार्य

पापमय होने लगते हैं। पापों का निश्चित परिणाम दुःख है। दूसरी ओर अज्ञान के कारण वह अपने और दूसरे सांसारिक गतिविधियों के मूल हेतुओं को नहीं समझ पाता। फलस्वरूप असम्भव आशायें, तृष्णायें, कल्पनायें किया करता है। इस उल्टे दृष्टिकोण के कारण साधारण-सी बातें उसे बड़ी दुःखमय दिखायी देती हैं, जिसके कारण वह रोता-चिल्लाता रहता है। आत्मीयों की मृत्यु, साथियों की भिन्न रुचि, परिस्थितियों का उतार-चढ़ाव स्वाभाविक है, पर अज्ञानी सोचता है कि मैं जो चाहता हूँ, वही सदा होता रहे। प्रतिकूल बात सामने आये ही नहीं। इस असम्भव आशा के विपरीत घटनायें जब भी घटित होती हैं, तभी वह रोता, चिल्लाता है। तीसरे अज्ञान के कारण भूलें भी अनेक प्रकार की होती हैं, समीपस्थ सुविधाओं से वंचित रहना पड़ता है, यह भी दुःख का हेतु है। इस प्रकार अनेक दुःख मनुष्य को अज्ञान के कारण प्राप्त होते हैं।

अशक्ति का अर्थ है-निर्बलता। शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, बौद्धिक, आत्मिक निर्बलता के कारण, मनुष्य अपने स्वाभाविक, जन्म सिद्ध अधिकारों का भार अपने कन्धों पर उठाने में समर्थ नहीं होता, फलस्वरूप उसे वंचित रहना पड़ता है। स्वास्थ्य खराब हो, बीमारी ने घेर रखा हो, तो स्वादिष्ट भोजन, रूपवती तरुणी, मधुर गीत-वाद्य, सुन्दर दृश्य निरर्थक हैं। धन-दौलत का कोई कहने लायक सुख उसे नहीं मिल सकता। बौद्धिक निर्बलता हो तो साहित्य, काव्य, दर्शन, मनन, चिन्तन का रस प्राप्त नहीं हो सकता। आत्मिक निर्बलता हो तो सत्संग, प्रेम, भक्ति आदि का आत्मानंद दुर्लभ है। इतना ही नहीं, निर्बलों को मिटा डालने के लिए प्रकृति का 'उत्तम की रक्षा' सिद्धांत काम करता है। कमजोर को सताने और मिटाने के लिए अनेकों तथ्य प्रकट हो जाते हैं। निर्दोष, भले और सीधे-साधे तत्त्व भी उसके प्रतिकूल पड़ते हैं। सर्दी जो बलवानों को बलवृद्धि प्रदान करती है, रसिकों को रस देती है, वह कमजोरों को निमोनिया, गठिया आदि का कारण बन जाती है। जो तत्त्व निर्बलों के लिये प्राणघातक हैं, वे ही बलवानों को सहायक सिद्ध होते हैं। बेचारी निर्बल बकरी को जंगली जानवरों से लेकर जगत्माता भवानी दुर्गा तक चट कर जाती है और सिंह को वन्य पशु ही नहीं बड़े-बड़े सम्राट् तक अपने राज्य-चिह्न में धारण करते हैं। अशक्त हमेशा दुःख पाते हैं, उनके लिए भले तत्त्व भी आशाप्रद सिद्ध नहीं होते हैं।

अभावजन्य दुःख है— पदार्थों का अभाव। अन्न, वस्त्र, जल, मकान, पशु, भूमि, सहायक, मित्र, धन, औषधि, पुस्तक, शस्त्र, शिक्षक आदि के अभाव में विविध प्रकार की पीड़ायें, कठिनाइयाँ भुगतनी पड़ती हैं, उचित आवश्यकताओं को कुचलकर, मन मारकर बैठना पड़ता है और जीवन के महत्त्वपूर्ण क्षणों को मिट्टी के मोल नष्ट करना पड़ता है। योग्य और समर्थ व्यक्ति भी साधनों के अभाव में अपने को लुञ्ज-पुञ्ज अनुभव करते हैं और दुःख उठाते हैं।

गायत्री कामधेनु है। जो उसकी पूजा, उपासना, आराधना और अभिभावना करता है, वह प्रतिक्षण माता का अमृतोपम दुग्ध पान करने का आनन्द लेता है और समस्त अज्ञानों, अशक्तियों और अभावों के कारण उत्पन्न होने वाले कष्टों से छुटकारा पाकर मनोवांछित फल प्राप्त करता है।

गायत्री और ब्रह्म की एकता

गायत्री कोई स्वतंत्र देवी-देवता नहीं है। यह तो परब्रह्म परमात्मा का क्रिया भाग है। ब्रह्म निर्विकार है, अचिन्त्य है, बुद्धि से परे है, साक्षी रूप है, परन्तु अपनी क्रियाशील चेतना शक्ति रूप होने के कारण उपासनीय है और उस उपासना का अभीष्ट परिणाम भी प्राप्त होता है। ईश्वर-भक्ति, ईश्वर-उपासना, ब्रह्म- साधना, आत्म-साक्षात्कार, ब्रह्म-दर्शन, प्रभु-परायणता आदि पुरुषवाची शब्दों का जो तात्पर्य और उद्देश्य है, वही 'गायत्री उपासना' आदि स्त्री-वाची शब्दों का मन्तव्य है।

गायत्री उपासना वस्तुतः ईश्वर उपासना का एक अत्युत्तम सरल और शीघ्र सफल होने वाला मार्ग है। इस मार्ग पर चलने वाले व्यक्ति एक सुरम्य उद्यान से होते हुए जीवन के चरम लक्ष्य 'ईश्वर- प्राप्ति' तक पहुँचते हैं। ब्रह्म और गायत्री में केवल शब्दों का अन्तर है, वैसे दोनों ही एक हैं। इस एकता के कुछ प्रमाण नीचे देखिये-

गायत्री छन्दसामहम् ॥ —श्रीमद् भगवद्गीता अ-१०.३५

छन्दों में मैं गायत्री छन्द हूँ।

भूर्भुवः स्वरिति चैव चतुर्विंशाक्षरा तथा।
गायत्री चतुरो वेदा ओंकारः सर्वमेव तु ॥ —बृ० यो० याज्ञ० २/६६

भूर्भुवः स्वः यह तीन महाव्याहृतियाँ, चौबीस अक्षर वाली गायत्री तथा चारों वेद निस्संदेह ओंकार (ब्रह्म) स्वरूप हैं।

देवस्य सवितुर्यस्य धियो यो नः प्रचोदयात्।
भर्गो वरेण्यं तद्ब्रह्म धीमहीत्यथ उच्यते ॥ —विश्वामित्र

उस दिव्य तेजस्वी, ब्रह्म का हम ध्यान करते हैं, जो हमारी बुद्धि को सन्मार्ग में प्रेरित करता है।

अथो वदामि गायत्रीं तत्त्वरूपां त्रयीमयीम्।
यया प्रकाश्यते ब्रह्म सच्चिदानन्दलक्षणम् ॥ —गायत्री तत्त्व० श्लोक १

त्रिवेदमयी (वेदत्रयी) तत्त्व स्वरूपिणी गायत्री को मैं कहता हूँ, जिससे सच्चिदानन्द लक्षण वाला ब्रह्म प्रकाशित होता है अर्थात् ज्ञात होता है।

गायत्री वा इदं सर्वम्। —नृसिंहपूर्वतापनीयोप० ४/३

यह समस्त जो कुछ है, गायत्री स्वरूप है।

गायत्री परमात्मा। —गायत्रीतत्व०

गायत्री (ही) परमात्मा है।

ब्रह्म गायत्रीति-ब्रह्म वै गायत्री।—शतपथ ब्राह्मण ८/५/३/७—ऐतरेय ब्रा० अ० १७खं० ५

ब्रह्म गायत्री है, गायत्री ही ब्रह्म है।

सप्रभं सत्यमानन्दं हृदये मण्डलेऽपि च।
ध्यायज्जपेत्तदित्येतन्निष्कामो मुच्यतेऽचिरात् ॥—विश्वामित्र

प्रकाश सहित सत्यानन्द स्वरूप ब्रह्म को हृदय में और सूर्यमण्डल में ध्यान करता हुआ, कामना रहित हो गायत्री मन्त्र को यदि जपे, तो अविलम्ब संसार के आवागमन से छूट जाता है।

ओंकारस्तत्परं ब्रह्म सावित्री स्यात्तदक्षरम्।—कूर्म पुराण उ० विभा० अ० १४/५७

ओंकार परब्रह्म स्वरूप है और गायत्री भी अविनाशी ब्रह्म है।

गायत्री तु परं तत्त्वं गायत्री परमागतिः।—बृहत्पाराशर गायत्री मंत्र पुरश्चरण वर्णनम् ४/४

गायत्री परम तत्त्व है, गायत्री परम गति है।

सर्वात्मा हि सा देवी सर्वभूतेषु संस्थिता।
गायत्री मोक्षहेतुश्च मोक्षस्थानमसंशयम् ॥ —ऋषि शृंग

यह गायत्री देवी समस्त प्राणियों में आत्मा रूप में विद्यमान है, गायत्री मोक्ष का मूल कारण तथा सन्देह रहित मुक्ति का स्थान है।

गायत्र्येव परो विष्णुर्गायत्र्येव परः शिवः।
गायत्र्येव परो ब्रह्मा गायत्र्येव त्रयी ततः ॥- स्कन्द पुराण, काशीखण्ड ४/९/५८, बृहत्सन्ध्या भाष्य

गायत्री ही दूसरे विष्णु हैं और शंकरजी दूसरे गायत्री ही हैं। ब्रह्माजी भी गायत्री में परायण हैं, क्योंकि गायत्री तीनों देवों का स्वरूप है।

गायत्री परदेवतेति गदिता ब्रह्मैव चिद्रूपिणी ॥३ ॥ —गायत्री पुरश्चरण प०

गायत्री परम श्रेष्ठ देवता और चित्त रूपी ब्रह्म है, ऐसा कहा गया है।

गायत्री वा इदं सर्वं भूतं यदिदं किंच। —छान्दोग्योपनिषद् ३/१२/१

यह विश्व जो कुछ भी है, वह समस्त गायत्रीमय है।

नभिन्नां प्रतिपद्येत गायत्रीं ब्रह्मणा सह।
सोऽहमस्मीत्युपासीत विधिना येन केनचित्॥ —व्यास

गायत्री और ब्रह्म में भी भिन्नता नहीं है। अतः चाहे जिस किसी भी प्रकार से ब्रह्म स्वरूपी गायत्री की उपासना करे।

गायत्री प्रत्यग्ब्रह्मैक्यबोधिका। —शांकर भाष्य

गायत्री प्रत्यक्ष अद्वैत ब्रह्म की बोधिका है।

परब्रह्मस्वरूपा च निर्वाणपददायिनी।
ब्रह्मतेजोमयी शक्तिस्तदधिष्ठातृ देवता॥ —देवी भागवत स्कन्ध ९ अ. १/४२

गायत्री मोक्ष देने वाली, परमात्म स्वरूप और ब्रह्मतेज से युक्त शक्ति है और मन्त्रों की अधिष्ठात्री है।

गायत्र्याख्यं ब्रह्म गायत्र्यनुगतं गायत्री मुखेनोक्तम्॥—छान्दोग्य० शांकर भाष्य ३/१२/१५

गायत्री स्वरूप एवं गायत्री से प्रकाशित होने वाला ब्रह्म गायत्री नाम से वर्णित है।

प्रणवव्याहृतिभ्याञ्च गायत्र्या त्रितयेन च।
उपास्यं परमं ब्रह्म आत्मा यत्र प्रतिष्ठितः॥ —तारानाथ कृ० गा०/व्या० पृ० २५

प्रणव, व्याहृति और गायत्री इन तीनों से परम ब्रह्म की उपासना करनी चाहिये, उस ब्रह्म में आत्मा स्थित है।

ते वा एते पञ्च ब्रह्मपुरुषाः स्वर्गस्य लोकस्य द्वारपाः स य एतानेवं पञ्च ब्रह्मपुरुषान् स्वर्गस्य लोकस्य द्वारपान् वेदास्य कुले वीरो जायते प्रतिपद्यते स्वर्गलोकम्। —छा० ३/१३/६

हृदय चैतन्य ज्योति गायत्री रूप ब्रह्म के प्राप्ति स्थान के प्राण, व्यान, अपान, समान, उदान ये पाँच द्वारपाल हैं। अतः इन्हीं को वश में करे, जिससे हृदयस्थित गायत्री स्वरूप ब्रह्म की प्राप्ति हो। उपासना करने वाला स्वर्गलोक को प्राप्त होता है और उसके कुल में वीर पुत्र या शिष्य उत्पन्न होता है।

भूमिरन्तरिक्षं द्यौरित्यष्टावक्षराण्यष्टाक्षरं ह वा एकं गायत्र्यै पदमेतदु हैवास्या एतत्स यावदेषु त्रिषु लोकेषु तावद्ध जयति योऽस्या एतदेवं पदं वेद। —बृह० ५/१४/१

भूमि, अन्तरिक्ष, द्यौ—ये तीनों गायत्री के प्रथम पाद के आठ अक्षरों के बराबर हैं। अतः जो गायत्री के प्रथम पद को भी जान लेता है, वह त्रिलोक विजयी होता है।

स वै नैव रेमे, तस्मादेकाकी न रमते, सद्वितीयमैच्छत्। सहैतावानास। यथा स्त्रीपुमान्सौ संपरिष्वक्तौ स। इममेवात्मानं द्वेधा पातयत्ततः पतिश्च पत्नी चाभवताम्। —बृह० १/४/३

वह ब्रह्म रमण न कर सका, क्योंकि अकेला था। अकेला कोई भी रमण नहीं कर सकता। उसका स्वरूप संयुक्त स्त्री-पुरुष की भाँति था। उसने दूसरे की इच्छा की तथा अपने संयुक्त रूप को द्विधा विभक्त किया, तब दोनों रूप पत्नी और पति भाव को प्राप्त हुए।

निर्गुणः परमात्मा तु त्वदाश्रयतया स्थितः।
तस्य भट्टारिकासि त्वं भुवनेश्वरि ! भोगदा॥ —शक्ति दर्शन

परमात्मा निर्गुण है और तेरे ही आश्रित ठहरा हुआ है। तू ही उसकी साम्राज्ञी और भोगदा है।

शक्तिश्च शक्तिमद्रूपाद् व्यतिरेकं न वाञ्छति।
तादात्म्यमनयोर्नित्यं वह्निदाहिकयोरिव॥ —शक्ति दर्शन

शक्ति, शक्तिमान् से कभी पृथक् नहीं रहती। इन दोनों का नित्य संबंध है। जैसे अग्नि और दाहक शक्ति का नित्य परस्पर सम्बन्ध है, उसी प्रकार शक्तिमान् का भी है।

सदैकत्वं न भेदोऽस्ति सर्वदैव ममास्य च।
योऽसौ साहमहं योऽसौ भेदोऽस्ति मतिविभ्रमात्॥ —देवी भागवत पु० ३/६/२

शक्ति का और उस शक्तिमान् पुरुष का, सदा सम्बन्ध है, कभी भेद नहीं है । जो वह है , सो मैं हूँ और जो मैं हूँ , सो वह है । यदि भेद है, तो केवल बुद्धि का भ्रम है ।

जगन्माता च प्रकृतिः पुरुषश्च जगत्पिता ।
गरीयसी त्रिजगतां माता शतगुणैः पितुः ॥ —ब्र० वै० पु० कृ० ज० अ० ५२/३४

संसार की जन्मदात्री प्रकृति है और जगत् का पालनकर्त्ता या रक्षा करने वाला पुरुष है । जगत् में पिता से माता सौगुनी अधिक श्रेष्ठ है ।

इन प्रमाणों से स्पष्ट हो जाता है कि ब्रह्म ही गायत्री है और उसकी उपासना ब्रह्म प्राप्ति का सर्वोत्तम मार्ग है ।

गायत्री द्वारा सतोगुण वृद्धि के दिव्य लाभ

गायत्री सद्बुद्धिदायक मन्त्र है । वह साधक के मन को, अन्तःकरण को, मस्तिष्क को, विचारों को सन्मार्ग की ओर प्रेरित करता है । सत्तत्त्व की वृद्धि करना उसका प्रधान कार्य है । साधक जब इस महामंत्र के अर्थ पर विचार करता है, तो वह समझ जाता है कि संसार की सर्वोपरि समृद्धि और जीवन की सबसे बड़ी सफलता सद्बुद्धि को प्राप्त करना है । यह मान्यता सुदृढ़ होने पर उसकी इच्छा शक्ति इसी तत्त्व को प्राप्त करने के लिए लालायित होती है । यह आकांक्षा मन:लोक में एक प्रकार का चुम्बकत्व उत्पन्न करती है, उस चुम्बक की आकर्षण शक्ति से निखिल आकाश के ईथर तत्त्व में भ्रमण करने वाली सतोगुणी विचारधारायें, भावनायें और प्रेरणायें खिंच-खिंचकर उस स्थान पर जमा होने लगती हैं । विचारों की चुम्बक शक्ति का विज्ञान सर्वविदित है । एक जाति के विचार अपने सजातीय विचारों को आकाश से खींचते हैं । फलस्वरूप संसार के मृत और जीवित, सत्पुरुषों के फैलाये हुए अविनाशी संकल्प जो शून्य में सदैव भ्रमण करते रहते हैं, गायत्री साधक के पास दैवी वरदान की तरह अनायास ही आकर जमा होते रहते हैं और सञ्चित पूँजी की भाँति उनका एक बड़ा भण्डार जमा हो जाता है ।

शरीर और मन में सतोगुण की मात्रा बढ़ने का फल आश्चर्यजनक होता है । स्थूल दृष्टि से देखने पर यह लाभ न तो समझ पड़ता है, न अनुभव होता है और न उसकी कोई महत्ता मालूम पड़ती है, पर जो सूक्ष्म शरीर के संबंध में अधिक जानकारी रखते हैं , वे जानते हैं कि तम और रज का घटना और उसके स्थान पर सत् तत्त्व का बढ़ना ऐसा ही है, जैसे शरीर में भरे हुए रोग, मल, विष, विजातीय पदार्थ घट जाना और उनके स्थान पर शुद्ध, सजीव, परिपुष्ट रक्त और वीर्य की मात्रा बड़े परिमाण में बढ़ जाना । ऐसा परिवर्तन चाहे किसी को खुली आँखों से दिखाई न दे, पर उसका स्वास्थ्य की उन्नति पर जो चमत्कारी प्रभाव पड़ेगा , उसमें कोई संदेह नहीं किया जा सकता । इस प्रकार के लाभ को यदि ईश्वर प्रदत्त कहा जाये, तो किसी को आपत्ति नहीं होनी चाहिये । शरीर का कायाकल्प करना एक वैज्ञानिक कार्य है, उसके कारण सुनिश्चित लाभ होगा ही । यह लाभ दैवी है या मानवी, इस पर जो मतभेद हो सकता है, उसका कोई महत्त्व नहीं है । गायत्री द्वारा सतोगुण बढ़ता है और निम्नकोटि के तत्त्वों का निवारण हो जाता है । फलस्वरूप साधक का एक सूक्ष्म कायाकल्प हो जाता है । इस प्रक्रिया द्वारा होने वाले लाभों को वैयक्तिक लाभ कहें या दैवी वरदान ? इस प्रश्न पर झगड़ने से कुछ लाभ नहीं, बात एक ही है । कोई कार्य किसी भी प्रकार हो, उससे ईश्वर सत्ता पृथक् नहीं है, इसलिये संसार के सभी कार्य ईश्वर-इच्छा से हुए कहे जा सकते हैं ।गायत्री साधना द्वारा होने वाले लाभ वैज्ञानिक आधार पर हुए भी कहे जा सकते हैं और ईश्वरीय कृपा के आधार पर हुए कहने में भी कोई दोष नहीं ।

शरीर में सत् तत्त्व की अभिवृद्धि होने से शरीरचर्या की गतिविधि में काफी हेर-फेर हो जाता है । इन्द्रियों के भोगों में भटकने की गति मन्द हो जाती है । चटोरपन, तरह-तरह के स्वादों के पदार्थ खाने के लिए मन ललचाते रहना, बार-बार खाने की इच्छा होना, अधिक मात्रा में खा जाना, भक्ष्याक्ष्य का विचार न रहना, सात्त्विक पदार्थों में अरुचि और चटपटे, मीठे, गरिष्ठ पदार्थों में रुचि, जैसी बुरी आदत धीरे-धीरे कम होने लगती है । हल्के सुपाच्य, सरस, सात्त्विक भोजन से उसे तृप्ति मिलती है और राजसी, तामसी खाद्यों से घृणा हो जाती है । इसी प्रकार कामेन्द्रिय की उत्तेजना सतोगुणी विचारों के कारण संयमित हो जाती है । मन कुमार्ग में, व्यभिचार, वासना में कम

दौड़ता है । ब्रह्मचर्य के प्रति श्रद्धा बढ़ती है । फलस्वरूप वीर्य-रक्षा का मार्ग प्रशस्त हो जाता है । कामेन्द्रिय और स्वादेन्द्रिय दो ही इन्द्रियाँ प्रधान हैं । इनका संयम होना स्वास्थ्य-रक्षा और शरीर-वृद्धि का प्रधान हेतु है । इसके साथ-साथ परिश्रम, स्नान, निद्रा, सोना, जागना, सफाई,सादगी और अन्य दिनचर्यायें भी सतोगुणी हो जाती हैं, जिनके कारण आरोग्य और दीर्घजीवन की जड़ें मजबूत होती हैं ।

मानसिक क्षेत्र में सद्‌गुणों की वृद्धि के कारण काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, स्वार्थ, आलस्य, व्यसन, व्यभिचार, छल, झूठ, पाखण्ड, चिन्ता, भय, शोक, कदर्य सरीखे दोष कम होने लगते हैं । इनकी कमी से संयम, नियम, त्याग, समता, निरहंकारिता, सादगी, निष्कपटता, सत्यनिष्ठा, निर्भयता, निश्चिन्तता, निरालस्यता, शौर्य, विवेक, साहस, धैर्य, दया, प्रेम, सेवा, उदारता, कर्तव्य-परायणता, आस्तिकता सरीखे सद्‌गुण बढ़ने लगते हैं । इस मानसिक कायाकल्प का परिणाम यह होता है कि दैनिक जीवन में प्रायः नित्य ही आते रहने वाले अनेकों दुःखों का सहज ही समाधान हो जाता है । इन्द्रिय संयम और संयत दिनचर्या के कारण शारीरिक रोगों का बहुत बड़ा निराकरण हो जाता है । विवेक जाग्रत् होते ही अज्ञानजन्य चिन्ता, शोक, भय, आशंका, ममता, हानि आदि के दुःखों से छुटकारा मिल जाता है । ईश्वर-विश्वास के कारण मति स्थिर रहती है और भावी जीवन के बारे में निश्चिन्तता बनी रहती है । धर्म प्रवृत्ति के कारण पाप, अन्याय, अनाचार नहीं बन पड़ते । फलस्वरूप राज-दण्ड, समाज-दण्ड, आत्म-दण्ड और ईश्वर-दण्ड की चोटों से पीड़ित नहीं होना पड़ता । सेवा, नम्रता, उदारता, दान, ईमानदारी, लोकहित आदि गुणों के कारण दूसरों को लाभ पहुँचता है, हानि की आशंका नहीं रहती । इससे प्रायः सभी लोग उनके कृतज्ञ, प्रशंसक, सहायक, भक्त एवं रक्षक होते हैं । पारस्परिक सद्भावनाओं के परिवर्तन से आत्मा को तृप्त करने वाले प्रेम और संतोष नामक रस दिन-दिन अधिक मात्रा में उपलब्ध होकर जीवन को आनन्दमय बनाते चलते हैं । इस प्रकार शारीरिक और मानसिक क्षेत्रों में सत्-तत्त्व की वृद्धि होने से दोनों ओर आनंद का स्रोत उमड़ता है और गायत्री का साधक उसमें निमग्न रहकर आत्म-संतोष का, परमानंद का रसास्वादन करता रहता है ।

आत्मा ईश्वर का अंश होने से उन सब शक्तियों को बीज रूप में छिपाये रहती है, जो ईश्वर में होती हैं । वे शक्तियाँ सुप्तावस्था में रहती हैं और मानसिक तापों के, विषय- विकारों के, दोष-दुर्गुणों के ढेर में दबी हुई अज्ञान रूप से पड़ी रहती हैं । लोग समझते हैं कि हम दीन-हीन, तुच्छ और अशक्त हैं, पर जो साधक मनोविकारों का पर्दा हटाकर, निर्मल आत्म-ज्योति के दर्शन करने में समर्थ होते हैं, वे जानते हैं कि सर्वशक्तिमान् ईश्वरीय ज्योति उनकी आत्मा में मौजूद है और वे परमात्मा के सच्चे उत्तराधिकारी हैं । अग्नि के ऊपर से राख हटा दी जाए, तो फिर दहकता हुआ अंगार प्रकट हो जाता है । वह अंगार छोटा होते हुए भी भयंकर अग्निकाण्डों की सम्भावना से युक्त होता है । यह पर्दा हटते ही तुच्छ मनुष्य महान् आत्मा (महात्मा) बन जाता है । चूँकि आत्मा में अनेकों ज्ञान-विज्ञान, साधारण-असाधारण, अद्‌भुत, आश्चर्यजनक शक्ति के भण्डार छिपे पड़े हैं, वे खुल जाते हैं और वह सिद्ध योगी के रूप में दिखाई पड़ता है । सिद्धियाँ प्राप्त करने के लिये बाहर से कुछ लाना नहीं पड़ता, किसी देव-दानव की कृपा की जरूरत नहीं पड़ती, केवल अन्तःकरण पर पड़े हुए आवरणों को हटाना पड़ता है । गायत्री की सतोगुणी साधना का सूर्य तामसिक अन्धकार के पर्दे को हटा देता है और आत्मा का सहज ईश्वरीय रूप प्रकट हो जाता है । आत्मा का यह निर्मल रूप सभी ऋद्धि-सिद्धियों से परिपूर्ण होता है ।

गायत्री द्वारा हुई सतोगुणों की वृद्धि अनेक प्रकार की आध्यात्मिक और सांसारिक समृद्धियों की जननी है । शरीर और मन की शुद्धि सांसारिक जीवन को अनेक दृष्टियों से सुख-शान्तिमय बनाती है । आत्मा में विवेक और आत्म-बल की मात्रा बढ़ जाने से अनेक ऐसी कठिनाइयाँ जो दूसरों को पर्वत के समान मालूम पड़ती हैं , उस आत्मवान् व्यक्ति के लिये तिनके के समान हल्की बन जाती हैं । उसका कोई काम रुका नहीं रहता । या तो उसकी इच्छा के अनुसार परिस्थिति बदल जाती है या वह परिस्थिति के अनुसार अपनी इच्छाओं को बदल लेता है । क्लेश का कारण इच्छा और परिस्थिति के बीच प्रतिकूलता का होना ही तो है । विवेकवान् इन दोनों में से किसी को अपनाकर उस संघर्ष को टाल देता है और सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करता है । उसके लिये इस पृथ्वी पर भी स्वर्गीय आनन्द की सुरसरि बहने लगती है ।

वास्तव में सुख और आनन्द का आधार किसी बाहरी साधन सामग्री पर नहीं ; किन्तु मनुष्य की मन:स्थिति पर रहता है । मन की साधना से जो मनुष्य एक समय राजसी भोजनों और रेशमी गद्दे-तकियों से भी सन्तुष्ट नहीं होता, वह किसी संत के उपदेश से त्याग और संन्यास व्रत ग्रहण कर लेने पर जंगल की भूमि को ही सबसे उत्तम शय्या और वन के कन्दमूल फलों को सर्वोत्तम आहार समझने लगता है । यह सब अन्तर मनोभाव और विचारधारा के बदल जाने से ही पैदा हो जाता है । गायत्री बुद्धि की अधिष्ठात्री देवी हैं और उनसे हम सद्‌बुद्धि की याचना किया करते हैं । अतएव यदि गायत्री की उपासना के परिणामस्वरूप हमारे विचारों का स्तर ऊँचा उठ जाए और मानव जीवन की वास्तविकता को समझकर अपनी वर्तमान स्थिति में ही आनन्द का अनुभव करने लगें, तो इसमें कुछ भी असंभव नहीं है ।

काफी लम्बे समय से हम गायत्री उपासना के प्रचार का प्रयत्न कर रहे हैं, इसलिये अनेकों साधकों से हमारा परिचय है । हजारों व्यक्तियों ने इस दिशा में हमसे पथ-प्रदर्शन और प्रोत्साहन पाया है । इनमें से जो लोग दृढ़तापूर्वक साधना मार्ग पर चलते रहे हैं, उनमें से अनेकों को आश्चर्यजनक लाभ हुए हैं । वे इस सूक्ष्म विवेचन में जाने की इच्छा नहीं करते कि किस प्रकार कुछ वैज्ञानिक नियमों के आधार पर साधना श्रम का सीधा-सादा फल उन्हें मिला । इस विवेचना से उन्हें प्रायः अरुचि होती है । उनका कहना है कि भगवती गायत्री की कृपा के प्रति कृतज्ञता ही हमारी भक्ति-भावना को बढ़ायेगी और उसी से हमें अधिक लाभ होगा, उनका यह मन्तव्य बहुत हद तक ठीक ही है । श्रद्धा और भक्ति बढ़ाने के लिये इष्टदेव के साधनास्वरूप के प्रति प्रगाढ़ प्रेम, कृतज्ञता, भक्ति और तन्मयता होनी आवश्यक है । गायत्री साधना द्वारा एक सूक्ष्म विज्ञान सम्मत प्रणाली से लाभ होते हैं, यह जानकर भी इस महातत्त्व से आत्म सम्बन्ध की दृढ़ता करने के लिये कृतज्ञता और भक्ति-भावना का पुट अधिकाधिक रखना आवश्यक है ।

गायत्री उपासना से अनेकों को जो अनेकों प्रकार से लाभ हुए हैं, उनके बहुत सारे संस्मरण हमारे स्मृतिपटल पर अब भी हैं; उनमें से थोड़े संस्मरण अगले पृष्ठों पर देने का इसलिये प्रयत्न किया जा रहा है कि इन पंक्तियों के पाठक भी उस पथ का अनुसरण करके लाभान्वित हो सकें ।

महापुरुषों द्वारा गायत्री महिमा का गान

हिन्दू धर्म में अनेक मान्यतायें प्रचलित हैं । विविध बातों के सम्बन्ध में परस्पर विरोधी मतभेद भी हैं, पर गायत्री मन्त्र की महिमा, एक ऐसा तत्त्व है जिसे सभी ने, सभी सम्प्रदायों ने, सभी ऋषियों ने एक मत से स्वीकार किया है ।

अथर्व वेद १९-७१-१ में गायत्री की स्तुति की गयी है, जिसमें उसे आयु, प्राण, शक्ति, कीर्ति, धन और ब्रह्म तेज प्रदान करने वाली कहा गया है ।

विश्वामित्र का कथन है—'गायत्री के समान चारों वेदों में मन्त्र नहीं है । सम्पूर्ण वेद, यज्ञ, दान, तप गायत्री मन्त्र की एक कला के समान भी नहीं हैं ।'

भगवान् मनु का कथन है—'ब्रह्मा जी ने तीनों वेदों का सार तीन चरण वाला गायत्री मन्त्र निकाला है । गायत्री से बढ़कर पवित्र करने वाला और कोई मन्त्र नहीं है । जो मनुष्य नियमित रूप से तीन वर्ष तक गायत्री जाप करता है, वह ईश्वर को प्राप्त करता है । जो द्विज दोनों संध्याओं में गायत्री जपता है, वह वेद पढ़ने के फल को प्राप्त करता है । अन्य कोई साधन करे या न करे, केवल गायत्री जप से भी सिद्धि पा सकता है । नित्य एक हजार जप करने वाला पापों से वैसे ही छूट जाता है, जैसे केंचुली से साँप छूट जाता है । जो द्विज गायत्री की उपासना नहीं करता, वह निन्दा का पात्र है ।'

योगिराज याज्ञवल्क्य कहते हैं—'गायत्री और समस्त वेदों को तराजू में तौला गया । एक ओर षट् अंगों समेत वेद और दूसरी ओर गायत्री, तो गायत्री का पलड़ा भारी रहा । वेदों का सार उपनिषद् हैं, उपनिषद् का सार व्याहृतियों समेत गायत्री है । गायत्री वेदों की जननी है, पापों का नाश करने वाली है, इससे अधिक पवित्र करने

वाला अन्य कोई मन्त्र स्वर्ग और पृथ्वी पर नहीं है । गंगा के समान कोई तीर्थ नहीं, केशव से श्रेष्ठ कोई देव नहीं । गायत्री से श्रेष्ठ मन्त्र न हुआ, न आगे होगा । गायत्री जान लेने वाला समस्त विद्याओं का वेत्ता, श्रेष्ठि और श्रोत्रिय हो जाता है । जो द्विज गायत्री परायण नहीं, वह वेदों का पारंगत होते हुए भी शूद्र के समान है, अन्यत्र किया हुआ उसका श्रम व्यर्थ है । जो गायत्री नहीं जानता, ऐसा व्यक्ति ब्राह्मणत्व से च्युत और पापयुक्त हो जाता है ।'

पाराशरजी कहते हैं—'समस्त जप सूक्तों तथा वेद मन्त्रों में गायत्री मन्त्र परम श्रेष्ठ है । वेद और गायत्री की तुलना में गायत्री का पलड़ा भारी है । भक्तिपूर्वक गायत्री का जप करने वाला मुक्त होकर पवित्र बन जाता है । वेद, शास्त्र, पुराण, इतिहास पढ़ लेने पर भी जो गायत्री से हीन है, उसे ब्राह्मण नहीं समझना चाहिये ।'

शंख ऋषि का मत है—'नरक रूपी समुद्र में गिरते हुए को हाथ पकड़ कर बचाने वाली गायत्री ही है । उससे उत्तम वस्तु स्वर्ग और पृथ्वी पर कोई नहीं है । गायत्री का ज्ञाता निस्संदेह स्वर्ग को प्राप्त करता है ।'

शौनक ऋषि का मत है—'अन्य उपासनायें करें चाहे न करें, केवल गायत्री जप से ही द्विज जीवन मुक्त हो जाता है । सांसारिक और पारलौकिक समस्त सुखों को पाता है । संकट के समय दस हजार जप करने से विपत्ति का निवारण होता है ।'

अत्रि मुनि कहते हैं—'गायत्री आत्मा का परम शोधन करने वाली है । उसके प्रताप से कठिन दोष और दुर्गुणों का परिमार्जन हो जाता है । जो मनुष्य गायत्री तत्त्व को भली प्रकार समझ लेता है, उसके लिये इस संसार में कोई सुख शेष नहीं रह जाता ।'

महर्षि व्यासजी कहते हैं— 'जिस प्रकार पुष्प का सार शहद, दूध का सार घृत है, उसी प्रकार समस्त वेदों का सार गायत्री है । सिद्ध की हुई गायत्री कामधेनु के समान है । गंगा शरीर के पापों को निर्मल करती है, गायत्री रूपी ब्रह्म गंगा से आत्मा पवित्र होती है । जो गायत्री छोड़कर अन्य उपासनायें करता है, वह पकवान छोड़कर भिक्षा माँगने वाले के समान मूर्ख है । काम्य सफलता तथा तप की वृद्धि के लिये गायत्री से श्रेष्ठ और कुछ नहीं है ।'

भारद्वाज ऋषि कहते हैं- 'ब्रह्मा आदि देवता भी गायत्री का जप करते हैं, वह ब्रह्म साक्षात्कार कराने वाली है । अनुचित काम करने वालों के दुर्गुण गायत्री के कारण छूट जाते हैं । गायत्री से रहित व्यक्ति शूद्र से भी अपवित्र है ।'

चरक ऋषि कहते हैं—'जो ब्रह्मचर्यपूर्वक गायत्री की उपासना करता है और आँवले के ताजे फलों का सेवन करता है, वह दीर्घजीवी होता है ।'

नारदजी की उक्ति है—'गायत्री भक्ति का ही स्वरूप है । जहाँ भक्ति रूपी गायत्री है, वहाँ श्रीनारायण का निवास होने में कोई संदेह नहीं करना चाहिये ।'

वशिष्ठजी का मत है—'मन्दमति, कुमार्गगामी और अस्थिरमति भी गायत्री के प्रभाव से उच्च पद को प्राप्त करते हैं, फिर सद्‌गति होना निश्चित है । जो पवित्रता और स्थिरतापूर्वक गायत्री की उपासना करते हैं, वे आत्म-लाभ प्राप्त करते हैं ।'

उपर्युक्त अभिमतों से मिलते-जुलते अभिमत प्राय: सभी ऋषियों के हैं । इससे स्पष्ट है कि कोई ऋषि अन्य विषयों में चाहे अपना मतभेद रखते हों, पर गायत्री के बारे में उन सब में समान श्रद्धा थी और वे सभी अपनी उपासना में उसका प्रथम स्थान रखते थे । शास्त्रों में, धर्म ग्रन्थों में, स्मृतियों में, पुराणों में गायत्री की महिमा तथा साधना पर प्रकाश डालने वाले सहस्त्रों श्लोक भरे पड़े हैं । इन सबका संग्रह किया जाए, तो एक बड़ा भारी गायत्री-पुराण बन सकता है ।

वर्तमान शताब्दी के आध्यात्मिक तथा दार्शनिक महापुरुषों ने भी गायत्री के महत्त्व को उसी प्रकार स्वीकार किया है जैसा कि प्राचीन काल के तत्त्वदर्शी ऋषियों ने किया था । आज का युग बुद्धि और तर्क का, प्रत्यक्षवाद का युग है । इस शताब्दी के प्रभावशाली गण्यमान्य व्यक्तियों की विचारधारा केवल धर्म ग्रन्थ या परम्पराओं पर आधारित नहीं रही है । उन्होंने बुद्धिवाद, तर्कवाद और प्रत्यक्षवाद को अपने सभी कार्यों में प्रधान स्थान दिया है ।

ऐसे महापुरुषों को भी गायत्री तत्त्व सब दृष्टिकोणों से परखने पर खरा सोना प्रतीत हुआ है। नीचे उनमें से कुछ के विचार देखिये—

महात्मा गाँधी कहते हैं—'गायत्री मन्त्र का निरन्तर जप रोगियों को अच्छा करने और आत्मा की उन्नति के लिये उपयोगी है। गायत्री का स्थिर चित्त और शान्त हृदय से किया हुआ जप आपत्तिकाल में संकटों को दूर करने का प्रभाव रखता है।'

लोकमान्य तिलक कहते हैं—'जिस बहुमुखी दासता के बन्धनों में भारतीय प्रजा जकड़ी हुई है, उसके लिये आत्मा के अन्दर प्रकाश उत्पन्न होना चाहिये, जिससे सत् और असत् का विवेक हो, कुमार्ग को छोड़कर श्रेष्ठ मार्ग पर चलने की प्रेरणा मिले, गायत्री मन्त्र में यही भावना विद्यमान है।'

महामना मदनमोहन मालवीयजी ने कहा था—'ऋषियों ने जो अमूल्य रत्न हमें दिये हैं, उनमें से एक अनुपम रत्न गायत्री है। गायत्री से बुद्धि पवित्र होती है। ईश्वर का प्रकाश आत्मा में आता है। इस प्रकाश से असंख्य आत्माओं को भव-बन्धन से त्राण मिला है। गायत्री में ईश्वर परायणता के भाव उत्पन्न करने की शक्ति है। साथ ही वह भौतिक अभावों को दूर करती है। गायत्री की उपासना ब्राह्मणों के लिये तो अत्यन्त आवश्यक है। जो ब्राह्मण गायत्री जप नहीं करता, वह अपने कर्तव्य धर्म को छोड़ने का अपराधी होता है।'

कवीन्द्र-रवीन्द्रनाथ टैगोर कहते हैं—'भारतवर्ष को जगाने वाला जो मन्त्र है, वह इतना सरल है कि एक ही श्वास में उसका उच्चारण किया जा सकता है। वह है—गायत्री मन्त्र। इस पुनीत मन्त्र का अभ्यास करने में किसी प्रकार के तार्किक ऊहापोह, किसी प्रकार के मतभेद अथवा किसी प्रकार के बखेड़े की गुञ्जायश नहीं है।'

योगी अरविन्द ने कई जगह गायत्री जप करने का निर्देश किया है। उन्होंने बताया कि गायत्री में ऐसी शक्ति सन्निहित है, जो महत्त्वपूर्ण कार्य कर सकती है। उन्होंने कइयों को साधना के तौर पर गायत्री का जप बताया है।

स्वामी रामकृष्ण परमहंस का उपदेश है—'मैं लोगों से कहता हूँ कि लम्बी साधना करने की उतनी आवश्यकता नहीं है। इस छोटी-सी गायत्री की साधना करके देखो। गायत्री का जप करने से बड़ी-बड़ी सिद्धियाँ मिल जाती हैं। यह मन्त्र छोटा है, पर इसकी शक्ति बड़ी भारी है।'

स्वामी विवेकानन्द का कथन है—'राजा से वही वस्तु माँगी जानी चाहिये, जो उसके गौरव के अनुकूल हो। परमात्मा से माँगने योग्य वस्तु सद्बुद्धि है। जिस पर परमात्मा प्रसन्न होते हैं, उसे सद्बुद्धि प्रदान करते हैं। सद्बुद्धि से सत् मार्ग पर प्रगति होती है और सत् कर्म से सब प्रकार के सुख मिलते हैं। जो सत् की ओर बढ़ रहा है, उसे किसी प्रकार के सुख की कमी नहीं रहती। गायत्री सद्बुद्धि का मन्त्र है। इसलिये उसे मन्त्रों का मुकुटमणि कहा है।'

जगद्गुरु शंकराचार्य का कथन है—'गायत्री की महिमा का वर्णन करना मनुष्य की सामर्थ्य के बाहर है। बुद्धि का होना इतना बड़ा कार्य है, जिसकी समता संसार के और किसी काम से नहीं हो सकती। आत्म-प्राप्ति करने की दिव्य दृष्टि जिस बुद्धि से प्राप्त होती है, उसकी प्रेरणा गायत्री द्वारा होती है। गायत्री आदि मन्त्र है। उसका अवतार दुरितों को नष्ट करने और ऋत के अभिवर्धन के लिये हुआ है।'

स्वामी रामतीर्थ ने कहा है—'राम को प्राप्त करना सबसे बड़ा काम है। गायत्री का अभिप्राय बुद्धि को काम-रुचि से हटाकर राम-रुचि में लगा देना है। जिसकी बुद्धि पवित्र होगी, वही राम को प्राप्त कर सकेगा। गायत्री पुकारती है कि बुद्धि में इतनी पवित्रता होनी चाहिये कि वह राम को काम से बढ़कर समझे।'

महर्षि रमण का उपदेश है—'योग विद्या के अन्तर्गत मन्त्र विद्या बड़ी प्रबल है। मन्त्रों की शक्ति से अद्भुत सफलतायें मिलती हैं। गायत्री ऐसा मन्त्र है, जिससे आध्यात्मिक और भौतिक दोनों प्रकार के लाभ मिलते हैं।'

स्वामी शिवानन्दजी कहते हैं—'ब्राह्ममुहूर्त में गायत्री का जप करने से चित्त शुद्ध होता है और हृदय में निर्मलता आती है। शरीर नीरोग रहता है, स्वभाव में नम्रता आती है, बुद्धि सूक्ष्म होने से दूरदर्शिता बढ़ती है और स्मरण शक्ति का विकास होता है। कठिन प्रसंगों में गायत्री द्वारा दैवी सहायता मिलती है। उसके द्वारा आत्म-दर्शन हो सकता है।'

काली कमली वाले बाबा विशुद्धानन्दजी कहते थे—गायत्री ने बहुतों को सुमार्ग पर लगाया है । कुमार्गगामी मनुष्य की पहले तो गायत्री की ओर रुचि ही नहीं होती, यदि ईश्वर कृपा से हो जाये, तो फिर वह कुमार्गगामी नहीं रहता । गायत्री जिसके हृदय में निवास करती है उसका मन ईश्वर की ओर जाता है । विषय- विकारों की व्यर्थता उसे भली प्रकार अनुभव होने लगती है । कई महात्मा गायत्री जप करके परम सिद्ध हुए हैं । परमात्मा की शक्ति ही गायत्री है, जो गायत्री के निकट जाता है, वह शुद्ध होकर रहता है । आत्म-कल्याण के लिये मन की शुद्धि आवश्यक है । मन की शुद्धि के लिये गायत्री मन्त्र अद्भुत है । ईश्वर प्राप्ति के लिये गायत्री जप को प्रथम सीढ़ी समझना चाहिये ।'

दक्षिण भारत के प्रसिद्ध आत्मज्ञानी टी॰ सुब्बाराव कहते हैं—'सविता नारायण की दैवी प्रकृति को गायत्री कहते हैं । आदिशक्ति होने के कारण इसको गायत्री कहते हैं । गीता में इसका वर्णन 'आदित्य वर्ण' कहकर किया गया है । गायत्री की उपासना करना योग का सबसे प्रथम अंग है ।'

श्रीस्वामी करपात्रीजी का कथन है—'जो गायत्री के अधिकारी हैं, उन्हें नित्य-नियमित रूप से जप करना चाहिये । द्विजों के लिये गायत्री का जप अत्यन्त आवश्यक धर्मकृत्य है ।'

गीता धर्म के व्याख्याता श्रीस्वामी विद्यानन्द कहते हैं—'गायत्री बुद्धि को पवित्र करती है । बुद्धि की पवित्रता से बढ़कर जीवन में दूसरा लाभ नहीं है । इसलिये गायत्री एक बहुत बड़े लाभ की जननी है ।'

सर राधाकृष्णन् कहते हैं—'यदि हम इस सार्वभौमिक प्रार्थना गायत्री पर विचार करें, तो हमें मालूम होगा कि यह वास्तव में कितना ठोस लाभ देती है । गायत्री हम में फिर से जीवन का स्रोत उत्पन्न करने वाली आकुल प्रार्थना है ।'

प्रसिद्ध आर्यसमाजी महात्मा सर्वदानन्दजी का कथन है—'गायत्री मन्त्र द्वारा प्रभु का पूजन सदा से आर्यों की रीति रही है ।'

ऋषि दयानन्द ने भी उसी शैली का अनुसरण करके संध्या का विधान तथा वेदों के स्वाध्याय का प्रयत्न करना बताया है । ऐसा करने से अन्तःकरण की शुद्धि तथा बुद्धि निर्मल होकर मनुष्य का जीवन अपने तथा दूसरों के लिये हितकर हो जाता है । जितना भी इस शुभ कर्म में श्रद्धा और विश्वास हो, उतना ही अविद्या आदि क्लेशों का ह्रास होता है । जो जिज्ञासु गायत्री मन्त्र का प्रेम और नियमपूर्वक उच्चारण करते हैं, उनके लिये यह संसार-सागर से तरने की नाव और आत्म-प्राप्ति की सड़क है ।'

आर्य समाज के जन्मदाता स्वामी दयानन्द गायत्री के श्रद्धालु उपासक थे । ग्वालियर के राजासाहब से स्वामीजी ने कहा कि भागवत सप्ताह की अपेक्षा गायत्री पुरश्चरण अधिक श्रेष्ठ है । जयपुर में सच्चिदानन्द, हीरालाल रावल, घोड़लसिंह आदि को गायत्री जप की विधि सिखलाई थी । मुलतान में उपदेश के समय स्वामीजी ने गायत्री मन्त्र का उच्चारण किया और कहा कि यह मन्त्र सबसे श्रेष्ठ है । चारों वेदों का मूल यही गुरुमन्त्र है । आदिकाल से सभी ऋषि- मुनि इसी का जप किया करते थे । स्वामीजी ने कई स्थानों पर गायत्री अनुष्ठानों का आयोजन कराया था, जिसमें चालीस तक की संख्या में विद्वान् ब्राह्मण बुलाये गये थे । यह जप १५ दिन तक चला था ।

थियोसोफिकल सोसाइटी के एक वरिष्ठ सदस्य प्रो॰ आर॰श्रीनिवास का कथन है—'हिन्दू धार्मिक विचारधारा में गायत्री को सबसे अधिक शक्तिशाली मन्त्र माना गया है । उसका अर्थ भी बड़ा दूरगामी और गूढ़ है । इस मन्त्र के अनेक अर्थ होते है और भिन्न-भिन्न प्रकार की चित्तवृत्ति वाले व्यक्तियों पर इसका प्रभाव भी भिन्न-भिन्न प्रकार का होता है । इसमें दृष्ट और अदृष्ट, उच्च और नीच, मानव और देव सबको किसी रहस्यमय तन्तु द्वारा एकत्रित कर लेने की शक्ति पाई जाती है । जब इस मन्त्र का अधिकारी व्यक्ति गायत्री के अर्थ और रहस्य, मन और हृदय को एकाग्र करके उसका शुद्ध उच्चारण करता है, तब उसका सम्बन्ध दृश्य सूर्य में अन्तर्निहित

महान् चैतन्य शक्ति से स्थापित हो जाता है। वह मनुष्य कहीं भी मन्त्रोच्चारण करता हो, पर उसके ऊपर तथा आस-पास के वातावरण में विराट् 'आध्यात्मिक प्रभाव' उत्पन्न हो जाता है। यही प्रभाव एक महान् आध्यात्मिक आशीर्वाद है। इन्हीं कारणों से हमारे पूर्वजों ने गायत्री मन्त्र की अनुपम शक्ति के लिये उसकी स्तुतियाँ की हैं।'

इस प्रकार वर्तमान शताब्दी के अनेकों गणमान्य बुद्धिवादी महापुरुषों के अभिमत हमारे पास संगृहीत हैं। उन पर विचार करने से इस निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है कि गायत्री उपासना कोई अन्धविश्वास, अन्ध परम्परा नहीं हैं; वरन् उसके पीछे आत्मोन्नति करने वाले ठोस तत्त्वों का बल है। इस महान् शक्ति को अपनाने का जिसने भी प्रयत्न किया है, उसे लाभ मिला है। गायत्री साधना कभी निष्फल नहीं जाती।

गायत्री साधना से सतोगुणी सिद्धियाँ

प्राचीन इतिहास, पुराणों से पता चलता है कि पूर्व युगों में प्राय: ऋषि-महर्षि गायत्री के आधार पर योग-साधना तथा तपश्चर्या करते थे। वशिष्ठ, याज्ञवल्क्य, अत्रि, विश्वामित्र, व्यास, शुकदेव, दधीचि, वाल्मीकि, च्यवन, शंख, लोमश, जाबालि, उद्दालक, वैशम्पायन, दुर्वासा, परशुराम, पुलस्त्य, दत्तात्रेय, अगस्त्य, सनतकुमार, कण्व, शौनक आदि ऋषियों के जीवन वृत्तान्तों से स्पष्ट है कि उनकी महान् सफलताओं का मूल हेतु गायत्री ही थी।

थोड़े ही समय पूर्व ऐसे अनेक महात्मा हुए हैं, जिन्होंने गायत्री का आश्रय लेकर अपने आत्मबल एवं ब्रह्मतेज को प्रकाशवान् किया था। उनके इष्टदेव, आदर्श, सिद्धान्त भिन्न भले ही रहे हों, वेदमाता के प्रति सभी की अनन्य श्रद्धा थी। उन्होंने प्रारम्भिक स्तन पान इसी महाशक्ति का किया था, जिससे वे इतने प्रतिभा सम्पन्न महापुरुष बन सके।

शंकराचार्य, समर्थ गुरु रामदास, नरसी मेहता, दादूदयाल, सन्त ज्ञानेश्वर, स्वामी रामानन्द, गोरखनाथ, मछीन्द्रनाथ, हरिदास, तुलसीदास, रामानुजाचार्य, माधवाचार्य, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, रामतीर्थ, योगी अरविन्द, महर्षि रमण, गौरांग महाप्रभु, स्वामी दयानन्द, महात्मा एकरसानन्द आदि अनेक महात्माओं का विकास गायत्री महाशक्ति के अञ्चल में ही हुआ था।

आयुर्वेद के सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'माधव निदान' के प्रणेता श्रीमाधवाचार्य ने आरम्भ में १३ वर्षों तक वृन्दावन में रहकर गायत्री अनुष्ठान किये थे। जब उन्हें कुछ भी सफलता न मिली, तो वे निराश होकर काशी चले गये और एक अवधूत की सलाह से भैरव की तांत्रिक उपासना करने लगे। कुछ दिन में भैरव प्रसन्न हुए और पीठ पीछे से कहने लगे कि—"वर माँग।" माधवाचार्यजी ने उनसे कहा—'आप सामने आइये और दर्शन दीजिये।' भैरव ने उत्तर दिया—'मैं गायत्री उपासक के सामने नहीं आ सकता।' इस बात पर माधवाचार्य जी को बड़ा आश्चर्य हुआ। उनने कहा—'यदि आप गायत्री उपासक के सम्मुख प्रकट नहीं हो सकते, तो मुझे वरदान क्या देंगे? कृपया अब आप केवल यह बता दीजिये कि मेरी अब तक की गायत्री साधना क्यों निष्फल हुई?' भैरव ने उत्तर दिया—'तुम्हारे पूर्व जन्मों के पाप नाश करने में अब तक की साधना लग गयी। अब तुम्हारी आत्मा निष्पाप हो गयी। आगे की साधना करोगे, सफल होगी।' यह सुनकर माधवाचार्य फिर वृन्दावन आये और पुन: गायत्री साधना आरम्भ कर दी। अन्त में उन्हें माता के दर्शन हुए और पूर्ण सिद्धि प्राप्त हुई।

श्री महात्मा देवगिरि जी के गुरु हिमालय की एक गुफा में गायत्री का जप करते थे। उनकी आयु ४०० वर्ष से अधिक थी। वे अपने आसन से उठकर भोजन, शयन, स्नान या मल-मूत्र त्यागने तक को कहीं नहीं जाते थे। इन कामों की उन्हें आवश्यकता भी नहीं पड़ती थी।

नगराई के पास रामटेकरी के घने जंगल में एक हरीहर नाम के महात्मा ने गायत्री तप करके सिद्धि पाई थी। महात्माजी की कुटी के पास जाने में सात कोस का घना जंगल पड़ता था। उसमें सैकड़ों सिंह- व्याघ्र रहते थे। कोई व्यक्ति महात्माजी के दर्शनों को जाता, तो उसे दो चार व्याघ्रों से भेंट अवश्य होती। 'हरीहर बाबा के दर्शन को जा रहे हैं' इतना कह देने मात्र से हिंसक पशु रास्ता छोड़कर चले जाते थे।

लक्ष्मणगढ़ में विश्वनाथ गोस्वामी नामक एक प्रसिद्ध गायत्री उपासक हुए हैं। उनके जीवन का अधिकांश

भाग गायत्री उपासना में ही व्यतीत हुआ है । उनके आशीर्वाद से सीकर का एक वीदावत परिवार गरीबी से छुटकारा पाकर बड़ा ही समृद्धिशाली एवं सम्पन्न बना । इस परिवार के लोग अब तक उन पण्डितजी की समाधि पर अपने बच्चों का मुण्डन कराते हैं ।

जयपुर रियासत के जौन नामक गाँव में पं० हरराय नामक नैष्ठिक गायत्री उपासक रहते थे । उनको अपनी मृत्यु का पहले से ही पता चल गया था । उनने सब परिजनों को बुलाकर धार्मिक उपदेश दिये और बोलते, बातचीत करते तथा गायत्री मन्त्र का उच्चारण करते हुए प्राण त्याग दिये ।

जूनागढ़ के एक विद्वान् पं० मणिशंकर भट्ट पहले यजमानों के लिये गायत्री अनुष्ठान दक्षिणा लेकर करते थे । जब उन्होंने अनेकों को इससे भारी लाभ होते देखा, तो उन्होंने अपना सारा जीवन गायत्री उपासना में लगा दिया । दूसरों के अनुष्ठान छोड़ दिये, उनका शेष जीवन बहुत ही शान्ति से बीता ।

जयपुर के बूढ़ा देवल ग्राम में विष्णुदासजी का जन्म हुआ । वे आजीवन ब्रह्मचारी रहे, उन्होंने पुष्कर में एक कुटी बनाकर गायत्री की घोर तपस्या की थी, फलस्वरूप उन्हें अनेक सिद्धियाँ प्राप्त हो गयी थीं, बड़े-बड़े राजा उनकी कुटी की धूल मस्तक पर रखने लगे । जयपुर और जोधपुर के महाराजा अनेक बार उनकी कुटी पर उपस्थित हुए । महाराणा उदयपुर तो अत्यन्त आग्रह करके उन्हें अपनी राजधानी में ले आये और उनके पुरश्चरण की शाही तैयारी के साथ अपने यहाँ पूर्णाहुति कराई । ब्रह्मचारीजी के सम्बन्ध में अनेक चमत्कारी कथायें प्रसिद्ध हैं ।

खातौली से ७ मील दूर धौकलेश्वर में मगनानन्द नामक एक गायत्री सिद्ध महापुरुष रहते थे । उनके आशीर्वाद से खातौली के ठिकानेदार को उनकी छिनी हुई जागीर पोलिटिकल एजेण्ट ने वापस की थी ।

रतनगढ़ के पं० भूदरमल नामक एक विद्वान् ब्राह्मण गायत्री के अनन्य उपासक हो गये हैं । वे सम्वत् १९६६ में काशी आ गये थे और अन्त तक वहीं रहे । अपनी मृत्यु की पूर्व जानकारी होने से उनने विशाल धार्मिक आयोजन किया था और साधना करते हुए आषाढ़ सुदी ५ को शरीर त्याग किया । उनका आशीर्वाद पाने वाले बहुत से सामान्य मनुष्य आज भी लखपति बने हुए हैं ।

अलवर राज्य के अन्तर्गत एक ग्राम के सामान्य परिवार में पैदा हुए एक सज्जन को किसी कारणवश वैराग्य हो गया । वे मथुरा आये और एक टीले पर रहकर साधना करने लगे । एक करोड़ गायत्री जप किया । एक करोड़ गायत्री जप करने के अनन्तर उन्हें गायत्री का साक्षात्कार हुआ और वे सिद्ध हो गये । वह स्थान गायत्री टीले के नाम से प्रसिद्ध है । वहाँ एक छोटा सा मन्दिर है, जिसमें गायत्री की सुन्दर मूर्ति स्थापित है । उनका नाम बूटी सिद्ध था । सदा मौन रहते थे । उनके आशीर्वाद से अनेकों का कल्याण हुआ । धौलपुर अलवर के राजा उनके प्रति बड़ी श्रद्धा रखते थे ।

आर्य समाज के संस्थापक श्री स्वामी दयानन्दजी के गुरु प्रज्ञाचक्षु स्वामी विरजानन्द सरस्वती ने बड़ी तपश्चर्यापूर्वक गंगा तीर पर रहकर तीन वर्ष तक जप किया था । इस अन्धे संन्यासी ने अपने तपोबल से अगाध विद्या और अलौकिक ब्रह्म तेज प्राप्त किया था ।

मान्धाता ओंकारेश्वर मन्दिर के पीछे गुफा में एक महात्मा गायत्री जप करते थे । मृत्यु के समय उनके परिवार के व्यक्ति उपस्थित थे, परिवार के एक बालक ने प्रार्थना की कि मेरी बुद्धि मन्द है, मुझे विद्या नहीं आती, कुछ आशीर्वाद दे जाइये, जिससे मेरा दोष दूर हो जाय । महात्माजी ने बालक को समीप बुलाकर उसकी जीभ पर कमण्डल से थोड़ा-सा जल डाला और आशीर्वाद दिया कि तू पूर्ण विद्वान् हो जायेगा । आगे चलकर यह बालक असाधारण प्रतिभाशाली विद्वान् हुआ और इन्दौर में ओंकार जोशी के नाम से प्रसिद्धि पायी । इन्दौर नरेश उनसे इतने प्रभावित थे कि सबेरे घूमने जाते समय उनके घर से उन्हें साथ ले जाते थे ।

चन्देल क्षेत्र निवासी गुप्त योगेश्वर श्री उद्धड़जी जोशी एक सिद्ध पुरुष हो गये । गायत्री उपासना के फलस्वरूप

उनकी कुण्डलिनी जाग्रत् हुई और वे परम सिद्ध बन गये । उनकी कृपा से कई मनुष्यों के प्राण बचे थे, कई को धन प्राप्त हुआ था, कई आपत्तियों से छूटे थे । उनकी भविष्यवाणियाँ सदा सत्य होती थीं । एक व्यक्ति ने उनकी परीक्षा करने तथा उपहास करने का दुस्साहस किया था, तो वह कोढ़ी हो गया था ।

बड़ौदा के मंजुसार निवासी श्रीमुकटरामजी महाराज गायत्री उपासना में परम सिद्धि प्राप्त कर गये हैं । प्रायः आठ घण्टे नित्य जप करते थे । उन्हें अनेकों सिद्धियाँ प्राप्त थीं । दूर देशों के समाचार वे ऐसे सच्चे बताते थे, मानो सब हाल आँखों से देख रहे हों । पीछे परीक्षा करने पर वे समाचार सोलह आने सच निकलते । उन्होंने गुजराती की एक-दो कक्षा तक पढ़ने की स्कूली शिक्षा पाई थी, तो भी वे संसार की सभी भाषाओं को भली प्रकार बोल और समझ लेते थे । विदेशी लोग उनके पास आकर अपनी भाषा में घण्टों तक वार्त्तालाप करते थे । योग, ज्योतिष, वैद्यक, तन्त्र तथा धर्म शास्त्र का उन्हें पूरा-पूरा ज्ञान था । बड़े-बड़े पण्डित उनसे अपनी गुत्थियाँ सुलझवाने आते थे । उन्होंने कितनी ही ऐसी करामातें दिखाई थीं, जिनके कारण लोगों की उन पर अटूट श्रद्धा हो गयी थी ।

बरसोड़ा में एक ऋषिराज ने सात वर्ष तक निराहार रहकर गायत्री पुरश्चरण किये थे । उनकी वाणी सिद्ध थी । जो कह देते थे, वही होता था ।

कल्याण के सन्त अंक में हरेराम नामक एक ब्रह्मचारी का जिक्र छपा है । यह ब्रह्मचारी गंगाजी के भीतर उठी हुई एक टेकरी पर रहते थे और गायत्री जी की आराधना करते थे । उनका ब्रह्मतेज अवर्णनीय था । सारा शरीर तेज से दमकता था । उन्होंने अपनी सिद्धियों से अनेकों के दुःख दूर किये थे ।

देव प्रयाग के विष्णुदत्त जी वानप्रस्थी ने चान्द्रायण व्रतों के साथ सवालक्ष जप के सात अनुष्ठान किये थे । इससे उनका आत्मबल बहुत बढ़ गया था । उन्हें कितनी ही सिद्धियाँ मिल गयी थीं । लोगों को जब पता चला, तो अपने कार्य सिद्ध कराने के लिये उनके पास दूर-दूर से भी आने लगे । वानप्रस्थीजी इस खेल में उलझ गये । रोज-रोज बहुत खर्च करने से उनका शक्ति भण्डार चुक गया । पीछे उन्हें बड़ा पश्चात्ताप हुआ और फिर मृत्युकाल तक एकान्त साधना करते रहे ।

रुद्र प्रयाग के स्वामी निर्मलानन्द संन्यासी को गायत्री-साधना से भगवती के दिव्य-दर्शन और ईश्वर साक्षात्कार का लाभ प्राप्त हुआ था । इससे उन्हें असीम तृप्ति हुई ।

बिठूर के पास खाँडेराव नामक एक वयोवृद्ध तपस्वी एक विशाल खिरनी के पेड़ के नीचे गायत्री साधना करते थे । एक बार उन्होंने विराट् गायत्री यज्ञ का ब्रह्मभोज किया । दिन भर हजारों आदमियों की पंगतें होती रहीं । रात नौ बजे भोजन समाप्त हो गया । भोजन अभी कई हजार आदमियों का होना शेष था । खाँडेरावजी को सूचना दी गयी, उन्होंने आज्ञा दी गंगाजी में से चार कनस्तर पानी भरकर लाओ और उसमें पूड़ियाँ सिकने दो । ऐसा ही किया गया । पूड़ियाँ घी के समान स्वादिष्ट थीं । दूसरे दिन चार कनस्तर घी मँगवाकर गंगाजी में डलवा दिया ।

काशी में जिस समय बाबू शिवप्रसाद जी गुप्त द्वारा 'भारतमाता' के मन्दिर का शिलारोपण समारोह किया गया था, उस समय २०० दिन तक का एक बड़ा महायज्ञ किया गया, जिसमें विद्वानों द्वारा २० लाख गायत्री जप किया गया । यज्ञ की पूर्णाहुति के दिन पास में लगे पेड़ों के सूखे पत्ते फिर से हरे हो गये थे और एक पेड़ में तो असमय ही फल भी आ गये थे । इस अवसर पर पं॰ मदनमोहन जी मालवीय, राजा मोतीचन्द्र, हाई कोर्ट के जज श्रीकन्हैयालाल और अन्य अनेक गणमान्य व्यक्ति उपस्थित थे, जिन्होंने यह घटना अपनी आँखों से देखी और गायत्री के प्रभाव को स्वयं अनुभव किया ।

गढ़वाल के महात्मा गोविन्दानन्द अत्यन्त विषधर साँपों के काटे हुए रोगियों की प्राण रक्षा करने के लिये

प्रसिद्ध थे। उनका कहना था कि मैं गायत्री जप से ही सब रोगियों को ठीक करता हूँ। इसी प्रकार समस्तीपुर के एक सम्पन्न व्यक्ति शोभान साहू भी गायत्री मन्त्र से अत्यन्त जहरीले बिच्छुओं और पागल कुत्ते के काटे तक को चंगा कर देते थे। अनेक सात्त्विक साधक केवल गायत्री मन्त्र से अभिमन्त्रित जल द्वारा बड़े-बड़े रोगों को दूर कर देते हैं।

स्वर्गीय पण्डित मोतीलालजी नेहरू का जीवन उस समय के वातावरण के कारण यद्यपि एक भिन्न कर्तव्य क्षेत्र में व्यतीत हुआ था, पर जीवन के अन्तिम समय में उनको गायत्री का ध्यान आया और उसे जपते हुए ही उन्होंने जीवनलीला समाप्त की। इससे विदित होता है कि गायत्री का संस्कार शीघ्र ही समाप्त नहीं हो जाता; वरन् आगामी पीढ़ियों तक भी प्रभाव डालता रहता है। पण्डितजी के पूर्वज धार्मिक प्रवृत्ति के गायत्री-उपासक थे और उसके प्रभाव से उनको भी मृत्यु- काल जैसे महत्त्व के अवसर पर उसका ध्यान आ गया।

अहमदाबाद के श्री डाह्याभाई रामचन्द्र मेहता गायत्री के श्रद्धालु उपासक और प्रचारक हैं। इनकी आयु ८० वर्ष है। शरीर और मन में सतोगुण की अधिकता होने से वे सभी गुण उनमें परिलक्षित होते हैं, जो महात्माओं में पाये जाते हैं।

दीनवा के स्वामी मनोहरदासजी ने गायत्री के कई पुरश्चरण किये हैं। उनका कहना है कि इस महासाधना से मुझे इतना अधिक लाभ हुआ है कि उसे प्रकट करने की उसी प्रकार इच्छा नहीं होती, जैसे कि लोभी को अपना धन प्रकट करने में संकोच होता है।

हटा के श्री रमेशचन्द्र दुबे को गायत्री साधना के कारण कई बार बड़े अनुभव हुए हैं, जिनके कारण उनकी निष्ठा में वृद्धि हुई है।

पाटन के श्री जटाशंकर नन्दी की आयु ७७ वर्ष से अधिक है। वे गत पचास वर्षों से गायत्री उपासना कर रहे हैं। कुविचारों और कुसंस्कारों से मुक्ति एवं दैवी तत्त्वों की अधिकता का लाभ उन्होंने प्राप्त किया है और इसे वे जीवन की प्रधान सफलता मानते हैं।

वृन्दावन के काठिया बाबा, उड़िया बाबा, प्रज्ञा चक्षु स्वामी गंगेश्वरानन्द जी गायत्री उपासना से आरम्भ करके अपनी साधना को आगे बढ़ाने में समर्थ हुए थे। वैष्णव सम्प्रदाय के प्रायः सभी आचार्य गायत्री की साधना पर विशेष जोर देते हैं।

नवाबगंज के पण्डित बलभद्र जी ब्रह्मचारी, सहारनपुर जिले के श्रीस्वामी देवदर्शनजी, बुलन्दशहर, उ०प्र० के परिव्राजक महात्मा योगानन्दजी, ब्रह्मनिष्ठ श्रीस्वामी ब्रह्मर्षिदासजी उदासीन, बिहार प्रान्त के महात्मा अनासक्तजी, यज्ञाचार्य पं॰ जगन्नाथ शास्त्री, राजगढ़ के महात्मा हरि ॐ तत् सत् आदि कितने ही सन्त- महात्मा गायत्री उपासना में पूर्ण मनोयोग के साथ संलग्न हैं। अनेक गृहस्थ भी तपस्वी जीवन व्यतीत करते हुए महान् साधना में प्रवृत्त हैं। इस मार्ग पर चलते हुए उन्हें महत्त्वपूर्ण आध्यात्मिक सफलताएँ प्राप्त हो रही हैं।

हमने स्वयं अपने जीवन के आरम्भ काल में ही गायत्री की उपासना की है और वह हमारा जीवन आधार ही बन गयी है। दोषों, विकारों, कषाय-कल्मषों, कुविचार और कुसंस्कारों को हटा देने में जो थोड़ी-सी सफलता मिली है, यह श्रेय इसी साधना को है। ब्राह्मणत्व की ब्राह्मी भावनाओं की, धर्मपरायणता की, सेवा, स्वाध्याय, संयम और तपश्चर्या की जो यत्किंचित् प्रवृत्तियाँ हैं, वे माता की कृपा के कारण हैं। अनेक बार विपत्तियों से उसने बचाया है और अन्धकार में मार्ग दिखाया है। आप बीती इन घटनाओं का वर्णन बहुत विस्तृत है, जिसके कारण हमारी श्रद्धा दिन-दिन माता के चरणों में बढ़ती चली आयी है। इन वर्णनों के लिये इन पंक्तियों में स्थान नहीं है। हमारे प्रयत्न और प्रोत्साहन से जिन सज्जनों ने वेदमाता की उपासना की है, उनमें आत्म-शुद्धि, पापों से घृणा,

सन्मार्ग में श्रद्धा, सतोगुण की वृत्ति, संयम, पवित्रता, आस्तिकता, जागरूकता एवं धर्मपरायणता की प्रवृत्तियों को बढ़ते हुए पाया है । उन्हें अन्य प्रारम्भिक लाभ चाहे हुए हों या न हुए हों ; पर आत्मिक लाभ हर एक को निश्चित रूप से हुए हैं । विवेकपूर्वक विचार किया जाय, तो यह लाभ इतने महान् हैं कि इनके ऊपर धन-सम्पत्ति की छोटी-मोटी सफलताओं को न्योछावर करके फेंका जा सकता है ।

इसलिये हम अपने पाठकों से आग्रहपूर्वक अनुरोध करेंगे कि वे गायत्री की उपासना करके उसके द्वारा होने वाले लाभों का चमत्कार देखें । जो वेदमाता की शरण ग्रहण करते हैं, अन्तःकरण में सतोगुण, विवेक, सद्विचार और सत्कर्मों की ओर उनकी असाधारण प्रवृत्ति जाग्रत् होती है । यह आत्म-जागरण लौकिक और पारलौकिक, सांसारिक और आत्मिक सभी प्रकार की सफलताओं का दाता है ।

गायत्री साधना से श्री, समृद्धि और सफलता

गायत्री त्रिगुणात्मक है । उसकी उपासना से जहाँ सतोगुण बढ़ता है, वहाँ कल्याणकारक एवं उपयोगी रजोगुण की भी अभिवृद्धि होती है ।

रजोगुणी आत्मबल बढ़ने से मनुष्य की गुप्त शक्तियाँ जाग्रत् होती हैं, जो सांसारिक जीवन के संघर्ष में अनुकूल प्रतिक्रिया उत्पन्न करती हैं । उत्साह, साहस, स्फूर्ति, निरालस्यता, आशा, दूरदर्शिता, तीव्र बुद्धि, अवसर की पहचान, वाणी में माधुर्य, व्यक्तित्व में आकर्षण, स्वाभाव में मिलनसारी जैसी अनेक छोटी-बड़ी विशेषतायें उन्नत तथा विकसित होती हैं, जिसके कारण 'श्रीं' तत्त्व का उपासक भीतर ही भीतर एक नये ढाँचे में ढलता रहता है, उसमें ऐसे परिवर्तन हो जाते हैं, जिनके कारण साधारण व्यक्ति भी धनी- समृद्ध हो सकता है ।

गायत्री उपासकों में ऐसी त्रुटियाँ जो मनुष्य को दुःखी बनाती हैं, नष्ट होकर वे विशेषतायें उत्पन्न होती हैं, जिनके कारण मनुष्य क्रमशः समृद्धि, सम्पन्नता और उन्नति की ओर अग्रसर होता है । गायत्री अपने साधकों की झोली में सोने की अशर्फियाँ नहीं उड़ेलती यह ठीक है, पर यह भी ठीक है कि वह साधक में उन विशेषताओं को उत्पन्न करती है, जिनके कारण वह अभावग्रस्त और दीन-हीन नहीं रह सकता । इस प्रकार के अनेकों उदाहरण हमारी जानकारी में हैं । उनमें से कुछ नीचे दिये जाते हैं ।

ग्राम हर्रई जिला छिन्दवाड़ा के पं॰ भूरेलाल ब्रह्मचारी लिखते हैं—'रोजी में उत्तरोत्तर वृद्धि होने के कारण मैं धन-धान्य से परिपूर्ण हूँ । जिस कार्य में हाथ डालता हूँ, उसी में सफलता मिलती है । अनेक तरह के संकटों का निवारण आप ही आप हो जाता है, इतना तो अनुभव मेरे खुद का गायत्री मन्त्र जपने का है ।'

झाँसी के पं॰ लक्ष्मीकान्त झा व्याकरण, साहित्याचार्य लिखते हैं—'बचपन से ही मुझे गायत्री पर श्रद्धा हो गयी थी और उसी समय से एक हजार मन्त्रों का नित्य जप करता हूँ । इसी के प्रताप से मैंने साहित्याचार्य, व्याकरणाचार्य, साहित्यरत्न तथा वेद-शास्त्री आदि परीक्षायें उत्तीर्ण की तथा संस्कृत कालेज झाँसी का प्रिन्सीपल बना । मैंने एक सेठ के १६ वर्षीय मरणासन्न पुत्र के प्राण गायत्री जप के प्रभाव से बचते हुए देखे हैं, जिससे मेरी श्रद्धा और भी दृढ़ हो गयी है ।'

वृन्दावन के पं॰ तुलसीदास शर्मा लिखते हैं—'लगभग दस वर्ष हुए होंगे, श्रीउड़िया बाबा की प्रेरणा से हाथरस निवासी लाला गणेशीलाल ने गंगा किनारे कर्णवास में २४ लक्ष गायत्री का अनुष्ठान कराया था । उसी समय से गणेशीलाल जी की आर्थिक दशा दिन-दिन ऊँची उठती गयी और अब उनकी प्रतिष्ठा- सम्पन्नता तब से चौगुनी है ।'

प्रतापगढ़ के पं॰ हरनारायण शर्मा लिखते हैं—'मेरे एक निकट सम्बन्धी ने काशी में एक महात्मा से धन प्राप्ति का उपाय पूछा । महात्मा ने उपदेश दिया कि प्रातःकाल चार बजे उठकर शौचादि से निवृत्त होकर स्नान-

सन्ध्या के बाद खड़े होकर नित्य एक हजार गायत्री मन्त्र का जप किया करो। उसने ऐसा ही किया, फलस्वरूप उसका आर्थिक कष्ट दूर हो गया।'

प्रयाग जिले के छितौना ग्राम निवासी पं० देवनारायण जी देवभाषा के असाधारण विद्वान् और गायत्री के अनन्य उपासक हैं। तीस वर्ष की आयु तक अध्ययन करने के उपरान्त उन्होंने गृहस्थाश्रम में प्रवेश किया। स्त्री बड़ी सुशील एवं पतिभक्त मिली। विवाह के बहुत काल बीत जाने पर भी जब कोई सन्तान नहीं हुई, तो वह अपने आप को बन्ध्यत्व से कलंकित समझकर दुःखी रहने लगी। पण्डितजी ने उसकी इच्छा जानकर सवा लक्ष जप का अनुष्ठान किया। कुछ ही दिन में उनके एक प्रतिभावान् मेधावी पुत्र उत्पन्न हुआ, जो आजकल देवभाषा की सर्वोच्च उपाधि प्राप्त करने की तैयारी कर रहा है।

प्रयाग के पास जमुनीपुर ग्राम में रामनिधि शास्त्री नामक एक विद्वान् ब्राह्मण रहते थे। वे अत्यन्त निर्धन थे, पर गायत्री साधना में उनकी बड़ी तत्परता थी। एक बार नौ दिन उपवास करके उन्होंने नवाह्न पुरश्चरण किया। पुरश्चरण के अन्तिम दिन अर्धरात्रि को भगवती गायत्री ने बड़े दिव्य स्वरूप में उन्हें दर्शन दिया और कहा तुम्हारे इस घर में अमुक स्थान पर अशर्फियों से भरा घड़ा रखा है, उसे निकालकर अपनी दरिद्रता दूर करो। पण्डितजी ने घड़ा निकाला और वे निर्धन से धनपति हो गये।

इन्दौर निवासी पण्डित रक्षपालजी ने बताया है कि एक व्यक्ति अपनी पत्नी के साथ लड़ाई-झगड़ा करता रहता था। थोड़े दिन तक गायत्री मन्त्र से अभिमन्त्रित जल पीने से उसका स्वभाव बदल गया और उन स्त्री पुरुष दोनों में उत्तरोत्तर स्नेह बढ़ता गया।

बड़ौदा के वकील रामचन्द्र कालीशंकर पाठक आरम्भ में १०) रुपये मासिक की एक छोटी नौकरी करते थे। उस समय उन्होंने एक गायत्री पुरश्चरण किया, तब से उनकी रुचि विद्याध्ययन में लगी और धीरे-धीरे प्रसिद्ध कानूनदां हो गये। उनकी मासिक आमदनी करीब ५००) रुपये तक है।

महुआ (काठियावाड़) के रणछोड़लाल भाई का कथन है कि एक मनुष्य का लड़का मैट्रिक में दो बार फेल हो चुका था, अन्त में उसने दुःखी होकर गायत्री का जप कराया, उस वर्ष उसका लड़का अच्छे नम्बरों से पास हुआ।

गुजरात के मधुसूदन स्वामी का नाम संन्यास लेने से पहले मायाशंकर दयाशंकर पण्ड्या था, वे सिद्धपुर में रहते थे। आरम्भ में वे २५) मासिक के नौकर थे। उन्होंने हर रोज एक हजार गायत्री जप से आरम्भ करके चार हजार तक बढ़ाया। फलस्वरूप उनकी पदवृद्धि हुई। वे बड़ौदा राज्य रेलवे के असिस्टेण्ट ट्रैफिक सुपरिन्टेण्डेण्ट के ओहदे तक पहुँचे, उस समय उनका वेतन तीन सौ रुपया मासिक था। उत्तरावस्था में उन्होंने संन्यास ले लिया था।

माण्डूक्य उपनिषद् पर कारिका लिखने वाले विद्वान् श्रीगौड़पाद का जन्म उनके पिता के उपवास पूर्वक सात दिन तक गायत्री जप करने के फलस्वरूप हुआ था।

प्रसिद्ध साहित्यकार पं० द्वारकाप्रसाद चतुर्वेदी पहले इलाहाबाद में सिविल सर्जन के हैडक्लर्क थे। उन्होंने वारेन हैस्टिंग्ज का जीवन चरित्र लिखा, जो राजद्रोहात्मक समझा गया और नौकरी से हाथ धोना पड़ा। बड़ा कुटुम्ब और जीविका का साधन न रहना, इस तपस्या के फलस्वरूप उन्हें पुस्तक लेखन का स्वतन्त्र कार्य मिल गया। तब से उन्होंने पर्याप्त अनुष्ठान करने का अपना नियम बनाया और नित्य जप किया करते थे।

स्वर्गीय पं० बालकृष्ण भट्ट हिन्दी के प्रसिद्ध साहित्यकार थे। वे नित्य गायत्री के पाँच सौ मन्त्र जपते थे और कहा करते थे कि 'गायत्री जप करने वालों को कभी कोई कमी नहीं रहती, भट्टजी सदा विद्या, धन, जन से भरे पूरे रहे।'

प्रयाग विश्वविद्यालय के प्रोफेसर क्षेत्रेशचन्द्र चट्टोपाध्याय का भानजा उनके यहाँ रहकर पढ़ता था। इण्टर परीक्षा के दौरान लौजिक के पर्चे के दिन वह बहुत दुःखी था, क्योंकि उस विषय में वह बालक कच्चा था। प्रोफेसर साहब ने उसे प्रोत्साहन देकर परीक्षा देने भेजा और स्वयं छुट्टी लेकर आसन जमाकर गायत्री जपने लगे, जब तक बालक लौटा तब तक बराबर जप करते रहे। बालक ने बताया, उसका वह पर्चा बहुत ही अच्छा हुआ और लिखते समय उसे लगता था मानो उसकी कलम पकड़ कर कोई लिखाता चलता है। वह बहुत अच्छे नम्बरों से उत्तीर्ण हुआ।

इलाहाबाद के पं॰ प्रतापनारायण चतुर्वेदी की नौकरी छूट गयी। बहुत तलाश करने पर भी जब कोई जगह न मिली तो उन्होंने अपने पिता के आदेशानुसार गायत्री का सवा लक्ष जप किया। समाप्त होने पर उसी पायेनियर प्रेस में पहली नौकरी की अपेक्षा ढाई गुने वेतन की जगह मिल गयी, जहाँ कि पहले उन्हें कितनी ही बार मना कर दिया गया था।

कलकत्ता के शा॰ मोड़कमल केजड़ीवाल आरम्भ में जोधपुर राज्य के एक गाँव में १२) रु॰ मासिक के अध्यापक थे। एक छोटी-सी पुस्तक से आकर्षित होकर उन्होंने गायत्री जपने का नित्य नियम बनाया। जप करते-करते अचानक उनके मन में स्फुरणा हुई कि मुझे कलकत्ता जाना चाहिये, वहाँ मेरी आर्थिक उन्नति होगी। निदान वे कलकत्ता पहुँचे। वहाँ व्यापारिक क्षेत्रों में वे नौकरी करते रहे और श्रद्धापूर्वक गायत्री साधना करते रहे। रुई के व्यापार से उन्हें भारी लाभ हुआ और थोड़े हीं दिन में लखपति बन गये।

बुलढाना के श्री बद्रीप्रसाद वर्मा बहुत निर्बल आर्थिक स्थिति के आदमी थे। ५०) रुपये मासिक में उन्हें अपने ८ आदमियों के परिवार का गुजारा करना पड़ता था। कन्या विवाह योग्य हो गयी। अच्छे घर में विवाह करने के लिये हजारों रुपया दहेज की आवश्यकता थी। वे दुःखी रहते और गायत्री माता के चरणों में आँसू बहाते रहते। अचानक ऐसा संयोग हुआ कि एक डिप्टी कलक्टर के लड़के की बारात, कन्या पक्ष वालों से झगड़ कर बिना ब्याह वापस लौट रही थी। डिप्टी साहब, वर्माजी को जानते थे। रास्ते में उनका गाँव पड़ता था। उन्होंने वर्माजी के पास प्रस्ताव भेजा कि अपनी कन्या का विवाह आज ही हमारे लड़के से कर दें। वर्माजी राजी हो गये। एम॰ए॰ पास लड़का जो नहर विभाग में ६००) रुपये मासिक का इञ्जीनियर था, उससे उनकी कन्या की शादी कुल १५०) रुपये में हो गयी।

देहरादून का बसन्तकुमार नामक छात्र एक वर्ष मैट्रिक में फेल हो चुका था, दूसरे वर्ष भी पास होने की आशा न थी। उसने गायत्री उपासना की और परीक्षा में अच्छे नम्बरों से पास हुआ।

सम्भलपुर के बाबू कौशलकिशोर माहेश्वरी असवर्ण माता-पिता से उत्पन्न होने के कारण जाति से बहिष्कृत थे। विवाह न होने के कारण उनका चित्त बड़ा दुःखी रहता था। गायत्री माता से अपना दुःख रोकर चित्त हल्का कर लेते थे। २६ वर्ष की आयु में उनकी शादी एक सुशिक्षित उच्च घराने की अत्यन्त रूपवती तथा सर्वगुण सम्पन्न कन्या के साथ हुई। माहेश्वरीजी के अन्य भाई-बहनों की शादी भी उच्च तथा सम्पन्न परिवारों में हुई। जाति बहिष्कार के अपमान से उनका परिवार पूर्णतया मुक्त हो गया।

हृदयनगर जिला मण्डला के पं॰ शम्भुप्रसाद मिश्र गायत्री के अनन्य भक्त हैं। अपने से कई गुने साधन सम्पन्न विरोधी को परास्त करके वे डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के चेयरमैन चुने गये।

बहालपुर के राधाबल्लभ तिवारी के विवाह से १६ वर्ष बीत जाने पर भी सन्तान न हुई। उन्होंने गायत्री उपासना का आश्रय लिया। फलस्वरूप उन्हें एक कन्या और एक पुत्र की प्राप्ति हुई।

प्राचीनकाल में दशरथजी को गायत्री द्वारा पुत्रेष्टि यज्ञ करने पर और राजा दिलीप को गुरु वशिष्ठ के आश्रम में गायत्री उपासना करते हुए गो-दुग्ध का कल्प करने पर सुसन्तति की प्राप्ति हुई थी। राजा अश्वपति ने गायत्री

यज्ञ करके सन्तान पायी थी। कुन्ती ने बिना पुरुष संभोग के गायत्री मन्त्र द्वारा सूर्य को आकर्षित करके कर्ण को उत्पन्न किया था।

दिल्ली में नई सड़क पर श्रीबुद्धूराम भट्ट नामक एक दुकानदार हैं। इनके ४५ वर्ष की आयु तक कोई सन्तान न हुई थी। उपासना से उस ढलती आयु में उन्हें पुत्र प्राप्त हुआ, जो बड़ा ही सुन्दर तथा होनहार दिखाई पड़ता है।

गुरुकुल वृन्दावन के एक कार्यकर्त्ता सुदामा मिश्र के यहाँ १४ वर्ष से कोई बालक जन्मा ही नहीं था। गायत्री पुरश्चरण करने से उनके यहाँ एक पुत्र उत्पन्न हुआ और वंश चलने तथा घर के किवाड़ खुले रहने की चिन्ता दूर हो गयी।

सरसई के जीवनलाल वर्मा का तीन वर्ष का होनहार बालक स्वर्गवासी हो गया। उनका घर भर बालक के बिछोह से उद्विग्न था। उनने गायत्री की विशेष उपासना की। दूसरे मास उनकी पत्नी ने स्वप्न में देखा कि उनका बच्चा गोदी में चढ़ आया है और जैसे ही छाती से लगाना चाहा कि बालक उसके पेट में घुस गया है। इस स्वप्न के नौ महीने बाद जो बालक जन्मा, वह हर बात में उसी मरे हुए बालक की प्रति-मूर्ति था। इस बच्चे को पाकर उनका शोक पूर्णतया शान्त हो गया।

बैजनाथ भाई रामजी भाई भुलारे ने कई बार विद्वानों के द्वारा गायत्री अनुष्ठान कराये। उन्हें हर अनुष्ठान में आश्चर्यजनक लाभ हुआ। छः कन्याओं के बाद उन्हें पुत्र प्राप्त हुआ। सत्रह साल पुराना बवासीर अच्छा हुआ और व्यापार में इतना लाभ हुआ, जितना कि इससे पहले उन्हें कभी नहीं हुआ था।

डोरी बाजार के पं॰ पूजा मिश्र का कथन है कि हमारे पिताजी पं॰ देवीप्रसादजी एक गायत्री उपासक महात्मा के शिष्य थे। पिताजी की आर्थिक स्थिति खराब थी। उनको दुःखी देखकर महात्माजी ने उन्हें गायत्री उपासना बताई। फलस्वरूप खेती में भारी लाभ होने लगा। छोटी-सी खेती की विशुद्ध आमदनी से अब उनकी हालत बहुत अच्छी हो गयी है और बचत का २० हजार रुपया बैंक में जमा हो गया है।

गुजरात के ईडर रियासत के निवासी पं॰ गौरीशंकर रेवाशंकर याज्ञिक ने १५ वर्ष की आयु से गायत्री-उपासना आरम्भ कर दी थी और छोटी आयु में ही गायत्री के २४-२४ लाख के तीन पुरश्चरण किये थे। इसके फल से विद्या, ज्ञान तथा अन्य शुभ-संस्कारों की इतनी वृद्धि हुई कि ये जहाँ गये, वहीं इनका आदर-सम्मान हुआ, सफलता प्राप्त हुई। इनके पूर्वज पूना में एक पाठशाला चलाते थे, जिसमें विद्यार्थियों को उच्चकोटि की धार्मिक शिक्षा दी जाती थी। गौरीशंकरजी ने उस पाठशाला को अपने घर पर ही चलाना आरम्भ किया और विद्यार्थियों को गायत्री उपासना का उपदेश देने लगे। इन्होंने यह नियम बना दिया कि जो असहाय विद्यार्थी अपने भोजन की व्यवस्था स्वयं न कर सकें, उनको एक हजार गायत्री जप प्रतिदिन करने पर पाठशाला की तरफ से ही भोजन मिला करेगा। इसका परिणाम यह हुआ कि पूना के ब्राह्मणों में इनका घराना गुरु-गृह के नाम से प्रसिद्ध हो गया।

जबलपुर के राधेश्याम शर्मा के घर में आये दिन बीमारियाँ सताती थीं। उनकी आमदनी का एक बड़ा भाग वैद्य, डॉक्टरों के घर में चला जाता था। जब से उनने गायत्री उपासना आरम्भ की, उनके घर से बीमारी पूर्णतया विदा हो गयी।

सीकर के श्रीशिव भगवान् जी सोमानी तपेदिक से सख्त बीमार पड़े थे। उनके साले, मालेगाँव के शिवरतनजी मारू ने उन्हें गायत्री का मानसिक जप करने की सलाह दी, क्योंकि वे अपने पारिवारिक कलह तथा स्त्री की अस्वस्थता से छुटकारा प्राप्त कर चुके थे। सोमानी जी की बीमारी इतनी घातक हो चुकी थी कि डॉक्टर विलमोरिया जैसे सर्जन को कहना पड़ा कि पसली की तीन हड्डियाँ निकलवा दी जायें, तो ठीक होने की सम्भावना

है, अन्यथा पन्द्रह दिन में हालत काबू से बाहर हो जायेगी। वैसी भयंकर स्थिति में सोमानी जी ने गायत्री माता का अंचल पकड़ा और पूर्ण स्वस्थ होकर अब वे रोहिनीपुर में अपना अच्छा कारोबार कर रहे हैं।

श्रीगोवर्धन पीठ के शंकराचार्य जी ने अपनी पुस्तक 'मन्त्र-शक्ति योग' के पृष्ठ १६७ पर लिखा है कि राव मामलतदार पहाड़पुर कोल्हापुर वाले गायत्री मन्त्र से साँप के जहर को उतार देते हैं।

रोहेड़ा निवासी श्रीनैनूराम को बीस वर्ष की पुरानी वात व्याधि थी और बड़ी-बड़ी दवायें करा लेने पर भी अच्छी न हुई थी, गायत्री-उपासना द्वारा उनका रोग पूर्णतया अच्छा हो गया।

इस प्रकार के अगणित उदाहरण उपलब्ध हो सकते हैं, जिनमें गायत्री-उपासना द्वारा राजसिक वैभव से साधक लाभान्वित हुए हैं।

गायत्री साधना से आपत्तियों का निवारण

विपरीत परिस्थितियों का प्रवाह बड़ा प्रबल होता है। उसके थपेड़े में जो फँस गया, वह विपत्ति की ओर बढ़ता ही जाता है। बीमारी, धन-हानि, मुकदमा, शत्रुता, बेकारी, गृह-कलह, विवाद, कर्ज आदि की शृंखला जब चल पड़ती है, तो मनुष्य हैरान हो जाता है। कहावत है कि विपत्ति अकेली नहीं आती, वह हमेशा अपने बाल-बच्चे साथ लाती है। एक मुसीबत आने पर उसकी साथिन सहित और भी कई कठिनाइयाँ उसी समय आती हैं। चारों ओर से घिरा हुआ मनुष्य अपने को चक्रव्यूह में फँसा-सा अनुभव करता है। ऐसे विकट समय में जो लोग निराशा, चिन्ता, भय, निरुत्साह, घबराहट, किंकर्तव्य विमूढ़ता में पड़कर हाथ-पाँव चलाना छोड़ देते हैं, रोने-कलपने में लगे रहते हैं, वे अधिक समय तक अधिक मात्रा में कष्ट भोगते हैं।

विपत्ति और विपरीत परिस्थितियों की धारा से त्राण पाने के लिये धैर्य, साहस, विवेक और प्रयत्न की आवश्यकता है। इन चार कोनों वाली नाव पर चढ़कर ही संकट की नदी को पार करना सुगम होता है। गायत्री की साधना आपत्ति के समय इन चार तत्त्वों को मनुष्य के अन्तःकरण में विशेष रूप से प्रोत्साहित करती हैं, जिससे वह ऐसा ठीक मार्ग ढूँढ़ने में सफल हो जाता है। जो उसे विपत्ति से पार लगा दे।

आपत्तियों में फँसे हुए अनेकों व्यक्ति गायत्री की कृपा से किस प्रकार पार उतरे, उनके कुछ उदाहरण हमारी जानकारी में इस प्रकार हैं—

घाटकोपर बम्बई के श्री आर॰बी॰ वेद गायत्री की कृपा से घोर साम्प्रदायिक दंगों के दिनों में मुस्लिम बस्तियों से निर्भय होकर निकलते रहते थे। उनकी पुत्री को एकबार भयंकर हैजा हुआ। यह भी उसी के अनुग्रह पर शान्त हुआ। एक महत्त्वपूर्ण मुकदमे में भी अनुकूल फैसला हुआ।

इन्दौर, काँगड़ा के चौ॰ अमरसिंह एक ऐसी जगह बीमार पड़े, जहाँ की जलवायु बड़ी खराब थी और जहाँ कोई चिकित्सक खोजे न मिलता था। उस भयंकर बीमारी में गायत्री प्रार्थना को उन्होंने औषधि बनाया और अच्छे हो गये।

बम्बई के पं॰ रामशरण शर्मा जब गायत्री अनुष्ठान कर रहे थे, उन्हीं दिनों उनके माता-पिता सख्त बीमार हुए। परन्तु अनुष्ठान के प्रभाव से उनका बाल भी बाँका न हुआ, दोनों ही नीरोग हो गये।

इटौआधुरा के डॉक्टर रामनारायण जी भटनागर को उनकी स्वर्गीया पत्नी ने स्वप्न में दर्शन देकर गायत्री जप करने की शिक्षा दी थी, तब से वे बराबर इस साधना को कर रहे हैं। चिकित्सा-क्षेत्र में उनके हाथ में ऐसा यश आया है कि बड़े-बड़े कष्टसाध्य रोगी उनकी चिकित्सा से अच्छे हुए हैं।

कनकुवा जि० हमीरपुर के लक्ष्मीनारायण श्रीवास्तव बी०ए०, एल०एल०बी० की धर्मपत्नी प्रसवकाल में अत्यन्त कष्ट पीड़ित हुआ करती थी, गायत्री उपासना से उनका कष्ट बहुत कम हो गया। एक बार उनका लड़का मोतीझरा से पीड़ित हुआ। बेहोशी और चीखने की दशा को देखकर सब लोग बड़े दु:खी थे। वकील साहब की गायत्री प्रार्थना के द्वारा बालक को गहरी नींद आ गयी और वह थोड़े ही दिनों में स्वस्थ हो गया।

जफरापुर के ठा० रामकरणसिंहजी वैद्य की धर्मपत्नी को दो वर्ष से संग्रहणी की बीमारी थी। अनेक प्रकार से चिकित्सा कराने पर भी जब लाभ न हुआ, तो सवालक्ष जप का अनुष्ठान किया गया। फलस्वरूप वह पूर्ण स्वस्थ हो गयीं और उनके एक पुत्र पैदा हुआ।

कसराबाद, निमाड़ के श्रीशंकरलाल व्यास का बालक इतना बीमार था कि डॉक्टर, वैद्यों ने आशा छोड़ दी। दस हजार गायत्री जप के प्रभाव से वह अच्छा हुआ। एक बार व्यास जी रास्ता भूलकर रात के समय ऐसे पहाड़ी बीहड़ जंगल में फँस गये, जहाँ हिंसक जानवर चारों ओर शोर करते हुए घूम रहे थे। इस संकट के समय में उन्होंने गायत्री का ध्यान किया और उनके प्राण बच गये।

विहिया, शाहाबाद के श्री गुरुचरण आर्य एक अभियोग में जेल भेज दिये गये। छुटकारे के लिये वे जेल में जप करते रहते थे। वे अचानक जेल से छूट गये और मुकदमे में निर्दोष बरी हो गये।

मुन्द्रावजा के श्रीप्रकाशनारायण मिश्र कक्षा १० की पढ़ाई में पारिवारिक कठिनाइयों के कारण ध्यान न दे सके। परीक्षा के २५ दिन रह गये, तब उन्होंने पढ़ना और गायत्री का जप करना आरंभ किया। उत्तीर्ण होने की आशा न थी, फिर भी उन्हें सफलता मिली। मिश्रजी के बाबा शत्रुओं के ऐसे कुचक्र में फँस गये कि जेल जाना पड़ा। गायत्री अनुष्ठान के कारण वे उस आपत्ति से बच गये।

काशी के पं० धरनीदत्त शास्त्री का कथन है कि उनके दादा पं० कन्हैयालाल गायत्री के उपासक थे। बचपन में शास्त्रीजी अपने दादा के साथ रात के समय कुएँ पर पानी लेने गये। उन्होंने देखा कि वहाँ पर एक भयंकर प्रेत आत्मा है, जो कभी भैंसा बनकर, कभी शूकर बनकर उन पर आक्रमण करना चाहती है। वह कभी मुख से, कभी सिर से भयंकर अग्नि ज्वालायें फेंकता रहा और कभी मनुष्य, कभी हिंसक जन्तु बनकर एक-डेढ़ घण्टे तक भयोत्पादन करता रहा। दादा ने मुझे डरा हुआ देखकर समझा दिया कि, बेटा हम गायत्री उपासक हैं, यह प्रेत आत्मा हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकता। अन्त में वे दोनों सकुशल घर को गये, प्रेत का क्रोध असफल रहा।

"सनाढ्य-जीवन" इटावा के सम्पादक पं० प्रभुदयाल शर्मा का कथन है कि उनकी पुत्रवधू तथा नातियों को कोई दुष्ट प्रेतात्मा लग गयी थी। हाथ, पैर और मस्तक में भारी पीड़ा होती थी और बेहोशी आ जाती थी। रोग-मुक्ति के जब सब प्रयत्न असफल हुए, तो गायत्री का आश्रय लेने से वह बाधा दूर हुई। इसी प्रकार शर्माजी का भतीजा भी मृत्यु के मुँह में अटका था। उसे गोदी में लेकर गायत्री का जप किया गया, बालक अच्छा हो गया।

शर्माजी के ताऊ जी दानापुर (पटना) गये हुए थे। वहाँ वे स्नान के बाद गायत्री का जप कर रहे थे कि अचानक उनके कान में जोर से शब्द हुआ कि—"जल्दी निकल - भाग, यह मकान अभी गिरता है।" वे खिड़की से कूद कर भागे। मुश्किल से चार-छ: कदम गये होंगे कि मकान गिर पड़ा और वे बाल-बाल बच गये।

शेखपुरा के अमोलकचन्द्र गुप्ता बचपन में ही पिता की और किशोरावस्था में माता की मृत्यु हो जाने से कुसंग में पड़कर अनेक बुरी आदतों में फँस गये थे। दोस्तों की चौकड़ी दिनभर जमी रहती और ताश, शतरंज, गाना-बजाना, वेश्या-नृत्य, सिगरेट, शराब, जुआ, व्यभिचार, नाच, तमाशा, सैर-सपाटा, भोजन पार्टी आदि के दौर चलते रहते। इसी कुचक्र में पाँच वर्ष के भीतर नकदी, जेवर, मकान और बीस हजार की जायदाद स्वाहा हो गयी। जब कुछ न रहा, तो जुए के अड्डे, व्यभिचार की दलाली, चोरी, जेबकटी, लूट, धोखाधड़ी आदि की नई-नई तरकीबें निकालकर एक छोटे गिरोह के साथ अपना गुजारा करने लगे। इसी स्थिति में उनका चित्त बड़ा अशान्त रहता।

एक दिन एक महात्मा ने उन्हें गायत्री का उपदेश दिया। उनकी श्रद्धा जम गयी। धीरे-धीरे उत्तम विचारों की वृद्धि हुई। पश्चात्ताप और प्रायश्चित्त की भावना बढ़ने से उन्होंने चान्द्रायण व्रत, तीर्थ, अनुष्ठान और प्रायश्चित्त किये। अब वे एक दुकान करके अपना गुजारा करते हैं और पुरानी बुरी आदतों से मुक्त हैं।

रानीपुरा के ठा० अंगजीत राठौर एक डकैती के केस में फँस गये थे। जेल में गायत्री का वे जप करते रहते थे। मुकदमे में निर्दोष हो छुटकारा पाया।

अम्बाला के मोतीलाल माहेश्वरी का लड़का कुसंग में पड़कर ऐसी बुरी आदतों का शिकार हो गया था, जिससे उनके प्रतिष्ठित परिवार पर कलंक के छींटे पड़ते थे। माहेश्वरीजी ने दुःखी होकर गायत्री की शरण ली। उस तपश्चर्या के प्रभाव से लड़के की मति पलटी और अशान्त परिवार में शान्त वातावरण उत्पन्न हो गया।

टोंक के श्री शिवनारायण श्रीवास्तव के पिताजी के मरने पर जमींदारी की दो हजार रुपये सालाना आमदनी पर गुजारा करने वाले १९ व्यक्ति रह गये। परिश्रम कोई न करता, पर खर्च सब बढ़ाते और जमींदारी से माँगते। निदान वह घर, घर की फूट और कलह का अखाड़ा बन गया। फौजदारी और मुकदमेबाजी के आसार खड़े हो गये। श्रीवास्तवजी को इससे बड़ा दुःख होता, क्योंकि वे पिताजी के उत्तराधिकारी गृहपति थे। दुःखी होकर एक महात्मा के आदेशानुसार उन्होंने गायत्री जप आरंभ किया। परिस्थिति बदली। बुद्धियों में सुधार हुआ। कमाने लायक लोग नौकरी तथा व्यापार में लग गये। झगड़े शान्त हुए। डगमगाता हुआ घर बिगड़ने से बच गया।

अमरावती के सोहनलाल मेहरोत्रा की स्त्री को भूत बाधा बनी रहती थी। बड़ा कष्ट था, हजारों रुपया खर्च हो चुके थे। स्त्री दिन-दिन घुलती जाती थी। एक दिन मेहरोत्रा जी से स्वप्न में उनके पिता जी ने कहा—'बेटा गायत्री का जप कर, सब विपत्ति दूर हो जायेगी।' दूसरे दिन से उन्होंने वैसा ही किया। फलस्वरूप उपद्रव शान्त हो गये और स्त्री नीरोग हो गयी। उनकी बहिन की ननद भी इस गायत्री जप द्वारा भूत बाधा से मुक्त हुई।

चाचौड़ा के डॉ॰ भगवान् स्वरूप की स्त्री भी प्रेत बाधा में मरणासन्न स्थिति को पहुँच गयी थी, उसकी प्राण रक्षा भी एक गायत्री उपासक के प्रयत्न से हुई।

बिझौली के बाबा उमाशंकर खरे के परिवार से गाँव के जाट परिवार की पुश्तैनी दुश्मनी थी। इस रंजिश के कारण कई बार खरे जी के यहाँ डकैतियाँ हो चुकी थीं और बड़े-बड़े नुकसान हुए थे। सदा ही जान- जोखिम का अन्देशा रहता था। खरे जी ने गायत्री भक्ति का मार्ग अपनाया। उनके मधुर व्यवहार ने अपने परिवार को शान्त स्वभाव और गाँव को नरम बना लिया। अब पुराना बैर समाप्त होकर नई सद्‌भावना कायम हुई है। सब लोग बड़े प्रेम से रहते हैं।

खड़गपुर के श्री गोकुलचन्द सक्सेना रेलवे के लोको दफ्तर में कर्मचारी थे। इनके दफ्तर में ऊँचे ओहदे के कर्मचारी उनसे द्वेष करते थे और षड्यन्त्र करके उनकी नौकरी छुड़ाना चाहते थे। उनके अनेकों हमले विफल हुए। सक्सेनाजी का विश्वास है कि गायत्री उनकी रक्षा करती हैं और उनका कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता।

बम्बई के श्री मानिकचन्द्र पाटोदिया व्यापारिक घाटे के कारण काफी रुपये के कर्जदार हो गये थे। कर्ज चुकाने की कोई व्यवस्था हो नहीं पाती थी कि सट्टे में और भी नुकसान हो गया। दिवालिया होकर अपनी प्रतिष्ठा खोने और भविष्य में दुःखी जीवन बिताने के लक्षण स्पष्ट रूप से सामने थे। विपत्ति में सहायता के लिये उन्होंने गायत्री अनुष्ठान कराया। साधना के प्रभाव से दिन-दिन लाभ होने लगा। रुई और चाँदी के चान्स अच्छे आ गये, जिसमें सारा कर्ज चुक गया। गिरा हुआ व्यापार फिर चमकने लगा।

दिल्ली के प्रसिद्ध पहलवान गोपाल विश्नोई कोई बड़ी कुश्ती लड़ने जाते थे, तो पहले गायत्री पुरश्चरण करते थे। प्रायः सदा ही विजयी होकर लौटते थे।

बाँसबाड़ा के श्रीसीताराम मालवीय को क्षय रोग हो गया था। एक्सरा होने पर डॉक्टरों ने बताया कि उनके

फेफड़े खराब हो गये हैं । दशा निराशाजनक थी । सैकड़ों रुपये की दवा खाने पर भी जब कुछ आराम न हुआ, तो एक वयोवृद्ध विद्वान् के आदेशानुसार उन्होंने चारपाई पर पड़े-पड़े गायत्री का जप आरम्भ कर दिया और मन ही मन प्रतिज्ञा की कि यदि मैं बच गया, तो अपना जीवन देश-हित में लगा दूँगा । प्रभु की कृपा से वे बच गये । धीरे-धीरे स्वास्थ्य सुधरा और बिल्कुल भले चंगे हो गये । तब से अब तक वे आदिवासियों, भीलों तथा पिछड़ी हुई जातियों के लोगों की सेवा में लगे हुए हैं ।

थरपारकर के ला॰ करनदास का लड़का बहुत ही दुबला और कमजोर था, आये दिन बीमार पड़ा रहता था । आयु १९ वर्ष की हो चुकी थी, पर देखने में १३ वर्ष से अधिक न मालूम पड़ता था । लड़के को उनके कुलगुरु ने गायत्री की उपासना का आदेश दिया । उसका मन इस ओर लग गया । एक-एक करके उसकी सब बीमारियाँ छूट गयीं । कसरत करने लगा, खाना भी हजम होने लगा । दो-तीन वर्ष में उसका शरीर ड्यौढ़ा हो गया और घर का सब काम-काज होशियारी के साथ सँभालने लगा ।

प्रयाग के श्रीमुन्नूलाल जी के दौहित्र की दशा बहुत खराब हो गयी थी । गला फूल गया था । डॉक्टर अपना प्रयत्न कर रहे थे, पर कोई दवा कारगर नहीं होती थी । तब उनके घर वालों ने गायत्री उपासना का सहारा लिया । रातभर गायत्री जप तथा चालीसा-पाठ चलता रहा । सबेरा होते-होते दशा बहुत कुछ सुधर गयी और दो-चार दिन में वह पुन: खेलने-कूदने लगा ।

आगरा निवासी श्रीरामकरणजी किसी के यहाँ निमन्त्रण पाकर भोजन करने गये , वहाँ से घर लौटते ही उनका मस्तिष्क विकृत हो गया । वे पागल होकर इधर-उधर फिरने लगे । एक दिन उन्होंने अपनी जाँघ में ईंट मारकर उसे खूब सुजा लिया । उनका जीवन निरर्थक जान पड़ने लग गया था । एक दिन कुछ लोग परामर्श करके उन्हें पकड़कर जबरदस्ती गायत्री उपासक के पास ले आये । उन्होंने उनकी कल्याण भावना से चावल को गायत्री मन्त्र से अभिमन्त्रित करके उनके शरीर पर छींटे मारे, जिससे वह मूर्च्छित के समान गिर गये । कुछ देर बाद वे उठे और पीने को पानी माँगा । उन्हें गायत्री मन्त्र से अभिमन्त्रित जल पिलाया गया, जिससे कुछ समय में वे बिल्कुल ठीक हो गये ।

श्री नारायणप्रसाद क़श्यप राजनाँदगाँव वालों के बड़े भाई पर कुछ लोगों ने मिलकर एक फौजदारी का मुकदमा चलाया, वह मुकदमा चार वर्ष तक चला । इसी प्रकार उनके छोटे भाई पर कत्ल का अभियोग लगाया । इन लोगों ने गायत्री माता का आँचल पकड़ा और दोनों मुकदमों में से इन्हें छुटकारा मिला ।

स्वामी योगानन्दजी संन्यासी को कुछ म्लेच्छ अकारण बहुत सताते थे । उन्हें गायत्री का आग्नेयास्त्र सिद्ध था । उसका उन्होंने कुछ म्लेच्छों पर प्रयोग किया, तो उनके शरीर ऐसे जलने लगे मानो किसी ने अग्नि लगा दी हो । वे मरणतुल्य कष्ट से छटपटाने लगे । तब लोगों की प्रार्थना पर स्वामी जी ने उस अन्तर्दाह को शान्त किया, इसके बाद वे सदा के लिये सीधे हो गये ।

नन्दनपुरवा के सत्यनारायणजी एक अच्छे गायत्री उपासक हैं । इन्हें अकारण सताने वाले गुण्डों पर ऐसा वज्रपात हुआ कि एक भाई २४ घण्टे के अन्दर हैजे से मर गया और शेष भाइयों को पुलिस डकैती के अभियोग में पकड़कर ले गयी, उन्हें पाँच-पाँच वर्ष की जेल काटनी पड़ी ।

इस प्रकार के अनेकों प्रमाण मौजूद हैं, जिससे यह प्रकट होता है कि गायत्री माता का आँचल श्रद्धापूर्वक पकड़ने से मनुष्य अनेक प्रकार की आपत्तियों से सहज में छुटकारा पा सकता है ।अनिवार्य कर्म भोगों एवं कठोर प्रारब्ध में कई बार आश्चर्यजनक सुधार होते देखे गये हैं ।

गायत्री उपासना का मूल लाभ आत्म-शान्ति है । इस महामन्त्र के प्रभाव से आत्मा में सतोगुण बढ़ता है और अनेक प्रकार की आत्मिक समृद्धियाँ बढ़ती हैं, साथ ही अनेक प्रकार के सांसारिक लाभ भी मिल जाते हैं ।

देवियों की गायत्री साधना

प्राचीनकाल में गार्गी, मैत्रेयी, मदालसा, अनसूया, अरुन्धती, देवयानी, अहल्या, कुन्ती, सतरूपा, वृन्दा, मन्दोदरी, तारा, द्रोपदी, दमयन्ती, गौतमी, अपाला, सुलभा, शाश्वती, उशिजा, सावित्री, लोपामुद्रा, प्रतिशेयी, वैशालिनी, बैंदुला, सुनीति, शकुन्तला, पिंगला, जरुत्कार, रोहिणी, भद्रा, विदुला, गान्धारी, अञ्जनि, सीता, देवहूति, पार्वती, अदिति, शची, सत्यवती, सुकन्या, शैव्या आदि महासतियाँ वेदज्ञ और गायत्री उपासक रही हैं। उन्होंने गायत्री शक्ति की उपासना द्वारा अपनी आत्मा को समुन्नत बनाया था और यौगिक सिद्धियाँ प्राप्त की थीं। उन्होंने सधवा और गृहस्थ रहकर सावित्री की आराधना में सफलता प्राप्त की थी। इन देवियों का विस्तृत वृत्तांत, उनकी साधनाओं और सिद्धियों का वर्णन करना इस छोटी पुस्तक में सम्भव नहीं है। जिन्होंने भारतीय पुराण- इतिहासों को पढ़ा है, वे जानते हैं कि उपर्युक्त देवियाँ विद्वत्ता, साहस, शौर्य, दूरदर्शिता, नीति, धर्म, साधना, आत्मोन्नति आदि पराक्रमों में अपने ढंग की अनोखी जाज्वल्यमान तारिकायें थीं। उन्होंने समय-समय पर ऐसे चमत्कार उपस्थित किये हैं, जिन्हें देखकर आश्चर्य में रह जाना पड़ता है।

प्राचीनकाल में सावित्री ने एक वर्ष तक गायत्री जप करके वह शक्ति प्राप्त की थी, जिससे वह अपने मृत-पति सत्यवान् के प्राणों को यमराज से लौटा सकी। दमयन्ती का तप ही था जिसके प्रभाव ने कुचेष्टा करने का प्रयत्न करने वाले व्याध को भस्म कर दिया था। गान्धारी आँखों से पट्टी बाँधकर ऐसा तप करती थी, जिससे उसके नेत्रों में वह शक्ति उत्पन्न हो गयी थी कि उसके दृष्टिपात मात्र से दुर्योधन का शरीर अभेद्य हो गया था। जिस जंघा पर उसने लज्जावश कपड़ा डाल लिया, वही कच्ची रह गयी थी और उसी पर प्रहार करके भीम ने दुर्योधन को मारा था। अनसूया ने तप से ब्रह्मा, विष्णु, महेश को नन्हें बालक बना दिया था। सती शाण्डिली के तपोबल ने सूर्य का रथ रोक दिया था। सुकन्या की तपस्या से जीर्ण-शीर्ण च्यवन ऋषि तरुण हो गये थे। स्त्रियों की तपस्या का इतिहास पुरुषों से कम शानदार नहीं है। यह स्पष्ट है कि स्त्री और पुरुष सभी के लिये तप का प्रमुख मार्ग गायत्री ही है।

वर्तमान समय में भी अनेक नारियों की गायत्री साधना का हमें भलीभाँति परिचय है और यह भी पता है कि इसके द्वारा उन्होंने कितनी बड़ी मात्रा में आत्मिक और सांसारिक सुख-शान्ति की प्राप्ति की है।

एक सुप्रसिद्ध इन्जीनियर की धर्मपत्नी श्रीमती प्रेमप्यारी देवी को अनेक प्रकार की पारिवारिक कठिनाइयों से होकर गुजरना पड़ा है। उनने अनेक संकटों के समय गायत्री का आश्रय लिया और विषम परिस्थितियों से छुटकारा पाया है।

दिल्ली के एक अत्यन्त उच्च परिवार की सुशिक्षित देवी श्रीमती चन्द्रकान्ता जेरथ बी॰ए॰ गायत्री की अनन्य साधिका हैं। इन्होंने इस साधना द्वारा बीमारियों की पीड़ा दूर करने में विशेष सफलता प्राप्त की है। दर्द से बेचैन रोगी इनके अभिमन्त्रित हस्त स्पर्श से आरामं अनुभव करता है। इन्हें गायत्री में इतनी तन्मयता है कि सोते हुए भी जप अपने आप होता रहता है।

नगीना के एक प्रतिष्ठित शिक्षा शास्त्री की धर्मपत्नी श्रीमती मेधावती देवी को बचपन में गायत्री-साधना के लिये अपने पिताजी से प्रोत्साहन मिला था, तब से अब तक वे इस साधना को बड़े प्रेमपूर्वक चला रही हैं। कई चिन्ताजनक अवसरों पर गायत्री की कृपा से उनकी मनोकामना पूर्ण हुई है।

शिलोंग की एक सती-साध्वी महिला श्रीमती गुणवन्ती देवी के पतिदेव की मृत्यु २० वर्ष की आयु में हो गयी थी। गोदी में १ ॥ वर्ष का पुत्र था। उनको तथा उनके श्वसुर को इस मृत्यु का भारी आघात लगा और दोनों ही शोक से पीड़ित होकर अस्थि-पिंजर मात्र रह गये। एक दिन एक ज्ञानी ने उनके श्वसुर को गायत्री जप का उपदेश किया। शोक निवारणार्थ वे उस जप को करने लगे। कुछ दिन बाद गुणवन्ती देवी को स्वप्न में एक

तपस्विनी ने दर्शन दिये और कहा, किसी प्रकार की चिन्ता न करो, मैं तुम्हारी रक्षा करूँगी, मेरा नाम गायत्री है। कभी आवश्यकता हुआ करे, तो मेरा स्मरण किया करो। स्वप्न टूटने पर दूसरे ही दिन से उन्होंने गायत्री साधना आरम्भ कर दी। पिछले १३ वर्षों में अनेक आपत्तियाँ उन पर आयीं और वे सब टल गयीं। अब उनका बालक १९ साल का होकर बी०ए० में पढ़ रहा है। ४०) रुपये मासिक की सरकारी छात्रवृत्ति मिलती है और ७५) रुपये के ट्यूशन कर लेता है। परिवार का काम ठीक प्रकार चल रहा है। गायत्री पर उन्हें अनन्य श्रद्धा है।

हैदराबाद (सिंध) की श्रीमती विमलादेवी की सास बड़ी कर्कश स्वभाव की थी और पतिदेव शराब, वेश्यागमन आदि बुरी लतों में डूबे रहते थे। विमला देवी को आये दिन सास तथा पति की गाली-गलौज तथा मारपीट का सामना करना पड़ता था। इससे वे बड़ी दुःखी रहतीं और कभी-कभी आत्महत्या करने की सोचतीं। विमला की बुआ ने उसे विपत्ति निवारिणी गायत्री माता की उपासना करने की शिक्षा दी। वह गायत्री माता जी की उपासना करने लगी। फल आशातीत हुआ। थोड़े ही दिनों में सास और पति को बड़ा भयंकर स्वप्न हुआ कि उसके कुकर्मों के लिये कोई देवदूत उसे मृत्यु तुल्य कष्ट दे रहे हैं। जब स्वप्न टूटा तो उस भय का आतंक कई महीनों तक उन पर रहा और उसी दिन से स्वभाव सीधा हो गया। अब वह परिवार पूर्ण प्रसन्न और सन्तुष्ट है। विमला का दृढ़ विश्वास है कि उसके घर को आनन्दमय बनाने वाली माता गायत्री ही हैं। वर्षों से उनका नियम है कि जप किये बिना भोजन नहीं करतीं।

वारीसाल (बंगाल) के उच्च अफसर की धर्मपत्नी श्रीमती हेमलता चटर्जी को तैंतीस वर्ष की आयु तक कोई सन्तान न हुई, उसके पतिदेव तथा घर के अन्य व्यक्ति इससे बड़े दुःखी रहते थे और कभी-कभी उनके पति का दूसरा विवाह होने की चर्चा होती रहती थी। हेमलता को इससे अधिक मानसिक कष्ट रहता था और उन्हें मूर्छा का रोग हो गया था। किसी साधक ने उन्हें गायत्री साधना की विधि बताई, वे श्रद्धापूर्वक उपासना करने लगीं। ईश्वर की कृपा से एक वर्ष बाद उनके कन्या उत्पन्न हुई, जिसका नाम गायत्री रखा गया। इसके बाद दो-दो वर्ष के अन्तर से दो पुत्र और हुए। तीनों बालक स्वस्थ हैं। इस परिवार में गायत्री की बड़ी मान्यता है।

जैसलमेर की श्रीमती गोगन बाई को १६ वर्ष की आयु से हिस्टीरिया (मिर्गी) के दौरे आते थे। आठ वर्षों से वे इस रोग से बहुत दुःखी थीं। उन्हें उपवासपूर्वक गायत्री जप करने की विधि बताई गयी। अन्न त्याग कर वे फल और दूध पर निर्वाह करने लगीं और भक्तिपूर्वक गायत्री की आराधना करने लगीं। चार मास के भीतर उनका आठ वर्ष पुराना मिर्गी रोग दूर हो गया।

गुजरानवाला की सुन्दरी बाई को पहले कण्ठमाला रोग था, वह थोड़ा अच्छा हुआ, तो प्रदर रोग भयंकर रूप से हो गया। हर घड़ी लाल पानी बहता रहता। कई साल इस प्रकार बीमार पड़े रहने के कारण उनका शरीर अस्थि मात्र रह गया था। चमड़ा और हड्डियों के बीच मांस का नाम भी दिखाई न पड़ता था, आँखें गड्ढे में धँस गई थीं, घर के लोग उनकी मृत्यु की प्रतीक्षा करने लगे थे। ऐसी स्थिति में उन्हें, एक पड़ोसिन ब्राह्मणी ने बताया कि गायत्री माता तरण-तारिणी हैं, उनका ध्यान करो। सुन्दरी बाई के मन में बात जँच गयी। वे चारपाई पर पड़े-पड़े जप करने लगीं। ईश्वर की कृपा से वे धीरे-धीरे स्वस्थ होने लगीं और बिल्कुल नीरोग हो गयीं। दो वर्ष बाद उनके पुत्र उत्पन्न हुआ, जो भला चंगा और स्वस्थ है।

गोदावरी जिले की बसन्ती देवी को भूतोन्माद था। भूत-प्रेत उनके सिर पर चढ़े रहते थे। १२ वर्ष की आयु में वे बिल्कुल बुढ़िया हो गयी थीं। उनके पिता इस व्याधि से अपनी पुत्री को छुटकारा दिलाने के लिये काफी खर्च, परेशानी उठा चुके थे, पर कोई लाभ नहीं होता था। अन्त में उन्होंने गायत्री पुरश्चरण कराया और उससे लड़की की व्याधि दूर हो गयी।

भार्थू के डॉक्टर राजाराम शर्मा की पुत्री सावित्री देवी गायत्री की श्रद्धालु उपासिका हैं। उसने देहात में रहकर

आयुर्वेद का उच्च अध्ययन किया और परीक्षा के दिनों में बीमार पड़ जाने पर भी आयुर्वेदाचार्य की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुई ।

कानपुर के पं॰ अयोध्याप्रसाद दीक्षित की धर्मपत्नी शान्तिदेवी मिडिल पास थीं । ११ वर्ष तक पढ़ाई छोड़कर परिवार के झंझटों में लगी रहीं । एक वर्ष अचानक उनने मैट्रिक का फार्म भर दिया और गायत्री उपासना के बल से थोड़ी-सी तैयारी में उत्तीर्ण हो गयीं ।

बालापुर की सावित्री देवी दुबे नामक एक महिला के पति की मृत्यु अठारह वर्ष की आयु में ही हो गयी थी । वे अत्यधिक रोगग्रस्त रहती थीं । सूखकर काँटा हो गयी थीं । एक दिन उनके पति ने स्वप्न में उनसे कहा कि तुम गायत्री उपासना किया करो, जिससे मेरी आत्मा को सद्‌गति मिलेगी और तुम्हारा वैधव्य परम शान्तिपूर्वक व्यतीत हो जायेगा । उसने पति की आज्ञानुसार वैसा ही किया, अत: परिवार में रहते हुए भी उच्चकोटि के महात्मा की स्थिति प्राप्त हुई । वह जो बात जबान से कह देती थीं , वह सत्य होकर रहती थी ।

कटक जिले के रामपुर ग्राम में एक लुहार की कन्या सोनाबाई को स्वप्न में नित्य और जाग्रत् अवस्था में कभी-कभी गायत्री के दर्शन होते हैं । वह ऐसी भविष्यवाणियाँ करती हैं , जो प्राय: ठीक ही उतरती हैं ।

मुरीदपुर की सन्तोषकुमारी बचपन में बड़ी मन्दबुद्धि थी । उनके पिता ने उनको पढ़ाने के लिये बहुत प्रयत्न किये, पर सफलता न मिली । भाग्यदोष समझकर सब लोग चुप हो गये । विवाह हुआ, विवाह के चार वर्ष बाद ही वह विधवा हो गयी । वैधव्य को काटने के लिये उसने गायत्री की आराधना आरम्भ कर दी । एक रात को स्वप्न में गायत्री ने दर्शन दिये और कहा—"मैंने तेरी बुद्धि तीक्ष्ण कर दी है, विद्या पढ़, तेरा जीवन सफल होगा ।" दूसरे दिन उसे पढ़ने में उत्साह आया, बुद्धि बड़ी तीक्ष्ण हो गयी थी । कुछ ही वर्षों में मैट्रिक पास कर लिया और वे स्त्री शिक्षा के प्रचार में बड़ी तत्परता से लगी हुई हैं ।

रंगपुर बंगाल की श्रीमती सरला चौधरी के कई बच्चे मर चुके थे । एक भी बच्चा जीवित न रहने से वे बहुत दु:खी थीं । उन्हें गायत्री साधना बताई गयी, जिसको अपनाकर उन्होंने तीन पुत्रों की माता कहलाने का सुख पाया । टिहरी की एक अध्यापिका गुलाबदेवी को प्रसवकाल में मृत्यु तुल्य कष्ट होता था । एक बार उन्होंने गायत्री की प्रशंसा सुनी और उसे अपनाकर साधना करने लगीं, तब उन्हें चार प्रसव और हुए जो सभी सुखपूर्वक हो गये ।

मुलतान की सुन्दरीबाई स्वयं बहुत कमजोर थीं, उनके बच्चे भी कमजोर थे और उनमें से कोई न कोई बीमार पड़ा रहता था । अपनी दुर्बलता और बच्चों की बीमारी से रोना-खीझना उन्हें कष्टकर होता था । इस विपत्ति से उन्हें गायत्री ने छुड़ाया । पीछे वे सपरिवार स्वस्थ रहने लगीं ।

उदयपुर की मारवाड़ी महिला ज्ञानवती रूप- रंग की अधिक सुन्दर न होने के कारण पति को प्रिय न थीं । पति का व्यवहार उनसे सदा रूखा, कर्कश, उपेक्षापूर्ण रहता था और घर रहते हुए भी परदेश के समान दोनों में बिलगाव रहता था । ज्ञानवती की मौसी ने गायत्री का पूजन और रविवार का व्रत रखने का उपाय बताया । वह तपश्चर्या निरर्थक नहीं गयी । साधिका को आगे चलकर पति का प्रेम प्राप्त हुआ और उसका दाम्पत्य-जीवन सुखमय बीता ।

भीलवाड़ा प्रान्त में एक सरमणी नामक स्त्री बड़ी क्रूर तांत्रिक थी । उसे वहाँ के लोग डायन समझते थे । एक वयोवृद्ध संन्यासी ने उसे गायत्री की दीक्षा दी । तब से उसने सब छोड़कर भगवान् की भक्ति में चित्त लगाया और साधु जीवन व्यतीत करने लगी ।

बहरामपुर के पास एक कुँआरी कन्या गुफा बनाकर दस वर्ष की आयु से तपस्या कर रही थी । चालीस वर्ष की आयु में भी उसके चेहरे का तेज ऐसा था कि आँखें झपक जाती थीं । उसके दर्शनों के लिये दूर-दूर से लोग आते थे । इस देवी का इष्ट गायत्री था । वह सदा गायत्री का जप करती रहती थी ।

मीराबाई, सहजोबाई, रन्तिवती, लीलावती, दयाबाई, अहिल्याबाई, सखूबाई, मुक्ताबाई प्रभृति अनेकों ईश्वर भक्त, वैरागिनी हुई हैं, जिनका जीवन विरक्त और परमार्थ पूर्ण रहा। इनमें से कइयों ने गायत्री की उपासना करके अपने भक्ति - भाव और वैराग्य को बढ़ाया था।

इस प्रकार अनेक देवियाँ इस श्रेष्ठ साधना से अपनी आध्यात्मिक उन्नति करती आई हैं और सांसारिक सुख समृद्धि की प्राप्ति एवं आपत्तियों से छुटकारा पाने की प्रसन्नता का अनुभव करती रही हैं। विधवा बहिनों के लिये तो गायत्री-साधना एक सर्वोपरि तपश्चर्या है। शोक-वियोग की जलन बुझती है, बुद्धि में सात्त्विकता आती है, चित्त ईश्वर की ओर लगता है। नम्रता, सेवा, शील, सदाचार, निरालस्यता, सादगी, धर्म रुचि, स्वाध्याय-प्रियता, आस्तिकता एवं परमार्थ परायणता के तत्त्व बढ़ते हैं। गायत्री-साधना की तपश्चर्या का आश्रय लेकर अनेक ऐसी बाल-विधवाओं ने अपना जीवन सती-साध्वी जैसा बिताया है, जिनकी कम आयु देखकर अनेक आशंकायें की जाती थीं। जब ऐसी बहिनों को गायत्री में तन्मयता होने लगती है, तो वे वैधव्य-दु:ख को भूल जाती हैं और अपने को तपस्विनी, साध्वी, ब्रह्मवादिनी, उज्ज्वल चरित्र, पवित्र आत्मा अनुभव करती हैं। ब्रह्मचर्य तो उनका जीवन सहचर बनकर रहता है।

स्त्री और पुरुष, नर और नारी दोनों ही वर्ग वेदमाता गायत्री के कन्या-पुत्र हैं। दोनों ही आँखों के तारे हैं। वे किसी से भेद-भाव नहीं करतीं। माता को पुत्र से कन्या अधिक प्यारी होती है। वेदमाता गायत्री की साधना पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों के लिये अधिक सरल और अधिक शीघ्र फलदायिनी है।

जीवन का कायाकल्प

गायत्री मन्त्र से आत्मिक कायाकल्प हो जाता है। इस महामन्त्र की उपासना आरम्भ करते ही साधक को ऐसा प्रतीत होता है कि मेरे आन्तरिक क्षेत्र में एक नयी हलचल एवं रद्दोबदल आरम्भ हो गयी है। सतोगुणी तत्त्वों की अभिवृद्धि होने तथा दुर्गुण, कुविचार, दु:स्वभाव एवं दुर्भाव घटने आरम्भ हो जाते हैं और संयम, नम्रता, पवित्रता, उत्साह, श्रमशीलता, मधुरता, ईमानदारी, सत्यनिष्ठा, उदारता, प्रेम, सन्तोष, शान्ति, सेवा-भाव, आत्मीयता आदि सद्गुणों की मात्रा दिन-दिन बड़ी तेजी से बढ़ती जाती है। फलस्वरूप लोग उसके स्वभाव एवं आचरण से सन्तुष्ट होकर बदले में प्रशंसा, कृतज्ञता, श्रद्धा एवं सम्मान के भाव रखते हैं। इसके अतिरिक्त ये सद्गुण स्वयं इतने मधुर होते हैं कि जिस हृदय में इनका निवास होगा, वहाँ आत्म-सन्तोष की परम शान्तिदायक निर्झरिणी सदा बहती रहेगी।

गायत्री साधना से साधक के मन:क्षेत्र में असाधारण परिवर्तन हो जाता है। विवेक, तत्त्व-ज्ञान और ऋतम्भरा बुद्धि की अभिवृद्धि हो जाने के कारण अनेक अज्ञानजन्य दु:खों का निवारण हो जाता है। प्रारब्धवश अनिवार्य कर्मफल के कारण कष्टसाध्य परिस्थितियाँ हर एक के जीवन में आती रहती हैं। हानि, शोक, वियोग, आपत्ति, रोग, आक्रमण, विरोध, आघात आदि की विभिन्न परिस्थितियों में जहाँ साधारण मनोभूमि के लोग मृत्युतुल्य कष्ट पाते हैं, वहाँ आत्मबल-सम्पन्न गायत्री साधक अपने विवेक, ज्ञान, वैराग्य, साहस, आशा, धैर्य, संतोष, संयम, ईश्वर-विश्वास के आधार पर इन कठिनाइयों को हँसते-हँसते आसानी से काट लेता है। बुरी अथवा साधारण परिस्थितियों में भी अपने आनन्द का मार्ग ढूँढ़ निकालता है और मस्ती एवं प्रसन्नता का जीवन बिताता है।

संसार का सबसे बड़ा लाभ "आत्म-बल" गायत्री साधक को प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त अनेक प्रकार के सांसारिक लाभ भी होते देखे गये हैं। बीमारी, कमजोरी, बेकारी, घाटा, गृह-कलह, मनोमालिन्य, मुकदमा, शत्रुओं का आक्रमण, दाम्पत्य सुख का अभाव, मस्तिष्क की निर्बलता, चित्त की अस्थिरता, सन्तान-सुख, कन्या के विवाह की कठिनाई, बुरे भविष्य की आशंका, परीक्षा में उत्तीर्ण न होने का भय, बुरी आदतों के बन्धन जैसी कठिनाइयों से ग्रसित अगणित व्यक्तियों ने आराधना करके अपने दु:खों से छुटकारा पाया है।

कारण यह है कि हर एक कठिनाई के पीछे, जड़ में निश्चय ही कुछ न कुछ अपनी त्रुटियाँ, अयोग्यतायें एवं खराबियाँ रहती हैं । सद्‌गुणों की वृद्धि के साथ अपने आहार-विहार, दिनचर्या, दृष्टिकोण, स्वभाव एवं कार्यक्रम में परिवर्तन होता है । यह परिवर्तन ही आपत्तियों के निवारण का, सुख-शान्ति की स्थापना का राजमार्ग बन जाता है । कई बार हमारी इच्छायें, तृष्णायें, लालसायें, कामनायें ऐसी होती हैं, जो अपनी योग्यता एवं परिस्थितियों से मेल नहीं खातीं । मस्तिष्क शुद्ध होने पर बुद्धिमान् व्यक्ति उन मृगतृष्णाओं को त्यागकर अकारण दु:खी रहने से, भ्रम-जंजाल से छूट जाता है । अवश्यम्भावी, न टलने वाले प्रारब्ध का भोग जब सामने आता है, तो साधारण व्यक्ति बुरी तरह रोते-चिल्लाते हैं, किन्तु गायत्री-साधक में इतना आत्म-बल एवं साहस बढ़ जाता है कि वह उन्हें हँसते-हँसते झेल लेता है ।

किसी विशेष आपत्ति का निवारण करने एवं किसी आवश्यकता की पूर्ति के लिये भी गायत्री साधना की जाती है । बहुधा इसका परिणाम बड़ा ही आश्चर्यजनक होता है । देखा गया है कि जहाँ चारों ओर निराशा, असफलता, आशंका और भय का अन्धकार ही छाया हुआ था, वहाँ वेदमाता की कृपा से एक दैवी प्रकाश उत्पन्न हुआ और निराशा आशा में परिणत हो गयी, बड़े कष्टसाध्य कार्य तिनके की तरह सुगम हो गये । ऐसे अनेकों अवसर अपनी आँखों के सामने देखने के कारण हमारा यह अटूट विश्वास हो गया कि कभी किसी की गायत्री साधना निष्फल नहीं जाती ।

गायत्री-साधना आत्मबल बढ़ाने का अचूक आध्यात्मिक व्यायाम है । किसी को कुश्ती में पछाड़ने एवं दंगल में जीतकर इनाम पाने के लिये कितने ही लोग पहलवानी और व्यायाम का अभ्यास करते हैं । यदि कदाचित् कोई अभ्यासी किसी कुश्ती को हार जाय, तो भी ऐसा नहीं समझना चाहिये कि उसका प्रयत्न निष्फल गया । इसी बहाने उसका शरीर तो मजबूत हो गया, वह जीवन भर अनेक प्रकार से अनेक अवसरों पर बड़े-बड़े लाभ उपस्थित करता रहेगा । निरोगिता, सौन्दर्य, दीर्घजीवन, कठोर परिश्रम करने की क्षमता, दाम्पत्य-सुख, सुसन्तति, अधिक कमाना, शत्रुओं से निर्भयता आदि कितने ही लाभ ऐसे हैं, जो कुश्ती पछाड़ने से कम महत्त्वपूर्ण नहीं । साधना से यदि कोई विशेष प्रयोजन प्रारब्धवश पूरा भी न हो, तो भी इतना तो निश्चित है कि किसी न किसी प्रकार साधना की अपेक्षा कई गुना लाभ अवश्य मिलकर रहेगा ।

आत्मा स्वयं अनेक ऋद्धि-सिद्धियों का केन्द्र है । जो शक्तियाँ परमात्मा में हैं, वे ही उसके अमर युवराज आत्मा में हैं ।समस्त ऋद्धि-सिद्धियों का केन्द्र आत्मा में है, किन्तु जिस प्रकार राख से ढका हुआ अंगार मन्द हो जाता है, वैसे ही आन्तरिक मलिनताओं के कारण आत्म-तेज कुण्ठित हो जाता है । गायत्री-साधना से मलिनता का पर्दा हटता है और राख हटा देने से जैसे अंगार अपने प्रज्वलित स्वरूप में दिखाई पड़ने लगता है, वैसे ही साधक की आत्मा भी अपने ऋद्धि-सिद्धि समन्वित ब्रह्मतेज के साथ प्रकट होती है । योगियों को जो लाभ दीर्घकाल तक कष्टसाध्य तपस्यायें करने से प्राप्त होता है, वही लाभ गायत्री साधकों को स्वल्प प्रयास में प्राप्त हो जाता है ।

गायत्री-उपासना का यह प्रभाव इस समय भी समय-समय पर दिखाई पड़ता है । इन सौ-पचास वर्षों में ही सैकड़ों व्यक्ति इसके फलस्वरूप आश्चर्यजनक सफलतायें पा चुके हैं और अपने जीवन को इतना उच्च और सार्वजनिक दृष्टि से कल्याणकारी तथा परोपकारी बना चुके हैं कि उनसे अन्य सहस्रों लोगों को प्रेरणा प्राप्त हुई है । गायत्री साधना में आत्मोत्कर्ष का गुण इतना अधिक पाया जाता है कि उससे सिवाय कल्याण और जीवन सुधार के और कोई अनिष्ट हो ही नहीं सकता ।

प्राचीनकाल में महर्षियों ने बड़ी-बड़ी तपस्यायें और योग-साधनायें करके अणिमा, महिमा आदि ऋद्धि-सिद्धियाँ प्राप्त की थीं । उनकी चमत्कारी शक्तियों के वर्णन से इतिहास-पुराण भरे पड़े हैं । वह तपस्या और योग-साधना गायत्री के आधार पर ही की थी । अब भी अनेकों महात्मा मौजूद हैं, जिनके पास दैवी-शक्तियों और

सिद्धियों का भण्डार है । उनका कथन है कि गायत्री से बढ़कर योगमार्ग में सुगमतापूर्वक सफलता प्राप्त करने का दूसरा मार्ग नहीं है । सिद्ध पुरुषों के अतिरिक्त सूर्यवंशी और चंद्रवंशी सभी चक्रवर्ती राजा गायत्री उपासक रहे हैं । ब्राह्मण लोग गायत्री की ब्रह्म-शक्ति के बल पर जगद्‌गुरु थे, क्षत्रिय गायत्री के भर्ग रूपी तेज को धारण करके चक्रवर्ती शासक बने थे ।

यह सनातन सत्य आज भी वैसा ही है । गायत्री माता का आँचल श्रद्धापूर्वक पकड़ने वाला मनुष्य कभी भी निराश नहीं रहता ।

स्त्रियों को गायत्री का अधिकार

भारतवर्ष में सदा से स्त्रियों का समुचित सम्मान रहा है । उन्हें पुरुषों की अपेक्षा अधिक पवित्र माना जाता रहा है । स्त्रियों को बहुधा 'देवी' सम्बोधन से सम्बोधित किया जाता है । नाम के पीछे उनकी जन्मजात उपाधि 'देवी' प्रायः जुड़ी रहती है । शान्ति देवी, गंगा देवी, दया देवी आदि 'देवी' शब्द पर कन्याओं के नाम रखे जाते हैं । जैसे पुरुष बी॰ए॰, शास्त्री, साहित्यरत्न आदि उपाधियाँ उत्तीर्ण करने पर अपने नाम के पीछे उस पदवी को लिखते हैं, वैसे ही कन्यायें अपने जन्म-जात ईश्वर प्रदत्त दैवी गुणों, दैवी विचारों, दिव्य विशेषताओं के कारण अलंकृत होती हैं ।

देवताओं और महापुरुषों के साथ उनकी अर्धांगिनियों के नाम भी जुड़े हुए हैं—सीताराम, राधेश्याम, गौरीशंकर, लक्ष्मीनारायण, उमामहेश, माया-ब्रह्म, सावित्री-सत्यवान् आदि नामों से नारी को पहला और नर को दूसरा स्थान प्राप्त है । पतिव्रत, दया, करुणा, सेवा, सहानुभूति, स्नेह, वात्सल्य, उदारता, भक्ति-भावना आदि गुणों में नर की अपेक्षा नारी को सभी विचारवानों ने बढ़ा-चढ़ा माना है ।

इसलिये धार्मिक, आध्यात्मिक और ईश्वर प्राप्ति सम्बन्धी कार्यों में नारी का सर्वत्र स्वागत किया गया है और उसे उसकी महानता के अनुकूल प्रतिष्ठा दी गयी है । वेदों पर दृष्टिपात करने से स्पष्ट हो जाता है कि वेदों के मन्त्रद्रष्टा जिस प्रकार अनेक ऋषि हैं, वैसे ही अनेक ऋषिकायें भी हैं । ईश्वरीय ज्ञान वेद महान् आत्मा वाले व्यक्तियों पर प्रकट हुआ है और उनने उन मन्त्रों को प्रकट किया । इस प्रकार जिन पर वेद प्रकट हुए उन मन्त्र द्रष्टाओं को ऋषि कहते हैं ।ऋषि केवल पुरुष ही नहीं हुए हैं, वरन् अनेक नारियाँ भी हुई हैं । ईश्वर ने नारियों के अन्तःकरण में भी उसी प्रकार वेद-ज्ञान प्रकाशित किया जैसे कि पुरुषों के अन्तःकरण में, क्योंकि प्रभु के लिये दोनों ही सन्तान समान हैं ।महान् दयालु, न्यायकारी और निष्पक्ष प्रभु अपनी ही सन्तान में नर-नारी का भेद-भाव कैसे कर सकते हैं ?

ऋग्वेद १० ।८५ में सम्पूर्ण मन्त्रों की ऋषिका 'सूर्या- सावित्री' है । ऋषि का अर्थ निरुक्त में इस प्रकार किया है—"**ऋषिर्दर्शनात् । स्तोमान् ददर्शेति (२.११) । ऋषयो मन्त्र द्रष्टारः(२.११ दु०वृ०) ।**" अर्थात मन्त्रों का द्रष्टा उनके रहस्यों को समझकर प्रचार करने वाला ऋषि होता है ।

ऋग्वेद की ऋषिकाओं की सूची बृहद् देवता के दूसरे अध्याय में इस प्रकार है—

घोषा गोधा विश्ववारा, अपालोपनिषन्निषत् ।
ब्रह्मजाया जुहूर्नाम अगस्त्यस्य स्वसादितिः ।।८४
इन्द्राणी चेन्द्रमाता च सरमा रोमशोर्वशी ।
लोपामुद्रा च नद्यश्च यमी नारी च शश्वती ।।८५
श्रीर्लाक्षा सार्पराज्ञी वाक्श्रद्धा मेधा च दक्षिणा ।
रात्री सूर्या च सावित्री ब्रह्मवादिन्य ईरिताः ।।८६ ।।

अर्थात्—घोषा, गोधा, विश्ववारा, अपाला, उपनिषद्, निषद्, ब्रह्मजाया (जुहू) , अगस्त्य की भगिनी, अदिति,

इन्द्राणी और इन्द्र की माता, सरमा, रोमशा, उर्वशी, लोपामुद्रा और नदियाँ, यमी, शश्वती, श्री, लाक्षा, सार्पराज्ञी, वाक्, श्रद्धा, मेधा, दक्षिणा, रात्री और सूर्या- सावित्री आदि सभी ब्रह्मवादिनी हैं ।

ऋग्वेद के १०-१३४, १०-३९, ४०, १०-९१, १०-९५, १०-१०७, १०-१०९, १०-१५४, १०-१५९, १०-१८९, ५-२८, ८-९१ आदि सूक्तों की मन्त्रद्रष्टा ये ऋषिकायें हैं ।

ऐसे अनेक प्रमाण मिलते हैं, जिनसे स्पष्ट होता है कि स्त्रियाँ भी पुरुषों की तरह यज्ञ करती और कराती थीं । वे यज्ञ-विद्या और ब्रह्म-विद्या में पारंगत थीं । कई नारियाँ तो इस सम्बन्ध में अपने पिता तथा पति का मार्ग दर्शन करती थीं ।

"तैत्तिरीय ब्राह्मण" में सोम द्वारा 'सीता - सावित्री' ऋषिका को तीन वेद देने का वर्णन विस्तारपूर्वक आता है-

तं त्रयो वेदा अन्वसृज्यन्त । अथ ह सीता सावित्री ।
सोमँ् राजानं चकमे । तस्या उ ह त्रीन् वेदान् प्रददौ । —तैत्तिरीय ब्रा० २/३/१०/१,३

इस मन्त्र में बताया गया है कि किस प्रकार सोम ने सीता-सावित्री को तीन वेद दिये ।

मनु की पुत्री 'इड़ा' का वर्णन करते हुए तैत्तिरीय ब्रा० १ ।१ ।४ ।४ में उसे 'यज्ञानूकाशिनी' बताया है । यज्ञानूकाशिनी का अर्थ सायणाचार्य ने 'यज्ञ तत्त्व प्रकाशन समर्था' किया है । इड़ा ने अपने पिता को यज्ञ सम्बन्धी सलाह देते हुए कहा—

साऽब्रवीदिडा मनुम्। तथा वा अहं तवाग्निमाधास्यामि। यथा प्र प्रजया पशुभिर्मिथुनैर्जनिष्यसे। प्रत्यस्मिँल्लोके स्थास्यसि। अभि सुवर्गं लोकं जेष्यसीति।

—तैत्तिरीय ब्रा०१/१/४/६

इड़ा ने मनु से कहा-तुम्हारी अग्नि का ऐसा आधान करूँगी, जिससे तुम्हें पशु, भोग, प्रतिष्ठा और स्वर्ग प्राप्त हो ।

प्राचीन समय में स्त्रियाँ गृहस्थाश्रम चलाने वाली थीं और ब्रह्म-परायण भी । वे दोनों ही अपने-अपने कार्यक्षेत्रों में कार्य करती थीं । जो गृहस्थ का संचालन करती थीं, उन्हें 'सद्योवधू' कहते थे और जो वेदाध्ययन, ब्रह्म उपासना आदि के पारमार्थिक कार्यों में प्रवृत्त रहती थीं, उन्हें 'ब्रह्मवादिनी' कहते थे । ब्रह्मवादिनी और सद्योवधू के कार्यक्रम तो अलग-अलग थे, पर उनके मौलिक धर्माधिकारों में कोई अन्तर न था । देखिये—

द्विविधाः स्त्रियः। ब्रह्मवादिन्यः सद्योवध्वश्च। तत्र ब्रह्मवादिनीनामुपनयनम्, अग्नीन्धनं वेदाध्ययनं स्वगृहे च भिक्षाचर्येति। सद्योवधूनां तूपस्थिते विवाहे कथञ्चिदुपनयनमात्रं कृत्वा विवाहः कार्यः।

-हारीत धर्म सूत्र

ब्रह्मवादिनी और सद्योवधू ये दो स्त्रियाँ होती हैं । इनमें से ब्रह्मवादिनी-यज्ञोपवीत, अग्निहोत्र, वेदाध्ययन तथा स्वगृह में भिक्षा करती हैं । सद्योवधुओं का भी यज्ञोपवीत आवश्यक है । वह विवाहकाल उपस्थित होने पर करा देते हैं ।

शतपथ ब्राह्मण में याज्ञवल्क्य ऋषि की धर्मपत्नी मैत्रेयी को ब्रह्मवादिनी कहा है—

तयोर्ह मैत्रेयी ब्रह्मवादिनी बभूव । —शत० ब्रा० १४ ।७ ।३ ।१

अर्थात्-मैत्रेयी ब्रह्मवादिनी थी । ब्रह्मवादिनी का अर्थ बृहदारण्यक उपनिषद् का भाष्य करते हुए श्रीशंकराचार्य ने 'ब्रह्मवादनशील' किया है । ब्रह्म का अर्थ है-वेद । ब्रह्मवादनशील अर्थात् वेद का प्रवचन करने वाली ।

यदि ब्रह्म का अर्थ ईश्वर लिया जाए, तो भी ब्रह्म प्राप्ति बिना वेद-ज्ञान के नहीं हो सकती । इसलिये ब्रह्म को वही जान सकता है, जो वेद पढ़ता है । देखिये—

ना वेदविन्मनुते तं बृहन्तम्। एतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति यज्ञेन दानेन तपसानाशकेन। —तैत्तिरीयोप०

जिस प्रकार पुरुष ब्रह्मचारी रहकर तप और योग द्वारा ब्रह्म को प्राप्त करते थे, वैसे ही कितनी ही स्त्रियाँ ब्रह्मचारिणी रहकर आत्म-निर्माण एवं परमार्थ का सम्पादन करती थीं।

पूर्वकाल में अनेक सुप्रसिद्ध ब्रह्मचारिणी हुई हैं, जिनकी प्रतिभा और विद्वत्ता की चारों ओर कीर्ति फैली हुई थी। महाभारत में ऐसी अनेक ब्रह्मचारिणियों का वर्णन आता है।

भारद्वाजस्य दुहिता रूपेणाप्रतिमा भुवि।
श्रुतावती नाम विभो कुमारी ब्रह्मचारिणी॥ —महाभारत शल्य पर्व ४८।२

भारद्वाज की श्रुतावती नामक कन्या थी, जो ब्रह्मचारिणी थी। कुमारी के साथ-साथ ब्रह्मचारिणी शब्द लगाने का तात्पर्य यह है कि वह अविवाहित और वेदाध्ययन करने वाली थी।

अत्रैव ब्राह्मणी सिद्धा कौमार-ब्रह्मचारिणी।
योगयुक्ता दिवं याता, तपः सिद्धा तपस्विनी॥ —महाभारत शल्य पर्व ५४।६

योग सिद्धि को प्राप्त कुमार अवस्था से ही वेदाध्ययन करने वाली तपस्विनी, सिद्धा नाम की ब्राह्मणी मुक्ति को प्राप्त हुई।

बभूव श्रीमती राजन् शांडिल्यस्य महात्मनः।
सुता धृतव्रता साध्वी नियता ब्रह्मचारिणी॥
सा तु तप्त्वा तपो घोरं दुश्चरं स्त्रीजनेन ह।
गता स्वर्गं महाभागा देवब्राह्मणपूजिता॥ —महाभारत शल्य पर्व ५४।७।८

महात्मा शांडिल्य की पुत्री 'श्रीमती' थी, जिसने व्रतों को धारण किया। वेदाध्ययन में निरन्तर प्रवृत्त थी। अत्यन्त कठिन तप करके वह देव ब्राह्मणों से पूजित हुई और स्वर्ग सिधारी।

तेभ्योऽधिगन्तुं निगमान्त विद्यां वाल्मीकि पार्श्वादिह संचरामि। —उत्तररामचरित अंक २

(आत्रेयी का कथन) उन (अगस्त्यादि ब्रह्मवेत्ताओं) से ब्रह्म विद्या सीखने के लिए वाल्मीकि के पास से आ रही हूँ।

महाभारत शान्ति पर्व अध्याय ३२० में 'सुलभा' नामक ब्रह्मवादिनी संन्यासिनी का वर्णन है, जिसने राजा जनक के साथ शास्त्रार्थ किया था। इसी अध्याय के श्लोकों में सुलभा ने अपना परिचय देते हुए कहा—

प्रधानो नाम राजर्षिर्व्यक्तं ते श्रोत्रमागतः।
कुले तस्य समुत्पन्नां सुलभां नाम विद्धि माम्॥
साऽहं तस्मिन् कुले जाता भर्तर्यसति मद्विधे।
विनीता मोक्षधर्मेषु चराम्येकामुनिव्रतम्॥ —महा० शान्ति पर्व ३२०।१८१।१८३

मैं सुप्रसिद्ध क्षत्रिय कुल में उत्पन्न सुलभा हूँ। अपने अनुरूप पति न मिलने से मैंने गुरुओं से शास्त्रों की शिक्षा प्राप्त करके संन्यास ग्रहण किया है।

पाण्डव-पत्नी द्रौपदी की विद्वत्ता का वर्णन करते हुए श्री आचार्य आनन्दतीर्थ (माधवाचार्य) जी ने 'महाभारत निर्णय' में लिखा है—

वेदाश्चाप्युत्तमस्त्रीभिः कृष्णाद्याभिरिवाखिलाः ।

अर्थात् उत्तम स्त्रियों को कृष्णा (द्रोपदी) की तरह वेद पढ़ने चाहिये ।

तेभ्यो दधार कन्ये द्वे वयुनां धारिणीं स्वधा ।
उभे ते ब्रह्मवादिन्यौ, ज्ञान—विज्ञान—पारगे ॥—भागवत ४ ।१ ।६४

स्वधा की दो पुत्रियाँ हुईं, जिनके नाम वयुना और धारिणी थे । ये दोनों ही ज्ञान और विज्ञान में पूर्ण पारंगत तथा ब्रह्मवादिनी थीं ।

विष्णु पुराण १ ।१० और १८ ।१९ तथा मार्कण्डेय पुराण अ०५२ में इसी प्रकार (ब्रह्मवादिनी- वेद और ब्रह्म का उपदेश करने वाली) महिलाओं का वर्णन है ।

सततं मूर्तिमन्तश्च वेदाश्चत्वार एव च ।
सन्ति यस्याश्च जिह्वाग्रे सा च वेदवती स्मृता ॥—ब्रह्म वै० प्रकृति खण्ड २/१४/६४

उसे चारों वेद कण्ठाग्र थे, इसलिये उसे वेदवती कहा जाता था । इस प्रकार की नैष्ठिक ब्रह्मचारिणी, ब्रह्मवादिनी नारियाँ अगणित थीं । इनके अतिरिक्त गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने वाली कन्यायें दीर्घकाल तक ब्रह्मचारिणी रहकर वेद-शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त करने के उपरान्त विवाह करती थीं, तभी उनकी संतान संसार में उज्ज्वल नक्षत्रों की तरह यशस्वी, पुरुषार्थी और कीर्तिमान् होती थी । धर्म ग्रन्थ का स्पष्ट आदेश है कि कन्या ब्रह्मचारिणी रहने के उपरान्त विवाह करे ।

ब्रह्मचर्येण कन्या ३ युवानं विन्दते पतिम् । —अथर्व० ११ ।७ ।१८

अर्थात् कन्या ब्रह्मचर्य का अनुष्ठान करती हुई, उसके द्वारा उपयुक्त पति को प्राप्त करती हैं ।

ब्रह्मचर्य केवल अविवाहित रहने को ही नहीं कहते हैं । ब्रह्मचारी वह है, जो संयमपूर्वक वेद की प्राप्ति में निरत रहता है । देखिये—

स्वीकरोति यदा वेद, चरेद् वेदव्रतानि च ।
ब्रह्मचारी भवेत्तावद् ऊर्ध्वं स्नातो भवेत् गृही ॥ —दक्षस्मृति १ ।७

अर्थात् जब वेद को अर्थ सहित पढ़ता है और उसके लिये व्रतों को ग्रहण करता है, तब ब्रह्मचारी कहलाता है, उसके पश्चात् विद्वान् बनकर गृहस्थ में प्रवेश करता है ।

अथर्ववेद में ११ ।७ ।१७ की व्याख्या करते हुए सायणाचार्य ने लिखा है—

'ब्रह्मचर्येण- ब्रह्म वेदः तदध्ययनार्थमाचर्यम् ।'

अर्थात् "ब्रह्म" का अर्थ है वेद । उस वेद के अध्ययन के लिये जो प्रयत्न किये जाते हैं, वह ब्रह्मचर्य है ।

इसी सूक्त के प्रथम मन्त्र की व्याख्या में सायणाचार्य ने लिखा है—

'ब्रह्मणि वेदात्मके अध्येतव्ये वा चरितुं शीलमस्य स तथोक्तः ।'

अर्थात् ब्रह्मचारी वह है, जो वेद के अध्ययन में विशेष रूप से संलग्न है ।

महर्षि गार्ग्यायणाचार्य ने प्रणववाद में कहा—

'ब्रह्मचारिणां च ब्रह्मचारिणीभिः सह विवाहः प्रशस्यो भवति ।'

अर्थात् ब्रह्मचारियों का विवाह ब्रह्मचारिणियों से ही होना उचित है, क्योंकि ज्ञान और विद्या आदि की दृष्टि से दोनों के समान रहने पर ही सुखी और सन्तुष्ट रह सकते हैं । महाभारत में भी इस बात की पुष्टि की गयी है ।

ययोरेव समं वित्तं ययोरेव समं श्रुतम् ।
तयोर्मैत्री विवाहश्च न तु पुष्ट-विपुष्टयोः ॥ —महाभारत आदिपर्व १ ।१३१ ।१०

"जिनका वित्त एवं ज्ञान समान है, उनसे मित्रता और विवाह उचित है, न्यूनाधिक में नहीं ।"

ऋग्वेद १ ।१ ।५ का भाष्य करते हुए महर्षि दयानन्द ने लिखा है—

याः कन्या यावच्चतुर्विंशतिवर्षमायुस्तावद् ब्रह्मचर्येण जितेन्द्रियाः तथा सांगोपांगवेदविद्या अधीयते ताः मनुष्य-जाति-भूषिका भवन्ति ।

अर्थात् जो कन्याएँ २४ वर्ष तक ब्रह्मचर्यपूर्वक सांगोपांग वेद विद्याओं को पढ़ती हैं, वे मनुष्य जाति को शोभित करती हैं ।

ऋग्वेद ५ ।६२ ।११ के भाष्य में महर्षि ने लिखा है—

ब्रह्मचारिणी प्रसिद्ध-कीर्तिं सत्पुरुषं सुशीलं शुभ-गुण-रूप-समन्वितं प्रीतिमन्तं पतिं ग्रहीतुमिच्छेत् तथैव ब्रह्मचार्यपि स्वसदृशीमेव ब्रह्मचारिणीं स्त्रियं गृह्णीयात् ।

अर्थात् - ब्रह्मचारिणी स्त्री कीर्तिवान्, सुशील, सत्पुरुष, गुणवान्, रूपवान्, प्रेमी स्वभाव के पति की इच्छा करे, वैसे ही ब्रह्मचारी भी अपनें समान ब्रह्मचारिणी (वेद और ईश्वर की ज्ञाता) स्त्री को ग्रहण करे ।

जब विद्याध्ययन करने के लिये कन्याओं को पुरुषों की भाँति सुविधा थी, तभी इस देश की नारियाँ गार्गी और मैत्रेयी की तरह विदुषी होती थीं । याज्ञवल्क्य जैसे ऋषि को एक नारी ने शास्त्रार्थ में विचलित कर दिया था और उन्होंने हैरान होकर उसे धमकी देते हुए कहा था—'अधिक प्रश्न मत करो, अन्यथा तुम्हारा अकल्याण होगा ।'

इसी प्रकार शंकराचार्यजी को भारतीदेवी के साथ शास्त्रार्थ करना पड़ा था । उस भारती देवी नामक महिला ने शंकराचार्यजी से ऐसा अद्‌भुत शास्त्रार्थ किया था कि बड़े-बड़े विद्वान् भी अचम्भित रह गये थे । उनके प्रश्नों का उत्तर देने के लिये शंकराचार्य को निरुत्तर होकर एक मास की मोहलत माँगनी पड़ी थी । शंकरदिग्विजय में भारती देवी के सम्बन्ध में लिखा है—

सर्वाणि शास्त्राणि षडंग वेदान्,
काव्यादिकान् वेत्ति, परञ्च सर्वम् ।
तन्नास्ति नोवेत्ति यदत्र बाला,
तस्मादभूच्चित्र पदं जनानाम् ॥ —शंकर-दिग्विजय ३ ।१६

"भारती देवी सर्वशास्त्र तथा अंगों सहित सब वेदों और काव्यों को जानती थी । उससे बढ़कर श्रेष्ठ और कोई विदुषी स्त्री न थी ।"

आज जिस प्रकार स्त्रियों के शास्त्राध्ययन पर रोक लगाई जाती है । यदि उस समय ऐसे ही प्रतिबन्ध रहे होते, तो याज्ञवल्क्य और शंकराचार्य से टक्कर लेने वाली स्त्रियाँ किस प्रकार हो सकती थीं ? प्राचीनकाल में अध्ययन की सभी नर-नारियों को समान सुविधा थी ।

स्त्रियों के द्वारा यज्ञ का ब्रह्मा बनने तथा उपाध्याय एवं आचार्य होने के प्रमाण मौजूद हैं ।ऋग्वेद में नारी सम्बोधन करके कहा गया है कि तू उत्तम आचरण द्वारा ब्रह्मा का पद प्राप्त कर सकती है ।

अधः पश्यस्व मोपरि सन्तरां पादकौ हर ।
मा ते कशप्लकौ दृशन् स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ ॥ —ऋग्वेद ८ ।३३ ।१९

अर्थात् हे नारी ! तुम नीचे देखकर चलो । व्यर्थ में इधर-उधर की वस्तुओं को मत देखती रहो । अपने पैरों को सावधानी तथा सभ्यता से रक्खो । वस्त्र इस प्रकार पहनो कि लज्जा के अंग ढके रहें । इस प्रकार उचित आचरण करती हुई तुम निश्चय ही ब्रह्मा की पदवी पाने के योग्य बन सकती हो ।

अब यह देखना है कि ब्रह्मा का पद कितना उच्च है और उसे किस योग्यता का मनुष्य प्राप्त कर सकता है ?

ब्रह्मा वाऽऋत्विजाम्भिषक्तमः । —शतपथ ब्रा १ ।७ ।४ ।१९

अर्थात् ब्रह्मा ऋत्विजों की त्रुटियों को दूर करने वाला होने से सब पुरोहितों से ऊँचा है ।

तस्माद्यो ब्रह्मिष्ठःस्यात् तं ब्रह्माणं कुर्वीत । —गोपथ ब्रा० उत्तरार्ध १ ।३

अर्थात् जो सबसे अधिक ब्रह्मनिष्ठ (परमेश्वर और वेदों का ज्ञाता) हो, उसे ब्रह्मा बनाना चाहिये ।

अथ केन ब्रह्मत्वं क्रियत इति त्रय्या विद्ययेति ब्रूयात् । —ऐतरेय ब्रा० ५ ।३३

ज्ञान, कर्म, उपासना तीनों विद्याओं के प्रतिपादक वेदों के पूर्ण ज्ञान से ही मनुष्य ब्रह्मा बन सकता है ।

अथ केन ब्रह्मत्वं इत्यनया, त्रय्या विद्ययेति ह ब्रूयात् ॥ - शतपथ ब्रा० ११ ।५ ।८ ।७

वेदों के पूर्ण ज्ञान (त्रिविध विद्या) से ही मनुष्य ब्रह्मा पद के योग्य बनता है ।

व्याकरण शास्त्र के कतिपय स्थलों पर ऐसे उल्लेख हैं, जिनसे प्रतीत होता है कि वेद का अध्ययन-अध्यापन भी स्त्रियों का कार्यक्षेत्र रहा है । देखिये—

"इङश्च" ३ ।३ ।२१ के महाभाष्य में लिखा है—

"उपेत्याधीयतेऽस्या उपाध्यायी उपाध्याया"

अर्थात् जिनके पास आकर कन्यायें वेद के एक भाग तथा वेदांगों का अध्ययन करें, वह उपाध्यायी या उपाध्याया कहलाती है ।

मनु ने भी उपाध्याय के लक्षण यही बताये हैं -

एकदेशं तु वेदस्य वेदांगान्यपि वा पुनः ।
योऽध्यापयति वृत्त्यर्थम् उपाध्यायः स उच्यते ॥ — मनु० २ ।१४१

जो वेद के एक देश या वेदांगों को पढ़ाता है, वह उपाध्याय कहा जाता है और भी—

आचार्यादणत्वं । —अष्टाध्यायी ४ ।१ ।४९

इस सूत्र पर सिद्धान्त कौमुदी में कहा गया है—

आचार्यस्य स्त्री आचार्यानी पुंयोग इत्येव आचार्या स्वयं व्याख्यात्री ।

अर्थात् जो स्त्री वेदों का प्रवचन करने वाली हो, उसे आचार्या कहते हैं ।

आचार्य के लक्षण मनुजी ने इस प्रकार बतलाये हैं—

उपनीय तु यः शिष्यं वेदमध्यापयेद् द्विजः ।
सकल्पं सरहस्यं च तमाचार्यं प्रचक्षते ॥ - मनु० २ ।१४०

"जो शिष्य का यज्ञोपवीत संस्कार करके कल्प सहित, रहस्य सहित वेद पढ़ाता है, उसे आचार्य कहते हैं ।"

स्वर्गीय महामहोपाध्याय पं. शिवदत्त शर्मा ने सिद्धान्त कौमुदी का सम्पादन करते हुए इस सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण टिप्पणी करते हुए लिखा है—

"इति वचनेनापि स्त्रीणां वेदाध्ययनाधिकारो ध्वनितः ।"

अर्थात्—इससे स्त्रियों को वेद पढ़ने का अधिकार सूचित होता है ।

उपर्युक्त प्रमाणों को देखते हुए पाठक यह विचार करें कि "स्त्रियों को गायत्री का अधिकार नहीं" कहना कहाँ तक उचित है ?

क्या स्त्रियों को वेद का अधिकार नहीं ?

गायत्री मन्त्र का स्त्रियों को अधिकार है या नहीं ? यह कोई स्वतन्त्र प्रश्न नहीं है । अलग से कहीं ऐसा विधि-निषेध नहीं कि स्त्रियाँ गायत्री जपें या न जपें । यह प्रश्न इसलिये उठता है—यह कहा जाता है कि स्त्रियों को वेद का अधिकार नहीं है । चूँकि गायत्री भी वेद मन्त्र है, इसलिये अन्य मन्त्रों की भाँति उसके उच्चारण का भी अधिकार नहीं होना चाहिये ।

स्त्रियों को वेदाधिकारी न होने का निषेध वेदों में नहीं है । वेदों में तो ऐसे कितने ही मन्त्र हैं, जो स्त्रियों द्वारा उच्चारण होते हैं । उन मन्त्रों में स्त्री-लिंग की क्रियायें हैं, जिनसे स्पष्ट हो जाता है कि स्त्रियों द्वारा ही प्रयोग होने के लिये हैं । देखिये—

"उदसौ सूर्यो अगाद् उदयं मामको भगः ।
अहं तद्विद् वला पतिमभ्यसाक्षि विषासहिः ।
अहं केतुरहं मूर्धाहमुग्रा विवाचनी,
ममेदनु क्रतुं पतिः सेहानाया उपाचरेत् ॥"
"मम पुत्राः शत्रुहणोऽथो मे दुहिता विराट्
उताहमस्मि संजया पत्यौ मे श्लोक उत्तमः ॥" —ऋग्वेद १० ।१५९ ।१-३

अर्थात्- सूर्योदय के साथ मेरा सौभाग्य बढ़े । मैं पतिदेव को प्राप्त करूँ । विरोधियों को पराजित करने वाली और सहनशील बनूँ । मैं वेद से तेजस्विनी प्रभावशाली वक्ता बनूँ । पतिदेव मेरी इच्छा, ज्ञान व कर्म के अनुकूल कार्य करें । मेरे पुत्र भीतरी व बाहरी शत्रुओं को नष्ट करें । मेरी पुत्री अपने सद्‌गुणों के कारण प्रकाशवती हो । मैं अपने कार्यों से पतिदेव के उज्ज्वल यश को बढ़ाऊँ ।

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पतिवेदनम् ।
उर्वारुकमिव बन्धनादितो मुक्षीय मामुतः ॥ —यजुर्वेद ३ ।६०

अर्थात् हम कुमारियाँ उत्तम पतियों को प्राप्त कराने वाले परमात्मा का स्मरण करती हुई यज्ञ करती हैं, जो हमें इस पितृकुल से छुड़ा दे, किन्तु पति कुल से कभी वियोग न कराये ।

आशासाना सौमनसं प्रजां सौभाग्यं रयिम् ।
पत्युरनुव्रता भूत्वा सन्नह्यस्वामृतायकम् ॥ —अथर्व० १४ ।१ ।४२

वधू कहती है कि मैं यज्ञादि शुभ अनुष्ठानों के लिये शुभ वस्त्र पहनती हूँ । सौभाग्य, आनन्द, धन तथा सन्तान की कामना करती हुई मैं सदा प्रसन्न रहूँगी ।

वेदोऽसि वित्तिरसि वेदसे त्वा वेदो मे विन्द विदेय ।
घृतवन्तं कुलायिनं रायस्पोषं सहस्रिणम् ।
वेदो वाजं ददातु मे वेदो वीरं ददातु मे । —काठक संहिता ५/४/२३-२४

आप वेद हैं, सब श्रेष्ठ गुणों और ऐश्वर्यों को प्राप्त कराने वाले ज्ञान-लाभ के लिये आपको भली प्रकार प्राप्त करूँ । वेद मुझे तेजस्वी, कुल को उत्तम बनाने वाला, ऐश्वर्य को बढ़ाने वाला ज्ञान दें । वेद मुझे वीर-श्रेष्ठ सन्तान दें ।

विवाह के समय वर-वधू दोनों सम्मिलित रूप से मन्त्र उच्चारण करते हैं—

समञ्जन्तु विश्वे देवाः समापो हृदयानि नौ ।
सं मातरिश्वा सं धाता समुदेष्ट्री दधातु नौ ॥ - ऋग्वेद १० ।८५ ।४७

अर्थात् सब विद्वान् लोग यह जान लें कि हम दोनों के हृदय जल की तरह परस्पर प्रेमपूर्वक मिले रहेंगे । विश्व नियन्ता परमात्मा तथा विदुषी देवियाँ हम दोनों के प्रेम को स्थिर बनाने में सहायता करें ।

स्त्री के मुख से वेद मन्त्रों के उच्चारण के लिये असंख्यों प्रमाण भरे पड़े हैं। शतपथ ब्राह्मण १४ ।१ ।४ ।१६ में यजुर्वेद के ३७ ।२० मन्त्र **"त्वष्टृमन्तस्त्वा सपेम"** इस मन्त्र को पत्नी द्वारा उच्चारण करने का विधान है।

शतपथ के १ ।९ ।२ ।२३ में स्त्रियों द्वारा यजुर्वेद के २/२१ मन्त्रों के उच्चारण का आदेश है।

तैत्तिरीय संहिता के १ ।१ ।१० **'सुप्रजसस्त्वा वयं'** आदि मन्त्रों को स्त्री द्वारा बुलवाने का आदेश है।

आश्वलायन गृह्य सूत्र १ ।१ ।९ के **'पाणिग्रहणादि गृह्यं.......'** में भी इसी प्रकार यजमान की अनुपस्थिति में उसकी पत्नी, पुत्र अथवा कन्या को यज्ञ करने का आदेश है।

काठक गृह्य सूत्र ३ ।१ ।३० एवं २७ ।३ में स्त्रियों के लिये वेदाध्ययन, मन्त्रोच्चारण एवं वैदिक कर्मकाण्ड करने का प्रतिपादन है। लौगाक्षि गृह्य सूत्र की २५ वीं कण्डिका में भी ऐसे प्रमाण मौजूद हैं।

पारस्कर गृह्य सूत्र, १ ।५ ।१, २ के अनुसार विवाह के समय कन्या लाजाहोम के मन्त्रों को स्वयं पढ़ती हैं। सूर्य दर्शन के समय भी वह यजुर्वेद के ३६ ।२४ मन्त्र, **'तच्चक्षुर्देवहितं'** को स्वयं ही उच्चारण करती है। विवाह के समय 'समञ्जन' करते समय वर-वधू दोनों साथ-साथ **'अथैनौ समञ्जयतः............'** इस ऋग्वेद १० ।८५ ।४७ के मन्त्र को पढ़ते हैं।

तांड्य ब्राह्मण ५ ।६ ।८ में युद्ध में स्त्रियों को वीणा लेकर सामवेद के मन्त्रों का गान करने का आदेश है तथा ५ ।६ ।१५ में स्त्रियों के कलश उठाकर वेद-मन्त्रों का गान करते हुए परिक्रमा करने का विधान है।

ऐतरेय ५ ।५ ।२९ में कुमारी गन्धर्व गृहीता का उपाख्यान है, जिसमें कन्या के यज्ञ एवं वेदाधिकार का स्पष्टीकरण हुआ है।

कात्यायन श्रौतसूत्र १ ।१ ।७ ; ४ ।१ ।२२ तथा २० ।६ ।१२ आदि में ऐसे स्पष्ट आदेश हैं कि अमुक वेद मन्त्रों का उच्चारण स्त्री करे।

लाट्यायन श्रौत सूत्र में पत्नी द्वारा सस्वर सामवेद के मन्त्रों के गायन का विधान है। शांखायन श्रौत सूत्र के १ ।१२ ।१३ में तथा आश्वलायन श्रौत सूत्र १ ।११ ।१ में इसी प्रकार के वेद मन्त्रोच्चारण के आदेश हैं। मन्त्र ब्राह्मण के १ ।२ ।३ में कन्या द्वारा वेद मन्त्र के उच्चारण की आज्ञा है।

नीचे कुछ मन्त्रों में वधू को वेद परायण होने के लिये कितना अच्छा आदेश दिया है—

ब्रह्मापरं युज्यतां ब्रह्म पूर्वं ब्रह्मान्ततो मध्यतो ब्रह्म सर्वतः।
अनाव्याधां देव पुरां प्रपद्य शिवा स्योना पतिलोके विराज॥ —अथर्व० १४ ।१ ।६४

हे वधू ! तुम्हारे आगे, पीछे, मध्य तथा अन्त में सर्वत्र वेद विषयक ज्ञान रहे। वेद ज्ञान को प्राप्त करके तदनुसार तुम अपना जीवन बनाओ। मंगलमयी, सुखदायिनी एवं स्वस्थ होकर पति के घर में विराजमान और अपने सद्गुणों से प्रकाशवान् हो।

कुलायिनी घृतवती पुरन्धिः स्योने सीद सदने पृथिव्याः।
अभित्वा रुद्रा वसवो गृणन्त्विमा।
ब्रह्म पीपिहि सौभगायाश्विनाध्वर्यू सादयतामिहत्वा। — यजुर्वेद १४ ।२

हे स्त्री ! तुम कुलवती घृत आदि पौष्टिक पदार्थों का उचित उपयोग करने वाली, तेजस्विनी, बुद्धिमती, सत्कर्म करने वाली होकर सुखपूर्वक रहो। तुम ऐसी गुणवती और विदुषी बनो कि रुद्र और वसु भी तेरी प्रशंसा करें। सौभाग्य की प्राप्ति के लिये इन वेद मन्त्रों के अमृत का बार-बार भली प्रकार पान करो। विद्वान् तुम्हें शिक्षा देकर इस प्रकार की उच्च स्थिति पर प्रतिष्ठित कराएँ।

यह सर्वविदित है कि यज्ञ बिना वेद मन्त्रों के नहीं होता और यज्ञ में पति-पत्नी दोनों का सम्मिलित रहन आवश्यक है। रामचन्द्र जी ने सीता जी की अनुपस्थिति में सोने की प्रतिमा रखकर यज्ञ किया था। ब्रह्माजी को भी सावित्री की अनुपस्थिति में द्वितीय पत्नी का वरण करना पड़ा था, क्योंकि यज्ञ की पूर्ति के लिये पत्नी की उपस्थिति आवश्यकीय है। जब स्त्री यज्ञ करती है, तो उसे वेदाधिकार न होने की बात किस प्रकार कही जा सकती है ? देखिये—

अ यज्ञो वा एष योऽपत्नीकः । —तैत्तिरीय सं० २ ।२ ।२ ।६

अर्थात्—बिना पत्नी के यज्ञ नहीं होता है ।

अथो अर्धो वा एष आत्मनः यत् पत्नी । —तैत्तिरीय सं० ३ ।३ ।३ ।५

अर्थात्—पत्नी पति की अर्धांगिनी है, अतः उसके बिना यज्ञ अपूर्ण है—

या दम्पती समनसा सुनुत आ च धावतः ।
देवासो नित्ययोऽऽशिरा । —ऋग्वेद ८ ।३१ ।५

हे विद्वानो ! जो पति-पत्नी एक मन होकर यज्ञ करते हैं और ईश्वर की उपासना करते हैं ।

वि त्वा ततस्रे मिथुना अवस्यवो..........
गव्यन्ता द्वाजना स्व१र्यन्ता समूहसि । .... —ऋग्वेद १ ।१३१ ।३

हे परमात्मन् ! आपके निमित्त यजमान, पत्नी समेत यज्ञ करते हैं । आप उन लोगों को स्वर्ग की प्राप्ति कराते हैं । अतएव वे मिलकर यज्ञ करते हैं ।

अग्निहोत्रस्य शुश्रूषा सन्ध्योपासनमेव च ।
कार्यं पत्न्या प्रतिदिनं बलिकर्म च नैत्यिकम् ॥ —स्मृति रत्न

पत्नी प्रतिदिन अग्निहोत्र, सन्ध्योपासना, बलि वैश्व आदि नित्य कर्म करे ।यदि पुरुष न हो, तो अकेली स्त्री को भी यज्ञ का अधिकार है । देखिये—

होमे कर्तारः स्वयंत्वस्यासम्भवे पत्न्यादयः । — गदाधराचार्य

होम करने में पहले स्वयं यजमान का स्थान है । वह न हो तो पत्नी, पुत्र आदि करें ।

पत्नी कुमारः पुत्री च शिष्यो वाऽपि यथाक्रमम् ।
पूर्वपूर्वस्य चाभावे विदध्यादुत्तरोत्तरः ॥ —प्रयोग रत्न स्मृति

यजमानः प्रधानःस्यात् पत्नी पुत्रश्च कन्यका ।
ऋत्विक् शिष्यो गुरुर्भ्राता भागिनेयः सुतापतिः ॥ —स्मृत्यर्थसार

उपर्युक्त दोनों श्लोकों का भावार्थ यह है कि यजमान हवन के समय किसी कारण से उपस्थित न हो सके, तो उसकी पत्नी, पुत्र, कन्या, शिष्य, गुरु, भाई आदि कर लें ।

आहुरप्युत्तमस्त्रीणाम् अधिकारं तु वैदिके ।
यथोर्वशी यमी चैव शच्याद्याश्च तथाऽपराः ॥ —व्योम संहिता

श्रेष्ठ स्त्रियों को वेद का अध्ययन तथा वैदिक कर्मकाण्ड करने का वैसे ही अधिकार है, जैसे कि उर्वशी, यमी, शची आदि ऋषिकाओं को प्राप्त था ।

अग्निहोत्रस्य शुश्रूषा सन्ध्योपासनमेव च । — स्मृतिरत्न (कुल्लूक भट्ट)

इस श्लोक में यज्ञोपवीत एवं सन्ध्योपासना का प्रत्यक्ष विधान है ।

या स्त्री भर्त्रा वियुक्तापि स्वाचारैः संयुता शुभा ।
सा च मन्त्रान् प्रगृह्णातु सभर्त्री तदनुज्ञया ॥ —भविष्य पुराण उत्तर पर्व ४ ।१३ ।६३

उत्तम आचरण वाली विधवा स्त्री वेद-मन्त्रों को ग्रहण करे और सधवा स्त्री अपने पति की अनुमति से मन्त्रों को ग्रहण करे ।

यथाधिकारः श्रौतेषु योषितां कर्मसु श्रुतः ।
एवमेवानुमन्यस्व ब्रह्मणि ब्रह्मवादिनाम् ॥ —यमस्मृति

जिस प्रकार स्त्रियों को वेद के कर्मों में अधिकार है, वैसे ही ब्रह्मविद्या प्राप्त करने का भी अधिकार है ।

कात्यायनी च मैत्रेयी गार्गी वाचक्नवी तथा।
एवमाद्या विदुर्ब्रह्म तस्मात् स्त्री ब्रह्मविद् भवेत्॥ —अस्य वामीय भाष्यम्

जैसे कात्यायनी, मैत्रेयी, वाचक्नवी, गार्गी आदि ब्रह्म (वेद और ईश्वर) को जानने वाली थीं, वैसे ही सब स्त्रियों को ब्रह्मज्ञान प्राप्त करना चाहिये।

वाल्मीकि रामायण में कौशल्या, कैकेयी, सीता, तारा आदि नारियों द्वारा वेदमन्त्रों का उच्चारण, अग्निहोत्र, सन्ध्योपासन का वर्णन आता है।

सन्ध्याकालमनाः श्यामा ध्रुवमेष्यति जानकी।
नदीं चेमां शुभजलां सन्ध्यार्थे वरवर्णिनी॥ —वा० रा० ५।१४।४९

सायंकाल के समय सीता उत्तम जल वाली नदी के तट पर सन्ध्या करने अवश्य आयेगी।

वैदेही शोकसंतप्ता हुताशनमुपागमत्। —वाल्मीकि सुन्दर. ५३।२६

अर्थात्—तब शोक सन्तप्त सीताजी ने हवन किया।

'तदा सुमन्त्रं मंत्रज्ञा कैकेयी प्रत्युवाच ह।' —वा० रा० अयो० १४।६१

वेद मन्त्रों को जानने वाली कैकेयी ने सुमन्त्र से कहा।

सा क्षौमवसना हृष्टा, नित्यं व्रतपरायणा।
अग्निं जुहोति स्म तदा मन्त्रवत् कृतमंगला॥ —वा० रामायण २।२०।१५

वह रेशमी वस्त्र धारण करने वाली, व्रत परायण, प्रसन्नमुखी, मंगलकारिणी कौशल्या मन्त्रपूर्वक अग्निहोत्र कर रही थी।

ततः स्वस्त्ययनं कृत्वा मन्त्रविद् विजयैषिणी।
अन्तःपुरं सहस्त्रीभिः प्रविष्टा शोकमोहिता॥ —वा० रामायण ४।१६।१२

तब मन्त्रों को जानने वाली तारा ने अपने पति बाली की विजय के लिये स्वस्तिवाचन के मंत्रों का पाठ करके अन्तःपुर में प्रवेश किया।

गायत्री मन्त्र के अधिकार के सम्बन्ध में तो ऋषियों ने और भी स्पष्ट शब्दों में उल्लेख किया है। नीचे के दो स्मृति प्रमाण् देखिये, जिनमें स्त्रियों को गायत्री की उपासना का विधान किया गया है।

पुरा कल्पे तु नारीणां मौञ्जीबन्धनमिष्यते।
अध्यापनं च वेदानां सावित्रीवाचनं तथा॥ —यम

प्राचीन समय में स्त्रियों को मौञ्जी बन्धन, वेदों का पढ़ाना तथा गायत्री का उपदेश इष्ट था।

मनसा भर्तुरतिचारे त्रिरात्रं यावकं क्षीरौदनं वा भुञ्जानाऽधः शयीत, ऊर्ध्वं त्रिरात्रादप्सु निमग्नायाः सावित्र्यष्टशतेन शिरोभिर्जुहुयात् पूता भवतीति विज्ञायते। —वसिष्ठ स्मृति २१।७

यदि स्त्री के मन में पति के प्रति दुर्भाव आये, तो उस पाप का प्रायश्चित्त करने के साथ १०८ मन्त्र गायत्री जपने से वह पवित्र होती है।

इतने पर भी यदि कोई यह कहे कि स्त्रियों को गायत्री का अधिकार नहीं, तो दुराग्रह या कुसंस्कार ही कहना चाहिये।

नारी पर प्रतिबन्ध और लांछन क्यों?

गायत्री उपासना का अर्थ है ईश्वर को माता मानकर उसकी गोदी में चढ़ना। संसार में जितने सम्बन्ध हैं, रिश्ते हैं, उन सबमें माता का रिश्ता अधिक प्रेमपूर्ण, अधिक घनिष्ठ है। प्रभु को जिस दृष्टि से हम देखते हैं, हमारी भावना के अनुरूप वे वैसा ही प्रत्युत्तर देते हैं। जब ईश्वर की गोदी में जीव, मातृ भावना के साथ चढ़ता है, तो निश्चय ही उधर से वात्सल्यपूर्ण उत्तर मिलता है।

स्नेह, वात्सल्य, करुणा, दया, ममता, उदारता, कोमलता आदि तत्त्व नारी में नर की अपेक्षा स्वभावत: अधिक होते हैं। ब्रह्म का अर्ध वामांग, ब्राह्मी तत्त्व अधिक कोमल, आकर्षक एवं शीघ्र द्रवीभूत होने वाला है। इसीलिये अनादिकाल से ऋषि लोग ईश्वर की मातृ भावना के साथ उपासना करते रहे हैं और उन्होंने प्रत्येक भारतीय धर्मावलम्बी को इसी सुख साध्य, सरल एवं शीघ्र सफल होने वाली साधना प्रणाली को अपनाने का आदेश दिया है। गायत्री उपासना प्रत्येक भारतीय का धार्मिक नित्य कर्म है। सन्ध्यावन्दन किसी भी पद्धति से किया जाए, उसमें गायत्री का होना आवश्यक है। विशेष लौकिक या पारलौकिक प्रयोजन के लिये विशेष रूप से गायत्री की उपासना की जाती है, पर उतना न हो सके, तो नित्य कर्म की साधना तो दैनिक कर्त्तव्य है, उसे न करने से धार्मिक क़र्त्तव्यों की उपेक्षा करने का दोष लगता है।

कन्या और पुत्र दोनों ही माता की प्राणप्रिय संतान हैं। ईश्वर के नर और नारी दोनों दुलारे हैं। कोई भी निष्पक्ष और न्यायशील माता-पिता अपने बालकों में इसलिये भेदभाव नहीं करते कि वे कन्या हैं या पुत्र हैं। ईश्वर ने धार्मिक कर्त्तव्यों एवं आत्म-कल्याण के साधनों की नर और नारी दोनों को ही सुविधा दी है। यह समता, न्याय और निष्पक्षता की दृष्टि से उचित है, तर्क और प्रमाणों से सिद्ध है। इस सीधे-साधे तथ्य में कोई विघ्न डालना असंगत ही होगा।

मनुष्य की समझ बड़ी विचित्र है। उसमें कभी-कभी ऐसी बातें भी घुस जाती हैं, जो सर्वथा अनुचित एवं अनावश्यक होती हैं। प्राचीन काल में नारी जाति का समुचित सम्मान रहा, पर एक समय ऐसा भी आया जब स्त्री जाति को सामूहिक रूप से हेय, पतित, त्याज्य, पातकी, अनधिकारी व घृणित ठहराया। उस विचारधारा ने नारी के मनुष्योचित अधिकारों पर आक्रमण किया और पुरुष की श्रेष्ठता एवं सुविधा को पोषण करने के लिये उस पर अनेक प्रतिबन्ध लगाकर शक्तिहीन, साहसहीन, विद्याहीन बनाकर इतना लुञ्ज-पुञ्ज कर दिया है कि बेचारी को समाज के लिये उपयोगी सिद्ध हो सकना तो दूर आत्म-रक्षा के लिये भी दूसरों का मोहताज होना पड़ा। आज भारतीय नारी, पालतू पशु-पक्षियों जैसी स्थिति में पहुँच गयी है। इसका कारण वह उल्टी समझ ही है, जो मध्यकाल के सामन्तशाही अहंकार के साथ उत्पन्न हुई थी। प्राचीन काल में भारतीय नारी सभी क्षेत्रों में पुरुषों के समकक्ष थी। रथ के दोनों पहिये ठीक होने से समाज की गाड़ी उत्तमता से चल रही थी, पर अब एक पहिया क्षत-विक्षत हो जाने से दूसरा पहिया भी लड़खड़ा गया। अयोग्य नारी समाज का भार नर को ढोना पड़ रहा है। इस अव्यवस्था ने हमारे देश और जाति को कितनी क्षति पहुँचाई है, उसकी कल्पना करना भी कष्टसाध्य है।

मध्यकालीन अन्धकार युग की कितनी ही बुराइयों को सुधारने के लिये विवेकशील और दूरदर्शी महापुरुष प्रयत्नशील हैं यह प्रसन्नता की बात है। विज्ञ पुरुष अनुभव करने लगे हैं कि मध्यकालीन संकीर्णता की लौह-शृंखला से नारी को न खोला गया, तो हमारा राष्ट्र प्राचीन गौरव को प्राप्त नहीं कर सकता। पूर्वकाल में नारी जिस स्वस्थ स्थिति में थी, उस स्थिति में पुन: पहुँचने से हमारा आधा अंग विकसित हो सकेगा और तभी हमारा सर्वांगीण विकास हो सकेगा। इन शुभ प्रयत्नों में मध्यकालीन कुसंस्कारों की रूढ़ियों का अन्धानुकरण करने को ही धर्म समझ बैठने वाली विचारधारा अब भी रोड़े अटकाने से नहीं चूकती।

ईश्वर-भक्ति, गायत्री की उपासना तक के बारे में यह कहा जाता है कि स्त्रियों को अधिकार नहीं। इसके लिये कई पुस्तकों के श्लोक भी प्रस्तुत किये जाते हैं, जिनमें यह कहा है कि स्त्रियाँ वेद-मन्त्रों को न पढ़ें, न सुनें, क्योंकि गायत्री भी वेद मन्त्र है, इसलिये स्त्रियाँ उसे न अपनाएँ। इन प्रमाणों से हमें कोई विरोध नहीं, क्योंकि एक काल भारतवर्ष में ऐसा बीता है, जब नारी को निकृष्ट कोटि के जीव की तरह समझा गया है। यूरोप में तो उस समय यह मान्यता थी कि घास-पात की तरह स्त्रियों में भी आत्मा नहीं होती। यहाँ भी उनसे मिलती-जुलती ही मान्यता ली गयी थी। कहा जाता था कि—

निरिन्द्रिया ह्यमन्त्राश्च स्त्रियोऽनृतमिति स्थितिः। —मनु० ९।१८

अर्थात्—स्त्रियाँ निरिन्द्रिय (इन्द्रिय रहित), मन्त्ररहिता, असत्य स्वरूपिणी एवं घृणित हैं। स्त्री को ढोल, गँवार, शूद्र और पशु की तरह पिटने योग्य ठहराने वाले विचारकों का कथन था कि—

पौंश्चल्याच्चलचित्ताच्च नैस्नेह्याच्च स्वभावतः।
रक्षिता यत्नतोऽपीह भर्तृष्वेता विकुर्वते॥ —मनु० ९/१५

अर्थात्—स्त्रियाँ स्वभावतया ही व्यभिचारिणी, चञ्चल चित्त, प्रेम-शून्य होती हैं। उनकी बड़ी होशियारी के साथ देखभाल रखनी चाहिये।

विश्वासपात्रं न किमस्ति नारी।
द्वारं किमेकं नरकस्य नारी॥
विद्वान्महाविज्ञतमोऽस्ति को वा।
नार्या पिशाच्या न च वंचितो यः॥ - शंकराचार्य प्रश्नोत्तरी से

प्रश्न विश्वास करने योग्य कौन नहीं है ? उत्तर-नारी। प्रश्न-नरक का एक मात्र द्वार क्या है ? उत्तर-नारी। प्रश्न-बुद्धिमान् कौन है ? उत्तर-जो नारी रूपी पिशाचिनी से नहीं ठगा गया।

जब स्त्रियों के सम्बन्ध में ऐसी मान्यता फैली हुई हो तो उन पर वेद-शास्त्रों से, धर्म- कर्त्तव्यों से, ज्ञान- उपार्जन से वंचित रहने का प्रतिबन्ध लगाया गया हो, तो इसमें कुछ आश्चर्य की बात नहीं है। इस प्रकार के प्रतिबन्ध सूचक अनेक श्लोक उपलब्ध भी होते हैं।

स्त्रीशूद्रद्विजबन्धूनां त्रयी न श्रुतिगोचरा। —भागवत

अर्थात्—स्त्रियों, शूद्रों और नीच ब्राह्मणों को वेद सुनने का अधिकार नहीं।

अमंत्रिका तु कार्येयं स्त्रीणामावृदशेषतः।
संस्कारार्थं शरीरस्य यथा कालं यथाक्रमम्॥ —मनु० २।६६

अर्थात्—स्त्रियों के जातकर्मादि सब संस्कार बिना वेद मन्त्रों के करने चाहिये।

नन्वेवं सति स्त्रीशूद्रसहिताः सर्वे वेदाधिकारिणः। —सायण

स्त्री और शूद्रों को वेद का अधिकार नहीं है।

वेदेऽनधिकारात्। – शंकराचार्य

स्त्रियाँ वेद की अधिकारिणी नहीं हैं।

अध्ययन रहितया स्त्रिया तदनुष्ठानमशक्य-
त्वात् तस्मात् पुंस एवोपस्थानादिकम्॥

स्त्री अध्ययन रहित होने के कारण यज्ञ में मन्त्रोच्चार नहीं कर सकती, इसलिये केवल पुरुष मन्त्र पाठ करें।

'स्त्रीशूद्रौ नाधीयाताम्।'

अर्थ-स्त्री और शूद्र वेद न पढ़ें।

'न वै कन्या न युवतिः।'

अर्थ- न कन्या पढ़े, न स्त्री पढ़े।

इस प्रकार की स्त्रियों को धर्म, ज्ञान, ईश्वर उपासना और आत्म-कल्याण से रोकने वाले प्रतिबन्धों को कई भोले मनुष्य 'सनातन' मान लेते हैं और उनका समर्थन करने लगते हैं। ऐसे लोगों को जानना चाहिये कि प्राचीन साहित्य में इस प्रकार के प्रतिबन्ध कहीं नहीं है, वरन् उसमें तो सर्वत्र नारी की महानता का वर्णन है और उसे भी पुरुष जैसे ही धार्मिक अधिकार प्राप्त हैं। यह प्रतिबन्ध तो कुछ काल तक कुछ व्यक्तियों की एक सनक के प्रमाण मात्र हैं। ऐसे लोगों ने धर्मग्रन्थों में जहाँ-तहाँ अनर्गल श्लोक ठूँसकर अपनी सनक को ऋषि प्रणीत सिद्ध करने का प्रयत्न किया है।

भगवान् मनु ने नारी जाति की महानता को मुक्तकण्ठ से स्वीकार करते हुए लिखा है—

प्रजनार्थं महाभागाः पूजार्हा गृहदीप्तयः।
स्त्रियः श्रियश्च गेहेषु न विशेषोऽस्ति कश्चन ॥ —मनु० ९।२६
अपत्यं धर्मकार्याणि शुश्रूषा रतिरुत्तमा।
दाराधीनस्तथा स्वर्गः पितृणामात्मनश्च ह ॥ —मनु० ९।२८
यत्र नार्य्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः ॥ —मनु० ३।५६

अर्थात्—स्त्रियाँ पूजा के योग्य हैं, महाभाग हैं, घर की दीप्ति हैं। कल्याणकारिणी हैं। धर्म कार्यों की सहायिका हैं। स्त्रियों के अधीन ही स्वर्ग है। जहाँ स्त्रियों की पूजा होती है, वहाँ देवता निवास करते हैं और जहाँ उनका तिरस्कार होता है, वहाँ सब क्रियायें निष्फल हो जाती हैं।

जिन मनु भगवान् की श्रद्धा नारी जाति के प्रति इतनी उच्चकोटि की थी, उन्हीं के ग्रन्थ में यत्र-तत्र स्त्रियों की भरपेट निन्दा और उनकी धार्मिक सुविधा का निषेध है। मनु जैसे महापुरुष ऐसी परस्पर विरोधी बात नहीं लिख सकते। निश्चय ही उनके ग्रन्थों में पीछे वाले लोगों ने मिलावट की है। इस मिलावट के प्रमाण भी मिलते हैं। देखिये—

मान्या कापि मनुस्मृतिस्तदुचिता व्याख्यापि मेधातिथेः।
सा लुप्तैव विधेर्वशात्क्वचिदपि प्राप्यं न तत्पुस्तकम् ॥
क्षोणीन्द्रो मदनः सहारणसुतो देशान्तरादाहतैः।
जीर्णोद्धारमचीकरत् तत इतस्तत्पुस्तकैर्लिख्यते ॥

—मेधातिथिरचित मनुभाष्य सहित मनुस्मृतेरुपोद्घातः

अर्थात्—प्राचीन काल में कोई प्रामाणिक मनुस्मृति थी और उसकी मेधातिथि ने उचित व्याख्या की थी। दुर्भाग्यवश वह पुस्तक लुप्त हो गयी, तब राजा मदन ने इधर-उधर की पुस्तकों से उसका जीर्णोद्धार कराया।

केवल मनुस्मृति तक यह घोटाला सम्मिलित नहीं है, वरन् अन्य ग्रन्थों में भी ऐसी ही मिलावटें की गयी हैं और अपनी मनमानी को शास्त्र विरुद्ध होते हुए भी "शास्त्र-वचन" सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया है।

दैत्याः सर्वे विप्रकुलेषु भूत्वा, कृते युगे भारते षट्सहस्त्र्याम्। निष्कास्य कांश्चिन्नवनिर्मितानां निवेशनं तत्र कुर्वन्ति नित्यम् ॥ —गरुड पुराण/उ० खं०/ब्रह्म० का० १।६९

"राक्षस लोग कलियुग में ब्राह्मण कुल में उत्पन्न होकर महाभारत के छः हजार श्लोकों में से अनेक श्लोकों को निकाल देंगे और उनके स्थान पर नये कृत्रिम श्लोक गढ़कर प्रक्षेप कर देंगे।" यही बात माधवाचार्य ने इस प्रकार कही है—

क्वचिद् ग्रन्थान् प्रक्षिपन्तिक्वचिदन्तरितानपि।
कुर्युः क्वचिच्च व्यत्यासं प्रमादात् क्वचिदन्यथा ॥
अनुत्पन्ना अपि ग्रन्था व्याकुला इति सर्वशः।

"स्वार्थी लोग कहीं ग्रन्थों के वचनों को प्रक्षिप्त कर देते हैं, कहीं निकाल देते हैं, कहीं जान-बूझकर, कहीं प्रमाद से उन्हें बदल देते हैं, इस प्रकार प्राचीन ग्रन्थ बड़े अस्त-व्यस्त हो गये हैं।"

जिन दिनों यह मिलावट की जा रही थी, उन दिनों भी विचारवान् विद्वानों ने इस गड़बड़ी का डटकर विरोध किया था, महर्षि हारीत ने इन स्त्री-द्वेषी ऊल-ज़लूल उक्तियों का घोर विरोध करते हुए कहा था—

न शूद्रसमाः स्त्रियः।नहि शूद्र योनौ ब्राह्मणक्षत्रिय -
वैश्या जायन्ते तस्माच्छन्दसा स्त्रियः संस्कार्याः ॥ —हारीत

"स्त्रियाँ शूद्रों के समान नहीं हो सकतीं। शूद्र-योनि से भला ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य की उत्पत्ति किस प्रकार हो सकती है ? इसलिए स्त्रियों को वेद द्वारा संस्कृत (संस्कार) करना चाहिये।"

नर और नारी एक ही रथ के दो पहिये हैं, एक ही शरीर की दो भुजायें हैं, एक ही मुख के दो नेत्र हैं। एक के बिना दूसरा अपूर्ण है। दोनों अर्धांगों के मिलन से एक पूर्ण अंग बनता है। मानव प्राणी के अविच्छिन्न दो भागों में इस प्रकार की असमानता, द्विधा, नीच-ऊँच की भावना पैदा करना भारतीय परम्परा के सर्वथा विपरीत है। भारतीय धर्म में सदा नर-नारी को एक और अविच्छिन्न अंग माना है—

यथैवात्मा तथा पुत्रः पुत्रेण दुहिता समा। —मनु० ९।१३०

"आत्मा के समान ही सन्तान है। जैसा पुत्र वैसी ही कन्या, दोनों समान हैं।"

एतावानेव्र पुरुषो यज्जायात्मा प्रजेति ह।
विप्राः प्राहुस्तथा चैतद्यो भर्त्ता सा स्मृतांगना॥ —मनु० ९।४५

"पुरुष अकेला नहीं होता, किन्तु स्वयं पत्नी और सन्तान मिलकर पुरुष बनता है।"

अथो अर्द्धो वा एष आत्मनः यत् पत्नी।

अर्थात्—पत्नी पुरुष का आधा अंग है।

ऐसी दशा में यह उचित नहीं कि नारी को प्रभु की वाणी वेदज्ञान से वंचित रखा जाए। अन्य मन्त्रों की तरह गायत्री का भी उसे पूरा अधिकार है। ईश्वर की हम नारी के रूप में, गायत्री के रूप में उपासना करें और फिर नारी जाति को ही घृणित, पतित, अस्पृश्या, अनधिकारिणी ठहराएँ, यह कहाँ तक उचित है—इस पर हमें स्वयं ही विचार करना चाहिये।

स्त्रियों को वेदाधिकार से वंचित रखने तथा उन्हें उसकी अनधिकारिणी मानने से उसके सम्बन्ध में स्वभावतः एक प्रकार की हीनभावना पैदा हो जाती है, जिसका दूरवर्ती घातक परिणाम हमारे सामाजिक तथा राष्ट्रीय विकास पर पड़ता है। यों तो वर्तमान समय में अधिकांश पुरुष भी वेदों से अपरिचित हैं और उनके सम्बन्ध में ऊटपटांग बातें करते रहते हैं, पर किसी समुदाय को सिद्धान्त रूप से अनधिकारी घोषित कर देने पर परिणाम हानिकारक ही निकलता है। इसलिये वितण्डावादियों के कथनों का ख्याल न करके हमको स्त्रियों के प्रति किये गये अन्याय का अवश्य ही निराकरण करना चाहिये।

वेद-ज्ञान सबके लिये है—नर-नारी सभी के लिये है। ईश्वर अपनी सन्तान को जो संदेश देता है, उसे सुनने पर प्रतिबन्ध लगाना, ईश्वर के प्रति द्रोह करना है। वेद भगवान् स्वयं कहते हैं—

समानो मंत्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि॥ —ऋग्वेद १०।१९१।३

अर्थात्—हे समस्त नारियो! तुम्हारे लिये ये मन्त्र समान रूप से दिये गये हैं तथा तुम्हारा परस्पर विचार भी समान रूप से हो। तुम्हारी सभायें सबके लिये समान रूप से खुली हुई हों, तुम्हारा मन और चित्त समान मिला हुआ हो, मैं तुम्हें समान रूप से मन्त्रों का उपदेश करता हूँ और समान रूप से ग्रहण करने योग्य पदार्थ देता हूँ।

मालवीयजी द्वारा निर्णय

स्त्रियों को वेद-मन्त्रों का अधिकार है या नहीं? इस प्रश्न को लेकर काशी के पण्डितों में पर्याप्त विवाद हो चुका है। हिन्दू विश्वविद्यालय काशी में कुमारी कल्याणी नामक छात्रा वेद कक्षा में प्रविष्ट होना चाहती थी, पर प्रचलित मान्यता के आधार पर विश्वविद्यालय ने उसे दाखिल करने से इन्कार कर दिया। अधिकारियों का कथन था कि शास्त्रों में स्त्रियों को वेद-मन्त्रों का अधिकार नहीं दिया गया है।

इस विषय को लेकर पत्र-पत्रिकाओं में बहुत दिन विवाद चला। वेदाधिकार के समर्थन में "सार्वदेशिक" पत्र ने कई लेख छापे और विरोध में काशी के "सिद्धान्त" पत्र में कई लेख प्रकाशित हुए। आर्य समाज की ओर से एक डेपूटेशन हिन्दू विश्व-विद्यालय के अधिकारियों से मिला। देश भर में इस प्रश्न को लेकर काफी चर्चा हुई।

अन्त में विश्वविद्यालय ने महामना मदनमोहन मालवीय की अध्यक्षता में इस प्रश्न पर विचार करने के लिये

एक कमेटी नियुक्त की, जिसमें अनेक धार्मिक विद्वान् सम्मिलित किये गये । कमेटी ने इस सम्बन्ध में शास्त्रों का गम्भीर विवेचन करके यह निष्कर्ष निकाला कि स्त्रियों को भी पुरुषों की भाँति वेदाधिकार है । इस निर्णय की घोषणा २२ अगस्त सन् १९४६ को सनातन धर्म के प्राण समझे जाने वाले महामना मालवीय जी ने की । तदनुसार कुमारी कल्याणी देवी को हिन्दू विश्व-विद्यालय की वेद कक्षा में दाखिल कर लिया गया और शास्त्रीय आधार पर निर्णय किया कि—विद्यालय में स्त्रियों के वेदाध्ययन पर कोई प्रतिबन्ध नहीं रहेगा । स्त्रियाँ भी पुरुषों की भाँति वेद पढ़ सकेंगी ।

महामना मालवीय जी तथा उनके सहयोगी अन्य विद्वानों पर कोई सनातन धर्म विरोधी होने का सन्देह नहीं कर सकता । सनातन धर्म में उनकी आस्था प्रसिद्ध है । ऐसे लोगों द्वारा इस प्रश्न को सुलझा दिये जाने पर भी जो लोग गड़े मुर्दे उखाड़ते हैं और कहते हैं कि स्त्रियों को गायत्री का अधिकार नहीं है, उनकी बुद्धि के लिए क्या कहा जाय ? समझ में नहीं आता ।

पं० मदनमोहन मालवीय सनातन धर्म के प्राण थे । उनकी शास्त्रज्ञता, विद्वत्ता, दूरदर्शिता एवं धार्मिक दृढ़ता असन्दिग्ध थी । ऐसे महापण्डित ने अन्य अनेकों प्रामाणिक विद्वानों के परामर्श से स्वीकार किया है, उस निर्णय पर भी जो लोग संदेह करते हैं, उनकी हठधर्मी को दूर करना स्वयं ब्रह्माजी के लिये भी कठिन है ।

खेद है कि ऐसे लोग समय की गति को भी नहीं देखते, हिन्दू समाज की गिरती हुई संख्या और शक्ति पर भी ध्यान नहीं देते, केवल दस-बीस कल्पित या मिलावटी श्लोकों को लेकर देश तथा समाज का अहित करने पर उतारू हो जाते हैं । प्राचीन काल की अनेक विदुषी स्त्रियों के नाम अभी तक संसार में प्रसिद्ध हैं, वेदों में बीसियों स्त्री-ऋषिकाओं का उल्लेख मन्त्र रचयिता के रूप में लिखा मिलता है, पर ऐसे लोग उधर दृष्टिपात न करके मध्यकाल के ऋषियों के नाम पर स्वार्थी लोगों द्वारा लिखी पुस्तकों के आधार पर समाज सुधार के पुनीत कार्य में व्यर्थ ही टाँग अड़ाया करते हैं । ऐसे व्यक्तियों की उपेक्षा करके वर्तमान युग के ऋषि मालवीय जी की सम्मति का अनुसरण करना ही समाज-सेवकों का कर्तव्य है ।

स्त्रियाँ अनधिकारिणी नहीं हैं

पिछले पृष्ठों पर शास्त्रों के आधार पर जो प्रमाण उपस्थित किये गये हैं, पाठक उनमें से हर एक पर विचार करें । हर विचारवान् को यह सहज ही प्रतीत हो जायेगा कि वेद-शास्त्रों में ऐसा कोई प्रतिबन्ध नहीं है जो धार्मिक कार्यों के लिये, सद्ज्ञान उपार्जन के लिये वेद-शास्त्रों का श्रवण-मनन करने के लिये रोकता हो । हिन्दू धर्म वैज्ञानिक धर्म है, विश्व धर्म है । इसमें ऐसी विचारधारा के लिये कोई स्थान नहीं है, जो स्त्रियों को धर्म, ईश्वर, वेद, विद्या आदि के उत्तम मार्ग से रोककर उन्हें अवनत अवस्था में पड़ी रहने के लिये विवश करे । प्राणीमात्र पर अनन्त दया एवं करुणा रखने वाले ऋषि-मुनि ऐसे निष्ठुर नहीं हो सकते, जो ईश्वरीय ज्ञान वेद से स्त्रियों को वंचित रखकर उन्हें आत्म-कल्याण के मार्ग पर चलने से रोकें । हिंन्दू धर्म अत्यधिक उदार है, विशेषत: स्त्रियों के लिये तो उसमें बहुत ही आदर, श्रद्धा एवं उच्च स्थान है । ऐसी दशा में यह कैसे हो सकता है कि गायत्री-उपासना जैसे उत्तम कार्य के लिये उन्हें अयोग्य घोषित किया जाए ?

जहाँ तक दस-पाँच ऐसे भी श्लोक मिलते हैं, जो स्त्रियों को वेद-शास्त्र पढ़ने से रोकते हैं । पण्डित समाज में उन पर विशेष ध्यान दिया गया है । प्रारम्भ में बहुत समय तक हमारी भी ऐसी ही मान्यता रही कि स्त्रियाँ वेद न पढ़ें । परन्तु जैसे-जैसे शास्त्रीय खोज में अधिक गहरा प्रवेश करने का अवसर मिला, वैसे-वैसे पता चला कि प्रतिबन्धित श्लोक 'मध्यकालीन' सामन्तवादी मान्यता के प्रतिनिधि हैं । उसी समय में इस प्रकार के श्लोक बनाकर ग्रन्थों में मिला दिये गये हैं । सत्य सनातन वेदोक्त भारतीय धर्म की वास्तविक विचारधारा स्त्रियों पर कोई बन्धन नहीं लगाती । उसमें पुरुषों की भाँति ही स्त्रियों को भी ईश्वर-उपासना एवं वेदशास्त्रों का आश्रय लेकर आत्म-लाभ करने की पूरी-पूरी सुविधा है ।

प्रतिष्ठित गणमान्य विद्वानों की भी ऐसी ही सम्मति है । साधना और योग की प्राचीन परम्पराओं को जानकर

महात्माओं का कथन भी यही है कि स्त्रियाँ सदा से ही गायत्री की अधिकारिणी रही हैं। स्वर्गीय मालवीय जी सनातन धर्म के प्राण थे, पहले उनके हिन्दू-विश्वविद्यालय में स्त्रियों को वेद पढ़ने की रोक थी, पर जब उन्होंने विशेष रूप से पण्डित मण्डली के सहयोग से इस सम्बन्ध में स्वयं खोज की, तो वे भी इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि शास्त्रों में स्त्रियों के लिये कोई प्रतिबन्ध नहीं है। उन्होंने रूढ़िवादी लोगों के विरोध की रत्तीभर भी परवाह न करते हुए हिन्दू विश्व-विद्यालय में स्त्रियों को वेद पढ़ने की खुली व्यवस्था कर दी।

अब भी कई महानुभाव यह कहते रहते हैं कि—"स्त्रियों को वेद या गायत्री का अधिकार नहीं है।" ऐसे लोगों की आँखें खोलने के लिये असंख्य प्रमाणों में से ऐसे कुछ थोड़े से प्रमाण इस पुस्तक में प्रस्तुत किये गये हैं। सम्भव है जानकारी के अभाव में किसी को विरोध रहा हो। दुराग्रह से कभी किसी विवाद का अन्त नहीं होता। अपनी ही बात को सिद्ध करने के लिये हठ ठानना अशोभनीय है। विवेकवान् व्यक्तियों का सदा यह सिद्धान्त रहता है कि 'जो सत्य सो हमारा।' अविवेकी मनुष्य 'जो हमारा सो सत्य' सिद्ध करने के लिये वितण्डा खड़ा करते हैं।

विचारवान् व्यक्तियों को अपने आप से एकान्त में बैठकर यह प्रश्न करना चाहिये—(१) यदि स्त्रियों को गायत्री या वेद-मन्त्रों का अधिकार नहीं, तो प्राचीनकाल में स्त्रियाँ वेदों की मन्त्र द्रष्ट्री—ऋषिकायें क्यों हुईं? (२) यदि वेद की वे अधिकारिणी नहीं, तो यज्ञ आदि धार्मिक कृत्यों तथा षोडश संस्कारों में उन्हें सम्मिलित क्यों किया जाता है? (३) विवाह आदि अवसरों पर स्त्रियों के मुख से वेद-मन्त्रों का उच्चारण क्यों कराया जाता है? (४) बिना वेद-मन्त्रों के नित्य सन्ध्या और हवन स्त्रियाँ कैसे कर सकती हैं? (५) यदि स्त्रियाँ अनधिकारिणी थीं, तो अनसूया, अहल्या, अरुन्धती, मदालसा आदि अगणित स्त्रियाँ वेद शास्त्रों में पारंगत कैसे थीं? (६) ज्ञान, धर्म और उपासना के स्वाभाविक अधिकारों से नागरिकों को वंचित करना क्या अन्याय एवं पक्षपात नहीं है? (७) क्या नारी को आध्यात्मिक दृष्टि से अयोग्य ठहराकर उनसे उत्पन्न होने वाली संतान धार्मिक हो सकती है? (८) जब स्त्री पुरुष की अर्धांगिनी है, तो आधा अंग अधिकारी और आधा अनधिकारी किस प्रकार रहा?

इन प्रश्नों पर विचार करने से हर एक निष्पक्ष व्यक्ति की अन्तरात्मा यही उत्तर देगी कि स्त्रियों पर धार्मिक अयोग्यता का प्रतिबन्ध लगाना किसी प्रकार न्याय संगत नहीं हो सकता। उन्हें भी गायत्री आदि मन्त्रों का पुरुषों की भाँति ही अधिकार होना चाहिये। हम स्वयं भी इसी निष्कर्ष पर पहुँचे हैं। हमारा ऐसी पचासों स्त्रियों से परिचय है, जिनने श्रद्धापूर्वक वेदमाता गायत्री की उपासना की है और पुरुषों के ही समान संतोषजनक परिणाम प्राप्त किये हैं। कई बार तो उन्हें पुरुषों से भी अधिक एवं शीघ्र सफलतायें मिलीं। कन्यायें उत्तम घर-वर प्राप्त करने में, सधवायें पति का सुख-सौभाग्य एवं सुसंतति के सम्बन्ध में और विधवायें संयम तथा धन उपार्जन में आशाजनक सफल हुई हैं।

आत्मा न स्त्री है, न पुरुष। वह विशुद्ध ब्रह्म ज्योति की चिनगारी है। आत्मिक प्रकाश प्राप्त करने के लिये जैसे पुरुष को किसी गुरु या पथ-प्रदर्शक की आवश्यकता होती है, वैसे ही स्त्री को भी होती है। तात्पर्य यह है कि साधना क्षेत्र में पुरुष-स्त्री का भेद नहीं। साधक 'आत्मा' है, उन्हें अपने को पुरुष-स्त्री न समझ कर आत्मा समझना चाहिये। साधना क्षेत्र में सभी आत्मायें समान हैं। लिंग भेद के कारण कोई अयोग्यता उन पर नहीं थोपी जानी चाहिये।

पुरुष की अपेक्षा स्त्री में धार्मिक तत्त्वों की मात्रा अधिक होती है। पुरुषों पर बुरे वातावरण एवं व्यवहार की छाया अधिक पड़ती है, जिससे बुराइयाँ अधिक हो जाती हैं। आर्थिक संघर्ष में रहने के कारण चोरी, बेईमानी आदि के अवसर भी उसके सामने आते रहते हैं, पर स्त्रियों का कार्य-क्षेत्र बड़ा सरल, सीधा और सात्त्विक है। घर में जो कार्य करना पड़ता है, उसमें सेवा की मात्रा अधिक रहती है। वे आत्म-निग्रह करती हैं, कष्ट सहती हैं, पर बच्चों के प्रति, पतिदेव के प्रति, सास-ससुर, देवर-जेठ आदि सभी के प्रति अपने व्यवहार को सौम्य, सहृदय, सेवापूर्ण, उदार, शिष्ट एवं सहिष्णु रखती हैं। उनकी दिनचर्या सतोगुणी होती है, जिसके कारण उनकी अन्तरात्मा पुरुषों की अपेक्षा कहीं अधिक पवित्र रहती है। चोरी, हत्या, ठगी, धूर्तता, शोषण, निष्ठुरता, व्यसन, अहंकार,

असंयम, असत्य आदि दुर्गुण पुरुष में ही प्रधानतया पाये जाते हैं, स्त्रियों में इस प्रकार के पाप बहुत कम देखने को मिलते हैं । यों तो फैशनपरस्ती, अशिष्टता, कर्कशता, श्रम से जी चुराना आदि छोटी-छोटी बुराइयाँ अब स्त्रियों में बढ़ने लगी हैं, परन्तु पुरुषों की तुलना में स्त्रियाँ निस्संदेह अनेक गुनी अधिक सद्‌गुणी हैं, उनकी बुराइयाँ अपेक्षाकृत बहुत ही सीमित हैं ।

ऐसी स्थिति में पुरुषों की अपेक्षा महिलाओं में धार्मिक प्रवृत्ति का होना स्वाभाविक ही है, उनकी मनोभूमि में धर्म का बीजांकुर अधिक जल्दी जमता और फलता-फूलता है । अवकाश रहने के कारण वे घर में पूजा-आराधना की नियमित व्यवस्था भी कर सकती हैं । अपने बच्चों पर धार्मिक संस्कार अधिक अच्छी तरह से डाल सकती हैं । इन सब बातों को देखते हुए महिलाओं को धार्मिक साधना के लिये उत्साहित करने की आवश्यकता है । इसके विपरीत उन्हें नीच, अनधिकारिणी, शूद्रा आदि कहकर उनके मार्ग में रोड़े खड़े करना, निरुत्साहित करना किस प्रकार उचित है, यह समझ में नहीं आता ।

महिलाओं के वेद-शास्त्र अपनाने एवं गायत्री-साधना करने के असंख्य प्रमाण धर्म-ग्रन्थों में भरे पड़े हैं, उनकी ओर से आँखें बन्द करके किन्हीं दो-चार प्रक्षिप्त श्लोकों को लेकर बैठना और उन्हीं के आधार पर स्त्रियों को अनधिकारिणी ठहराना कोई बुद्धिमानी की बात नहीं है । धर्म की ओर एक तो वैसे ही किसी की प्रवृत्ति नहीं है, फिर किसी को उत्साह, सुविधा हो, तो उसे अनधिकारी घोषित करके ज्ञान और उपासना का रास्ता बन्द कर देना कोई विवेकशीलता नहीं है ।

हमने भली प्रकार खोज, विचार, मनन और अन्वेषण करके यह पूरी तरह विश्वास कर लिया है कि स्त्रियों को पुरुषों की भाँति ही गायत्री का अधिकार है । वे भी पुरुषों की भाँति ही माता की गोदी में चढ़ने की, उसका आँचल पकड़ने की, उसका पयःपान करने की पूर्ण अधिकारिणी हैं । उन्हें सब प्रकार का संकोच छोड़कर प्रसन्नतापूर्वक गायत्री की उपासना करनी चाहिये । इससे उनके भव-बन्धन कटेंगे, जन्म-मरण की फाँसी से छूटेंगी, जीवनमुक्ति और स्वर्गीय शान्ति की अधिकारिणी बनेंगी । साथ ही अपने पुण्य- प्रताप से अपने परिजनों के स्वास्थ्य, सौभाग्य, वैभव एवं सुख- शान्ति की दिन-दिन वृद्धि करने में महत्त्वपूर्ण सहयोग दे सकेंगी । गायत्री को अपनाने वाली देवियाँ सच्चे अर्थों में देवी बनती हैं, उनके दिव्य गुणों का प्रकाश होता है, तदनुसार वे सर्वत्र उसी आदर को प्राप्त करती हैं, जो उनका ईश्वर प्रदत्त जन्मजात अधिकार है ।

गायत्री का शाप विमोचन और उत्कीलन का रहस्य

गायत्री मन्त्र की महिमा गाते हुए शास्त्र और ऋषि-महर्षि थकते नहीं । इसकी प्रशंसा तथा महत्ता के संबंध में जितना कहा गया है उतना शायद ही और किसी की प्रशंसा में कहा गया हो । प्राचीनकाल में बड़े-बड़े तपस्वियों ने प्रधान रूप से गायत्री की ही तपश्चर्यायें करके अभीष्ट सिद्धियाँ प्राप्त की थीं । शाप और वरदान के लिये वे विविध विधियों से गायत्री का ही प्रयोग करते थे ।

प्राचीनकाल में गायत्री गुरु-मन्त्र था । आज भी गायत्री मन्त्र प्रसिद्ध है । अधिकांश मनुष्य उसे जानते हैं । अनेक मनुष्य किसी न किसी प्रकार उसको दुहराते या जपते रहते हैं अथवा किसी विशेष अवसर पर स्मरण कर लेते हैं । इतने पर भी देखा जाता है कि उससे कोई विशेष लाभ नहीं होता । गायत्री जानने वालों में कोई विशेष स्तर दिखाई नहीं देता । इस आधार पर यह आशंका होने लगती है—'कहीं गायत्री की प्रशंसा और महिमा में वर्णन करने वालों ने अत्युक्ति तो नहीं की ?' कई मनुष्य आरंभ में उत्साह दिखाकर थोड़े ही दिनों में उसे छोड़ बैठते हैं, वे देखते हैं कि इतने दिन हमने गायत्री की उपासना की, पर लाभ कुछ न हुआ । फिर क्यों इसके लिये समय बरबाद किया जाए ।

कारण यह है कि प्रत्येक कार्य एक नियत विधि-व्यवस्था द्वारा पूरा होता है । चाहे जैसे, चाहे जिस काम को, चाहे जिस प्रकार करना आरम्भ कर दिया जाए, तो अभीष्ट परिणाम नहीं मिल सकता । मशीनों द्वारा बड़े-बड़े कार्य होते हैं, पर होते तभी हैं जब वे उचित रीति से चलायी जाएँ । यदि कोई अनाड़ी चलाने वाला मशीन को यों ही

अन्धा-धुन्ध चालू कर दे तो लाभ होना तो दूर, उल्टे कारखाने के लिये तथा चलाने वाले के लिये संकट उत्पन्न हो सकता है । मोटर तेज दौड़ने वाला वाहन है । उसके द्वारा एक-एक दिन में कई सौ मील की यात्रा सुखपूर्वक की जा सकती है, पर अगर कोई अनाड़ी आदमी ड्राइवर की जगह जा बैठे और चलाने की विधि तथा कल-पुर्जे के उपयोग की जानकारी न होते हुए भी उसे चलाना आरंभ कर दे तो यात्रा तो दूर, उल्टे ड्राईवर और मोटर यात्रा करने वालों के लिये अनिष्ट खड़ा हो जायेगा या यात्रा निष्फल होगी । ऐसी दशा में मोटर को कोसना, उसकी शक्ति पर अविश्वास कर बैठना उचित नहीं कहा जा सकता । अनाड़ी साधकों द्वारा की गयी उपासना भी यदि निष्फल हो, तो आश्चर्य की बात नहीं है ।

जो वस्तु जितनी अधिक महत्त्वपूर्ण होती है, उसकी प्राप्ति उतनी ही कठिन भी होती है । सीप-घोंघे आसानी से मिल सकते हैं, उन्हें चाहे कोई बीन सकता है, पर मोती जिन्हें प्राप्त करने हैं, उन्हें समुद्र तल तक पहुँचना पड़ेगा और इस खतरे के काम को किसी से सीखना पड़ेगा । कोई अजनबी आदमी गोताखोरी को बच्चों का खेल समझकर या यों ही समुद्र तल में उतरने के लिये डुबकी लगाये, तो उसे अपनी नासमझी के कारण असफलता पर आश्चर्य नहीं करना चाहिये ।

यों गायत्री में अन्य समस्त मंत्रों की अपेक्षा एक खास विशेषता यह है कि नियत विधि से साधना न करने पर भी साधक की कुछ हानि नहीं होती है । परिश्रम भी निष्फल नहीं जाता, कुछ न कुछ लाभ ही रहता है, पर उतना लाभ नहीं होता, जितना कि विधिपूर्वक साधना के द्वारा होना चाहिये । गायत्री की तांत्रिक उपासना में तो अविधि साधना से हानि भी होती है, पर साधारण साधना में वैसा कोई खतरा नहीं है, तो भी परिश्रम का पूरा प्रतिफल न मिलना भी तो एक प्रकार की हानि ही है । इसलिये बुद्धिमान् मनुष्य उतावली, अहम्मन्यता, उपेक्षा के शिकार नहीं होते और साधना-मार्ग पर वैसी ही समझदारी से चलते हैं, जैसे हाथी नदी को पार करते समय थाह-थाह कर धीरे-धीरे आगे कदम बढ़ाता है ।

कुछ औषधियाँ नियत मात्रा में लेकर नियत विधिपूर्वक तैयार करके रसायन बनायी जाएँ और नियत मात्रा में, नियत अनुपात के साथ रोगी को सेवन करायी जाएँ, तो आश्चर्यजनक लाभ होता है, परन्तु यदि उन्हीं औषधियों को चाहे जिस तरह, चाहे जितनी मात्रा में लेकर, चाहे जैसे बना डाला जाए और चाहे जिस रोगी को, चाहे जितनी मात्रा में, चाहे जिस अनुपात में सेवन करा दिया जाए, तो निश्चय ही परिणाम अच्छा न होगा । वे औषधियाँ, जो विधिपूर्वक प्रयुक्त होने पर अमृतोपम लाभ दिखाती थीं, अविधिपूर्वक प्रयुक्त होने पर निरर्थक सिद्ध होती हैं । ऐसी दशा में उन औषधियों को दोष देना न्याय संगत नहीं कहा जा सकता है । गायत्री साधना भी यदि अविधिपूर्वक की गयी है, तो वैसा लाभ नहीं दिखा सकती जैसा कि विधिपूर्वक साधना से होना चाहिये ।

पात्र-कुपात्र कोई गायत्री शक्ति का मनमाना प्रयोग न कर सके, इसलिये कलियुग से पूर्व ही गायत्री को कीलित कर दिया गया है । जो उसका उत्कीलन जानता है, वही लाभ उठा सकता है । बन्दूक का लाइसेन्स सरकार उन्हीं को देती है, जो उसके पात्र हैं । परमाणु बम का रहस्य थोड़े-से लोगों तक सीमित रखा गया है, ताकि हर कोई उसका दुरुपयोग न कर डाले । कीमती खजाने की तिजोरियों में बढ़िया चोर ताले लगे होते हैं , ताकि अनधिकारी लोग उसे खोल न सकें । इसी आधार पर गायत्री को कीलित किया गया है कि हर कोई उससे अनुपयुक्त प्रयोजन सिद्ध न कर सके ।

पुराणों में ऐसा उल्लेख मिलता है कि एक बार गायत्री को वसिष्ठ और विश्वामित्र ऋषियों ने शाप दिया कि—"उसकी साधना निष्फल होगी ।" इतनी बड़ी शक्ति के निष्फल होने से हाहाकार मच गया, तब देवताओं ने प्रार्थना की कि इन शापों का विमोचन होना चाहिये । अन्त में ऐसा मार्ग निकाला गया कि जो शाप-विमोचन की विधि पूरी करके गायत्री साधना करेगा, उसका प्रयत्न सफल होगा और शेष लोगों का श्रम निरर्थक जायेगा । इस पौराणिक उपाख्यान में एक भारी रहस्य छिपा हुआ है, जिसे न जानने वाले केवल **"शापमुक्ताभव"** मन्त्रों को दुहराकर यह मान लेते हैं कि हमारी साधना शापमुक्त हो गयी ।

वसिष्ठ का अर्थ है—"विशेष रूप से श्रेष्ठ ।" गायत्री साधना में जिन्होंने विशेष रूप से श्रम किया है, जिसने

सवा करोड़ जप किया होता है, उसे वसिष्ठ पदवी दी जाती है। रघुवंशियों के कुल-गुरु सदा ऐसे ही वसिष्ठ पदवीधारी होते थे। रघु, अज, दिलीप, दशरथ, राम, लव-कुश आदि इन छः पीढ़ियों के गुरु एक वसिष्ठ नहीं बल्कि अलग-अलग थे, पर उपासना के आधार पर इन सभी ने वसिष्ठ पदवी को पाया था। वसिष्ठ का शाप मोचन करने का तात्पर्य यह है कि इस प्रकार के वसिष्ठ से गायत्री साधना की शिक्षा लेनी चाहिये, उसे अपना पथ-प्रदर्शक नियुक्त करना चाहिये। कारण है कि अनुभवी व्यक्ति ही यह जान सकता है कि मार्ग में कहाँ क्या-क्या कठिनाइयाँ आती हैं और उनका निवारण कैसे किया जा सकता है ? जब पानी में तैरने की शिक्षा किसी नये व्यक्ति को दी जाती है, तो कोई कुशल तैराक उसके साथ रहता है, ताकि कदाचित् नौसिखिया डूबने लगे तो वह हाथ पकड़कर उसे खींच ले और उसे पार लगा दे तथा तैरते समय जो भूल हो रही हो, उसे समझाता-सुधारता चला जाये। यदि कोई शिक्षक तैराक न हो और तैरना सीखने के लिये बालक मचल रहे हों, तो कोई वृद्ध विनोदी पुरुष उन बालकों को समझाने के लिये ऐसा कह सकता है कि—"बच्चो ! तालाब में न उतरना, इसमें तैराक गुरु का शाप है। बिना गुरु का शाप मुक्त हुए तैरना सीखोगे, तो वह निष्फल होगा।" इन शब्दों में अहंकार तो है, शाब्दिक अत्युक्ति भी इसे कह सकते हैं, पर तथ्य बिल्कुल सच्चा है। बिना शिक्षक की निगरानी के तैरना सीखने की कोशिश करना एक दुस्साहस ही है।

सवा करोड़ जप की साधना करने वाले गायत्री उपासक वसिष्ठ की संरक्षकता प्राप्त कर लेना ही वसिष्ठ शाप-मोचन है, इससे साधक निर्भय, निधड़क अपने मार्ग पर तेजी से बढ़ता चलता है। रास्ते की कठिनाइयों को वह संरक्षक दूर करता चलता है, जिससे नये साधक के मार्ग की बहुत-सी बाधाएँ अपने आप दूर हो जाती हैं और अभीष्ट उद्देश्य तक जल्दी ही पहुँच जाता है।

गायत्री को केवल वसिष्ठ का ही शाप नहीं, एक दूसरा शाप भी है, वह है विश्वामित्र का। इस रत्न-कोष पर दुहरे ताले जड़े हुए हैं, ताकि अधिकारी लोग ही खोल सकें और ले भागू, जल्दबाज, अश्रद्धालु, हरामखोरों की दाल न गलने पाये। विश्वामित्र का अर्थ है—संसार की भलाई करने वाला, परमार्थी, उदार, सत्पुरुष, कर्त्तव्यनिष्ठ। गायत्री का शिक्षक केवल वसिष्ठ गुण वाला होना ही पर्याप्त नहीं है, वरन् उसे विश्वामित्र भी होना चाहिये। कठोर साधना और तपश्चर्या द्वारा बुरे स्वभाव के लोग भी सिद्धि प्राप्त कर लेते हैं। रावण वेदपाठी था, उसने बड़ी-बड़ी तपश्चर्यायें करके आश्चर्यजनक सिद्धियाँ भी प्राप्त की थीं। इस प्रकार वह वसिष्ठ पदवीधारी तो कहा जा सकता है, पर विश्वामित्र नहीं, क्योंकि संसार की भलाई के, धर्माचार्य एवं परमार्थ के गुण उसमें नहीं थे। स्वार्थी, लालची तथा संकीर्ण मनोवृत्ति के लोग चाहे कितने ही बड़े सिद्ध क्यों न हों, शिक्षण किये जाने योग्य नहीं, यही दुहरा शाप विमोचन है। जिसने वसिष्ठ और विश्वामित्र गुण वाला पथ-प्रदर्शक, गायत्री - गुरु प्राप्त कर लिया, उसने दोनों शापों से गायत्री को छुड़ा लिया। उनकी साधना वैसा ही फल उपस्थित करेगी, जैसा कि शास्त्रों में वर्णित है।

यह कार्य सरल नहीं है, क्योंकि एक तो ऐसे व्यक्ति ही मुश्किल से मिलते हैं, जो वसिष्ठ और विश्वामित्र गुणों से सम्पन्न हों। यदि मिलें भी तो हर किसी का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेने को तैयार नहीं होते, क्योंकि उनकी शक्ति और सामर्थ्य सीमित होती है और उससे वे कुछ थोड़े ही लोगों की सेवा कर सकते हैं। यदि पहले से ही उतने लोगों का भार अपने ऊपर लिया हुआ है, तो अधिक की सेवा करना उनके लिये कठिन है। स्कूलों में एक अध्यापक प्रायः ३० की संख्या तक विद्यार्थी पढ़ा सकता है। यदि वह संख्या ६० हो जाय तो न तो अध्यापक पढ़ा सकेगा, न बालक पढ़ सकेंगे, इसलिये ऐसे सुयोग्य शिक्षक सदा ही नहीं मिल सकते। लोभी, स्वार्थी और ठग गुरुओं की कमी नहीं, जो दो रुपया गुरु-दक्षिणा लेने के लोभ से चाहे किसी के गले में कण्ठी बाँध देते हैं। ऐसे लोगों को पथ-प्रदर्शक नियुक्त करना एक प्रवञ्चना और विडम्बना मात्र है।

गायत्री-दीक्षा गुरुमुख होकर ली जाती है, तभी फलदायक होती है। बारूद को जमीन पर चाहे जहाँ फैलाकर उसमें दियासलाई लगाई जाए, तो वह मामूली तरह से जल जायेगी, पर उसे ही बन्दूक में भरकर विधिपूर्वक प्रयुक्त किया जाए, तो उससे भयंकर शब्द के साथ एक प्राणघातक शक्ति पैदा होगी। छपे हुए कागजों में पढ़कर

या कहीं किसी से भी गायत्री सीख लेना ऐसा ही है, जैसा जमीन पर बिछाकर बारूद को जलाना और गुरुमुख होकर गायत्री-दीक्षा लेना ऐसा है, जैसा बन्दूक के माध्यम से बारूद का उपयोग होना ।

गायत्री की विधिपूर्वक साधना करना ही अपने परिश्रम को सफल बनाने का सीधा मार्ग है । इस मार्ग का पहला आधार ऐसे पथ-प्रदर्शक को खोज निकालना है, जो वसिष्ठ एवं विश्वामित्र गुण वाला हो और जिसके संरक्षण में शाप-विमोचन गायत्री साधना हो सके, ऐसे सुयोग्य संरक्षक सबसे पहले यह देखते हैं कि साधक की मनोभूमि, शक्ति, सामर्थ्य, रुचि कैसी है, उसी के अनुसार वे उसके लिये साधना-विधि चुनकर देते हैं । अपने आप विद्यार्थी यह निश्चित नहीं कर सकता है कि मुझे किस क्रम से क्या-क्या पढ़ना चाहिये ? इसे तो अध्यापक ही जानता है कि वह विद्यार्थी किस कक्षा की योग्यता रखता है और इसे क्या पढ़ाया जाना चाहिये ? जैसे अलग-अलग प्रकृति के एक रोग के रोगियों को भी औषधि अलग-अलग अनुपान तथा मात्रा का ध्यान रखकर दी जाती है, वैसे ही साधकों की आंतरिक स्थिति के अनुसार उसके साधना नियमों में हेर-फेर हो जाता है । इसका निर्णय साधक स्वयं नहीं कर सकता । यह कार्य तो सुयोग्य, अनुभवी और सूक्ष्मदर्शी पथ-प्रदर्शक ही कर सकता है ।

आध्यात्मिक मार्ग पर आगे बढ़ाने के लिये श्रद्धा और विश्वास यह दो प्रधान अवलम्बन हैं । इन दोनों का प्रारम्भिक अभ्यास गुरु को माध्यम बनाकर किया जाता है । जैसे ईश्वर उपासना का प्रारम्भिक माध्यम किसी मूर्ति, चित्र या छवि को बनाया जाता है, वैसे ही श्रद्धा और विश्वास की उन्नति गुरु नामक व्यक्ति के ऊपर उन्हें दृढ़तापूर्वक जमाने से होती है । प्रेम तो स्त्री, भाई, मित्र आदि पर भी हो सकता है, पर श्रद्धायुक्त प्रेम का पात्र गुरु ही होता है । माता-पिता भी यदि वसिष्ठ-विश्वामित्र गुण वाले हों, तो वे सबसे उत्तम गुरु हो सकते हैं । गुरु परम हितचिन्तक, शिष्य की मनोभूमि से परिचित और उसकी कमजोरियों को समझने वाला होता है, इसलिये उसके दोषों को जानकर उन्हें धीरे-धीरे दूर करने का उपाय करता रहता है, पर उन दोषों के कारण वह न तो शिष्य से घृणा करता है और न विरोध । न ही उसको अपमानित, तिरस्कृत एवं बदनाम होने देता है, वरन् उन दोषों को बाल-चापल्य समझकर धीरे-धीरे उसकी रुचि दूसरी ओर.मोड़ने का प्रयत्न करता रहता है, ताकि वे अपने-आप छूट जाएँ । योग्य गुरु अपनी साधना द्वारा एकत्र की हुई आत्म-शक्ति को धीरे-धीरे शिष्य के अन्तःकरण में वैसे ही प्रवेश कराता है, जैसे माता अपने पचाये हुए भोजन को स्तनों में दूध बनाकर अपने बालक को पिलाती रहती है । माता का दूध पीकर बालक पुष्ट होता है । गुरु का आत्म-तेज पीकर शिष्य का आत्मबल बढ़ता है । इस आदान-प्रदान को आध्यात्मिक भाषा में "शक्तिपात" कहते हैं । ऐसे गुरु का प्राप्त होना पूर्व संचित शुभ-संस्कारों का फल अथवा प्रभु की महती कृपा का चिह्न ही समझना चाहिये ।

कितने ही व्यक्ति सोचते हैं कि हम अमुक समय एक व्यक्ति को गुरु बना चुके, अब हमें दूसरे पथ-प्रदर्शक की नियुक्ति का अधिकार नहीं रहा । उनका यह सोचना वैसा ही है, जैसे कोई विद्यार्थी यह कहे कि "अक्षर आरम्भ करते समय जिस अध्यापक को मैंने अध्यापक माना था, अब जीवन भर उसके अतिरिक्त न किसी से शिक्षा ग्रहण करूँगा और न किसी को अध्यापक मानूँगा ।" एक ही अध्यापक से संसार के सभी विषयों को जान लेने की आशा नहीं की जा सकती । फिर वह अध्यापक मर जाए, रोगी हो जाए, कहीं चला जाए, तो भी उसी से शिक्षा लेने का आग्रह करना किस प्रकार उचित कहा जा सकता है ? फिर ऐसा भी हो सकता है कि कोई शिष्य प्राथमिक गुरु की अपेक्षा कहीं अधिक जानकार हो जाए और उसका जिज्ञासा - क्षेत्र बहुत विस्तृत हो जाए, ऐसी दशा में भी उसकी जिज्ञासाओं का समाधान उस प्राथमिक शिक्षक द्वारा ही करने का आग्रह किया जाए, तो यह किस प्रकार सम्भव है ?

प्राचीनकाल के इतिहास पर दृष्टिपात करने से उलझन का समाधान हो जाता है । महर्षि दत्तात्रेय ने चौबीस गुरु किये थे । राम और लक्ष्मण ने जहाँ वसिष्ठ से शिक्षा पायी थी, वहाँ विश्वामित्र से भी बहुत कुछ सीखा था । दोनों ही उनके गुरु थे । श्रीकृष्ण ने सन्दीपन ऋषि से भी विद्यायें पढ़ी थीं और महर्षि दुर्वासा भी उनके गुरु थे । अर्जुन के गुरु द्रोणाचार्य भी थे और कृष्ण भी । इन्द्र के बृहस्पति भी थे और नारद भी । इस प्रकार अनेकों उदाहरण ऐसे मिलते हैं, जिनसे प्रकट होता है कि आवश्यकतानुसार एक गुरु अनेक शिष्यों की सेवा कर सकता है और

एक शिष्य अनेक गुरुओं से ज्ञान प्राप्त कर सकता है । इसमें कोई ऐसा सीमा बन्धन नहीं , जिसके कारण एक के उपरान्त किसी दूसरे से प्रकाश प्राप्त करने में प्रतिबन्ध हो । वैसे भी एक व्यक्ति के कई पुरोहित होते हैं । ग्राम्य पुरोहित, तीर्थ पुरोहित और कुल पुरोहित, राष्ट्र पुरोहित, दीक्षा पुरोहित आदि । जिसे गायत्री साधना का पथ-प्रदर्शक नियुक्त किया जाता है, वह साधना पुरोहित या ब्रह्म पुरोहित है । ये सभी पुरोहित अपने-अपने क्षेत्र, अवसर और कार्य में पूछने योग्य तथा पूजने योग्य हैं । वह एक-दूसरे के विरोधी नहीं वरन् पूरक हैं ।

चौबीस अक्षरों का गायत्री मन्त्र सर्व प्रसिद्ध है, उसे आजकल शिक्षित वर्ग के सभी लोग जानते हैं । फिर भी उपासना करनी है, साधनाजन्य लाभों को लेना है, तो गुरुमुख होकर गायत्री दीक्षा लेनी चाहिये । वसिष्ठ और विश्वामित्र का शाप-विमोचन करके, कीलित गायत्री का उत्कीलन करके साधना करनी चाहिये । गुरुमुख कर गायत्री दीक्षा लेना एक संस्कार है । उसमें उस दिन गुरु-शिष्य दोनों को उपवास रखना पड़ता है । शिष्य-चन्दन, अक्षत, धूप-दीप, पुष्प, नैवेद्य, अन्न, वस्त्र, पात्र, दक्षिणा आदि से गुरु का पूजन करता है । गुरु शिष्य को मन्त्र देता है और पथ-प्रदर्शन का भार अपने ऊपर लेता है । इस ग्रन्थि-बन्धन के उपरान्त अपने उपयुक्त साधना निश्चित कराके जो शिष्य श्रद्धापूर्वक आगे बढ़ते हैं , वे भगवती की कृपा से अपने अभीष्ट उद्देश्य को प्राप्त कर लेते हैं ।

जब से गायत्री की दीक्षा ले ली जाए, तब से लेकर जब तक पूर्ण सिद्धि प्राप्त न हो जाए, तब तक साधना गुरु को अपनी साधना के समय समीप रखना चाहिये । गुरु का प्रत्यक्ष रूप से सदा साथ रहना तो संभव नहीं हो सकता, पर उनका चित्र शीशे में मढ़वा कर पूजा के स्थान पर रखा जा सकता है और गायत्री, संध्या, जप, अनुष्ठान या कोई और साधना आरम्भ करने से पूर्व उस चित्र का पूजन धूप, अक्षत, नैवेद्य, पुष्प, चन्दन आदि से कर लेना चाहिये । जहाँ चित्र उपलब्ध न हो, वहाँ एक नारियल को गुरु के प्रतीक रूप में स्थापित कर लेना चाहिये । एकलव्य भील की कथा प्रसिद्ध है कि उसने द्रोणाचार्य की मिट्टी की मूर्ति स्थापित करके उसी को गुरु माना था और उसी से पूछकर बाण-विद्या सीखता था । अन्त में वह इतना सफल धनुर्धारी हुआ कि पाण्डवों तक को उसकी विशेषता देखकर आश्चर्यचकित होना पड़ा था । चित्र या नारियल के माध्यम से गुरु पूजा करके तब जो भी गायत्री साधना आरम्भ की जायेगी, वह शाप-मुक्त तथा उत्कीलित होगी ।

गायत्री की मूर्तिमान् प्रतिमा यज्ञोपवीत

यज्ञोपवीत को "ब्रह्मसूत्र" भी कहा जा सकता है । सूत्र डोरे को भी कहते हैं और उस संक्षिप्त शब्द-रचना को जिसका अर्थ बहुत विस्तृत होता है । व्याकरण, दर्शन, धर्म, कर्मकाण्ड आदि के अनेकों ग्रन्थ ऐसे हैं, जिनमें ग्रन्थकर्त्ताओं ने अपने मन्तव्यों को बहुत ही संक्षिप्त संस्कृत वाक्यों में सन्निहित कर दिया है । उन सूत्रों पर लम्बी वृत्तियाँ, टिप्पणियाँ तथा टीकायें हुई हैं, जिनके द्वारा उन सूत्रों में छिपे हुए अर्थों का विस्तार होता है । ब्रह्मसूत्र में यद्यपि अक्षर नहीं हैं , तो भी संकेतों से बहुत कुछ बताया गया है । मूर्तियाँ, चिह्न, चित्र, अवशेष आदि के आधार पर बड़ी-बड़ी महत्त्वपूर्ण जानकारियाँ प्राप्त होती हैं । यद्यपि इनमें अक्षर नहीं होते, तो भी बहुत कुछ प्रकट हो जाता है । भले ही उस इशारे में किसी शब्द-लिपि का प्रयोग नहीं किया जाता है । यज्ञोपवीत के ब्रह्मसूत्र यद्यपि वाणी और लिपि से रहित हैं, तो भी उनमें एक विशद व्याख्यान की अभिभावना भरी हुई है ।

गायत्री को गुरु मन्त्र कहा जाता है । यज्ञोपवीत धारण करते समय जो वेदारंभ कराया जाता है, वह गायत्री से कराया जाता है । प्रत्येक द्विज को गायत्री जानना उसी प्रकार अनिवार्य है, जैसे कि यज्ञोपवीत धारण करना । यह गायत्री-यज्ञोपवीत का जोड़ा ऐसा ही है, जैसा लक्ष्मी-नारायण, सीताराम, राधेश्याम, प्रकृति-ब्रह्म, गौरीशंकर, नर-मादा का जोड़ा है । दोनों की सम्मिलित व्यवस्था का नाम ही गृहस्थ है, वैसे ही गायत्री-उपवीत का सम्मिलन ही द्विजत्व है । उपवीत सूत्र है, तो गायत्री उसकी व्याख्या है । दोनों की आत्मा एक-दूसरे के साथ जुड़ी हुई है ।

यज्ञोपवीत में तीन तार हैं, गायत्री में तीन चरण हैं । 'तत्सवितुर्वरेण्यं' प्रथम चरण, 'भर्गोदेवस्य धीमहि' द्वितीय चरण, 'धियो यो न: प्रचोदयात्' तृतीय चरण है । तीनों तारों का क्या तात्पर्य है ? इसमें क्या सन्देश निहित है ? यह बात समझनी हो तो गायत्री के इन तीन चरणों को भली प्रकार जान लेना चाहिये ।

उपवीत में तीन प्रकार की ग्रन्थियाँ और एक ब्रह्म ग्रन्थि होती हैं। गायत्री में तीन व्याहृतियाँ (भूः भुवः स्वः) और एक प्रणव (ॐ) है। गायत्री के आरम्भ में ओंकार और भूः भुवः स्वः का जो तात्पर्य है, उसी ओर यज्ञोपवीत की तीन ग्रन्थियाँ संकेत करती हैं। उन्हें समझने वाला जान सकता है कि यह चार गाँठें मनुष्य जाति के लिये क्या-क्या संदेश देती हैं।
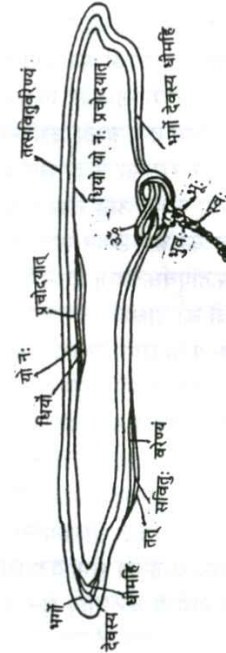
गायत्री महामन्त्र की प्रतिमा-यज्ञोपवीत
जिसमें ९ शब्द, तीन चरण, ॐ सहित तीन व्याहृतियाँ समाहित हैं।

इस महाविज्ञान को सरलतापूर्वक हृदयंगम करने के लिये इसे चार भागों में विभक्त कर सकते हैं। १—प्रणव तथा तीनों व्याहृतियाँ अर्थात् यज्ञोपवीत की चारों ग्रन्थियाँ, २—गायत्री का प्रथम चरण अर्थात् यज्ञोपवीत की प्रथम लड़, ३—द्वितीय चरण अर्थात् द्वितीय लड़, ४—तृतीय चरण अर्थात् तृतीय लड़। आइये अब इन पर विचार करें।

१. प्रणव का संदेश यह है—"परमात्मा सर्वत्र समस्त प्राणियों में समाया हुआ है, इसलिये लोक सेवा के लिये निष्काम भाव से कर्म करना चाहिये और अपने मन को स्थिर तथा शान्त रखना चाहिए।"

२. भूः का तत्त्वज्ञान यह है—"शरीर अस्थायी औजार मात्र है, इसलिये उस पर अत्यधिक आसक्त न होकर आत्मबल बढ़ाने का, श्रेष्ठ मार्ग का, सत्कर्मों का आश्रय ग्रहण करना चाहिये।"

३. भुवः का तात्पर्य है—"पापों के विरुद्ध रहने वाला मनुष्य देवत्व को प्राप्त करता है। जो पवित्र आदर्शों और साधनों को अपनाता है, वही बुद्धिमान् है।"

४. स्वः की प्रतिध्वनि यह है—"विवेक द्वारा शुद्ध बुद्धि से सत्य जानने, संयम और त्याग की नीति का आचरण करने के लिये अपने को तथा दूसरों को प्रेरणा देनी चाहिये।"

यह चतुर्मुख नीति यज्ञोपवीतधारी की होती है। इन सबका सारांश यह है कि उचित मार्ग से अपनी शक्तियों को बढ़ाओ और अन्तःकरण को उदार रखते हुए अपनी शक्तियों का अधिकांश भाग जनहित के लिये लगाये रहो। इसी कल्याणकारी नीति पर चलने से मनुष्य व्यष्टि रूप से तथा समस्त संसार में समष्टि रूप से सुख-शान्ति प्राप्त कर सकता है। यज्ञोपवीत गायत्री की मूर्तिमान् प्रतिमा है, उसका जो संदेश मनुष्य जाति के लिये है, उसके

अतिरिक्त और कोई मार्ग ऐसा नहीं, जिसमें वैयक्तिक तथा सामाजिक सुख-शान्ति स्थिर रह सके ।

सुरलोक में एक ऐसा कल्पवृक्ष है, जिसके नीचे बैठकर जिस वस्तु की कामना की जाए, वही वस्तु तुरन्त सामने उपस्थित हो जाती है । जो भी इच्छा की जाए तुरन्त पूर्ण हो जाती है । वह कल्पवृक्ष जिनके पास होगा, वे कितने सुखी और सन्तुष्ट होंगे, इसकी कल्पना सहज ही की जा सकती है ।

पृथ्वी पर भी एक ऐसा कल्पवृक्ष है, जिसमें सुरलोक के कल्पवृक्ष की सभी सम्भावनायें छिपी हुई हैं । इसका नाम है—गायत्री । गायत्री मन्त्र को स्थूल दृष्टि से देखा जाए, तो वह २४ अक्षरों और नौ पदों की शब्द- शृंखला मात्र है, परन्तु यदि गम्भीरतापूर्वक अवलोकन किया जाए, तो उसके प्रत्येक पद और अक्षर में ऐसे तत्त्वों का रहस्य छिपा हुआ मिलेगा, जिनके द्वारा कल्पवृक्ष के समान ही समस्त इच्छाओं की पूर्ति हो सकती है ।

अगले पृष्ठ पर गायत्री कल्पवृक्ष का चित्र दिया हुआ है । इसमें बताया गया है- "ॐ" ईश्वर, आस्तिकता ही भारतीय धर्म का मूल है । इससे आगे बढ़कर उसके तीन विभाग होते हैं—भूः भुवः स्वः । भूः का अर्थ है—आत्मज्ञान । भुवः का अर्थ है—कर्मयोग । स्वः का तात्पर्य है—स्थिरता, समाधि । इन तीनों शाखाओं में से प्रत्येक में तीन-तीन टहनियाँ निकलती हैं, उनमें से प्रत्येक के भी अपने-अपने तात्पर्य हैं । तत्-जीवन विज्ञान । सवितुः—शक्ति सञ्चय । वरेण्यं—श्रेष्ठता । भर्गो—निर्मलता । देवस्य—दिव्य दृष्टि । धीमहि—सद्गुण । धियो—विवेक । यो नः—संयम । प्रचोदयात्—सेवा । गायत्री हमारी मनोभूमि में इन्हीं को बोती है । फलस्वरूप जो खेत उगता है, वह कल्पवृक्ष से किसी प्रकार कम नहीं होता ।

ऐसा उल्लेख मिलता है कि कल्पवृक्ष के सब पत्ते रत्नजटित हैं । वे रत्नों जैसे सुशोभित और बहुमूल्य होते हैं । गायत्री कल्पवृक्ष के उपर्युक्त नौ पत्ते, निस्संदेह नौ रत्नों के समान मूल्यवान् और महत्त्वपूर्ण हैं । 'प्रत्येक पत्ता, प्रत्येक गुण' एक रत्न से किसी प्रकार कम नहीं है । "नौलखा हार" की ज़ेवरों में बहुत प्रशंसा है । नौ लाख रुपये की लागत से बना हुआ 'नौलखा हार' पहनने वाले अपने आप को बड़ा भाग्यशाली समझते हैं । यदि गम्भीर तात्त्विक और दूरदृष्टि से देखा जाए, तो यज्ञोपवीत भी नवरत्न जड़ित नौलखा हार से किसी प्रकार कम महत्त्व का नहीं है ।

गायत्री गीता के अनुसार यज्ञोपवीत के नौ तार, जिन नौ गुणों को धारण करने का आदेश करते हैं, वे इतने महत्त्वपूर्ण हैं कि नौ रत्नों की तुलना में इन गुणों की ही महिमा अधिक है ।

१. जीवन विज्ञान की जानकारी होने से मनुष्य जन्म-मरण के रहस्य को समझ जाता है । उसे सत्य का डर नहीं लगता, सदा निर्भय रहता है, उसे शरीर का तथा सांसारिक वस्तुओं का लोभ-मोह भी नहीं होता, फलस्वरूप जिन असाधारण हानि-लाभों के लिये लोग बेतरह दुःख के समुद्र में डूबते और हर्ष के मद में उछलते फिरते हैं, उन उन्मादों से बच जाता है ।

२. शक्ति संचय की नीति अपनाने वाला दिन-दिन अधिक स्वस्थ, विद्वान्, बुद्धिमान्, धनी, सहयोग सम्पन्न, प्रतिष्ठावान् बनता जाता है । निर्बलों पर प्रकृति के, बलवानों के तथा दुर्भाग्य के जो आक्रमण होते रहते हैं, उनसे वह बचा रहता है और शक्ति सम्पन्नता के कारण जीवन के नाना विध आनन्दों को स्वयं भोगता एवं अपनी शक्ति द्वारा दुर्बलों की सहायता करके पुण्य का भागी बनता है । अनीति वहीं पनपती है, जहाँ शक्ति का सन्तुलन नहीं होता । शक्ति-संचय का स्वाभाविक परिणाम है—अनीति का अन्त, जो कि सभी के लिये कल्याणकारी है ।

३. श्रेष्ठता का अस्तित्व परिस्थितियों में नहीं, विचारों में होता है । जो व्यक्ति साधन-सम्पन्नता में बढ़े-चढ़े हैं, परन्तु लक्ष्य, सिद्धान्त, आदर्श एवं अन्तःकरण की दृष्टि से गिरे हुए हैं, उन्हें निकृष्ट ही कहा जायेगा । ऐसे निकृष्ट अपनी आत्मा की दृष्टि में, परमात्मा की दृष्टि में और दूसरे गंभीर विवेकवान् व्यक्तियों की दृष्टि में नीच श्रेणी के ठहरते हैं, अपनी नीचता के दण्ड स्वरूप आत्म-ताड़ना, ईश्वरीय दण्ड और बुद्धि-भ्रम के कारण मानसिक अशान्ति में डूबते रहते हैं । इसके विपरीत कोई व्यक्ति भले ही गरीब, साधनहीन हो, पर उसका आदर्श, सिद्धान्त, उद्देश्य, अन्तःकरण उच्च तथा उदार है, तो वह श्रेष्ठ ही कहा जाएगा । यह श्रेष्ठता उसके लिये इतने आनन्द का उद्भव करती रहती है, जो बड़ी से बड़ी सांसारिक सम्पदा से भी सम्भव नहीं ।
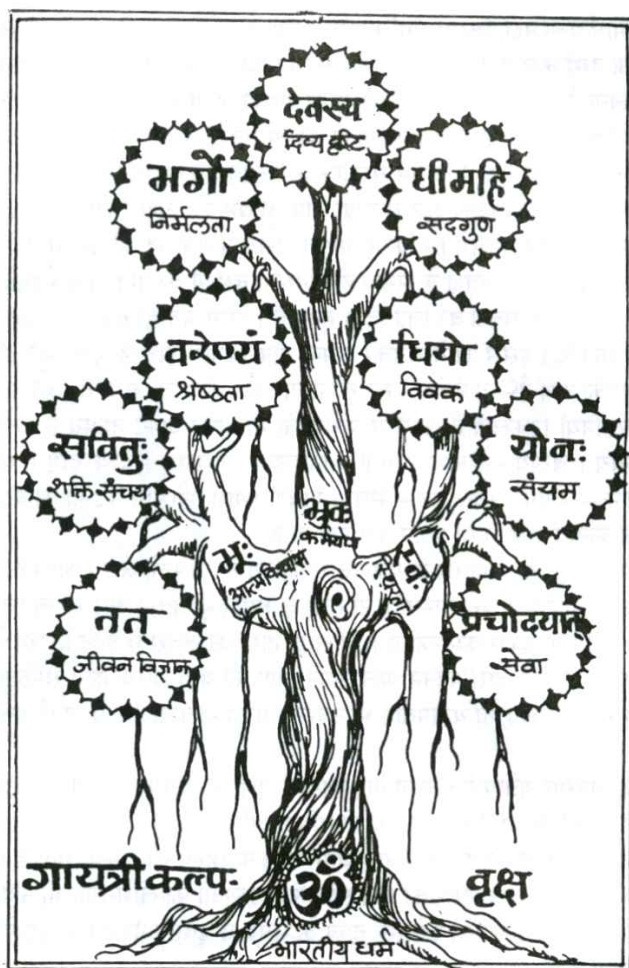
४. निर्मलता का अर्थ है—सौन्दर्य । सौन्दर्य वह वस्तु है, जिसे मनुष्य ही नहीं, पशु-पक्षी और कीट-पतंग तक पसन्द करते हैं । यह निश्चित है कि कुरूपता का कारण गन्दगी है । मलिनता जहाँ कहीं भी होगी, वहाँ कुरूपता रहेगी और वहाँ से दूर रहने की सबकी इच्छा होगी । शरीर के भीतर मल भरे होंगे तो मनुष्य कमजोर और बीमार रहेगा । इसी तरह कपड़े, भोजन, त्वचा, बाल, प्रयोजनीय पदार्थ आदि में गन्दगी होगी, तो वह घृणास्पद, अस्वास्थ्यकर, निकृष्ट एवं निन्दनीय बन जाएँगे । मन में, बुद्धि में, अन्तःकरण में मलिनता हो, तब तो कहना ही क्या है ? इन्सान का स्वरूप हैवान और शैतान से भी बुरा हो जाता है । इन विकृतियों से बचने का एकमात्र उपाय 'सर्वतोमुखी निर्मलता' है । जो भीतर-बाहर सब ओर से निर्मल है, जिसकी कमाई, विचार-धारा, देह, वाणी, पोशाक, झोंपड़ी, प्रयोजनीय सामग्री निर्मल है, स्वच्छ है, शुद्ध है, वह सब प्रकार से सुन्दर, प्रसन्न, प्रफुल्ल, मृदुल एवं सन्तुष्ट दिखाई देगा ।

५. दिव्य दृष्टि से देखने का अर्थ है—संसार के दिव्य तत्त्वों के साथ अपना सम्बन्ध जोड़ना । हर पदार्थ अपने सजातीय पदार्थों को अपनी ओर खींचता है और उन्हीं की ओर खुद खिंचता है । जिनका दृष्टिकोण संसार की अच्छाइयों को देखने, समझने और अपनाने का है, वह चारों ओर अच्छे व्यक्तियों को देखते हैं । लोगों के

उपकार, भलमनसाहत, सेवा-भाव, सहयोग और सत्कार्यों पर ध्यान देने से ऐसा प्रतीत होता है कि लोगों में बुराइयों की अपेक्षा अच्छाइयाँ अधिक हैं और संसार हमारे साथ अपकार की अपेक्षा उपकार कहीं अधिक कर रहा है । आँखों पर जिस रंग का चश्मा लगा लिया जाए, उसी रंग की सब वस्तुयें दिखाई पड़ती हैं । जिनकी दृष्टि दूषित है, उनके लिये प्रत्येक पदार्थ और प्रत्येक प्राणी बुरा है, पर जो दिव्य दृष्टि वाले हैं, वे प्रभु की इस परम पुनीत फुलवाड़ी में सर्वत्र आनन्द ही आनन्द बरसता देखते हैं ।

६. सद्‌गुण—अपने में अच्छी आदतें, अच्छी योग्यतायें, अच्छी विशेषतायें धारण करना सद्‌गुण कहलाता है । विनय, नम्रता, शिष्टाचार, मधुर भाषण, उदार व्यवहार, सेवा-सहयोग, ईमानदारी, परिश्रमशीलता, समय की पाबन्दी, नियमितता, मितव्ययिता, मर्यादित रहना, कर्त्तव्य परायणता, जागरूकता, प्रसन्न मुख-मुद्रा, धैर्य, साहस, पराक्रम, पुरुषार्थ, आशा, उत्साह यह सब सद्‌गुण हैं । संगीत, साहित्य, कला, शिल्प, व्यापार, वक्तृता, व्यवसाय, उद्योग, शिक्षण आदि योग्यतायें होना सद्‌गुण है । इस प्रकार के सद्‌गुण जिसके पास हैं, वह आनन्दमय जीवन बितायेगा, इसकी कल्पना सहज ही की जा सकती है ।

७. विवेक—एक प्रकार का आत्मिक प्रकाश है, जिसके द्वारा सत्य-असत्य की, उचित-अनुचित की, आवश्यक-अनावश्यक की, हानि-लाभ की परीक्षा होती है । संसार में असंख्यों परस्पर विरोधी मान्यतायें, रिवाजें, विचारधारायें प्रचलित हैं और उनमें से हर एक के पीछे कुछ आधार, कुछ उदाहरण तथा कुछ पुस्तकों एवं महापुरुषों के नाम अवश्य सम्बन्धित होते हैं । ऐसी दशा में यह निर्णय करना कठिन होता है कि इन परस्पर विरोधी बातों में क्या ग्राह्य है और क्या अग्राह्य ? इस सम्बन्ध में देश, काल, परिस्थिति, उपयोगिता, जनहित आदि बातों को ध्यान में रखते हुए सद्‌बुद्धि से जो निर्णय किया जाता है, वही प्रामाणिक एवं ग्राह्य होता है । जिसने उचित निर्णय कर लिया, तो समझिये कि उसने सरलतापूर्वक सुख-शान्ति के लक्ष्य तक पहुँचने की सीधी राह पा ली । संसार में अधिकांश कलह, क्लेश, पाप एवं दुःखों का कारण दुर्बुद्धि, भ्रम तथा अज्ञान होता है । विवेकवान् व्यक्ति इन सब उलझनों से अनायास ही बच जाता है ।

८. संयम—जीवनी शक्ति का, विचार शक्ति का, भोगेच्छा का, श्रम का सन्तुलन ठीक रखना ही संयम है । न इसको घटने देना, न नष्ट- निष्क्रिय होने देना और न अनुचित मार्ग में व्यय होने देना संयम का तात्पर्य है । मानव शरीर आश्चर्यजनक शक्तियों का केन्द्र है । यदि उन शक्तियों का अपव्यय रोककर उपयोगी दिशा में लगाया जाए, तो अनेक आश्चर्यजनक सफलतायें मिल सकती हैं और जीवन की प्रत्येक दिशा में उन्नति हो सकती है ।

९. सेवा—सहायता, सहयोग, प्रेरणा, उन्नति की ओर, सुविधा की ओर किसी को बढ़ाना, यह उसकी सबसे बड़ी सेवा है । इस दिशा में हमारा शरीर और मस्तिष्क सबसे अधिक हमारी सेवा का पात्र है, क्योंकि वह हमारे सबसे अधिक निकट है । आमतौर से दान देना, समय देना या बिना मूल्य अपनी शारीरिक, मानसिक शक्ति किसी को देना सेवा कहा जाता है और यह अपेक्षा नहीं की जाती कि हमारे इस त्याग से दूसरों में कोई क्रिया-शक्ति, आत्म-निर्भरता, स्फूर्ति, प्रेरणा, जाग्रत् हुई या नहीं । इस प्रकार की सेवा व्यक्ति को आलसी, परावलम्बी और भाग्यवादी बनाने वाली हानिकारक सेवा भी है । हम दूसरों की इस प्रकार प्रेरक सेवा करें, जो उत्साह, आत्म-निर्भरता और क्रियाशीलता को सतेज करने में सहायक हो । सेवा का फल है—उन्नति । सेवा द्वारा अपने को तथा दूसरों को समुन्नत बनाना, संसार को अधिक सुन्दर और आनन्दमय बनाना महान् पुण्य कार्य है । इस प्रकार के सेवाभावी पुण्यात्मा सांसारिक और आत्म-दृष्टि से सदा सुखी और सन्तुष्ट रहते हैं ।

यह नवगुण निस्संदेह नवरत्न हैं । लाल, मोती, मूँगा, पन्ना, पुखराज, हीरा, नीलम, गोमेद, वैदूर्य—य नौ रत्न कहे जाते हैं । कहते हैं कि जिनके पास ये रत्न होते हैं, वे सर्वसुखी समझे जाते हैं, पर भारतीय धर्मशास्त्र कहता है कि जिनके पास यज्ञोपवीत और गायत्री मिश्रित आध्यात्मिक नवरत्न हैं, वे इस भूतल के कुबेर हैं । भले ही उनके पास धन-दौलत, जमीन-जायदाद न हो । यह नवरत्न मण्डित कल्पवृक्ष जिसके पास है, वह विवेकयुक्त यज्ञोपवीतधारी सदा सुरलोक की सम्पदा भोगता है । उसके लिये यह भू- लोक ही स्वर्ग है, वह कल्पवृक्ष हमें चारों फल देता है । धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों सम्पदाओं से हमें परिपूर्ण कर देता है ।

साधकों के लिये उपवीत आवश्यक है

कई व्यक्ति सोचते हैं कि यज्ञोपवीत हमसे सधेगा नहीं, हम उसके नियमों का पालन नहीं कर सकेंगे, इसलिये हमें उसे धारण नहीं करना चाहिये । यह तो ऐसी ही बात हुई जैसे कोई कहे कि मेरे मन में ईश्वर भक्ति नहीं, इसलिये मैं पूजा-पाठ न करूँगा । पूजा-पाठ करने से तात्पर्य ही भक्ति उत्पन्न करना है, यह भक्ति पहले ही होती, तो पूजा-पाठ करने की आवश्यकता ही न रह जाती । यही बात जनेऊ के सम्बन्ध में है, यदि धार्मिक नियमों की साधना अपने आप ही हो जाए, तो उसको धारण करने की आवश्यकता ही क्या ? चूँकि आम तौर से नियम नहीं सधते, इसलिये तो यज्ञोपवीत का प्रतिबन्ध लगाकर उन नियमों को साधने का प्रयत्न किया जाता है । जो लोग नियम नहीं साध पाते, उन्हीं के लिये सबसे अधिक आवश्यकता जनेऊ धारण करने की है । जो बीमार है, उसे ही तो दवा चाहिये, यदि बीमार न होता तो दवा की आवश्यकता ही उसके लिये क्या थी ?

नियम क्यों साधने चाहिये ? इसके बारे में लोगों की बड़ी विचित्र मान्यतायें हैं । कई आदमी समझते हैं कि भोजन सम्बन्धी नियमों का पालन करना ही जनेऊ का नियम है । बिना स्नान किये, रास्ते का चला हुआ, रात का बासी हुआ, अपनी जाति के अलावा किसी अन्य का बनाया हुआ भोजन न करना ही यज्ञोपवीत की साधना है । यह बड़ी अधूरी और भ्रमपूर्ण धारणा है । यज्ञोपवीत का मन्तव्य मानव-जीवन की सर्वांगपूर्ण उन्नति करना है, उन उन्नतियों में स्वास्थ्य की उन्नति भी एक है और उसके लिये अन्य नियम पालन करने के साथ-साथ भोजन सम्बन्धी नियमों की सावधानी रखना उचित है । इस दृष्टि से जनेऊधारी के लिये भोजन सम्बन्धी नियमों का पालन करना ठीक है, परन्तु जिस प्रकार प्रत्येक द्विज जीवन की सर्वांगीण उन्नति के नियमों का पूर्णतया पालन नहीं कर पाता, फिर भी कन्धे पर जनेऊ धारण किये रहता है । फिर भोजन सम्बन्धी किसी नियम में यदि त्रुटि रह जाए, तो यह नहीं समझना चाहिये कि त्रुटि के कारण जनेऊ धारण करने का अधिकार ही छिन जाता है । यदि झूठ बोलने से, दुराचार की दृष्टि रखने से, बेईमानी करने से, आलस्य, प्रमाद या व्यसनों में ग्रस्त रहने से जनेऊ नहीं टूटता, तो केवल भोजन सम्बन्धी नियम में कभी-कभी थोड़ा-सा अपवाद आ जाने से नियम टूट जाएगा, यह सोचना किस प्रकार उचित कहा जा सकता है ।

मल- मूत्र के त्यागने में कान पर जनेऊ चढ़ाने में भूल होने का अक्सर भय रहता है । कई आदमी इस डर की वजह से यज्ञोपवीत नहीं पहनते या पहनना छोड़ देते हैं । यह ठीक है कि इस नियम का कठोरता से पालन होना चाहिये, पर यह भी ठीक है कि आरम्भ में इसकी आदत न पड़ जाने तक नौसिखियों को कुछ सुविधा भी मिलना चाहिये, जिससे कि उन्हें एक दिन में तीन-तीन जनेऊ बदलने के लिये विवश न होना पड़े । इसके लिये ऐसा किया जा सकता है कि जनेऊ का एक फेरा गर्दन में घुमा दिया जाय, ऐसा करने से वह कमर से ऊँचा आ जाता है । कान में चढ़ाने का मुख्य प्रयोजन यह है कि मल-मूत्र की अशुद्धता का यज्ञसूत्र से स्पर्श न हो, जब जनेऊ कण्ठ में लपेट दिये जाने से कमर से ऊँचा उठ जाता है, तो उससे अशुद्धता के स्पर्श होने की आशंका नहीं रहती और यदि कभी कान में चढ़ाने की भूल भी हो जाए, तो उसके बदलने की आवश्यकता नहीं होती । थोड़े दिनों में जब भली प्रकार आदत पड़ जाती है, तो फिर कण्ठ में लपेटने की आवश्यकता नहीं रहती ।

छोटी आयु वाले बालकों के लिये तथा अन्य भुलक्कड़ व्यक्तियों के लिये तृतीयांश यज्ञोपवीत की व्यवस्था की जा सकती है । पूरे यज्ञोपवीत की अपेक्षा दो-तिहाई छोटा अर्थात् एक-तिहाई लम्बाई का तीन लड़ वाला उपवीत केवल कण्ठ में धारण कराया जा सकता है । इस प्रकार उपवीत को आचार्यों ने 'कण्ठी' शब्द से सम्बोधित किया है । छोटे बालकों का जब उपनयन होता था, तो उन्हें दीक्षा के साथ कण्ठी पहना दी जाती थी । आज भी गुरु नामधारी पण्डित जी गले में कण्ठी पहनाकर और कान में मन्त्र सुनाकर 'गुरु-दीक्षा' देते हैं ।

इस प्रकार के अविकसित व्यक्ति उपवीत की नित्य की सफाई का भी पूरा ध्यान रखने में प्राय: भूल करते हैं, जिससे शरीर का पसीना उसमें रमता रहता है, फलस्वरूप बदबू, गन्दगी, मैल और रोग-कीटाणु उसमें पलने लगते हैं । ऐसी स्थिति में यह सोचना पड़ता है कि कोई उपाय निकल आये, जिससे कण्ठी में पड़ी हुई उपवीती- कण्ठी का शरीर से कम स्पर्श हो । इस निमित्त तुलसी, रुद्राक्ष या किसी और पवित्र वस्तु के दानों में कण्ठी के सूत्रों को

पिरो दिया जाता है, फलस्वरूप वे दाने ही शरीर का स्पर्श कर पाते हैं। सूत्र अलग रह जाता है और पसीने का जमाव होने एवं शुद्धि में प्रमाद होने के खतरे से बचत हो जाती है, इसलिये दाने वाली कण्ठियाँ पहनने का रिवाज चलाया गया।

पूर्णरूप से न सही आंशिक रूप से सही, गायत्री के साधकों को यज्ञोपवीत अवश्य धारण करना चाहिये, क्योंकि उपनयन गायत्री का मूर्तिमान् प्रतीक है, उसे धारण किये बिना भगवती की साधना का धार्मिक अधिकार नहीं मिलता। आजकल नये फैशन में ज़ेवरों का रिवाज कम होता जा रहा है, फिर भी गले में कण्ठीमाला किसी न किसी रूप में स्त्री-पुरुष धारण करते हैं। गरीब स्त्रियाँ काँच के मनकों की कण्ठियाँ धारण करती हैं। इन आभूषणों के नाम हार, नेकलेस, जंजीर, माला आदि रखे गये हैं, पर यह वास्तव में कण्ठियों के ही प्रकार हैं। चाहे स्त्रियों के पास कोई अन्य आभूषण हो चाहे न हो, परन्तु इतना निश्चित है कि कण्ठी को गरीब से गरीब स्त्रियाँ भी किसी न किसी रूप में अवश्य धारण करती हैं। इससे प्रकट है कि भारतीय नारियों ने अपने सहज धर्म-प्रेम को किसी न किसी रूप में जीवित रखा है और उपवीत को किसी न किसी प्रकार धारण किया है।

जो लोग उपवीत धारण करने के अधिकारी नहीं कहे जाते, जिन्हें कोई दीक्षा नहीं देता, वे भी गले में तीन तार का या नौ तार का डोरा चार गाँठ लगाकर धारण कर लेते हैं। इस प्रकार चिह्न पूजा हो जाती है। पूरे यज्ञोपवीत का एक-तिहाई लम्बा यज्ञोपवीत गले में डाले रहने का भी कहीं-कहीं रिवाज है।

गायत्री साधना का उद्देश्य

नये विचारों से पुराने विचार बदल जाते हैं। कोई व्यक्ति किसी बात को गलत रूप से समझ रहा है, तो उसे तर्क, प्रमाण और उदाहरणों के आधार पर नई बात समझाई जा सकती है। यदि वह अत्यन्त ही दुराचारी, मूढ़, उत्तेजित या मदान्ध नहीं है, तो प्राय: सही बात को समझने में विशेष कठिनाई नहीं होती। सही बात समझ जाने पर प्राय: गलत मान्यता बदल जाती है। स्वार्थ या मानरक्षा के कारण कोई अपनी पूर्व मान्यता की वकालत करता रहे, पर मान्यता और विश्वास क्षेत्र में उसका विचार परिवर्तन अवश्य हो जाता है। ज्ञान द्वारा अज्ञान को हटा दिया जाना कुछ विशेष कठिन नहीं है।

परन्तु स्वभाव, रुचि, इच्छा, भावना और प्रकृति के बारे में यह बात नहीं है, इन्हें साधारण रीति से नहीं बदला जा सकता है। यह जिस स्थान पर जमी होती है, वहाँ से आसानी से नहीं हटती। चूँकि मनुष्य चौरासी लाख कीट-पतंगों, जीव-जन्तुओं की क्षुद्र योनियों में भ्रमण करता हुआ नर-देह में आता है, इसलिये स्वभावत: उसके पिछले जन्म-जन्मान्तरों के पाशविक नीच संस्कार बड़ी दृढ़ता से अपनी जड़ मनोभूमि में जमाये होते हैं, उनमें परिवर्तन होता रहता है, पर उसका विशेष प्रभाव एवं गम्भीरतापूर्वक स्वयं आत्म-चिंतन करने से मनुष्य भलाई और बुराई के, धर्म-अधर्म के अन्तर को भली प्रकार समझ जाता है। उसे अपनी भूलें, बुराइयाँ और कमजोरियाँ भली प्रकार प्रतीत हो जाती हैं। बौद्धिक स्तर पर वह सोचता है और चाहता है कि इन बुराइयों से उसे छुटकारा मिल जाए, कई बार तो वह अपनी काफी भर्त्सना भी करता है। इतने पर भी वह अपनी चिर संचित कुप्रवृत्तियों से, बुरी आदतों से अपने को अलग नहीं कर पाता।

नशेबाज, चोर, दुष्ट, दुराचारी यह भली- भाँति जानते हैं कि हम गलत मार्ग अपनाये हुए हैं। वे बहुधा यह सोचते रहते हैं कि काश, इन बुराइयों से हमें छुटकारा मिल जाता, पर इनकी इच्छा एक निर्बल-कामना मात्र रह जाती है, उनके मनोरथ निष्फल ही होते रहते हैं, बुराइयाँ छूटती नहीं। जब भी प्रलोभन का अवसर आता है, तब मनोभूमि में जड़ जमाये हुए, पड़ी हुई कुप्रवृत्तियाँ आँधी-तूफान की तरह उमड़ पड़ती हैं और वह व्यक्ति आदत से मजबूर होकर उन्हीं बुरे कार्यों को फिर से कर बैठता है। विचार और संस्कार इन दोनों की तुलना में संस्कार की शक्ति अत्यधिक प्रबल है। विचार एक नन्हा-सा शिशु है, तो संस्कार परिपुष्ट-प्रौढ़। दोनों के युद्ध में प्राय: ऐसा ही परिणाम देखा जाता है कि शिशु की हार होती है और प्रौढ़ की जीत। यद्यपि कई बार मनस्वी व्यक्ति श्रीकृष्ण द्वारा पूतना और राम द्वारा ताड़का-वध का उदाहरण उपस्थित करके अपने विचार-बल द्वारा कुसंस्कारों

पर विजय प्राप्त करते हैं, पर आमतौर से लोग कुसंस्कारों के चंगुल में, जाल में फँसे पक्षी की तरह उलझे हुए देखे जाते हैं । अनेकों धर्मोपदेशक, ज्ञानी, विद्वान्, नेता, सम्भ्रान्त महापुरुष समझे जाने वाले व्यक्तियों का निजी चरित्र जब कुकर्मयुक्त देखा जाता है, तो यही कहना पड़ता है कि इनकी इतनी बुद्धि-प्रौढ़ता भी अपने कुसंस्कारों पर विजय न दिला सकी । कई बार तो अच्छे-अच्छे ईमानदार और तपस्वी मनुष्य किसी विशेष प्रलोभन के अवसर पर उसमें फँस जाते हैं, जिसके लिये पीछे उन्हें पश्चात्ताप करना पड़ता है । चिर संचित पाशविक वृत्तियों का भूकम्प जब आता है, तो सदाशयता के आधार पर चिर प्रयत्न से बनाये हुए सुचरित्र की दीवार हिल जाती है ।

उपर्युक्त पंक्तियों का तात्पर्य यह नहीं है कि विचार-शक्ति निरर्थक वस्तु है और उसके द्वारा कुसंस्कारों को जीतने में सहायता नहीं मिलती । इन पंक्तियों में यह कहा जा रहा है कि साधारण मनोबल की सदिच्छायें मनोभूमि का परिमार्जन करने में बहुत अधिक समय में मन्द प्रगति से धीरे-धीरे आगे बढ़ती हैं, अनेकों बार उन्हें निराशा और असफलता का मुँह देखना पड़ता है । इस पर भी यदि सद्विचारों का क्रम जारी रहे, तो अवश्य ही कालान्तर में कुसंस्कारों पर विजय प्राप्त की जा सकती है । अध्यात्म विद्या के आचार्य इतने आवश्यक कार्य को इतने विलम्ब तक पड़ा रहने देना नहीं चाहते । इसलिये उन्होंने इस सम्बन्ध में अत्यधिक गम्भीरता, सूक्ष्म दृष्टि और मनोयोगपूर्वक विचार विश्लेषण किया है और वे इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि मनःक्षेत्र के जिस स्तर पर विचार के कम्पन क्रियाशील रहते हैं, उससे कहीं अधिक गहरे स्तर पर संस्कारों की जड़ें होती हैं ।

जैसे कुआँ खोदने पर भी जमीन में विभिन्न जाति की मिट्टियों के पर्त निकलते हैं, वैसे ही मनोभूमि के भी कितने ही पर्त हैं, उनके कार्य, गुण और क्षेत्र भिन्न-भिन्न हैं । ऊपर वाले दो पर्त (१) मन (२) बुद्धि हैं । मन में इच्छायें, वासनायें, कामनायें पैदा होती हैं, बुद्धि का काम विचार करना, मार्ग ढूँढ़ना और निर्णय करना है । यह दोनों पर्त मनुष्य के निकट सम्पर्क में हैं । इन्हें स्थूल मनःक्षेत्र कहते हैं । समझने से तथा परिस्थिति के परिवर्तन से इनमें आसानी से हेर-फेर हो जाता है ।

इस स्थूल क्षेत्र से गहरे पर्त को सूक्ष्म मनःक्षेत्र कहते हैं । इसके प्रमुख भाग दो हैं—(१) चित्त (२) अहंकार । चित्त में संस्कार, आदत, रुचि, स्वभाव, गुण की जड़ें रहती हैं । अहंकार "अपने सम्बन्ध में मान्यता" को कहते हैं । अपने को जो व्यक्ति धनी-दरिद्र, ब्राह्मण-शूद्र, पापी-पुण्यात्मा, अभागा-सौभाग्यशाली, स्त्री-पुरुष, मूर्ख-बुद्धिमान्, तुच्छ-महान्, जीव-ब्रह्म, बद्ध-मुक्त आदि जैसा भी कुछ मान लेता है, वह वैसे ही अहंकार वाला माना जाता है । आत्मा के अहम् के सम्बन्ध में मान्यता का नाम ही अहंकार है । इन मन, बुद्धि, अहंकार के अनेकों भेद-उपभेद हैं और उनके गुण, कर्म अलग-अलग हैं, उनका वर्णन इन पंक्तियों में नहीं किया जा सकता है । यहाँ तो संक्षिप्त परिचय देना इसलिये आवश्यक हुआ कि कुसंस्कारों के निवारण के बारे में कुछ बातें भली प्रकार जानने में पाठकों को सुविधा हो ।

जैसे मन और बुद्धि का जोड़ा है, वैसे ही चित्त और अहंकार का जोड़ा है । मन में नाना प्रकार की इच्छायें, कामनायें रहती हैं, पर बुद्धि उनका निर्णय करती है कि कौन-सी इच्छा प्रकट करने योग्य है, कौन-सी दबा देने योग्य है ? इसे बुद्धि जानती है और वह सभ्यता, लोकाचार, सामाजिक नियम, धर्म, कर्त्तव्य, असम्भव आदि का ध्यान रखते हुए अनुपयुक्त इच्छाओं को भीतर दबाती रहती है । जो इच्छा कार्य रूप में लाये जाने योग्य जँचती है, उन्हीं के लिये बुद्धि अपना प्रयत्न आरम्भ करती है । इस प्रकार यह दोनों मिलकर मस्तिष्क क्षेत्र में अपना ताना-बाना बुनते रहते हैं ।

अन्तःकरण क्षेत्र में चित्त और अहंकार का जोड़ा अपना कार्य करता है । जीवात्मा अपने को जिस श्रेणी का, जिस स्तर का अनुभव करता है, चित्त में उस श्रेणी के, उसी स्तर के पूर्व संस्कार सक्रिय और परिपुष्ट रहते हैं । कोई व्यक्ति अपने को शराबी, पाप वाला, कसाई, अछूत, समाज के निम्न वर्ग का मानता है, तो उसका यह अहंकार उसके चित्त को उसी जाति के संस्कारों की जड़ जमाने और स्थिर रखने के लिये प्रस्तुत रखेगा । जो गुण, कर्म, स्वभाव इस श्रेणी के लोगों के होते हैं, वे सभी उसके चित्त में संस्कार रूप से जड़ जमाकर बैठ जायेंगे । यदि उसका अहंकार अपराधी या शराबी की मान्यता का परित्याग करके लोकसेवी, महात्मा, सच्चरित्र एवं उच्च होने

की अपनी मान्यता स्थिर कर ले, तो अति शीघ्र उसकी पुरानी आदतें, आकांक्षायें, अभिलाषायें बदल जायेंगी और वह वैसा ही बन जाएगा, जैसा कि अपने सम्बन्ध में उसका विश्वास है । शराब पीना बुरी बात है, इतना मात्र समझाने से उसकी लत छूटना मुश्किल है, क्योंकि हर कोई जानता है कि क्या बुराई है, क्या भलाई है ? ऐसे विचार तो उनके मन में पहले भी अनेकों बार आ चुके होते हैं । लत तभी छूट सकती है, जब वह अपने अहंकार को प्रतिष्ठित नागरिक की मान्यता में बदले और यह अनुभव करे कि ये आदतें मेरे गौरव के, स्तर के, व्यवहार के अनुपयुक्त हैं । अन्तःकरण की एक ही पुकार से, एक ही हुंकार से, एक ही चीत्कार से जमे हुए कुसंस्कार उखड़ कर एक ओर गिर पड़ते हैं और उनके स्थान पर नये, उपयुक्त, आवश्यक, अनुरूप संस्कार कुछ ही समय में जम जाते हैं । जो कार्य मन और बुद्धि द्वारा अत्यन्त कष्ट-साध्य मालूम पड़ता था, वह अहंकार परिवर्तन की एक चुटकी में ठीक हो जाता है ।

अहंकार तक सीधी पहुँच साधना के अतिरिक्त और किसी मार्ग से नहीं हो सकती । मन और बुद्धि को शान्त, मूर्च्छित, तन्द्रित अवस्था में छोड़कर सीधे अहंकार तक प्रवेश पाना ही साधना का उद्‌देश्य है । गायत्री साधना का विधान भी इसी प्रकार का है । उसका सीधा प्रभाव अहंकार पर पड़ता है । "मैं ब्राह्मी शक्ति का आधार हूँ, ईश्वरीय स्फुरणा गायत्री मेरे रोम-रोम में ओत-प्रोत हो रही है, मैं उसे अधिकाधिक मात्रा में अपने अन्दर धारण करके ब्राह्मी-भूत हो रहा हूँ ।" यह मान्यतायें मानवीय अहंकार को पाशविक स्तर से बहुत ऊँचा उठा ले जाती हैं और उसे देवभाव में अवस्थित करती हैं । मान्यता कोई साधारण वस्तु नहीं है । गीता कहती है—**'यो यच्छ्रद्धः स एव सः'** जो अपने सम्बन्ध में जैसी श्रद्धा-मान्यता रखता है, वस्तुतः वैसा ही होता है । गायत्री-साधना अपने साधक को दैवी आत्म-विश्वास, ईश्वरीय अहंकार प्रदान करती है और वह कुछ ही समय में वस्तुतः वैसा ही हो जाता है । जिस स्तर पर उसकी आत्म-मान्यता है, उसी स्तर पर चित्त-प्रवृत्तियाँ रहेंगी । वैसी आदतें, इच्छायें, रुचियाँ, प्रवृत्तियाँ, क्रियायें उसमें दीख पड़ेंगी । जो दिव्य मान्यता से ओत-प्रोत है—निश्चय ही उसकी इच्छायें, आदतें और क्रियायें वैसी ही होंगी । यह साधना प्रक्रिया मानव अन्तःकरण का कायाकल्प कर देती है । जिस आत्मसुधार के लिये उपदेश सुनना और पुस्तक पढ़ना विशेष सफल नहीं होता था, वह कार्य साधना द्वारा सुविधापूर्वक पूरा हो जाता है । यही साधना का रहस्य है ।

उच्च मनःक्षेत्र (सुपर मेण्टल) ही ईश्वरीय दिव्य शक्तियों के अवतरण का उपयुक्त स्थान है । हवाई जहाज वहीं उतरता है, जहाँ अड्डा होता है । ईश्वरीय दिव्य शक्ति मानव प्राणी के इसी उच्च मनःक्षेत्र में उतरती है । यदि वह साधना द्वारा निर्मल नहीं बना लिया गया है , तो अति सूक्ष्म दिव्य शक्तियों को अपने में नहीं उतारा जा सकता । साधना, साधक के उच्च मनःक्षेत्र को उपयुक्त हवाई अड्डा बनाती है जहाँ वह दैवी शक्ति उतर सके ।

आत्म-कल्याण और आत्मोत्थान के लिये अनेक प्रकार की साधनाओं का आश्रय लिया जाता है । देश, काल और पात्र भेद के कारण ही साधना-मार्ग का निर्णय करने में बहुत कुछ विचार और परिवर्तन करना पड़ता है । 'स्वाध्याय' में चित्त लगाने से सन्मार्ग की ओर रुचि होती है । 'सत्संग' से स्वभाव और संस्कार शुद्ध बनते हैं । 'कीर्तन' से एकाग्रता और तन्मयता की वृद्धि होती है । 'दान-पुण्य' से त्याग और अपरिग्रह की भावना पुष्ट होती है । 'पूजा-उपासना' से आस्तिक भावना और ईश्वर विश्वास की भावना उत्पन्न होती है । इस प्रकार भिन्न-भिन्न उद्देश्यों और परिस्थितियों को दृष्टिगोचर रखकर ऋषियों ने अनेक प्रकार की साधनाओं का उपदेश दिया है, पर इनमें सर्वोपरि 'तप' की साधना ही है । तप की अग्नि से आत्मा के मल-विक्षेप और पाप-ताप बहुत शीघ्र भस्म हो जाते हैं और आत्मा में एक अपूर्व शक्ति कां आविर्भाव होता है । गायत्री-उपासना सर्वश्रेष्ठ तपश्चर्या है । इसके फलस्वरूप साधक को जो दैवी-शक्ति प्राप्त होती है , उससे सच्चा आत्मिक आनन्द प्राप्त करके उच्च से उच्च भौतिक और आध्यात्मिक लक्ष्य को वह प्राप्त कर सकता है ।

यह अपरा प्रकृति का परा प्रकृति में रूपांतरित करने का विज्ञान है । मनुष्य की पाशविक वृत्तियों के स्थान पर ईश्वरीय सत् शक्ति को प्रतिष्ठित करना ही अध्यात्म विज्ञान का कार्य है । तुच्छ को महान्, सीमित को असीम, अणु को विभु, बद्ध को मुक्त, पशु को देव बनाना साधना का उद्देश्य है । यह परिवर्तन होने के साथ-साथ वे

सामर्थ्य-शक्तियाँ भी मनुष्य में आ जाती हैं, जो उस सत्-शक्ति में सन्निहित हैं और जिन्हें ऋद्धि-सिद्धि आदि नामों से पुकारते हैं। साधना आध्यात्मिक कायाकल्प की एक वैज्ञानिक प्रणाली है और निश्चय ही अन्य साधना-विधियों में गायत्री-साधना सर्वश्रेष्ठ है।

निष्काम साधना का तत्त्व-ज्ञान

गायत्री की साधना चाहे निष्काम भाव से की जाए, चाहे सकाम भाव से, पर उसका फल अवश्य मिलता है। भोजन चाहे सकाम भाव से किया जाए चाहे निष्काम भाव से, उससे भूख शान्त होने और रक्त बनने का परिणाम अवश्य होगा। गीता आदि सत्-शास्त्रों में निष्काम कर्म करने पर इसलिये जोर दिया गया है कि उचित रीति से सत्कर्म करने पर भी यह निश्चित नहीं कि हम जो फल चाहते हैं, वह निश्चित रूप से मिल ही जायेगा। कई बार ऐसा देखा गया है कि पूरी सावधानी और तत्परता से करने पर भी वह काम पूरा नहीं होता, जिसकी इच्छा से यह सब किया गया था। ऐसी असफलता के अवसर पर साधक खिन्न, निराश, अश्रद्धालु न हो जाए और श्रेष्ठ साधना मार्ग से उदासीन न हो जाए, इसलिये शास्त्रकारों ने निष्काम कर्म को, निष्काम-साधना को अधिक श्रेष्ठ माना है और उसी पर अधिक जोर दिया है।

इसका अर्थ यह नहीं कि साधना का श्रम निरर्थक चला जाता है या साधना प्रणाली ही संदिग्ध है। उसकी प्रामाणिकता और विश्वस्तता में संदेह करने की तनिक भी गुञ्जायश नहीं है। इस दिशा में किये गये प्रयत्न का एक क्षण भी निरर्थक नहीं जाता। आज तक जिसने भी इस दिशा में कदम बढ़ाये हैं, उसे अपने श्रम का भरपूर प्रतिफल अवश्य मिला है। केवल एक अड़चन है कि सदा अभीष्ट-मनोवांछा पूर्ण हो जाए यह सुनिश्चित नहीं है।

कारण यह है कि प्रारब्ध कर्मों का परिपाक होकर जो प्रारब्ध बन चुकी है, उन कर्म रेखाओं को मेटना कठिन होता है। यह रेखायें कई बार तो साधारण होती हैं और प्रयत्न करने से उनमें हेर- फेर हो जाता है और कई बार वे भोग इतने प्रबल और सुनिश्चित होते हैं कि उनका टालना संभव नहीं होता, ऐसे कठिन प्रारब्धों के बन्धन में बड़े-ड़ों को बन्धन और उनकी यातनाओं को भुगतना पड़ा है।

राम का वन गमन, सीता का परित्याग, कृष्ण का व्याध के बाण से आहत होकर स्वर्ग सिधारना, हरिश्चन्द्र का स्त्री-पुत्रों तक को बेचना, नल द्वारा दमयन्ती का परित्याग, पाण्डवों का हिमालय में गलना, शब्दवेधी पृथ्वीराज का म्लेच्छों द्वारा बन्दी होकर मरना, जैसी असंख्यों घटनायें इतिहास में ऐसी आती हैं, जिनसे आश्चर्य होता है कि ऐसे लोगों पर ऐसी आपत्तियाँ किस कारण आ गयीं ? इसके विपरीत ऐसी घटनायें हैं कि तुच्छ, साधनहीन और विपन्न परिस्थितियों के लोगों ने बड़े-बड़े पद तथा ऐश्वर्य पाये, जिन्हें देख कर आश्चर्य होता है कि किसी दैवी-सहायता से वह तुच्छ मनुष्य इतना उत्कर्ष प्राप्त करके बिना श्रम के समर्थ हो गये। ऐसी घटनाओं का समाधान प्रारब्ध के भले-बुरे भोगों की अमिटता के आधार पर ही होता है। जो होनहार है सो होकर रहता है, प्रयत्न करने पर भी उसका टालना सम्भव नहीं होता।

यहाँ यह सन्देह उत्पन्न हो सकता है कि जब प्रारब्ध ही प्रबल है, तो प्रयत्न करने से क्या लाभ ? ऐसा सन्देह करने वालों को समझना चाहिये कि जीवन के सभी कार्य प्रारब्ध पर निर्भर नहीं होते। कोई विशेष भवितव्यतायें ही ऐसी होती हैं, जो टल न सकें। जीवन का अधिकांश भाग ऐसा होता है जिसमें तात्कालिक कर्मों का फल प्राप्त होता रहता है, क्रिया का परिणाम अधिकतर हाथों-हाथ मिल जाता है। पर कभी-कभी उनमें ऐसे अपवाद आते रहते हैं कि भला करते बुरा होता है और बुरा करते भलाई हो जाती है। कठोर परिश्रमी और चतुर व्यक्ति घाटे में रहते हैं और मूर्ख तथा आलसी अनायास लाभ से लाभान्वित हो जाते हैं, ऐसे अपवाद सदा नहीं होते, कभी-कभी ही देखे जाते हैं। यदि ऐसी औंधी-सीधी घटनायें रोज घटित हों, तब तो संसार की सारी व्यवस्था ही बिगड़ जाए, कर्त्तव्य मार्ग ही नष्ट हो जाए। कर्म और फल का बन्धन यदि न दीख पड़ेगा, तो लोग कर्तव्य के कष्ट-साध्य मार्ग को छोड़कर जब जैसे भी बन पड़े, वैसे प्रयोज़न सिद्ध करने या भाग्य के भरोसे बैठे रहने की नीति अपना लेंगे और संसार में घोर अव्यवस्था फैल जाएगी। ऐसी उलटबाँसी सदा ही नहीं हो सकती। केवल कभी-कभी ही

ऐसे अपवाद देखने में आते हैं। गायत्री की सकाम साधना जहाँ अधिकतर अभीष्ट प्रयोजन में सफलता प्रदान करती है, वहाँ कभी-कभी ऐसा भी होता है कि वैसा न हो, प्रयत्न निष्फल दीख पड़े या विपरीत परिणाम हों। ऐसे अवसरों पर अकाट्य प्रारब्ध की प्रबलता ही समझनी चाहिये।

अभीष्ट फल भी न मिले तो भी गायत्री साधना का श्रम खाली नहीं जाता, उससे दूसरे प्रकार के लाभ तो प्राप्त हो ही जाते हैं। जैसे कोई नवयुवक किसी नवयुवक को कुश्ती में पछाड़ने के लिये व्यायाम और पौष्टिक भोजन द्वारा अपने शरीर को सुदृढ़ बनाने की उत्साहपूर्वक तैयारी करता है। पूरी तैयारी के बाद भी कदाचित् वह कुश्ती पछाड़ने में असफल रहता है, तो ऐसा नहीं समझना चाहिये कि उसकी तैयारी निरर्थक चली गयी। वह तो अपना लाभ दिखायेगी ही। शरीर की सुदृढ़ता, चेहरे की कान्ति, अंगों की सुडौलता, फेंफड़ों की मजबूती, बल-वीर्य की अधिकता, नीरोगिता, दीर्घ जीवन, कार्यक्षमता, बलवान् सन्तान आदि अनेकों लाभ उस बढ़ी हुई तन्दुरुस्ती से प्राप्त होकर रहेंगे।

कुश्ती की सफलता से वंचित रहना पड़ा, ठीक है पर शरीर की बल वृद्धि द्वारा प्राप्त होने वाले अन्य लाभों से उसे कोई वंचित नहीं कर सकता। गायत्री साधक अपने काम्य प्रयोजन में सफल न हो सके, तो भी उसे अन्य-अन्य अनेकों मार्गों से ऐसे लाभ मिलेंगे, जिनकी आशा बिना साधना के नहीं की जा सकती थी।

मनुष्य ऐसी कामना भी करता है, जो उसे अपने लिये लाभान्वित एवं आवश्यक प्रतीत होती है, पर ईश्वरीय दृष्टि में वह कामना उसके लिये अनावश्यक एवं हानिकारक होती है, ऐसी कामनाओं को प्रभु पूरा नहीं करते। बालक अनेकों चीजें माँगता रहता है, पर माता जानती है कि उसे क्या दिया जाना चाहिये, क्या नहीं ? बालक के रोने चिल्लाने पर भी माता ध्यान नहीं देती और उस वस्तु से उसे वंचित ही रखती है, जो उसके लिये उपयोगी नहीं। रोगियों के आग्रह भी ऐसे ही होते हैं। कुपथ्य करने के लिये अक्सर माँग किया करते हैं, पर चतुर परिचारक उसकी माँग को पूरा नहीं करते, क्योंकि वे देखते हैं कि इसमें रोगी के प्राणों का खतरा है। बालक या रोगी अपनी माँग के उचित होने में कोई सन्देह नहीं करते, वे समझते हैं कि उसकी माँग उचित, आवश्यक एवं निर्दोष है। इतना होने पर भी वस्तुतः उनका दृष्टिकोण गलत होता है। गायत्री साधकों में बहुत से लोग बालक और रोगी बुद्धि के हो सकते हैं। अपनी दृष्टि से उनकी कामना उचित है पर ईश्वर ही जानता है कि किसी प्राणी के लिये क्या वस्तु उपयोगी है ? वह अपने पुत्रों को उनकी योग्यता, स्थिति, आवश्यकता के अनुकूल ही देता है। असफल गायत्री साधकों में से सम्भव है किन्हीं को बाल-बुद्धि की याचना के कारण ही असफल होना पड़ा हो।

माता अपने किसी बच्चे को खिलौने और मिठाई देकर दुलार करती और किसी को अस्पताल में आपरेशन की कठोर पीड़ा दिलाने ले जाती एवं कड़वी दवा पिलाती है। बालक इस व्यवहार को माता का पक्षपात, अन्याय, निर्दयता या जो चाहे कह सकता है पर माता के हृदय को खोलकर देखा जाए, तो उसके अन्तःकरण में दोनों बालकों के लिये समान प्यार होता है। बालक जिस कार्य को अपने साथ अन्याय या शत्रुता समझता है, माता की दृष्टि में वही दुलार का सर्वश्रेष्ठ प्रमाण है। हमारी असफलतायें, हानियाँ तथा यातनायें भी कई बार हमारे लाभ के लिये होती हैं। माता हमारी भारी आपत्तियों को उस छोटे कष्ट द्वारा निकाल देना चाहती है। उसकी दृष्टि विशाल है, उसका हृदय बुद्धिमत्तापूर्ण है, क्योंकि उसी में हमारा हित समाया हुआ होता है। दुःख, दारिद्र्य, रोग, हानि, क्लेश, अपमान, शोक, वियोग आदि देकर भी वह हमारे ऊपर अपनी महती कृपा का प्रदर्शन करती है। इन कड़वी दवाओं को पिलाकर वह हमारे अन्दर छिपी हुई भयंकर व्याधियों का शमन करके भविष्य के लिये पूर्ण नीरोग बनाने में लगी रहती है। यदि ऐसा अवसर आए, तो गायत्री साधकों को अपना धैर्य न छोडना चाहिये और न निराश होना चाहिये, क्योंकि जो माता की गोदी में अपने को डालकर निश्चिंत हो चुका है, वह घाटे में नहीं रहता। निष्काम भावना से साधना करने वाला भी सकाम साधना वालों से कम लाभ में नहीं रहता। माता से यह छिपा नहीं है कि उसके किस पुत्र को वस्तुतः किस वस्तु की आवश्यकता है। जो आवश्यकता उसकी दृष्टि में उचित है, उससे वह अपने किसी बालक को वंचित नहीं रहने देती।

अच्छा हो कि हम निष्काम साधना करें और चुपचाप देखते रहें कि हमारे जीवन के प्रत्येक क्षण में वह आद्य

शक्ति किस प्रकार सहायता कर रही है । श्रद्धा और विश्वास के साथ जिसने माता का आश्रय लिया है, वह अपने सिर पर एक दैवी छत्रछाया का अस्तित्व प्रतिक्षण अनुभव करेगा और अपनी उचित आवश्यकताओं से कभी वंचित नहीं रहेगा । यह मान्य तथ्य है कि कभी किसी की गायत्री साधना निष्फल नहीं जाती ।

इन साधनाओं में अनिष्ट का कोई भय नहीं

मन्त्रों की साधना की एक विशेष विधि-व्यवस्था होती है । नित्य साधना-पद्धति से निर्धारित कर्मकाण्ड के अनुसार मन्त्रों का अनुष्ठान साधन, पुरश्चरण करना होता है । आमतौर से अविधि-पूर्वक किया गया अनुष्ठान साधक के लिये हानिकारक सिद्ध होता है और लाभ के स्थान पर उससे अनिष्ट की सम्भावना रहती है ।

ऐसे कितने ही उदाहरण मिलते हैं कि किसी व्यक्ति ने किसी मंत्र की या किसी देवता की साधना अथवा कोई योगाभ्यास या तांत्रिक अनुष्ठान किया । साधना की नीति-रीति में कोई भूल हो गयी या किसी प्रकार अनुष्ठान खण्डित हो गया तो उसके कारण साधक को भारी विपत्ति में पड़ना पड़ता है । ऐसे प्रमाण इतिहास पुराणों में भी हैं । वृत्र और इन्द्र की कथा इसी प्रकार की है, वेद मन्त्रों का अशुद्ध उच्चारण करने पर उन्हें घातक संकट सहना पड़ा था ।

अन्य वेद-मन्त्रों की भाँति गायत्री का भी शुद्ध सस्वर उच्चारण होना और विधिपूर्वक साधना करना उचित है । विधिपूर्वक किये हुए अनुष्ठान सदा शीघ्र सिद्ध होते हैं और उत्तम परिणाम उपस्थित करते हैं । इतना होते हुए भी वेदमाता गायत्री में एक विशेषता है कि कोई भूल होने पर उनका हानिकारक फल नहीं होता । जिस प्रकार दयालु, उदार और बुद्धिमती माता अपने बालकों की सदा हितचिंतना करती है, उसी प्रकार गायत्री शक्ति द्वारा भी साधक का हित ही सम्पादन होता है । माता के प्रति बालक गलतियाँ भी करते रहते हैं, उनके सम्मान में बालक से त्रुटि भी रह जाती है और कई बार तो वे उल्टा आचरण कर बैठते हैं । इतने पर भी माता न तो उनके प्रति दुर्भाव मन में लाती है और न उन्हें किसी प्रकार की हानि पहुँचाती है । जब साधारण मातायें इतनी दयालुता और क्षमा प्रदर्शित करती हैं तो जगज्जननी वेदमाता, सद्‌गुणों की दिव्य सुरसरि गायत्री से और भी अधिक आशा की जा सकती है । वह अपने बालकों की अपने प्रति श्रद्धा-भावना को देखकर प्रभावित हो जाती है, बालक की भक्ति भावना को देखकर माता का हृदय उमड़ पड़ता है । उसके वात्सल्य की अमृत निर्झरिणी फूट पड़ती है, जिसके दिव्य प्रवाह में साधना की छोटी-मोटी भूलें, कर्मकाण्ड में अज्ञानवश हुई त्रुटियाँ तिनके के समान बह जाती हैं ।

सतोगुणी साधना का विपरीत फल न होने का विश्वास भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में दिखाया है—

नेहाभिक्रम नाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते ।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात् ॥ – श्रीमद्‌भगवद्‌गीता २/४०

अर्थात्—सत्कार्य के आरम्भ का नाश नहीं होता, वह गिरता-पड़ता आगे बढ़ता चलता है । उससे उलटा फल कभी नहीं निकलता । ऐसा कभी नहीं होता कि सत् इच्छा से किया हुआ कार्य असत् हो जाए और उसका शुभ परिणाम न निकले । थोड़ा भी धर्म कार्य बड़े भयों से रक्षा करता है ।

गायत्री साधना ऐसा ही सात्त्विक सत्कर्म है, जिसे एक बार आरम्भ कर दिया जाए तो मन की प्रवृत्तियाँ उस ओर अवश्य ही आकर्षित होती हैं और बीच में किसी प्रकार छूट जाए तो फिर भी समय-समय पर बार-बार उस साधक को पुनः आरम्भ करने की इच्छा उठती रहती है । किसी स्वादिष्ट पदार्थ का एक बार स्वाद मिल जाता है, तो बार-बार उसे प्राप्त करने की इच्छा हुआ करती है । गायत्री ऐसा ही अमृतोपम स्वादिष्ट आध्यात्मिक आहार है, जिसे प्राप्त करने के लिए आत्मा बार-बार मचलती है, बार-बार चीख-पुकार करती है । उसकी साधना में कोई भूल रह जाए तो भी उलटा परिणाम नहीं निकलता । किसी विपत्ति, संकट या अनिष्ट का सामना नहीं करना पड़ता । त्रुटियों का परिणाम यह हो सकता है कि आशा से कम फल मिले या अधिक से अधिक यह कि वह निष्फल चला जाए । इस साधना को किसी थोड़े से भी रूप में प्रारम्भ कर देने से उसका फल हर दृष्टि से उत्तम होता है । उस फल के कारण उन भयों से मुक्ति मिल जाती है, जो अन्य उपायों से बड़ी कठिनाइयों से हटाये या मिटाये जा सकते हैं ।

इस विषय को अधिक स्पष्ट करने के लिये भागवत के बारहवें स्कन्ध में नारदजी ने भगवान् नारायण से यही प्रश्न किया था कि आप कोई ऐसा उपाय बतायें, जिसे अल्प शक्ति के मनुष्य भी सहज में कर सकें और जिससे माता प्रसन्न होकर उनका कल्याण करे। क्योंकि सभी देवताओं की साधना में प्राय: आचार-विचार, विधि-विधान, त्याग-तपस्या के कठिन नियम बतलाये गये हैं, जिनको सामान्य श्रेणी और थोड़ी विद्या-बुद्धि वाले व्यक्ति पूरा नहीं कर सकते। इस पर भगवान् ने कहा—'हे नारद ! मनुष्य अन्य कोई अनुष्ठान करे या न करे, पर एकमात्र गायत्री में ही जो दृढ़ निष्ठा रखते हैं, वे अपने जीवन को धन्य बना लेते हैं। हे महामुनि ! जो सन्ध्या में अर्घ्य देते हैं और प्रतिदिन गायत्री का तीन-हजार जप करते हैं, वे देवताओं द्वारा भी पूजने योग्य बन जाते हैं। जप करने से पहले उसका न्यास किया जाता है क्योंकि शास्त्रकारों का कथन है कि 'देवो भूत्वा देवं यजेत्'। अर्थात्—'देव जैसा बनकर देवों का यजन करना।' परन्तु किसी कठिनाई या प्रमाद से न्यास न कर सके और सच्चिदानन्द गायत्री का निष्कपट भाव से ध्यान करके केवल उसका ही जप करता रहे, तो भी पर्याप्त है। गायत्री का एक अक्षर सिद्ध हो जाने से भी उत्तम ब्राह्मण विष्णु, शंकर, ब्रह्मा, सूर्य, चन्द्र, अग्नि के साथ स्पर्धा करता है। जो साधक नियमानुसार गायत्री की उपासना करता है, वह उसी के द्वारा सब प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त कर लेता है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है।' इस कथानक से विदित होता है कि इस युग में गायत्री की सात्त्विक और निष्काम साधना ही सर्वश्रेष्ठ है। उससे निश्चित रूप से आत्म-कल्याण होता है।

इन सब बातों पर विचार करते हुए साधकों को निर्भय मन से समस्त आशंकाओं एवं भय को छोड़कर गायत्री की उपासना करनी चाहिये। यह साधारण अस्त्र नहीं है, जिसके लिये नियत भूमिका बाँधे बिना काम न चले। मनुष्य यदि किन्हीं छुट्टल, वन-चर जीवों को पकड़ना चाहे, तो उसके लिये चतुरतापूर्ण उपायों की आवश्यकता पड़ती है; परन्तु बछड़ा अपनी माँ को पकड़ना चाहे तो उसे मातृ-भावना से 'माँ' पुकार देना मात्र काफी होता है। गौ माता खड़ी हो जाती है, वात्सल्य के साथ बछड़े को चाटने लगती है और उसे अपने पयोधरों से दुग्धपान कराने लगती है। आइये, हम भी वेदमाता को सच्चे अन्तःकरण से भक्तिभावना के साथ पुकारें और उसके अन्तराल से निकला हुआ अमृत रस-पान करें।

हमें शास्त्रीय साधना-पद्धति से उसकी साधना करने का शक्ति भर प्रयत्न करना चाहिये। अकारण भूल करने से क्या प्रयोजन ? अपनी माता अनुचित व्यवहार को भी क्षमा कर देती है, पर इसका तात्पर्य यह नहीं कि उसके प्रति श्रद्धा-भक्ति में कुछ ढील या उपेक्षा की जाए। जहाँ तक बन पड़े पूर्ण सावधानी के साथ साधना करनी चाहिये, पर साथ ही इस आशंका को मन से निकाल देना चाहिये कि "किंचित् मात्र भूल हो गयी, तो बुरा होगा।" इस भय के कारण गायत्री-साधना से वंचित रहने की आवश्यकता नहीं है। स्पष्ट है कि वेदमाता अपने भक्तों की भक्ति-भावना का प्रधान रूप से ध्यान रखती हैं और अज्ञानवश हुई छोटी-मोटी भूलों को क्षमा करती हैं।

साधकों के लिये कुछ आवश्यक नियम

गायत्री-साधना करने वालों के लिये कुछ आवश्यक जानकारियाँ नीचे दी जाती हैं—

१—शरीर को शुद्ध करके साधना पर बैठना चाहिये। साधारणत: स्नान के द्वारा ही शुद्धि होती है, पर किसी विवशता, ऋतु-प्रतिकूलता या अस्वस्थता की दशा में हाथ-मुँह धोकर या गीले कपड़े से शरीर पोंछकर भी काम चलाया जा सकता है।

२—साधना के समय शरीर पर कम से कम वस्त्र रहने चाहिये। शीत की अधिकता हो तो कसे हुए कपड़े पहनने की अपेक्षा कम्बल आदि ओढ़कर शीत-निवारण कर लेना उत्तम है।

३—साधना के लिये एकान्त खुली हवा की एक ऐसी जगह ढूँढ़नी चाहिये, जहाँ का वातावरण शान्तिमय हो। खेत, बगीचा, जलाशय का किनारा, देव-मन्दिर इस कार्य के लिये उपयुक्त होते हैं, पर जहाँ ऐसा स्थान मिलने की असुविधा हो, वहाँ घर का कोई स्वच्छ और शान्त भाग भी चुना जा सकता है।

४—धुला हुआ वस्त्र पहनकर साधना करना उचित है।

५—पालथी मारकर सीधे-सादे ढंग से बैठना चाहिये। कष्टसाध्य आसन लगाकर बैठने से शरीर को कष्ट

होता है और मन बार-बार उचटता है, इसलिये इस तरह बैठना चाहिये कि देर तक बैठे रहने में असुविधा न हो।

६—रीढ़ की हड्डी को सदा सीधा रखना चाहिये। कमर झुका कर बैठने से मेरुदण्ड टेढ़ा हो जाता है और सुषुम्ना नाड़ी में प्राण का आवागमन होने में बाधा पड़ती है।

७—बिना बिछाये जमीन पर साधना करने के लिए न बैठना चाहिये। इससे साधना-काल में उत्पन्न होने वाली शारीरिक विद्युत् जमीन पर उतर जाती है। घास या पत्तों से बने हुए आसन सर्वश्रेष्ठ हैं। कुश का आसन, चटाई, रस्सियों का बना फर्श सबसे अच्छे हैं। इनके बाद सूती आसनों का नम्बर है। ऊन तथा चर्म के आसन तान्त्रिक कर्मों में प्रयुक्त होते हैं।

८—माला, तुलसी या चन्दन की लेनी चाहिये। रुद्राक्ष, लाल चन्दन, शंख आदि की माला गायत्री के तांत्रिक प्रयोगों में प्रयुक्त होती हैं।

९—प्रातःकाल २ घण्टे तड़के से जप आरम्भ किया जा सकता है। सूर्य अस्त होने के एक घण्टे बाद तक जप समाप्त कर लेना चाहिये। एक घण्टा शाम का, २ घण्टे प्रातःकाल के, कुल ३ घण्टों को छोड़कर रात्रि के अन्य भागों में गायत्री की दक्षिणमार्गी साधना नहीं करनी चाहिये। तांत्रिक साधनाएँ अर्ध रात्रि के आस-पास की जाती हैं।

१०—साधना के लिए चार बातों का विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिये—(अ) चित्त एकाग्र रहे, मन इधर-उधर न उछलता फिरे। यदि चित्त बहुत दौड़े, तो उसे माता की सुन्दर छवि के ध्यान में लगाना चाहिये। (ब) माता के प्रति अगाध श्रद्धा और विश्वास हो, अविश्वासी और शंका-शंकित मति वाले पूरा लाभ नहीं पा सकते। (स) दृढ़ता के साथ साधना पर अड़े रहना चाहिये। अनुत्साह, मन उचटना, नीरसता प्रतीत होना, जल्दी लाभ न मिलना, अस्वस्थता तथा अन्य सांसारिक कठिनाइयों का मार्ग में आना साधना के विघ्न हैं। इन विघ्नों से लड़ते हुए अपने मार्ग पर दृढ़तापूर्वक बढ़ते चलना चाहिये। (द) निरन्तरता साधना का आवश्यक नियम है। अत्यन्त कार्य होने या विषम स्थिति आ जाने पर भी किसी न किसी रूप से चलते-फिरते ही सही, पर माता की उपासना अवश्य कर लेनी चाहिये। किसी भी दिन नागा या भूल नहीं करनी चाहिये। समय को रोज-रोज नहीं बदलना चाहिये। कभी सबेरे, कभी दोपहर, कभी तीन बजे तो कभी दस बजे ऐसी अनियमितता ठीक नहीं। इन चार नियमों के साथ की गयी साधना बड़ी प्रभावशाली होती है।

११—कम से कम एक माला अर्थात् १०८ मन्त्र नित्य जपने चाहिये, इससे अधिक जितने बन पड़ें उतने उत्तम हैं।

१२—किसी अनुभवी तथा सदाचारी को साधना गुरु नियत करके तब साधना करनी चाहिये। अपने लिये कौन-सी साधना उपयुक्त है, उसका निर्णय उसी से कराना चाहिये। रोगी अपने रोग को स्वयं समझने और अपने आप दवा तथा परहेज का निर्णय करने में समर्थ नहीं होता, उसे किसी वैद्य की सहायता लेनी पड़ती है। इसी प्रकार अपनी मनोभूमि के अनुकूल साधना बताने वाला, भूलों तथा कठिनाइयों का समाधान करने वाला साधना-गुरु होना अति आवश्यक है।

१३—प्रातःकाल की साधना के लिये पूर्व को मुँह करके बैठना चाहिये और शाम को पश्चिम को मुँह करके। प्रकाश की ओर, सूर्य की ओर मुँह करना उचित है।

१४—पूजा के लिये फूल न मिलने पर चावल या नारियल की गिरी को कद्दूकस पर कस कर उसके बारीक पत्रों को काम में लाना चाहिये। यदि किसी विधान में रंगीन पुष्पों की आवश्यकता हो, तो चावल या गिरी के पत्तों को केशर, हल्दी, गेरू, मेंहदी के देशी रंगों से रंगा जा सकता है। विदेशी अशुद्ध चीजों से बने रंग काम में नहीं लेने चाहिये।

१५—देर तक एक पालथी से, एक आसन में बैठे रहना कठिन होता है, इसलिए जब एक तरफ से बैठे-बैठे पैर थक जाएँ, तब उन्हें बदला जा सकता है। आसन बदलने में दोष नहीं।

१६—मल-मूत्र त्याग या किसी अनिवार्य कार्य के लिये साधना के बीच में उठना पड़े, तो शुद्ध जल से

हाथ-मुँह धोकर तब दुबारा बैठना चाहिए और विक्षेप के लिये एक माला का अतिरिक्त जप प्रायश्चित्त स्वरूप करना चाहिये।

१७—यदि किसी दिन अनिवार्य कारण से साधना स्थगित करनी पड़े, तो दूसरे दिन एक माला अतिरिक्त जप दण्डस्वरूप करना चाहिये।

१८—जन्म या मृत्यु का सूतक हो जाने पर शुद्धि होने तक माला आदि की सहायता से किया जाने वाला विधिवत् जप स्थगित रखना चाहिये। केवल मानसिक जप मन ही मन चालू रख सकते हैं। यदि इस प्रकार का अवसर सवालक्ष जप के अनुष्ठान काल में आ जाए, तो उतने दिनों अनुष्ठान स्थगित रखना चाहिये, सूतक निवृत्त होने पर उसी संख्या पर से जप आरम्भ किया जा सकता है, जहाँ से छोड़ा था। उस विक्षेप काल की शुद्धि के लिये एक हजार जप विशेष रूप से करने चाहिये।

१९—लम्बे सफर में होने, स्वयं रोगी हो जाने या तीव्र रोगी की सेवा में संलग्न रहने की दशा में स्नान आदि पवित्रताओं की सुविधा नहीं रहती। ऐसी दशा में मानसिक जप बिस्तर पर पड़े-पड़े, रास्ता चलते या किसी भी अपवित्र दशा में किया जा सकता है।

२०—साधक का आहार-विहार सात्त्विक होना चाहिये। आहार में सतोगुणी, सादा, सुपाच्य, ताजे तथा पवित्र हाथों से बनाये हुए पदार्थ होने चाहिए। अधिक मिर्च-मसाले, तले हुए पक्वान्न, मिष्टान्न, बासी, बुसे, दुर्गन्धित, मांस, नशीले, अभक्ष्य, उष्ण, दाहक, अनीति उपार्जित, गन्दे मनुष्यों द्वारा बनाये हुए, तिरस्कार पूर्वक दिये हुए भोजन से जितना बचा जा सके, उतना ही अच्छा है।

२१—व्यवहार जितना भी प्राकृतिक, धर्म-संगत, सरल एवं सात्त्विक रह सके, उतना ही उत्तम है। फैशनपरस्ती, रात्रि में अधिक जगना, दिन में सोना, सिनेमा, नाच-रंग अधिक देखना, पर निन्दा, छिद्रान्वेषण, कलह, दुराचार, ईर्ष्या, निष्ठुरता, आलस्य, प्रमाद, मद, मत्सर से जितना बचा जा सके, बचने का प्रयत्न करना चाहिये।

२२—यों ब्रह्मचर्य तो सदा ही उत्तम है, पर गायत्री-अनुष्ठान के ४० दिन में उसकी विशेष आवश्यकता है।

२३—अनुष्ठान के दिनों में कुछ विशेष नियमों का पालन करना पड़ता है, जो इस प्रकार हैं—(१) ठोड़ी के सिवाय सिर के बाल न कटाएँ, ठोड़ी के बाल अपने हाथ से ही बनायें। (२) चारपाई पर न सोयें, तख्त या जमीन पर सोना चाहिये। उन दिनों अधिक दूर नंगे पैरों न फिरें। चाम के जूते के स्थान पर खड़ाऊ आदि का उपयोग करना चाहिये। (४) इन दिनों एक समय आहार, एक समय फलाहार लेना चाहिये। (५) अपने शरीर और वस्त्रों से दूसरों का स्पर्श कम से कम होने दें।

२४—एकान्त में जप करते समय माला खुले रूप से जपनी चाहिये। जहाँ बहुत आदमियों की दृष्टि पड़ती हो, वहाँ कपड़े से ढक लेना चाहिये या गोमुखी में हाथ डाल लेना चाहिये।

२५—साधना के उपरान्त पूजा के बचे हुए अक्षत, धूप, दीप, नैवेद्य, फूल, जल, दीपक की बत्ती, हवन की भस्म आदि को यों ही जहाँ-तहाँ ऐसी जगह नहीं फेंक देना चाहिये जहाँ वह पैरों तले कुचलती फिरे। उन्हें किसी तीर्थ, नदी, जलाशय, देव-मन्दिर, कपास, जौ, चावल का खेत आदि पवित्र स्थानों पर विसर्जित करना चाहिये। चावल चिड़ियों के लिये डाल देना चाहिये। नैवेद्य आदि बालकों को बाँट देना चाहिये। जल को सूर्य के सम्मुख अर्घ्य देना चाहिये।

२६—वेदोक्त रीति की यौगिक दक्षिण-मार्गी क्रियाओं में और तन्त्रोक्त वाममार्गी क्रियाओं में अन्तर है। योगमार्गी सरल विधियाँ इस पुस्तक में लिखी हुई हैं, उनमें कोई विशेष कर्मकाण्ड की आवश्यकता नहीं है। शाप मोचन, कवच, कीलक, अर्गला, मुद्रा, अंग न्यास आदि कर्मकाण्ड, तान्त्रिक साधनाओं के लिये हैं। इस पुस्तक के आधार पर साधना करने वालों को उसकी आवश्यकता नहीं है।

२७—गायत्री का अधिकार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन तीन द्विजातियों को है। वर्ण जन्म से भी होते हैं और गुण, कर्म, स्वभाव से भी। आजकल जन्म से जातियों में बड़ी गड़बड़ी हो गयी है। कई उच्च वर्ण समय के फेर

से नीच वर्णों में गिने जाने लगे हैं और कई नीच वंश उच्च कहलाते हैं। जहाँ अधिकार के सम्बन्ध में कुछ गड़बड़ी की आशंका हो, वहाँ अपनी स्थिति के बारे में, "शान्तिकुञ्ज, हरिद्वार" से निर्णय कराया जा सकता है।

२८—वेद मन्त्रों का सस्वर उच्चारण करना उचित होता है, पर सब लोग यथाविधि सस्वर गायत्री का उच्चारण नहीं कर सकते। इसलिये जप इस प्रकार करना चाहिये कि कण्ठ से ध्वनि होती रहे, होंठ हिलते रहें, पर पास बैठा हुआ व्यक्ति भी स्पष्ट रूप से मन्त्र को न सुन सके। इस प्रकार किया जप स्वर-बन्धनों से मुक्त होता है।

२९—साधना की अनेकों विधियाँ हैं। अनेक लोग अनेक प्रकार से करते हैं। अपनी साधना विधि दूसरों को बताई जाए, तो कुछ न कुछ मीन- मेख निकाल कर सन्देह और भ्रम उत्पन्न कर देंगे। इसलिये अपनी साधना विधि हर किसी को नहीं बतानी चाहिये। यदि दूसरे मतभेद प्रकट करें, तो अपने साधना गुरु को ही सर्वोपरि मानना चाहिये। यदि कोई दोष की बात होगी, तो उसका पाप या उत्तरदायित्व उस साधना गुरु पर पड़ेगा। साधक तो निर्दोष और श्रद्धा युक्त होने से सच्ची साधना का ही फल पाएगा। वाल्मीकि जी उलटा राम नाम जप कर भी सिद्ध हो गये थे।

३०—गायत्री साधना माता की चरण-वन्दना के समान है, यह कभी निष्फल नहीं होती। उलटा परिणाम भी नहीं होता, भूल हो जाने पर अनिष्ट की कोई आशंका नहीं। इसलिये निर्भय और प्रसन्न चित्त से उपासना करनी चाहिये। अन्य मन्त्र अविधिपूर्वक जपे जाने पर अनिष्ट करते हैं, पर गायत्री में यह बात नहीं है। वह सर्वसुलभ, अत्यन्त सुगम और सब प्रकार सुसाध्य है। हाँ, तांत्रिक विधि से की गयी उपासना पूर्ण विधि-विधान के साथ होनी चाहिये, उसमें अन्तर पड़ना हानिकारक है।

३१—जैसे मिठाई को अकेले-अकेले ही चुपचाप खा लेना और समीपवर्ती लोगों को उसे न चखाना बुरा है, वैसे ही गायत्री साधना को स्वयं तो करते रहना, पर अन्य प्रियजनों, मित्रों, कुटुम्बियों को उसके लिये प्रोत्साहित न करना, एक बहुत बड़ी बुराई तथा भूल है। इस बुराई से बचने के लिये हर साधक को चाहिये कि अधिक से अधिक लोगों को इस दिशा में प्रोत्साहित करें।

३२—कोई बात समझ में न आती हो या सन्देह हो तो जवाबी पत्र भेजकर *"शान्तिकुञ्ज, हरिद्वार"* से उसका समाधान कराया जा सकता है।

३३—माला जपते समय सुमेरु (माला के आरम्भ का सबसे बड़ा दाना) का उल्लंघन नहीं करना चाहिये। एक माला पूरी करके उसे मस्तक तथा नेत्रों से लगाकर पीछे की तरफ उलटा ही वापस कर लेना चाहिये। इस प्रकार माला पूरी होने पर हर बार उलट कर ही नया आरम्भ करना चाहिये।

अपनी पूजा-सामग्री ऐसी जगह रखनी चाहिये, जिसे अन्य लोग अधिक स्पर्श न करें।

साधना-एकाग्रता और स्थिर चित्त से होनी चाहिये

साधना के लिये स्वस्थ और शांत चित्त की आवश्यकता है। चित्त को एकाग्र करके मन को सब ओर से हटाकर, तन्मयता, श्रद्धा और भक्ति-भावना से की गयी साधना सफल होती है। यदि यह सब बातें साधक के पास न हों, तो उसका प्रयत्न फलदायक नहीं होता। उद्विग्न, अशान्त, चिन्तित, उत्तेजित, भय एवं आशंका से ग्रस्त मन एक जगह नहीं ठहरता। वह क्षण-क्षण में इधर-उधर भागता है। कभी भय के चित्र सामने आते हैं, कभी दुर्दशा को पार करने के उपाय सोचने में मस्तिष्क दौड़ता है। ऐसी स्थिति में साधना कैसे हो सकती है? एकाग्रता न होने से न गायत्री के जप में मन लगता है न ध्यान में। हाथ माला को फेरते हैं, मुख मन्त्रोच्चार करता है, चित्त कहीं का कहीं भागता फिरता है। यह स्थिति साधना के लिये उपयुक्त नहीं। जब तक मन सब ओर से हट कर, सब बातें भुलाकर एकाग्रता और तन्मयता के साथ भक्ति-भावना पूर्वक माता के चरणों में नहीं लग जाता, तब तक अपने में वह चुम्बक कैसे पैदा होगा जो गायत्री को अपनी ओर आकर्षित करे और अभीष्ट उद्देश्य की पूर्ति में उसकी सहायता प्राप्त कर सके।

दूसरी कठिनाई है—श्रद्धा की कमी। कितने ही मनुष्यों की मनोभूमि बड़ी शुष्क एवं अश्रद्धालु होती है, उन्हें आध्यात्मिक साधनों पर सच्चे मन से विश्वास नहीं होता। किसी से बहुत प्रशंसा सुनी, तो परीक्षा करने का कौतूहल

मन में उठता है कि देखें यह बात कहाँ तक सच है ? इस सचाई को जानने के लिये किसी कष्टसाध्य कार्य की पूर्ति को कसौटी बनाते हैं और उस कार्य की तुलना में वैसा परिश्रम नहीं करना चाहते । वे चाहते हैं कि १०-२० माला मन्त्र जपते ही उनका कष्टसाध्य मनोरथ आनन-फानन में पूरा हो जाए । कोई-कोई सज्जन तो ऐसी मनौती मानते देखे गये हैं कि हमारा अमुक कार्य पहले पूरा हो जाए तो अमुक साधना इतनी मात्रा में पीछे करेंगे । उनका प्रयास ऐसा ही है जैसे कोई कहे कि पहले जमीन से निकल कर पानी हमारे खेत को सींच दे, तब हम जल—'देवता को प्रसन्न करने के लिये कुआँ खोदवा देंगे । वे सोचते हैं कि शायद अदृश्य शक्तियाँ हमारी उपासना के बिना भूखी बैठी होंगी, हमारे बिना सारा काम रुका पड़ा रहेगा, इसलिये उनसे वायदा कर दिया जाए कि पहले अमुक मजदूरी कर दो, तब तुम्हें खाना खिला देंगे या तुम्हारे रुके हुए काम पूरा करने में सहायता देंगे । यह वृत्ति उपहासास्पद है, उनके अविश्वास तथा ओछेपन को प्रकट करती है ।'

अविश्वासी, अश्रद्धालु, अस्थिर चित्त के मनुष्य भी यदि गायत्री साधना को नियमपूर्वक करते चलें, तो कुछ समय में उनके यह तीनों दोष दूर हो जाते हैं और श्रद्धा, विश्वास एवं एकाग्रता उत्पन्न होने से सफलता की ओर तेजी से कदम बढ़ने लगते हैं । इसलिये चाहे किसी की मनोभूमि असंयमी तथा अस्थिर ही क्यों न हो ; पर साधना में लग ही जाना चाहिये । एक न एक दिन त्रुटियाँ दूर हो जायेंगी और भाता की कृपा प्राप्त होकर ही रहेगी ।

श्रद्धा और विश्वास की शक्ति बड़ी प्रबल है । इनके द्वारा मनुष्य असम्भव कार्य को भी सम्पन्न कर डालता है । भगीरथ ने श्रद्धा के बल से ही हिमालय पर्वत में मार्ग बनाकर गंगा का पृथ्वी पर अवतरण कराया । श्रद्धा और विश्वास के प्रभाव से ही ध्रुव और नामदेव जैसे छोटे बालकों ने भगवान् का साक्षात्कार कर लिया । इसी आधार पर तुलसीदास और सूरदास जैसे वासनाग्रस्त व्यक्ति सन्त शिरोमणि बन गये । इसलिये यदि हम इस महान् शक्ति का आश्रय लें, तो हमारे चित्त की चंचलता और अस्थिरता क्रमश: स्वयमेव दूर हो जायेगी । आवश्यकता इतनी ही है कि हम नियमपालन का ध्यान रखें और जो संकल्प किया है , उस पर दृढ़ बने रहें । इसके फल से हमारी मानसिक दुर्बलता अथवा शारीरिक अशक्ति का निराकरण स्वयं होता जायेगा और हमारी साधना अन्त में अवश्य सफल होगी ।

शास्त्र कथन है—**'संदिग्धो हि हतो मन्त्री व्यग्रचित्तो हतो जपः'** सन्देह करने से मन्त्र हत हो जाता है और व्यग्रचित्त से किया हुआ जप निष्फल रहता है । संदिग्ध, व्यग्र, अश्रद्धालु और अस्थिर होने पर कोई विशेष प्रयोजन सफल नहीं हो सकता । इस कठिनाई को ध्यान में रखते हुए अध्यात्म विद्या के आचार्यों ने एक उपाय दूसरों द्वारा साधना कराना बताया है । किसी अधिकारी व्यक्ति को साधना कार्य में लगा देना और उसकी स्थान पूर्ति स्वयं कर देना एक सीधा-सादा निर्दोष परिवर्तन है । किसान अन्न तैयार करता है और जुलाहा कपड़ा । आवश्यकता होने पर अन्न और कपड़े की अदल-बदल हो जाती है । जिस प्रकार वकील, डॉक्टर, अध्यापक, क्लर्क आदि का समय, मूल्य देकर खरीदा जा सकता है और उस खरीदे हुए समय का मनचाहा उपयोग अपने प्रयोजन के लिये किया जा सकता है, उसी प्रकार किसी ब्रह्म परायण सत्पुरुष को गायत्री-उपासना के लिये नियुक्त किया जा सकता है । इसमें सन्देह और अस्थिर चित्त होने के कारण जो कठिनाइयाँ मार्ग में आती हैं, उनका हल आसानी से हो जाता है ।

कार्य-व्यस्त और श्रीसम्पन्न धार्मिक-मनोवृत्ति के लोग बहुधा अपनी शान्ति, सुरक्षा और उन्नति के लिये गोपाल सहस्रनाम, विष्णु सहस्रनाम, महामृत्युञ्जय, दुर्गासप्तशती, शिव-महिमा, गंगा लहरी आदि का पाठ नियमित रूप से कराते हैं । वे किसी ब्राह्मण से मासिक दक्षिणा पर नियत समय के लिये अनुबन्ध कर लेते हैं, जितने समय वह पाठ करता है, उनका परिवर्तित मूल्य दक्षिणा के रूप में उसे दिया जाता है । इस प्रकार वर्षों यह क्रम नियमित चलता रहता है । किसी विशेष अवसर पर विशेष रूप से विशेष प्रयोजन के लिये विशेष अनुष्ठानों के आयोजन भी होते हैं । नव-दुर्गाओं के अवसर पर बहुधा लोग दुर्गा पाठ कराते हैं ।शिवरात्रि को शिव महिमा, गंगा दशहरा को गंगा लहरी, दीवाली को श्रीसूक्त का पाठ अनेकों पण्डितों को बैठाकर अपनी सामर्थ्यानुसार लोग अधिकाधिक कराते हैं । मन्दिर में भगवान् की पूजा के लिये पुजारी नियुक्त कर दिये जाते हैं । मन्दिरों के संचालक की ओर से वे पूजा करते हैं और संचालक उनके परिश्रम का मूल्य चुका देते हैं । इस प्रकार का परिवर्तन गायत्री साधना में

भी हो सकता है । अपने शरीर, मन, परिवार और व्यवसाय की सुरक्षा तथा उन्नति के लिये गायत्री का जप एक-दो हजार की संख्या में नित्य ही कराने की व्यवस्था श्रीसम्पन्न लोग आसानी से कर सकते हैं । इस प्रकार कोई लाभ होने पर उसकी प्रसन्नता, शुभ आशा के लिये अथवा विपत्ति निवारणार्थ सवा लक्ष जाप का गायत्री अनुष्ठान किसी सत्पात्र ब्राह्मण द्वारा कराया जा सकता है । ऐसे अवसरों पर साधना करने वाले ब्राह्मण को अन्न, वस्त्र, बर्तन तथा दक्षिणा रूप में उचित पारिश्रमिक उदारतापूर्वक देना चाहिये । सन्तुष्ट साधक का सच्चा आशीर्वाद उस प्रयोजन के फल को और भी बढ़ा देता है । ऐसी साधना करने वालों को भी ऐसा सन्तोषी होना चाहिये कि अति न्यून मिलने पर भी सन्तुष्ट रहें और आशीर्वादात्मक भावनायें मन में रखें । असन्तुष्ट होकर दुर्भावनायें प्रेरित करने पर तो दोनों का ही समय तथा श्रम निष्फल होता है ।

अच्छा तो यह है कि हर साधक अपनी साधना स्वयं करे । कहावत है—"आप काज सो महाकाज ।" परन्तु यदि मजबूरी के कारण वैसा न हो सके, कार्य-व्यस्तता, अस्वस्थता, अस्थिर चित्त, चिन्ताजनक स्थिति आदि के कारण यदि अपने से साधन न बन पड़े, तो आदान-प्रदान के निर्दोष एवं सीधे-साधे नियम के आधार पर अन्य अधिकारी पात्रों से वह कार्य कराया जा सकता है । यह तरीका भी काफी प्रभावपूर्ण और लाभदायक सिद्ध होता है । ऐसे सत्पात्र एवं अधिकारी अनुष्ठानकर्त्ता तलाश करने में शान्तिकुञ्ज, हरिद्वार संस्थान से सहायता ली जा सकती है ।

गायत्री द्वारा सन्ध्यावन्दन

कुछ कार्य ऐसे होते हैं जिनका नित्य करना मनुष्य का अनिवार्य कर्त्तव्य है, ऐसे कर्मों को नित्यकर्म कहते हैं । नित्यकर्मों के उद्देश्य हैं, १—आवश्यक तत्त्वों का संचय । २—अनावश्यक तत्त्वों का त्याग । शरीर को प्राय: नित्य ही कुछ न कुछ नई आवश्यकता होती है । प्रत्येक गतिशील वस्तु अपनी गति को स्थिर रखने के लिये कहीं न कहीं से नई शक्ति प्राप्त करती है, यदि वह न मिले तो उसका अन्त हो जाता है । रेल के लिये कोयला-पानी, मोटर के लिये पेट्रोल, तार के लिये बैटरी, इन्जन के लिये तेल, सिनेमा के लिये बिजली की आवश्यकता होती है । पौधों का जीवन खाद-पानी पर निर्भर रहता है । पशु-पक्षी, कीट-पतंग, प्रकृति के अनुसार अन्न, जल, वायु लेकर वे जीवन धारण करते हैं । यदि आहार न मिले तो शरीर-यात्रा असम्भव है । कोई भी गतिशील वस्तु चाहे वह सजीव हो या निर्जीव, अपनी गतिशीलता को स्थिर रखने के लिये आहार अवश्य चाहेगी ।

इसी प्रकार प्रत्येक गतिशील पदार्थ में प्रतिक्षण कुछ न कुछ मल बनता रहता है, जिसे जल्दी साफ करने की आवश्यकता पड़ती है । रेल में कोयले की राख, मशीनों में तेल का कीचड़ जमता है । शरीर में प्रतिक्षण मल बनता है और वह गुदा, शिश्न, नाक, मुख, कान, आँख, त्वचा आदि के छिद्रों द्वारा निकलता रहता है । यदि मल की सफाई न हो, तो देह में इतना विष एकत्रित हो जाएगा कि दो-चार दिन में ही जीवन संकट उपस्थित हुए बिना न रहेगा । मकान में बुहारी न लगायी जाए, कपड़ों को न धोया जाए, बर्तन को न मला जाए, शरीर को स्नान न कराया जाए तो एक-दो दिन में ही मैल चढ़ जाएगा और गन्दगी, कुरूपता, बदबू, मलिनता तथा विकृति उत्पन्न हो जाएगी ।

आत्मा सबसे अधिक गतिशील और चैतन्य है, उसे भी आहार की और मल-विसर्जन की आवश्यकता पड़ती है । स्वाध्याय, सत्संग, आत्म-चिन्तन, उपासना, साधना आदि साधनों द्वारा आत्मा को आहार प्राप्त होता है और वह बलवान्, चैतन्य तथा क्रियाशील रहती है । जो लोग इन आहारों से अपने अन्तःकरण को वंचित रखते हैं और सांसारिक झंझटों में ही हर घड़ी लगे रहते हैं ; उनका शरीर चाहे कितना ही मोटा हो, धन-दौलत कितना ही जमा क्यों न हो जाए, पर आत्मा भूखी ही रहती है । इस भूख के कारण वह निस्तेज, निर्बल, निष्क्रिय और अर्धमूर्च्छित अवस्था में पड़ी रहती है । इसलिये शास्त्रकारों ने आत्म-साधना को नित्यकर्म में शामिल करके मनुष्य के लिये उसे एक आवश्यक कर्तव्य बना दिया है ।

आत्मिक साधना में आहार-प्राप्ति और मल - विसर्जन दोनों महत्त्वपूर्ण कार्य समान रूप से होते हैं । आत्मिक भावना, विचारधारा और अवस्थिति को बलवान्, चैतन्य एवं क्रियाशील बनाने वाली पद्धति को साधना कहते हैं । यह साधना उन विकारों, मलों एवं विषों की भी सफाई करती है, जो सांसारिक विषयों और उलझनों के कारण

चित्त पर बुरे रूप से सदा ही जमते रहते हैं । शरीर को दो बार स्नान कराना, दो बार शौच जाना आवश्यक समझा जाता है । आत्मा के लिये भी यह क्रियायें होनी आवश्यक हैं, इसी को सन्ध्या कहते हैं । शरीर से आत्मा का महत्त्व अधिक होने के कारण त्रिकाल सन्ध्या की साधना का शास्त्रों में वर्णन है । तीन बार न बन पड़े, तो प्रातः—सायं दो बार से काम चलाया जा सकता है । जिसकी रुचि इधर बहुत ही कम है, वे एक बार तो कम से कम यह समझ कर करें कि सन्ध्या हमारा आवश्यक नित्य कर्म है, धार्मिक कर्त्तव्य है । उसे न करने से पाप विकारों का जमाव होता रहता है, भूखी आत्मा निर्बल होती चलती है, यह दोनों ही बातें पाप कर्मों में शुमार हैं । अतएव पातक भार से बचने के लिये भी सन्ध्या को हमारे आवश्यक नित्य कर्मों में स्थान मिलना उचित है ।

सन्ध्या वन्दन की अनेक विधियाँ हिन्दू धर्म में प्रचलित हैं । उनमें सबसे सरल, सुगम, सीधी एवं अत्यधिक प्रभावशाली उपासना गायत्री मन्त्र द्वारा होने वाली 'ब्रह्मसन्ध्या' है । इसमें केवल एक ही गायत्री-मन्त्र याद करना होता है । अन्य सन्ध्या विधियों की भाँति अनेक मन्त्र याद करने और अनेक प्रकार के विधि-विधान याद रखने की आवश्यकता नहीं पड़ती ।

सूर्योदय या सूर्यास्त समय को सन्ध्याकाल कहते हैं । यही समय सन्ध्यावन्दन का है । सुविधानुसार इसमें थोड़ा आगे-पीछे भी कर सकते हैं । त्रिकाल सन्ध्या करने वालों के लिये तीसरा समय मध्याह्नकाल का है । नित्यकर्म से निवृत्त होकर शरीर को स्वच्छ करके सन्ध्या के लिए बैठना चाहिये, उस समय देह पर कम से कम वस्त्र होने चाहिये । खुली हवा का एकान्त स्थान मिल सके, तो सबसे अच्छा; अन्यथा घर का ऐसा भाग तो चुनना चाहिये, जहाँ कम खटपट और शुद्धता रहती हो । कुश का आसन, चटाई, टाट या चौकी बिछाकर, पालथी मारकर मेरुदण्ड सीधा रखते हुए सन्ध्या के लिये बैठना चाहिये । प्रातःकाल पूर्व की ओर, सायंकाल को पश्चिम की ओर मुँह करके बैठना चाहिये । पास में जल से भरा पात्र रख लेना चाहिये, सन्ध्या के पाँच कर्म हैं उनका वर्णन नीचे लिखा जाता है ।

(१) आचमन

जल से भरे हुए पात्र में से दाहिने हाथ की हथेली पर जल लेकर उसका तीन बार आचमन करना चाहिये । बाँये हाथ से पात्र को उठाकर हथेली में थोड़ा-सा गड्ढा करके उसमें जल भरें और गायत्री मन्त्र पढ़ें, मन्त्र पूरा होने पर उस जल को पी लें । तीसरी बार इसी प्रकार करें । तीन बार आचमन करने के उपरान्त दाहिने हाथ को पानी से धो डालें । कन्धे पर रखे हुए अँगोछे से हाथ-मुँह पोंछ लें, जिससे हथेली, ओंठ और मुँह आदि पर आचमन किये जाने का अंश लगा न रह जाए ।

आचमन त्रिगुणमयी माता की विविध शक्तियों को अपने अन्दर धारण करने के लिये है । प्रथम आचमन के साथ सतोगुणी विश्वव्यापी सूक्ष्म शक्ति 'ह्रीं' का ध्यान करते हैं और भावना करते हैं कि विद्युत् सरीखी सूक्ष्म नील-किरणें मेरे मन्त्रोच्चारण के साथ-साथ सब ओर से इस जल में प्रवेश कर रही हैं और यह उस शक्ति से ओत-प्रोत हो रहा है । आचमन करने के साथ में सम्मिलित सब शक्तियाँ अपने अन्दर प्रवेश करने की भावना रखनी चाहिये कि मेरे अन्दर सद्गुणों का पर्याप्त मात्रा में प्रवेश हुआ है, इसी प्रकार दूसरे आचमन के साथ रजोगुणी 'श्रीं' शक्ति की पीतवर्ण किरणों को जल में आकर्षित होने और तीसरे आचमन में तमोगुणी 'क्लीं' भावना की रक्त वर्ण शक्तियों को अपने में धारण होने का भाव जाग्रत् होना चाहिये ।

जैसे बालक माता का दूध पीकर उसके गुणों और शक्तियों को अपने में धारण करता है और परिपुष्ट होता है, उसी प्रकार साधक मन्त्र बल से आचमन के जल को गायत्री-माता के दूध के समान बना लेता है और उसका पान करके अपने आत्मबल को बढ़ाता है । इस आचमन से उसे त्रिविध ह्रीं, श्रीं, क्लीं की शक्ति से युक्त आत्म-बल मिलता है, तदनुसार उसको आत्मिक पवित्रता, सांसारिक समृद्धि को सुदृढ़ बनाने वाली शक्ति प्राप्त होती है ।

(२) शिखा-बन्धन (वन्दन)

आचमन के पश्चात् शिखा को जल से गीला करके उसमें ऐसी गाँठ लगानी चाहिये, जो सिरा नीचे से खुल जाए । इसे आधी गाँठ कहते हैं । गाँठ लगाते समय गायत्री मन्त्र का उच्चारण करते जाना चाहिये ।

शिखा, मस्तिष्क के केन्द्र बिन्दु पर स्थापित है। जैसे रेडियो के ध्वनि विस्तारक केन्द्रों में ऊँचे खम्भे लगे होते हैं और वहाँ से ब्राडकास्ट की तरंगें चारों ओर फेंकी जाती हैं, उसी प्रकार हमारे मस्तिष्क का विद्युत् भण्डार शिखा स्थान पर है, उस केन्द्र में से हमारे विचार, संकल्प और शक्ति परमाणु हर घड़ी बाहर निकल-निकलकर आकाश में दौड़ते रहते हैं। इस प्रवाह से शक्ति का अनावश्यक व्यय होता है और अपना कोष घटता है। इसका प्रतिरोध करने के लिये शिखा में गाँठ लगा देते हैं।सदा गाँठ लगाये रहने से अपनी मानसिक शक्तियों का बहुत-सा अपव्यय बच जाता है।

सन्ध्या करते समय विशेष रूप से गाँठ लगाने का प्रयोजन यह है कि रात्रि को सोते समय यह गाँठ प्राय: शिथिल हो जाती है या खुल जाती है। फिर स्नान करते समय केश-शुद्धि के लिये शिखा को खोलना पड़ता है। सन्ध्या करते समय अनेक सूक्ष्म तत्त्व आकर्षित होकर अपने अन्दर स्थिर होते हैं, वे सब मस्तिष्क केन्द्र से निकलकर बाहर न उड़ जाएँ और कहीं अपने को साधना के लाभ से वंचित न रहना पड़े, इसलिये शिखा में गाँठ लगा दी जाती है। फुटबाल के भीतर की रबड़ में हवा भरने की एक नली होती है। इसमें गाँठ लगा देने से भीतर भरी हुई वायु बाहर नहीं निकल पाती। साइकिल के पहियों में भरी हुई हवा को रोकने के लिये भी एक छोटी-सी बालट्यूब नामक रबड़ की नली लगी होती है, जिसमें होकर हवा भीतर तो जा सकती है, बाहर नहीं आ सकती। गाँठ लगी हुई शिखा से भी यही प्रयोजन पूरा होता है। वह बाहर के विचार और शक्ति समूह को ग्रहण करती है। भीतर के तत्त्वों का अनावश्यक व्यय नहीं होने देती।

आचमन से पूर्व शिखा बन्धन इसलिये नहीं होता, क्योंकि उस समय त्रिविध शक्ति का आकर्षण जहाँ जल द्वारा होता है, वह मस्तिष्क के मध्य केन्द्र द्वारा भी होता है। इस प्रकार शिखा खुली रहने से दुहरा लाभ होता है। तत्पश्चात् उसे बाँध दिया जाता है।

(३) प्राणायाम

सन्ध्या का तीसरा कोष है प्राणायाम अथवा प्राणाकर्षण। गायत्री की उत्पत्ति का वर्णन करते हुए पूर्व पृष्ठों में यह बताया जा चुका है कि सृष्टि दो प्रकार की है—(१) जड़ अर्थात् परमाणुमयी। (४) चैतन्य अर्थात् प्राणमयी। निखिल विश्व में जिस प्रकार परमाणुओं के संयोग–वियोग से विविध प्रकार के दृश्य उपस्थित होते रहते हैं, उसी प्रकार चैतन्य प्राण-सत्ता की हलचलों से चैतंन्य जगत् की विविध घटनायें घटित होती हैं। जैसे वायु अपने क्षेत्र में सर्वत्र भरी हुई है, उसी प्रकार वायु से भी असंख्य गुना सूक्ष्म चैतन्य प्राण तत्त्व सर्वत्र व्याप्त है। इस तत्त्व की न्यूनाधिकता से हमारा मानस-क्षेत्र निर्बल तथा बलवान् होता है। इस प्राणतत्त्व को जो जितनी मात्रा में आकर्षित कर लेता है, धारण कर लेता है, उसकी आन्तरिक स्थिति उतनी ही बलवान् हो जाती है। आत्म-तेज, शूरता, दृढ़ता, पुरुषार्थ, विशालता, महानता, सहनशीलता, धैर्य, स्थिरता सरीखे गुण प्राण शक्ति के परिचायक हैं। जिनमें प्राण कम होता है, वे शरीर से स्थूल भले ही हों, पर डरपोक, दब्बू, झेंपने वाले, कायर, अस्थिर मति, संकीर्ण, अनुदार, स्वार्थी, अपराधी-मनोवृत्ति के, घबराने वाले, अधीर, तुच्छ, नीच विचारों में ग्रस्त एवं चञ्चल मनोवृत्ति के होते हैं। इन दुर्गुणों के होते हुए कोई व्यक्ति महान् नहीं बन सकता। इसलिये साधक को प्राण शक्ति अधिक मात्रा में अपने अन्दर धारण करने की आवश्यकता होती है। जिस प्रक्रिया द्वारा विश्वमयी, प्राणतत्त्व में से खींचकर अधिक मात्रा में प्राणशक्ति को हम अपने अन्दर धारण करते हैं, उसे प्राणायाम कहा जाता है।

प्राणायाम के समय मेरुदण्ड को विशेष रूप से सावधान होकर सीधा कर लीजिये, क्योंकि मेरुदण्ड में स्थित इड़ा, पिंगला, और सुषुम्ना नाड़ियों द्वारा प्राणशक्ति का आवागमन होता है और यदि रीड़ टेढ़ी झुकी रहे, तो मूलाधार में स्थित कुण्डलिनी तक प्राण की धारा निर्बाध गति से न पहुँच सकेगी। अत: प्राणायाम का वास्तविक लाभ न मिल सकेगा।

प्राणायाम के चार भाग हैं—(१) पूरक (२) अन्त: कुम्भक (३) रेचक (४) बाह्य कुम्भक। वायु को भीतर खींचने का नाम पूरक, वायु को भीतर ही रोके रहने के नाम को अन्त: कुम्भक, वायु को बाहर निकालने का नाम रेचक और बिना साँस के रहने को-वायु को बाहर रोके रहने को बाह्य कुम्भक कहते हैं। इन चारों के लिये गायत्री

मन्त्र के चार भागों की नियुक्ति की गयी है। पूरक के साथ 'ॐ भूर्भुवः स्वः', अन्तः कुम्भक के साथ 'तत्सवितुर्वरेण्यं', रेचक के साथ 'भर्गो देवस्य धीमहि', बाह्य कुम्भक के साथ 'धियो यो नः प्रचोदयात्' मन्त्र का जप होना चाहिये।

(अ) स्वस्थ चित्त से बैठिये, मुख को बन्द कर लीजिये, नेत्रों को बन्द या अधखुले रखिये। अब साँस को धीरे-धीरे नासिका द्वारा भीतर खींचना आरम्भ कीजिये और 'ॐ भूर्भुवः स्वः' इस मन्त्र भाग का मन ही मन उच्चारण करते चलिये और भावना कीजिये कि 'विश्वव्यापी दुःखनाशक, सुख स्वरूप ब्रह्म की चैतन्य प्राण शक्ति को मैं नासिका द्वारा आकर्षित कर रहा हूँ।' इस भावना और इस मन्त्र के साथ धीरे-धीरे साँस खीचिये और जितनी अधिक वायु भीतर भर सकें, भर लीजिये।

(ब) अब वायु को भीतर रोकिये और 'तत्सवितुर्वरेण्यं' इस भाग का जप कीजिये, साथ ही भावना कीजिये कि 'नासिका द्वारा खींचा हुआ वह प्राण श्रेष्ठ है। सूर्य के समान तेजस्वी है। उसका तेज मेरे अंग-प्रत्यंग में, रोम-रोम में भरा जा रहा है।' इस भावना के साथ पूरक की अपेक्षा आधे समय तक वायु को भीतर रोके रखें।

(स) अब नासिका द्वारा वायु धीरे-धीरे बाहर निकालना आरम्भ कीजिये और 'भर्गोदेवस्य धीमहि' इस मन्त्र भाग को जपिये तथा भावना कीजिये कि 'यह दिव्य प्राण मेरे पापों का नाश करता हुआ विदा हो रहा है।' वायु को निकालने में प्रायः उतना ही समय लगाना चाहिये, जितना कि वायु खींचने में लगाया था।

(द) जब भीतर की सब वायु बाहर निकल जाए, तो जितनी देर वायु को भीतर रोके रखा था, उतनी ही देर बाहर रोके रखें अर्थात् बिना साँस लिये रहें और 'धियो यो नः प्रचोदयात्' इस मन्त्र भाग को जपते रहें। साथ ही भावना करें कि भगवती वेदमाता आद्य-शक्ति गायत्री सद्बुद्धि को जाग्रत् कर रही हैं।

यह एक प्राणायाम हुआ। अब इसी प्रकार पुनः इन क्रियाओं की पुनरुक्ति करते हुए दूसरा प्राणायाम करें। सन्ध्या में यह पाँच प्राणायाम करने चाहिये, जिससे शरीर में स्थित प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान नामक पाँचों प्राणों का व्यायाम, स्फुरण और परिमार्जन हो जाता है।

(४) अघमर्षण

अघमर्षण कहते हैं—पाप के नाश करने को। गायत्री की पुण्य भावना के प्रवेश करने से पाप का नाश होता है। प्रकाश के आगमन के साथ-साथ अन्धकार नष्ट हो जाता है, पुण्य संकल्पों के उदय के साथ-साथ पापों का भी संहार होता है। बल-बुद्धि के साथ-साथ निर्बलता का अन्त हो चलता है। ब्रह्म सन्ध्या की ब्राह्मी भावनाएँ हमारे अघ का मर्षण करती रहती हैं।

अघमर्षण के लिये दाहिने हाथ की हथेली पर जल लेकर उसे दाहिने नथुने के समीप ले जाना चाहिये। समीप का अर्थ है—छः अंगुल दूर। बाँये हाथ के अँगूठे से बायाँ नथुना बन्द कर लें और दाहिने नथुने से धीरे-धीरे साँस खींचना आरम्भ करें। साँस खींचते समय ऐसी भावना करें कि गायत्री माता का पुण्य प्रतीक यह जल अपनी दिव्य शक्तियों सहित पापों का संहार करने के लिये साँस के साथ मेरे अन्दर प्रवेश कर रहा है और भीतर से पापों का, मलों का, विकारों का संहार कर रहा है।

जब पूरी साँस खींच चुकें, तो बायाँ नथुना खोल दें और दाहिना नथुना अँगूठे से बन्द रखें और साँस बाहर निकालना आरम्भ करें। दाहिनी हथेली पर रखे हुए जल को अब बाँयें नथुने के सामने करें और भावना करें कि 'नष्ट हुए पापों की लाशों का समूह साँस के साथ बाहर निकल कर इस जल में गिर रहा है।' जब साँस पूरी तरह बाहर निकल जाए, तो उस जल को बिना देखे घृणापूर्वक बाँयीं ओर पटक देना चाहिये।

अघमर्षण क्रिया से जल को हथेली में भरते समय 'ॐ भूर्भुवः स्वः' दाहिने नथुने से साँस खीचते समय 'तत्सवितुर्वरेण्यं' इतना मन्त्र भाग जपना चाहिये और बाँयें नथुने से साँस छोड़ते समय 'भर्गो देवस्य धीमहि' और जल पटकते समय 'धियो यो नः प्रचोदयात्' इस मन्त्र का उच्चारण करना चाहिये।

यह क्रिया तीन बार करनी चाहिये जिससे काया के, प्राण के, मन के त्रिविध पापों का संहार हो सके।

(५) न्यास

न्यास कहते हैं धारण करने को । अंग-प्रत्यंगों से गायत्री की सतोगुणी शक्ति को धारण करने, स्थापित करने, भरने, ओत-प्रोत करने के लिये न्यास किया जाता है । गायत्री के प्रत्येक शब्द का, महत्त्वपूर्ण मर्मस्थलों से घनिष्ठ सम्बन्ध है । जैसे सितार के अमुक भाग में, अमुक आघात के साथ उँगली का आघात लगने से अमुक ध्वनि के स्वर निकलते हैं, उसी प्रकार शरीर-वीणा को सन्ध्या से अंगुलियों के सहारे दिव्य भाव से झंकृत किया जाता है ।

ऐसा माना जाता है कि स्वभावत: अपवित्र रहने वाले शरीर से दैवी सान्निध्य ठीक प्रकार से नहीं हो सकता, इसलिये उसके प्रमुख स्थानों में दैवी पवित्रता स्थापित करके उसमें इतनी मात्रा दैवी तत्त्वों की स्थापित कर ली जाती है कि वह दैवी साधना का अधिकारी बन जाए ।

न्यास के लिये भिन्न-भिन्न उपासना विधियों में अलग-अलग विधान हैं कि किन उँगलियों को काम में लाया जाए । गायत्री की ब्रह्म सन्ध्या में अँगूठा और अनामिका उँगली का प्रयोग प्रयोजनीय ठहराया गया है । अँगूठा और अनामिका उँगली को मिलाकर विभिन्न अंगों का स्पर्श इस भावना से करना चाहिये कि मेरे यह अंग गायत्री शक्ति से पवित्र तथा बलवान् हो रहे हैं । अंग स्पर्श के समय निम्न प्रकार मन्त्रोच्चार करना चाहिये ।

ॐ भूर्भुव: स्व:—मूर्धायै
तत्सवितु:—नेत्राभ्यां
वरेण्यं—कर्णाभ्यां
भर्गो—मुखाय
देवस्य—कण्ठाय
धीमहि—हृदयाय
धियो यों न:—नाभ्यै
प्रचोदयात्—हस्तपादाभ्यां

यह सात अंग शरीर ब्रह्माण्ड के सात लोक हैं अथवा यों कहिये कि आत्मारूपी सविता के सात वाहन अश्व हैं । शरीर सप्ताह के सात दिन हैं । यों साधारणत: दस इन्द्रियाँ मानी जाती हैं, पर गायत्री योग के अन्तर्गत सात इन्द्रियाँ मानी गयी हैं—

१. मूर्धा, (मस्तिष्क, मन) २. नेत्र, ३. कर्ण, ४. वाणी और रसना, ५. हृदय, अन्त:करण, ६. नाभि, जननेन्द्रिय, ७. कर्मेन्द्रिय (हाथ-पैर) इन सातों में अपवित्रता न रहे, इनके द्वारा कुमार्ग को न अपनाया जाए, अविवेकपूर्ण आचरण न हो, इस प्रतिरोध के लिये न्यास किया जाता है । इन सात अंगों में भगवती की सात शक्तियाँ निवास करती हैं। उन्हें उपर्युक्त न्यास द्वारा जाग्रत् किया जाता है । जाग्रत् हुई मातृकायें अपने-अपने स्थान की रक्षा करती हैं, अवांछनीय तत्त्वों का संहार करती हैं । इस प्रकार साधक का अन्त:प्रदेश ब्राह्मी शक्ति का सुदृढ़ दुर्ग बन जाता है ।

इन पंचकोषों का विनियोग करने के पश्चात् आचमन, शिखा-बन्धन, प्राणायाम, अघमर्षण, न्यास से निवृत्त होने के पश्चात् गायत्री का जप ध्यान करना चाहिये । सन्ध्या तथा जप में मन्त्रोच्चार इस प्रकार करना चाहिये कि होंठ हिलते रहें, शब्दोच्चारण होता रहे, पर निकट बैठा व्यक्ति उसे सुन न सके ।

जप करते हुए वेदमाता गायत्री का इस प्रकार ध्यान करना चाहिये मानो वह हमारे हृदय सिंहासन पर बैठी अपनी शक्तिपूर्ण किरणों को चारों ओर बिखेर रही है और उससे हमारा अन्त:प्रदेश आलोकित हो रहा है । उस समय नेत्र अर्धोन्मीलित या बन्द रहें । अपने हृदयाकाश में ब्राह्म आकाश के समान ही एक विस्तृत शून्य लोक की भावना करके उसमें सूर्य के समान ज्ञान की तेजस्वी ज्योति की कल्पना भी करते रहना चाहिये । यह ज्योति और प्रकाश गायत्री माता की ज्ञान शक्ति का ही होता है, जिसका अनुभव साधक को कुछ समय की साधना के पश्चात् स्पष्ट रीति से होने लगता है । इस प्रकार की साधना के फलस्वरूप श्वेत रंग की ज्योति में विभिन्न रंगों के दर्शन होते हैं । इस प्रकार धीरे-धीरे वह आत्मोन्नति करता हुआ निश्चित रूप से अध्यात्म के उच्च सोपान पर पहुँच जाता है ।

गायत्री का सर्वश्रेष्ठ एवं सर्व सुलभ ध्यान

मानव-मस्तिष्क बड़ा ही आश्चर्यजनक, शक्तिशाली एवं चुम्बक गुण वाला यन्त्र है । उसका एक-एक परमाणु इतना विलक्षण है कि उसकी गतिविधि, सामर्थ्य और क्रियाशीलता को देखकर बड़े-बड़े वैज्ञानिक हैरत में रह जाते हैं । इन अणुओं को जब किसी विशेष दिशा में नियोजित कर दिया जाता है, तो उसी दिशा में एक लपलपाती हुई अग्नि जिह्वा अग्रगामी होती है । जिस दिशा से मनुष्य इच्छा, आकांक्षा और लालसा करता है, उसी दिशा में, उसी रंग में, उसी लालसा में शरीर की शक्तियाँ नियोजित हो जाती हैं ।

पहले भावनाएँ मन में आती हैं । फिर जब उन भावनाओं पर चित्त एकाग्र होता है, तब यह एकाग्रता, एक चुम्बक शक्ति आकर्षणतत्त्व के रूप में प्रकट होती है और अपने अभीष्ट तत्त्वों को अखिल आकाश में से खींच लाती है । ध्यान का यही विज्ञान है । इस विज्ञान के आधार पर, प्रकृति के अन्तराल में निवास करने वाली सूक्ष्म आद्यशक्ति ब्रह्मस्फुरणा गायत्री को अपनी ओर आकर्षित किया जा सकता है । उसके शक्ति भण्डार को प्रचुर मात्रा में अपने अन्दर धारण किया जा सकता है ।

जप के समय अथवा किसी अन्य सुविधा के समय में नित्य गायत्री का ध्यान किया जाना चाहिये । एकान्त, कोलाहल रहित, शांत वातावरण के स्थान में स्थिर चित्त होकर ध्यान के लिये बैठना चाहिये । शरीर शिथिल रहे । यदि जप काल में ध्यान किया जा रहा है, तब तो पालथी मारकर, मेरुदण्ड सीधा रखकर ध्यान करना उचित है । यदि अलग समय में करना हो, तो आरामकुर्सी पर लेटकर या मसनद, दीवार, वृक्ष आदि का सहारा लेकर साधना करनी चाहिये । शरीर बिल्कुल शिथिल कर दिया जाय, इतना शिथिल मानो देह निर्जीव हो गयी हो । इस स्थिति में नेत्र बन्द करके दोनों हाथों को गोदी में रखकर ऐसा ध्यान करना चाहिये कि "इस संसार में सर्वत्र केवल नीला आकाश है, उसमें कहीं कोई वस्तु नहीं है ।" प्रलयकाल में जैसी स्थिति होती है, आकाश के अतिरिक्त और कुछ नहीं रह जाता, वैसी स्थिति का कल्पना चित्र मन में भलीभाँति अंकित करना चाहिये । जब यह कल्पना चित्र भावना-लोक में भली-भाँति अंकित हो जाए, तो सुदूर आकाश में एक छोटे ज्योति-पिण्ड को सूक्ष्म नेत्रों से देखना चाहिये । सूर्य के समान प्रकाशवान् एक छोटे नक्षत्र के रूप में गायत्री का ध्यान करना चाहिये । यह ज्योति-पिण्ड अधिक समय तक ध्यान रखने पर समीप आता है, बड़ा होता जाता है और तेज अधिक प्रखर हो जाता है ।

चन्द्रमा या सूर्य के मध्य भाग में ध्यानपूर्वक देखा जाए, तो उसमें काले-काले धब्बे दिखाई पड़ते हैं, इसी प्रकार उस गायत्री तेज-पिण्ड में ध्यानपूर्वक देखने से आरम्भ में भगवती गायत्री की धुँधली-सी प्रतिमा दृष्टिगोचर होती है । धीरे-धीरे ध्यान करने वाले को यह मूर्ति अधिक स्पष्ट, अधिक स्वच्छ, अधिक चैतन्य, हँसती, बोलती, चेष्टा करती, संकेत करती तथा भाव प्रकट करती हुई दिखाई पड़ती है । हमारी इस गायत्री महाविज्ञान पुस्तक के आरम्भ में भगवती गायत्री का एक चित्र दिया हुआ है । उस चित्र का ध्यान आरम्भ करने से पूर्व कई बार बड़े प्रेम से, गौर से भली-भाँति अंग-प्रत्यंगों का निरीक्षण करके उस मूर्ति को मनःक्षेत्र में इसी प्रकार बिठाना चाहिये कि ज्योति-पिण्ड में ठीक वैसी ही प्रतिमा की झाँकी होने लगे । थोड़े दिनों में यह तेजोमण्डल से आवेष्ठित भगवती गायत्री की छवि अत्यन्त सुन्दर, अत्यन्त हृदयग्राही रूप में ध्यानावस्था में दृष्टिगोचर होने लगती है ।

जैसे सूर्य की किरणें धूप में बैठे हुए मनुष्य के ऊपर पड़ती हैं और वह किरणों की उष्णता को प्रत्यक्ष अनुभव करता है, वैसे ही यह ज्योति पिण्ड जब समीप आने लगता है, तो ऐसा अनुभव होता है मानो कोई दिव्य प्रकाश अपने मस्तक में, अन्तःकरण और शरीर के रोम-रोम में प्रवेश करके अपना अधिकार जमा रहा है, जैसे अग्नि में पड़ने से लोहा भी धीरे-धीरे गरम और लाल रंग का अग्निवर्ण हो जाता है, वैसे ही जब गायत्री माता के तेज को ध्यानावस्था में साधक अपने अन्दर धारण करता है, तो वही सच्चिदानन्द स्वरूप, ऋषिकल्प होकर ब्रह्मतेज से झिलमिलाने लगता है । उसे अपना सम्पूर्ण शरीर तप्त स्वर्ण की भाँति रक्तवर्ण अनुभव होता है और अन्तःकरण में एक अलौकिक दिव्य रूप का प्रकाश सूर्य के समान प्रकाशित हुआ दीखता है । इस तेज संस्थान में आत्मा के ऊपर चढ़े हुए अपने कलुष-कषाय जल-जल कर भस्म हो जाते हैं और साधक अपने को ब्रह्मस्वरूप, निर्मल, निर्भय, निष्पाप, निरासक्त अनुभव करता है ।

इस तेज धारण, ध्यान में कई बार रंग-बिरंगे प्रकाश दिखाई पड़ते हैं, कई बार प्रकाश में छोटे-मोटे रंग-बिरंगे तारा प्रकट होते, जगमगाते और छिपते दिखाई पड़ते हैं । ये एक दिशा से दूसरी दिशा की ओर चलते हैं तथा उलटे वापस लौट पड़ते हैं । कई बार चक्राकार एवं बाण की तरह तेजी से इस दिशा में चलते हुए छोटे-मोटे प्रकाश खण्ड दिखाई पड़ते हैं । यह सब प्रसन्नता देने वाले चिह्न हैं । अन्तरात्मा में गायत्री-शक्ति की वृद्धि होने से छोटी-छोटी अनेकों शक्तियाँ एवं गुणावलियाँ विकसित होती हैं, वे ही ऐसे छोटे-छोटे रंग-बिरंगे प्रकाश पिण्डों के रूप में परिलक्षित होती हैं ।

जब साधना अधिक प्रगाढ़, पुष्ट और परिपक्व हो जाती है, तो मस्तिष्क के मध्य भाग या हृदय स्थान पर वही गायत्री तेज स्थिर हो जाता है । यही सिद्धावस्था है । जब वह तेज बाह्य आकाश से खिंचकर अपने अन्दर स्थिर हो जाता है, तो ऐसी स्थिति हो जाती है, जैसे अपना शरीर और गायत्री का प्राण एक ही स्थान पर सम्मिलित हो गये हों । भूत-प्रेत का आवेश शरीर में बढ़ जाने पर मनुष्य उस प्रेतात्मा की इच्छानुसार काम करता है, वैसे ही गायत्री शक्ति का आधान अपने अन्दर हो जाने से साधक विचार, कार्य, आचरण, मनोभाव, रुचि, इच्छा, आकांक्षा एवं ध्येय में परमार्थ प्रधान रहता है । इससे मनुष्यत्व में से पशुता घटती जाती है और देवत्व की मात्रा बढ़ती जाती है ।

उपर्युक्त ध्यान गायत्री का सर्वोत्तम ध्यान है । जब गायत्री तेज-पिण्ड की किरणें अपने ऊपर पड़ने की ध्यान-भावना की जा रही हो, तब यह भी अनुभव करना चाहिये कि ये किरणें सद्बुद्धि, सात्त्विकता एवं सशक्तता को उसी प्रकार हमारे ऊपर डाल रही हैं, जिस प्रकार कि सूर्य की किरणें गर्मी तथा गतिशीलता प्रदान करती हैं । इस ध्यान से उठते ही साधक अनुभव करता है कि उसके मस्तिष्क में सद्बुद्धि, अन्तःकरण में सात्त्विकता तथा शरीर में सक्रियता की मात्रा बढ़ गयी है । यह वृद्धि यदि थोड़ी-थोड़ी करके भी नित्य होती रहे, तो धीरे-धीरे कुछ ही समय में वह बड़ी मात्रा में एकत्रित हो जाती है, जिससे साधक, ब्रह्मतेज का एक बड़ा भण्डार बन जाता है । ब्रह्म-तेज तो दर्शनी हुण्डी है, जिसे श्रेय व प्रेय दोनों में से किसी भी बैंक में भुनाया जा सकता है, उसके बदले में दैवी या सांसारिक सुख कोई भी वस्तु प्राप्त की जा सकती है ।

पापनाशक और शक्तिवर्द्धक तपश्चर्याएँ

अग्नि की उष्णता से संसार के सभी पदार्थ जल, बदल या गल जाते हैं । कोई ऐसी वस्तु नहीं है, जिसमें अग्नि का संसर्ग होने पर भी परिवर्तन न होता हो । तपस्या की अग्नि भी ऐसी ही है । वह पापों के समूह को निश्चित रूप से गलाकर नरम कर देती है, बदलकर मन-भावन बना देती है अथवा जलाकर भस्म कर देती है ।

जो प्रारब्ध-कर्म समय के परिपाक से प्रारब्ध और भवितव्यता बन चुके हैं, जिनका भोगा जाना अमिट रेखा की भाँति सुनिश्चित हो चुका है, वे कष्ट-साध्य भोग, तपस्या की अग्नि के कारण गलकर नरम हो जाते हैं । उन्हें भोगना आसान हो जाता है । जो पाप परिणाम दो महीने तक भयंकर उदरशूल होकर प्रकट होने वाला था, वह साधारण कब्ज बनकर दो महीने तक मामूली गड़बड़ी करके आसानी से चला जाता है । जिस पाप के कारण हाथ या पैर कट जाते, भारी रक्तस्राव होने की संभावना थी, वह मामूली ठोकर लगने से या चाकू आदि चुभने से दस-बीस बूँद खून बहकर निवृत्त हो जाता है । जन्म-जन्मान्तरों के संचित वे पाप जो कई-कई जन्मों तक भारी कष्ट देते रहने वाले थे, वे थोड़ी-थोड़ी चिह्न पूजा के रूप में प्रकट होकर इसी जन्म में निवृत्त हो जाते हैं और मृत्यु के पश्चात् स्वर्ग, मुक्ति का अत्यन्त वैभवशाली जन्म मिलने का मार्ग साफ हो जाता है । देखा गया है कि तपस्वियों को इस जन्म में प्रायः कुछ असुविधाएँ रहती हैं । इसका कारण यह है कि जन्म-जन्मान्तरों के समस्त पाप समूह का भुगतान इसी जन्म में होकर आगे का मार्ग साफ हो जाए । इसलिये ईश्वरीय वरदान की तरह हलके-फुलके कष्ट तपस्वियों को मिलते रहते हैं । यह पापों का गलना हुआ ।

बदलना इस प्रकार होता है कि पाप का फल जो सहना पड़ता है, उसका स्वाद बड़ा स्वादिष्ट हो जाता है । धर्म के लिए, कर्तव्य के लिए, यश, कीर्ति और परोपकार के लिए जो कष्ट सहने पड़ते हैं, वे ऐसे ही हैं जैसे प्रसव

पीड़ा। प्रसूता को प्रसवकाल में पीड़ा तो होती है, पर उसके साथ-साथ एक उल्लास भी रहता है। चन्द्र से मुख का सुन्दर बालक देखकर तो वह पीड़ा बिल्कुल भुला दी जाती है। राजा हरिश्चन्द्र, दधीचि, प्रह्लाद, मोरध्वज आदि को जो कष्ट सहने पड़े, उनके लिये उस काल में भी वे उल्लासमय थे, अन्ततः अमर कीर्ति और सद्‌गति की दृष्टि से तो वे कष्ट उनके लिये सब प्रकार मंगलमय ही रहे। दान देने में जहाँ ऋण मुक्ति होती है, वहाँ यश तथा शुभ गति की भी प्राप्ति होती है। तप द्वारा इस प्रकार 'उधार पट जाना और मेहमान जीम जाना' दो कार्य एक साथ हो जाते हैं।

जल जाना इस प्रकार का होता है कि जो पाप अभी प्रारब्ध नहीं बने हैं, भूल, अज्ञान या मजबूरी में बने हैं, वे छोटे-मोटे अशुभ कर्म तप की अग्नि में जलकर अपने आप भस्म हो जाते हैं। सूखे हुए घात-पात के ढेर को अग्नि की छोटी-सी चिनगारी जला डालती है, वैसे ही इस श्रेणी के पाप कर्म तपश्चर्या, प्रायश्चित्त और भविष्य में वैसा न करने के दृढ़ निश्चय से अपने आप नष्ट हो जाते हैं। प्रकाश के सम्मुख जिस प्रकार अन्धकार विलीन हो जाता है, वैसे ही तपस्वी के अन्तःकरण की प्रखर किरणों से पिछले कुसंस्कार नष्ट हो जाते हैं और साथ ही उन कुसंस्कारों की छाया, दुर्गन्ध, कष्टकारक परिणामों की घटा का भी अन्त हो जाता है।

तपश्चर्या से पूर्वकृत पापों का गलना, बदलना एवं जलना होता हो सो बात ही नहीं है, वरन् तपस्वी में एक नयी परम सात्त्विक अग्नि पैदा होती है। इस अग्नि को दैवी विद्युत् शक्ति, आत्म-तेज, तपोबल आदि नामों से भी पुकारते हैं। इस बल से अन्तःकरण में छिपी हुई सुप्त शक्तियाँ जाग्रत् होती हैं, दिव्य सद्‌गुणों का विकास होता है। स्फूर्ति, उत्साह, साहस, धैर्य, दूरदर्शिता, संयम, सन्मार्ग में प्रवृत्ति आदि अनेकों गुणों की विशेषता प्रत्यक्ष परिलक्षित होने लगती है। कुसंस्कार, कुविचार, कुटेव, कुकर्म से छुटकारा पाने के लिये तपश्चर्या एक रामबाण अस्त्र है। प्राचीन काल में अनेक देव-दानवों ने तपस्याएँ करके मनोरथ पूरा करने वाले वरदान पाये हैं।

घिसने की रगड़ से गर्मी पैदा होती है। अपने को तपस्या के पत्थर पर घिसने से आत्म-शक्ति का उद्‌भव होता है। समुद्र को मथने से चौदह रत्न मिले। दूध के मथने से घी निकलता है। काम मन्थन से प्राणधारी बालक की उत्पत्ति होती है। भूमि मन्थन से अन्न उपजता है। तपस्या द्वारा आत्म-मन्थन से उच्च आध्यात्मिक तत्त्वों की वृद्धि का लाभ प्राप्त होता है। पत्थर पर घिसने से चाकू तेज होता है। अग्नि में तपाने से सोना निर्मल बनता है। तप से तपा हुआ मनुष्य भी पापमुक्त, तेजस्वी और विवेकवान् बन जाता है।

अपनी तपस्याओं में गायत्री तपस्या का स्थान बहुत महत्त्वपूर्ण है। नीचे कुछ पाप-नाशिनी और ब्रह्मतेज-वर्द्धिनी तपश्चर्याएँ बताई जाती हैं—

(१) अस्वाद तप

तप उन कष्टों को कहते हैं, जो अभ्यस्त वस्तुओं के अभाव में सहने पड़ते हैं। भोजन में नमक और मीठा ये दो स्वाद की प्रधान वस्तुएँ हैं। इनमें से एक भी वस्तु न डाली जाए, तो वह भोजन स्वाद रहित होता है। प्रायः लोगों को स्वादिष्ट भोजन करने का अभ्यास होता है। इन दोनों स्वाद तत्त्वों को या इनमें से एक को छोड़ देने से जो भोजन बनता है, उसे सात्त्विक प्रकृति वाला ही कर सकता है। राजसिक प्रकृति वाले का मन उससे नहीं भरेगा। जैसे-जैसे स्वाद रहित भोजन में सन्तोष पैदा होता है, वैसे ही वैसे सात्त्विकता बढ़ती जाती है। सबसे प्रारम्भ में एक सप्ताह, एक मास या एक ऋतु के लिये इसका प्रयोग करना चाहिये। आरम्भ में बहुत लम्बे समय के लिये नहीं करना चाहिये। यह अस्वाद-तप हुआ।

(२) तितिक्षा तप

सर्दी या गर्मी के कारण शरीर को जो कष्ट होता है, उसे थोड़ा-थोड़ा सहन करना चाहिये। जाड़े की ऋतु में धोती और दुपट्टा या कुर्ता दो वस्त्रों में गुजारा करना, रात को रुई का कपड़ा ओढ़कर या कम्बल से काम चलाना, गरम पानी का प्रयोग न करके ताजे जल से स्नान करना, अग्नि न तापना, यह शीत सहन के तप हैं। पंखा, छाता और बर्फ का त्याग यह गर्मी की तपश्चर्या है।

(३) कर्षण तप

प्रातःकाल एक-दो घण्टे रात रहे उठकर नित्यकर्म में लग जाना, अपने हाथ से बनाया भोजन करना, अपने लिये स्वयं जल भरकर लाना, अपने हाथ से वस्त्र धोना, अपने बर्तन स्वयं मलना आदि अपनी सेवा के काम दूसरों से कम से कम कराना। जूता न पहनकर खड़ाऊँ या चट्टी से काम चलाना। पलंग पर शयन न करके तख्त या भूमि पर शयन करना। धातु के बर्तन प्रयोग न करके पत्तल या हाथ में भोजन करना, पशुओं की सवारी न करना, खादी पहनना, पैदल यात्रा करना आदि कर्षण तप हैं। इसमें प्रतिदिन शारीरिक सुविधाओं का त्याग और असुविधाओं को सहन करना पड़ता है।

(४) उपवास

गीता में उपवास को विषय विकार से निवृत्त करने वाला बताया गया है। एक समय अन्नाहार और एक समय फलाहार आरम्भिक उपवास है। धीरे-धीरे इसकी कठोरता बढ़ानी चाहिये। दो समय फल, दूध, दही आदि का आहार इससे कठिन है। केवल दूध या छाछ पर रहना हो तो उसे कई बार सेवन किया जा सकता है। जल हर एक उपवास में कई बार अधिक मात्रा में बिना प्यास के भी पीना चाहिये। जो लोग उपवास में जल नहीं पीते या कम पीते हैं, वे भारी भूल करते हैं। इससे पेट की अग्नि आँतों में पड़े मल को सुखाकर गाँठें बना देती है। इसलिये उपवास में कई बार पानी पीना चाहिये। उसमें नींबू, सोडा, शक्कर मिला लिया जाए, तो स्वास्थ्य और आत्म-शुद्धि के लिए और भी अच्छा है।

(५) गव्य कल्प तप

शरीर और मन के अनेक विकारों को दूर करने के लिये गव्यकल्प अभूतपूर्व है। राजा दिलीप जब निस्सन्तान रहे, तो उन्होंने कुल गुरु के आश्रम में गौ चराने की तपस्या पत्नी सहित की थी। नन्दिनी गौ को वे चराते थे और गोरस का सेवन करके ही रहते थे। गाय का दूध, गाय का दही, गाय की छाछ, गाय का घी सेवन करना, गाय के गोबर के कण्डों से दूध गरम करना चाहिये। गोमूत्र की शरीर पर मालिश करके सिर में डालकर स्नान करना, चर्म-रोगों तथा रक्त-विकारों के लिये बड़ा लाभदायक है। गाय के शरीर से निकलने वाला तेज बड़ा सात्विक एवं बलदायक होता है, इसलिये गौ चराने का भी बड़ा सूक्ष्म लाभ है। गौ के दूध, दही, घी, छाछ पर मनुष्य तीन मास निर्वाह करे, तो उसके शरीर का एक प्रकार से कल्प हो जाता है।

(६) प्रदातव्य तप

अपने पास जो शक्ति हो, उसमें से कम मात्रा में अपने लिये रखकर दूसरों को अधिक मात्रा में दान देना है। धनी आदमी धन का दान करते हैं। जो धनी नहीं हैं, वे अपने समय, बुद्धि, ज्ञान, चातुर्य, सहयोग आदि को उधार या दान देकर दूसरों को लाभ पहुँचा सकते हैं। शरीर का, मन का दान भी धन-दान की ही भाँति महत्त्वपूर्ण है। अनीति उपार्जित धन का सबसे अच्छा प्रायश्चित्त यही है कि उसको सत्कार्य के लिये दान कर दिया जाए। समय का कुछ न कुछ भाग लोकसेवा के लिये लगाना आवश्यक है। दान देते समय पात्र और कार्य का ध्यान करना आवश्यक है। कुपात्र को दिया हुआ, अनुपयुक्त कर्म के लिये दिया गया दान व्यर्थ है। मनुष्येतर प्राणी भी दान के अधिकारी हैं। गौ, चींटी, चिड़ियाँ, कुत्ते आदि उपकारी जीव-जन्तुओं को भी अन्न-जल का दान देने के लिये प्रयत्नशील रहना चाहिये।

स्वयं कष्ट सहकर, अभावग्रस्त रहकर भी दूसरों की उचित सहायता करना, उन्हें उन्नतिशील, सात्विक, सद्गुणी बनाने में सहायता करना, सुविधा देना दान का वास्तविक उद्देश्य है। दान प्रशंसा में धर्म-शास्त्रों का पन्ना-पन्ना भरा हुआ है। उसके पुण्य के सम्बन्ध में अधिक क्या कहा जाए। वेद ने कहा है—"सौ हाथों से कमाये और हजार हाथों से दान करे।"

(७) निष्कासन तप

अपनी बुराइयों और पापों को गुप्त रखने से मन भारी रहता है । पेट में मल भरा रहे, तो उससे नाना प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं, वैसे ही अपने पापों को छुपाकर रखा जाए, तो यह गुप्तता रुके हुए मल की तरह गन्दगी और सड़न पैदा करने वाले समस्त मानसिक क्षेत्र को दूषित कर देती है । इसलिये कुछ ऐसे मित्र चुनने चाहिये जो काफी गम्भीर और विश्वस्त हों । उनसे अपनी पाप कथायें कह देनी चाहिये । अपनी कठिनाइयाँ, दु:ख गाथाएँ, इच्छाएँ, अनुभूतियाँ भी इसी प्रकार किन्हीं ऐसे लोगों से कहते रहना चाहिये, जो उतने उदार हों कि उन्हें सुनकर घृणा न करें और कभी विरोधी हो जाने पर उन्हें दूसरों से प्रकट करके हानि न पहुँचाएँ । यह गुप्त बातों का प्रकटीकरण एक प्रकार का आध्यात्मिक जुलाब है, जिससे मनोभूमि निर्मल होती है ।

प्रायश्चित्तों में "दोष प्रकाशन" का महत्त्वपूर्ण स्थान है । गोहत्या हो जाने का प्रायश्चित्त शास्त्रों ने यह बताया है कि मरी गौ की पूँछ हाथ में लेकर एक-सौ गाँवों में वह व्यक्ति उच्च स्वर से चिल्ला-चिल्लाकर यह कहे कि मुझसे गौ-हत्या हो गयी । इस दोष प्रकाशन से गौ-हत्या का दोष छूट जाता है । जिसके साथ बुराई की हो उससे क्षमा माँगनी चाहिये, क्षतिपूर्ति करनी चाहिये और जिस प्रकार वह संतुष्ट हो सके वह करना चाहिये । यदि वह भी न हो तो कम से कम दोष प्रकाशन द्वारा अपनी अन्तरात्मा का एक भारी बोझ तो हल्का करना ही चाहिये । इस प्रकार के दोष प्रकाशन के लिये 'शान्तिकुञ्ज हरिद्वार' को एक विश्वसनीय मित्र समझकर पत्र द्वारा अपने दोषों को लिखकर उनके प्रायश्चित्त तथा सुधार की सलाह प्रसन्नतापूर्वक ली जा सकती है ।

(८) साधना तप

गायत्री का चौबीस हजार जप नौ दिन में पूरा करना, सवालक्ष जप चालीस दिन में पूरा करना, गायत्री यज्ञ, गायत्री की योग साधनाएँ, पुरश्चरण, पूजन, स्तोत्र पाठ आदि साधनाओं से पाप घटता है और पुण्य बढ़ता है । कम पढ़े लोग "गायत्री चालीसा" का पाठ नित्य करके अपनी गायत्री भक्ति को बढ़ा सकते हैं और इस महामन्त्र से बढ़ी हुई शक्ति के द्वारा तपोबल के अधिकारी बन सकते हैं ।

(९) ब्रह्मचर्य तप

वीर्य-रक्षा, मैथुन से बचना, काम-विकार पर काबू रखना ब्रह्मचर्य व्रत है । मानसिक काम-सेवन शारीरिक काम-सेवन की ही भाँति हानिकारक है । मन को कामक्रीड़ा की ओर न जाने देने का सबसे अच्छा उपाय उसे उच्च आध्यात्मिक एवं नैतिक विचारों में लगाये रहना है । बिना इसके ब्रह्मचर्य की रक्षा नहीं हो सकती । मन को ब्रह्म में, सत् तत्त्व में लगाये रहने से आत्मोन्नति भी होती है, धर्म साधना भी और वीर्य रक्षा भी । इस प्रकार एक ही उपाय से तीन लाभ करने वाला यह तप गायत्री साधना वालों के लिये सब प्रकार उत्तम है ।

(१०) चान्द्रायण तप

यह व्रत पूर्णमासी से आरम्भ किया जाता है । पूर्णमासी को अपनी जितनी पूर्ण खुराक हो, उसका सोलहवाँ भाग प्रतिदिन कम करते जाना चाहिये । जैसे अपना पूर्ण आहार एक सेर है, तो प्रतिदिन एक छटाँक आहार कम करते जाना चाहिये, कृष्ण पक्ष का चन्द्रमा जैसे १-१ कला नित्य घटता है, वैसे ही १-१ षोडशांश नित्य कम करते चलना चाहिये । अमावस्या और प्रतिपदा को चन्द्रमा बिल्कुल दिखाई नहीं पड़ता । उन दो दिनों बिल्कुल भी आहार न लेना चाहिये । फिर शुक्ल पक्ष की दौज को चन्द्रमा एक कला से निकलता है और धीरे-धीरे बढ़ता है वैसे ही १-१ षोडशांश बढ़ाते हुए पूर्णमासी तक पूर्ण आहार पर पहुँच जाना चाहिये । एक मास में आहार-विहार का संयम, स्वाध्याय, सत्संग में प्रवृत्ति, सात्त्विक जीवनचर्या तथा गायत्री साधना में उत्साहपूर्वक संलग्न रहना चाहिये ।

अर्ध चान्द्रायण व्रत पन्द्रह दिन का होता है । उसमें भोजन का आठवाँ भाग आठ दिन कम करना और आठ दिन बढ़ाना होता है । आरम्भ में अर्ध चान्द्रायण ही करना चाहिये । जब एक बार सफलता मिल जाए, तो पूर्ण चान्द्रायण के लिये कदम बढ़ाना चाहिये ।

उपवास, स्वास्थ्यरक्षा का बड़ा प्रभावशाली साधन है। मनुष्य से खान-पान में जो त्रुटियाँ स्वभाव या परिस्थितिवश होती रहती हैं, उनसे शरीर में दूषित या विजातीय तत्त्व की वृद्धि हो जाती है। उपवास काल में जब पेट खाली रहता है, तो जठराग्नि उन दोषों को ही पचाने लगती हैं। इसमें शरीर शुद्ध होता है और रक्त स्वच्छ हो जाता है। जिसकी देह में विजातीय तत्त्व नहीं होंगे और नाड़ियों में स्वच्छ रक्त परिभ्रमण करता होगा, उसको एकाएक किसी रोग या बीमारी की शिकायत हो ही नहीं सकती। इसलिये स्वास्थ्यकामी पुरुष के लिये उपवास बहुत बड़े सहायक बन्धु के समान है। अन्य उपवासों से चान्द्रायण व्रत में यह विशेषता है कि इसमें भोजन का घटाना और बढ़ाना एक नियम और क्रम से होता है, जिससे उसका विपरीत प्रभाव तनिक भी नहीं पड़ता। अन्य लम्बे उपवासों में जिनमें भोजन को लगातार दस-पन्द्रह दिन के लिये छोड़ दिया जाता है, उपवास को खत्म करते समय बड़ी सावधानी रखनी पड़ती है और अधिकांश व्यक्ति उस समय अधिक मात्रा में अनुपयुक्त आहार कर लेने से कठिन रोगों के शिकार हो जाते हैं। यह चान्द्रायण व्रत में बिल्कुल नहीं होता।

(११) मौन तप

मौन से शक्तियों का क्षरण रुकता है, आत्म-बल एवं संयम बढ़ता है, दैवी तत्त्वों की वृद्धि होती है, चित्त की एकाग्रता बढ़ती है, शान्ति का प्रादुर्भाव होता है, बहिर्मुखी वृत्तियाँ अन्तर्मुखी होने से आत्मोन्नति का मार्ग प्रशस्त होता है। प्रतिदिन या सप्ताह में अथवा मास में कोई नियत समय मौन रहने के लिये निश्चित करना चाहिये। कई दिन या लगातार भी ऐसा व्रत रखा जा सकता है। अपनी स्थिति, रुचि और सुविधा के अनुसार मौन की अवधि निर्धारित करनी चाहिये। मौन काल का अधिकांश भाग एकांत में स्वाध्याय अथवा ब्रह्म चिन्तन में व्यतीत करना चाहिये।

(१२) अर्जन तप

विद्याध्ययन, शिल्प-शिक्षा, देशाटन, मल्ल विद्या, संगीत आदि किसी भी प्रकार की उत्पादक उपयोगी शिक्षा प्राप्त करके अपनी शक्ति, योग्यता, क्षमता, क्रियाशीलता, उपयोगिता बढ़ाना अर्जन तप है। विद्यार्थी को कष्ट उठाना पड़ता है, जिस प्रकार मन मारना पड़ता है और सुविधाएँ छोड़कर कठिनाई से भरा कार्यक्रम अपनाना पड़ता है, वह तप का लक्षण है। केवल बचपन में ही नहीं वृद्धावस्था और मृत्यु पर्यन्त किसी न किसी रूप में सदैव अर्जन तप करते रहने का प्रयत्न करना चाहिये। साल में थोड़ा-सा समय तो इस तपस्या में लगाना ही चाहिये, जिससे अपनी तपस्याएँ बढ़ती चलें और उनके द्वारा अधिक लोक-सेवा करना सम्भव हो सके।

सूर्य की बारह राशियाँ होती हैं, गायत्री के वह बारह तप हैं। इनमें से जो तप, जब, जिस प्रकार सम्भव हो, उसे अपनी स्थिति, रुचि और सुविधा के अनुसार अपनाते रहना चाहिये। ऐसा भी हो सकता है कि वर्ष के बारह महीनों में एक-एक महीने एक-एक तप करके एक वर्ष पूरा तप वर्ष बिताया जाए।

सातवें निष्कासन तप में एक-दो बार विश्वस्त मित्रों के सामने दोष प्रकटीकरण हो सकता है। नित्य तो अपनी डायरी में एक मास तक अपनी बुराइयाँ लिखते रहना चाहिये और उन्हें अपने पथ-प्रदर्शक को दिखाना चाहिये। यह क्रम अधिक दिन तक चालू रखा जाए, तो और भी उत्तम है। महात्मा गाँधी साबरमती आश्रम में अपने आश्रमवासियों की डायरी बड़े गौर से जाँचा करते थे।

अन्य तपों में प्रत्येक को प्रयोग करने के लिये अनेकों रीतियाँ हो सकती हैं। उन्हें थोड़ी-थोड़ी अवधि के लिये निर्धारित करके अपना अभ्यास और साहस बढ़ाना चाहिये। आरम्भ में थोड़ा और सरल तप अपनाने से पीछे दीर्घकाल तक और कठिन स्वाध्याय साधन करना भी सुलभ हो जाता है।

गायत्री साधना से पापमुक्ति

गायत्री की अनन्त कृपा से पतितों को उच्चता मिलती है और पापियों के पाप नाश होते हैं। इस तत्त्व पर विचार करते हुए हमें यह भली प्रकार समझ लेना चाहिये कि आत्मा, सर्वथा स्वच्छ, निर्मल, पवित्र, शुद्ध, बुद्ध और निर्लिप्त है। श्वेत काँच या पारदर्शी पात्र में किसी रंग का पानी भर दिया जाए, तो उसी रंग का दीखने लगेगा,

साधारणत: उसे उसी रंग का पात्र कहा जाएगा। इतने पर भी पात्र का मूल सर्वथा रंग रहित ही रहता है। एक रंग का पानी भर दिया जाए, तो फिर इस परिवर्तन के साथ ही पात्र दूसरे रंग का दिखाई देने लगेगा। मनुष्य की यही स्थिति है। आत्मा स्वभावत: निर्विकार है, पर उसमें जिस प्रकार के गुण, कर्म, स्वभाव भर जाते हैं, वह उसी प्रकार का दिखाई देने लगता है।

गीता में कहा है कि—"विद्या-विनय सम्पन्न-ब्राह्मण, गौ, हाथी, कुत्ता तथा चाण्डाल आदि को जो समत्व बुद्धि से देखता है, वही पण्डित है।" इस समन्वय का रहस्य यह है कि आत्मा सर्वथा निर्विकार है, उसकी मूल स्थिति में परिवर्तन नहीं होता, केवल मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार अन्त:करण चतुष्टय, रंगीन-विकारग्रस्त हो जाता है, जिसके कारण मनुष्य अस्वाभाविक, विपन्न, विकृत दशा में पड़ा हुआ प्रतीत होता है। इस स्थिति में यदि परिवर्तन हो जाए, तो आज के दुष्ट का कल ही सन्त बन जाना कुछ भी कठिन नहीं है। इतिहास बताता है, कि एक चाण्डाल कुलोत्पन्न तस्कर बदलकर महर्षि वाल्मीकि हो गया। जीवन भर वेश्यावृत्ति करने वाली गणिका आन्तरिक परिवर्तन के कारण परम साध्वी देवियों को प्राप्त होने वाली परमगति की अधिकारिणी हुई। कसाई का पेशा करते हुए जिन्दगी गुजार देने वाले अजामिल और सदन परम भागवत भक्त कहलाये। इस प्रकार अनेकों नीच काम करने वाले उच्चता को प्राप्त हुए हैं और हीन कुलोत्पन्नों को उच्च वर्ण की प्रतिष्ठा मिली है। रैदास चमार, कबीर जुलाहे, रामानुज शूद्र, षट्कोपाचार्य खटीक, तिरवल्लुवर अंत्यज वर्ण में उत्पन्न हुए थे, पर उनकी स्थिति अनेकों ब्राह्मणों से ऊँची थी। विश्वामित्र क्षत्रिय से ब्राह्मण बने थे।

जहाँ पतित स्थान से ऊपर चढ़ने के उदाहरणों से इतिहास भरा पड़ा है, वहाँ उच्च स्थिति के लोगों के पतित होने के भी उदाहरण कम नहीं हैं, पुलस्त्य के उत्तम ब्रह्मकुल में उत्पन्न हुआ चारों वेदों का महापण्डित रावण, मनुष्यता से भी पतित होकर राक्षस कहलाया। खोटा अन्न खाने से द्रोण और भीष्म जैसे ज्ञानी पुरुष, अन्यायी कौरवों के समर्थक हो गये। विश्वामित्र ने क्रोध में आकर वसिष्ठ के निर्दोष बालकों की हत्या कर डाली। पाराशर ने धीवर की कुमारी कन्या से व्यभिचार करके सन्तान उत्पन्न की, विश्वामित्र ने वेश्या पर आसक्त होकर उसे लम्बे समय तक अपने पास रखा, चन्द्रमा जैसा देवता गुरु माता के साथ कुमार्गगामी बना, देवताओं के राजा इन्द्र को व्यभिचार के कारण शाप का भाजन होना पड़ा, ब्रह्मा अपनी पुत्री पर ही मोहित हो गये, ब्रह्मचारी नारद मोहग्रस्त होकर विवाह करने स्वयंवर में पहुँचे, सड़ी-गली काया वाले वयोवृद्ध च्यवन ऋषि को सुकुमारी सुकन्या से विवाह करने की सूझी, बलि राजा के दान में भाँजी मारते हुए शुक्राचार्य ने अपनी आँख गँवा दी, धर्मराज युधिष्ठिर तक ने अश्वत्थामा के मरने की पुष्टि करके अपने मुख पर कालिख पोती और धीरे से 'नरो वा कुञ्जरो वा' गुनगुनाकर अपने को झूठ से बचाने की प्रवंचना की। कहाँ तक कहें, किस-किस की कहें, इस दृष्टि से इतिहास देखते हैं, तो बड़ों-बड़ों को स्थान च्युत हुआ पाते हैं। इससे प्रकट होता है कि आन्तरिक स्थिति में हेर-फेर हो जाने से भले मनुष्य बुरे और बुरे मनुष्य भले बन सकते हैं।

शास्त्र कहता है कि जन्म से सभी मनुष्य शूद्र पैदा होते हैं। पीछे संस्कार के प्रभाव से द्विज बनते हैं। असल में यह संस्कार ही है, जो शूद्र को द्विज और द्विज को शूद्र बना देते हैं। गायत्री के तत्त्वज्ञान को हृदय में धारण करने से ऐसे संस्कारों की उत्पत्ति होती हैं, जो मनुष्य को एक विशेष प्रकार का बना देते हैं। उस पात्र में भरा हुआ पहला लाल रंग निवृत्त हो जाता है और उसके स्थान पर नील वर्ण परिलक्षित होने लगता है।

पापों का नाश आत्मतेज की प्रचण्डता से होता है। यह तेजी जितनी अधिक होती है, उतना ही संस्कार का कार्य शीघ्र और अधिक परिमाण में होता है। बिना धार की लोहे की छड़ से वह कार्य नहीं हो सकता, जो तीक्ष्ण तलवार से होता है। यह तेजी किस प्रकार आए? इसका उपाय तपाना और रगड़ना है। लोहे को आग में तपाकर उसमें धार बनाई जाती है और पत्थर पर रगड़कर उसे तेज किया जाता है। तब वह तलवार दुश्मन की सेना का सफाया करने योग्य होती है। हमें भी अपनी आत्म-शक्ति तेज करने के लिये इसी तपाने, घिसने वाली प्रणाली को अपनाना पड़ता है—इसे आध्यात्मिक भाषा में 'तप' या 'प्रायश्चित्त' नाम से पुकारते हैं।

अपराधों की निवृत्ति के लिये हर जगह दण्ड का विधान काम में लाया जाता है। बच्चे ने गड़बड़ी की, कि

माता की डाँट-डपट पड़ी, शिष्य ने प्रमाद किया, कि गुरु ने छड़ी सँभाली । सामाजिक नियमों को भंग किया, कि पंचायत ने दण्ड दिया । कानून का उल्लंघन हुआ कि जुर्माना, जेल, काला पानी या फाँसी तैयार है । ईश्वर दैविक, दैहिक, भौतिक दुःख देकर पापों का दण्ड देता है । दण्ड-विधान प्रतिशोध या प्रतिहिंसा मात्र नहीं है । 'खून का बदला खून' की जंगली प्रथा के कारण नहीं, दण्ड विधान का निर्माण उच्च आध्यात्मिक विज्ञान के आधार पर किया गया है । कारण यह है कि दण्ड स्वरूप जो कष्ट दिये जाते हैं, उनसे मनुष्य के भीतर एक खलबली मचती है, प्रतिक्रिया होती है, तेजी आती है, जिससे उसका गुप्त मानस चौंक पड़ता है और भूल को छोड़कर उचित मार्ग पर आ जाता है । 'तप में ऐसी शक्ति है । तप की गर्मी से अनात्म तत्त्वों का संहार होता है ।'

दूसरों द्वारा दण्ड रूप में बलात् तप कराके हमारी शुद्धि की जाती है । उस प्रणाली को हम स्वयं ही अपनाएँ, अपने गुप्त प्रकट पापों का दण्ड स्वयं ही अपने को देकर स्वेच्छापूर्वक तप करें, तो वह दूसरों द्वारा बलात् कराये हुए तप की अपेक्षा असंख्य गुना उत्तम है । उसमें न अपमान होता है, न प्रतिहिंसा एवं न आत्म-ग्लानि से चित्त क्षोभित होता है; वरन् स्वेच्छा तप से एक आध्यात्मिक आनन्द आता है, शौर्य और साहस प्रकट होता है तथा दूसरों की दृष्टि में अपनी श्रेष्ठता, प्रतिष्ठा बढ़ती है । पापों की निवृत्ति के लिये आत्मतेज की अग्नि चाहिये, इस अग्नि की उत्पत्ति से दुहरा लाभ होता है, एक तो हानिकारक तत्त्वों का, कषाय-कल्मषों का नाश होता है, दूसरे उनकी ऊष्मा और प्रकाश से दैवी-तत्त्वों का विकास, पोषण एवं अभिवर्द्धन होता है, जिसके कारण साधक, तपस्वी, मनस्वी एवं तेजस्वी बन जाता है । हमारे धर्म-शास्त्रों में पग-पग पर व्रत, उपवास, दान, स्नान, आचरण-विचार आदि के विधि-विधान इसी दृष्टि से किये गये हैं कि उन्हें अपनाकर मनुष्य इन दुहरे लाभों को उठा सके ।

'अपने से कोई भूल, पाप या बुराइयाँ बन पड़ी हों , तो उनके अशुभ फलों के निवारण के लिये सच्चा प्रायश्चित्त तो यही है कि उन्हें फिर न करने का दृढ़ निश्चय किया जाए, पर यदि इस निश्चय के साथ-साथ थोड़ी तपश्चर्या भी की जाए, तो उसे प्रतिज्ञा का बल मिलता है और उसके पालन में दृढ़ता आती है । साथ ही यह तपश्चर्या सात्त्विकता की तीव्रगति से वृद्धि करती है, चैतन्यता उत्पन्न करती है और ऐसे उत्तमोत्तम गुण, कर्म, स्वभावों को उत्पन्न करती है; जिनसे पवित्रतामय, साधनामय, मंगलमय जीवन बिताना सुगम हो जाता है । गायत्री शक्ति के आधार पर की गयी तपश्चर्या बड़े-बड़े पापियों को भी निष्पाप बनाने, उनके पाप-पुञ्जों को नष्ट करने तथा भविष्य के लिये उन्हें निष्पाप रहने योग्य बना सकती है ।'

जो कार्य, पाप दिखाई पड़ते हैं ; वे सर्वदा वैसे पाप नहीं होते, जैसे कि समझते हैं । कहा गया है कि कोई भी कार्य न तो पाप है न पुण्य, कर्त्ता की भावना के अनुसार पाप-पुण्य होते हैं । जो कार्य एक मनुष्य के लिये पाप है, वही दूसरे के लिये पाप-रहित है और किसी के लिये वह पुण्य भी है । हत्या करना एक कर्म है, वह तीन व्यक्तियों के लिये तीन विभिन्न परिस्थितियों के कारण भिन्न परिणाम वाला बन जाता है । कोई व्यक्ति दूसरों का धन अपहरण करने के लिये किसी की हत्या करता है, यह हत्या घोर पाप हुई । कोई न्यायाधीश या जल्लाद समाज के शत्रु अपराधी को न्याय रक्षा के लिये प्राण-दण्ड देता है, वह उसके लिये कर्तव्य-पालन है । कोई व्यक्ति आततायी डाकुओं के आक्रमण से निर्दोष के प्राण बचाने के लिये अपने को जोखिम में डालकर उन अत्याचारियों का वध कर देता है, तो वह पुण्य है । हत्या तीनों ने ही की, पर तीनों की हत्यायें अलग-अलग परिणाम वाली हैं । तीनों हत्यारे डाकू, न्यायाधीश एवं आततायी से लड़कर उसका वध करने वाले—समान रूप से पापी नहीं गिने जा सकते ।

चोरी एक बुरा कार्य है, परन्तु परिस्थितियों वश वह भी सदा बुरा नहीं रहता । स्वयं सम्पन्न होते हुए भी जो अन्यायपूर्वक दूसरों का धन हरण करता है, वह पक्का चोर है । दूसरा उदाहरण लीजिये—भूख से प्राण जाने की मजबूरी में किसी भी सम्पन्न व्यक्ति का कुछ चुराकर आत्म-रक्षा करना कोई बहुत बड़ा पाप नहीं है । तीसरी स्थिति में किसी दुष्ट की साधन-सामग्री चुराकर उसे शक्ति हीन बना देना और उस चुराई हुई सामग्री को सत्कर्म में लगा देना पुण्य का काम है । तीनों चोर समान श्रेणी के पापी नहीं ठहराये जा सकते ।

परिस्थिति, मजबूरी, धर्म रक्षा तथा बौद्धिक स्वल्प विकास के कारण वश कई बार ऐसे कार्य होते हैं , जो

स्थूल दृष्टि से देखने में निन्दनीय मालूम पड़ते हैं, पर वस्तुतः उनके पीछे पाप भावना छिपी हुई नहीं होती, ऐसे कार्य पाप नहीं कहे जा सकते । बालक का फोडा चिरवाने के लिये माता को उसे अस्पताल ले जाना पड़ता है और बालक को कष्ट में डालना पड़ता है । रोगी की प्राण रक्षा के लिये डाक्टर को कसाई के समान चीड़-फाड़ करने का कार्य करना पड़ता है । रोगी की कुपथ्यकारक इच्छाओं को टालने के लिये उपचारक को झूठे बहाने बनाकर किसी प्रकार समझाना पड़ता है । बालकों की जिद का भी प्रायः ऐसा ही समाधान किया जाता है । हिंसक जन्तुओं, शस्त्रधारी दस्युओं पर सामने से नहीं; बल्कि पीछे से आक्रमण करना पड़ता है ।

प्राचीन इतिहास पर दृष्टिपात करने से प्रतीत होता है कि अनेक महापुरुषों को भी धर्म की स्थूल मर्यादाओं का उल्लंघन करना पड़ता है । लोकहित, धर्म वृद्धि और अधर्म नाश की सद्‌भावना के कारण उन्हें वैसा पापी नहीं बनना पड़ता जैसे कि वही काम करने वाले आदमी को साधारणतः बनना पड़ता है ।

भगवान् विष्णु ने भस्मासुर से शंकर जी के प्राण बचाने के लिये मोहिनी रूप बनाकर उसे छला और नष्ट किया । समुद्र-मन्थन के समय अमृत-घट के बँटवारे पर जब देवताओं और असुरों में झगड़ा हो रहा था, तब भी विष्णु ने माया- मोहिनी रूप बनाकर असुरों को धोखे में रखा और अमृत देवताओं को पिला दिया । सती वृन्दा का सतीत्व डिगाने के लिये भगवान् ने जालन्धर का रूप बनाया था । राजा बलि को छलने के लिये वामन का रूप धारण किया था । पेड़ की आड़ में छिपकर राम ने अनुचित रूप से बाली को मारा था ।

महाभारत में धर्मराज युधिष्ठिर ने अश्वत्थामा की मृत्यु का छलपूर्वक समर्थन किया । अर्जुन ने शिखण्डी की ओट में खड़े होकर भीष्म को मारा, कर्ण का रथ कीचड़ में धँस जाने पर भी उसका वध किया । घोर दुर्भिक्ष में क्षुधा पीड़ित होने पर विश्वामित्र ऋषि ने चाण्डाल के घर से कुत्ते का मांस चुराकर खाया, प्रह्लाद का पिता की आज्ञा का उल्लंघन करना, बलि का गुरु शुक्राचार्य की आज्ञा न मानना, विभीषण का भाई को त्यागना, भरत का माता की भर्त्सना करना, गोपियों का पर-पुरुष श्रीकृष्ण से प्रेम करना, मीरा का अपने पति को त्याग देना, परशुराम जी का अपनी माता का सिर काट देना आदि कार्य साधारणतः अधर्म प्रतीत होते हैं, पर उन्हें कर्त्ताओं ने सदुद्देश्य से प्रेरित होकर किया था, इसलिये धर्म की सूक्ष्म दृष्टि से यह कार्य पातक नहीं गिने गये ।

शिवाजी ने अफजल खाँ का वध कूटनीतिक चातुर्य से किया था । भारतीय स्वाधीनता के इतिहास में क्रान्तिकारियों ने ब्रिटिश सरकार के साथ जिस नीति को अपनाया था, उसमें चोरी, डकैती, जासूसी, हत्या, कत्ल, झूठ बोलना, छल, विश्वासघात आदि ऐसे सभी कार्यों का समावेश हुआ था, जो मोटे तौर से अधर्म कहे जाते हैं; परन्तु उनकी आत्मा पवित्र थी, असंख्य दीन-दुःखी प्रजा की करुणाजनक स्थिति से द्रवित होकर अन्यायी शासन को उलटने के लिये ही उन्होंने ऐसा किया था । कानून उनको भले ही अपराधी बताए, पर वस्तुतः वे पापी कदापि नहीं कहे जा सकते ।

अधर्म का नाश और धर्म की रक्षा के लिये भगवान् को युग-युग में अवतार लेकर अगणित हत्यायें करनी पड़ती हैं और रक्त की धार बहानी पड़ती है । इसमें पाप नहीं होता । सदुद्देश्य के लिये किया हुआ अनुचित कार्य भी उचित के समान ही उत्तम माना गया है । इस प्रकार मजबूर किये गये, सताये गये, बुभुक्षित, संत्रस्त-दुःखी, उत्तेजित, आपत्तिग्रस्तों, अज्ञानी बालक, रोगी अथवा पागल कोई अनुचित कार्य कर बैठते हैं, तो वह क्षम्य माने जाते हैं, कारण यह है कि उस मनोभूमि का मनुष्य धर्म और कर्तव्य के दृष्टिकोण से किसी बात पर ठीक विचार करने में समर्थ नहीं होता ।

पापियों की सूची में जितने लोग हैं , उनमें से अधिकांश ऐसे होते हैं, जिन्हें उपर्युक्त किन्हीं कारणों से अनुचित कार्य करने पड़े, पीछे वे उनके स्वभाव में आ गये । परिस्थितियों ने, मजबूरियों ने, आदतों ने उन्हें लाचार कर दिया और वे बुराई की ढालू सड़क पर फिसलते चले गये । यदि दूसरे प्रकार की परिस्थितियाँ, सुविधायें उन्हें मिलतीं, ऊँचा उठाने वाले और सन्तोष देने वाले साधन मिल जाते, तो निश्चय ही वे अच्छे बने होते ।

कानून और लोकमत चाहे किसी को कितना ही दोषी ठहरा सकता है, स्थूल दृष्टि से कोई आदमी अत्यन्त बुरा हो सकता है, पर वास्तविक पापियों की संख्या इस संसार में बहुत कम है । जो परिस्थितियों के वश बुरे बन

गये हैं, उन्हें भी सुधारा जा सकता है । क्योंकि प्रत्येक की आत्मा ईश्वर का अंश होने के कारण तत्त्वतः पवित्र है। बुराई उसके ऊपर छाया मैल है । मैल को साफ करना न तो असंभव है और न कष्टसाध्य, वरन् यह कार्य आसानी से हो सकता है ।

कई व्यक्ति सोचते हैं कि हमने अब तक इतने पाप किये हैं, इतनी बुराइयाँ की हैं, हमारे प्रकट और अप्रकट पापों की सूची बहुत बड़ी है । अब हम सुधर नहीं सकते । हमें न जाने कब तक नरक में सड़ना पड़ेगा ? हमारा उद्धार और कल्याण अब कैसे हो सकता है ? ऐसा सोचने वालों को जानना चाहिये कि सन्मार्ग पर चलने का प्रण करते ही उनकी पुरानी मैली-कुचैली पोशाक उतर जाती है और उसमें भरे हुए जुएँ भी उसी में रह जाते हैं । पाप-वासनाओं का परित्याग करने और उनका सच्चे हृदय से प्रायश्चित्त करने से पिछले पापों के बुरे फलों से छुटकारा मिल सकता है । केवल वे परिपक्व प्रारब्ध कर्म जो इस जन्म के लिये भाग्य बन चुके हैं, उन्हें तो किसी न किसी रूप से भोगना पड़ता है । इसके अतिरिक्त जो प्राचीन या आजकल के ऐसे कर्म हैं, जो अभी प्रारब्ध नहीं बने हैं , उनका संचित समूह नष्ट हो जाता है, जो इस जन्म के लिये दुःखदायी भोग हैं, वह भी अपेक्षाकृत बहुत हल्के हो जाते हैं और वे चिह्न पूजा मात्र थोड़ा कष्ट दिखाकर सहज ही शान्त हो जाते हैं ।

कोई मनुष्य अपने पिछले जीवन का अधिकांश भाग कुमार्ग में व्यतीत कर चुका है या बहुत-सा समय निरर्थक बिता चुका है, तो इसके लिये केवल दुःख मानने, पछताने या निराश होने से कुछ प्रयोजन सिद्ध न होगा । जीवन का जो भाग शेष रहा है, वह भी कम महत्वपूर्ण नहीं । राजा परीक्षित को मृत्यु से पूर्व एक सप्ताह आत्म-कल्याण के लिये मिला था, उसने इस थोड़े से समय का सदुपयोग किया और अभीष्ट लाभ प्राप्त कर लिया । सूरदास को जन्म भर की व्यभिचारिणी आदतों से छुटकारा न मिलते देखकर अन्त में आँखें फोड़ लेनी पड़ी थीं । तुलसीदास का कामातुर होकर रातों-रात ससुराल पहुँचना और परनाले में लटका हुआ साँप पकड़कर स्त्री के पास जा पहुँचना प्रसिद्ध है । इस प्रकार के असंख्यों व्यक्ति अपने जीवन का अधिकांश भाग दूसरे कार्यों में व्यतीत करने के उपरान्त सत्पथगामी हुए और थोड़े से ही समय में योगियों और महात्माओं को प्राप्त होने वाली सद्गति के अधिकारी हुए हैं ।

यह एक रहस्यमय तथ्य है कि मन्दबुद्धि, मूर्ख, डरपोक, कमजोर तबियत के सीधे कहलाने वालों की अपेक्षा वे लोग अधिक जल्दी आत्मोन्नति कर सकते हैं, जो अब तक सक्रिय, जागरूक, चैतन्य, पराक्रमी, पुरुषार्थी एवं बदमाश रहे हैं । कारण यह है कि मन्द चेतना वालों में शक्ति का स्रोत बहुत ही न्यून होता है, वे पूरे सदाचारी और भक्त रहें, तो भी मन्द शक्ति के कारण उनकी प्रगति, अत्यन्त मन्द गति से होती है, पर जो लोग शक्तिशाली हैं, जिनके अन्दर चैतन्यता और पराक्रम का निर्झर तूफानी गति से प्रवाहित होता है, वे जब भी जिस दिशा में भी लगेंगे, उधर ही ढेर लगा देंगे । अब तक जिन्होंने बदमाशी में झण्डा बुलन्द रखा है, वे निश्चय ही शक्ति सम्पन्न तो हैं, पर उनकी शक्ति कुमार्गगामी रही है । यदि वह शक्ति सत्पथ पर लग जाए तो उस दिशा में भी आश्चर्यजनक सफलता उपस्थित कर सकते हैं । गधा एक वर्ष में जितना बोझ ढोता है, हाथी उतना एक दिन में ही ढो सकता है । आत्मोन्नति भी एक पुरुषार्थ है, इस मंजिल पर वे ही लोग शीघ्र पहुँच सकते हैं, जो पुरुषार्थी हैं, जिनके स्नायुओं में बल और मन में अदम्य साहस तथा उत्साह है ।

जो लोग पिछले जीवन में कुमार्गगामी रहे हैं, बड़ी ऊट-पटाँग, गड़बड़ करते रहे हैं, वे भूले हुए पथभ्रष्ट तो अवश्य हैं, पर इस गलत प्रक्रिया द्वारा भी उन्होंने अपनी चैतन्यता, बुद्धिमत्ता, जागरूकता और क्रियाशीलता को बढ़ाया है । यह बढ़ोत्तरी एक अच्छी पूँजी है । पथ-भ्रष्टता के कारण जो पाप उनसे बन पड़े, वे पश्चात्ताप और दुःख के हेतु अवश्य हैं और सन्तोष की बात इतनी है कि उस कँटीले-पथरीले, लहू-लुहान करने वाले, ऊबड़-खाबड़, दुःखदायी मार्ग में भटकते हुए भी मंजिल की दिशा में ही यात्रा की है । यदि अब सँभल जाया जाए और सीधे राजमार्ग से सतोगुणी आधार से आगे बढ़ा जाए तो पिछला ऊल-जलूल कार्यक्रम भी सहायक सिद्ध होगा ।

पाप और दोषों का प्रधान कारण प्रायः दूषित मानसिक भावनायें ही हुआ करती हैं । इन गर्हित भावनाओं के कारण मनुष्य की बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है और इससे वह अकरणीय कार्य करता रहता है । इस कारण पापों से

छुटकारा पाने का कारण यही है कि मनुष्य सद्‌विचारों द्वारा बुरे-विचारों का शमन और निराकरण करे। जब मनोभूमि शुद्ध हो जाए, तो उसमें हानिकारक विचारों की उत्पत्ति ही नहीं होगी और मनुष्य पाप मार्ग से हटकर सुमार्गगामी बन जायेगा। इसके लिये स्वाध्याय, सत्संग आदि को प्रभावशाली साधन बतलाया है। गायत्री मन्त्र सद्‌बुद्धि का प्रेरणादायक होने से स्वाध्याय का एक बड़ा अंग माना जा सकता है। जब उससे मन श्रेष्ठ विचारों की तरफ जाता है, तो असद्‌बुद्धि का स्वयं ही अन्त होने लग जाता है। किसी भावना के लगातार चिन्तन में बड़ी शक्ति होती है। जब हम लगातार सद्‌बुद्धि और शुभ विचारों का चिन्तन करते रहेंगे, तो पापयुक्त भावनाओं का क्षीण होते जाना स्वाभाविक ही है।

पिछले पाप नष्ट हो सकते हैं, कुमार्ग पर चलने से जो घाव हो गये हैं, वे थोड़ा दुःख देकर, शीघ्र अच्छे हो सकते हैं। उसके लिये चिन्ता एवं निराशा की कोई बात नहीं। केवल अपनी रुचि और क्रिया को बदल देना है। यह परिवर्तन होते ही बड़ी तेजी से सीधे मार्ग पर प्रगति करते हैं और स्वल्पकाल में ही सच्चे महात्मा बन जाते हैं। जिन विशेषताओं के कारण वे सख्त बदमाश थे, वे ही विशेषतायें उन्हें सफल सन्त बना देती हैं। गायत्री का आश्रय लेने से बुरे, बदमाश और दुराचारी स्त्री-पुरुष भी स्वल्पकाल में सन्मार्गगामी और पापरहित हो सकते हैं।

आत्म-शक्ति का अकूत भण्डार

यों गायत्री नित्य उपासना करने योग्य है। त्रिकाल सन्ध्या में प्रातः, मध्याह्न, सायं तीन बार उसी की उपासना करने का नित्य कर्म शास्त्रों में आवश्यक बतलाया गया है। जब भी जितनी अधिक मात्रा में गायत्री का जप, पूजन, चिन्तन, मनन किया जा सके, उतना ही अच्छा है; क्योंकि—**'अधिकस्य अधिकं फलम्।'**

परन्तु किसी विशेष प्रयोजन के लिये जब विशेष शक्ति का संचय करना पड़ता है, तो उसके लिये विशेष क्रिया की जाती है। इस क्रिया को अनुष्ठान के नाम से पुकारते हैं। जब कभी परदेश के लिये यात्रा की जाती है, तो रास्ते के लिये कुछ भोजन सामग्री तथा खर्च के लिये रुपये साथ रख लेना आवश्यक होता है। यदि यह मार्गव्यय साथ न हो, तो यात्रा बड़ी कष्टसाध्य हो जाती है। अनुष्ठान एक प्रकार का मार्गव्यय है। इस साधना को करने से जो पूँजी जमा हो जाती है, उसे सांथ लेकर किसी भी भौतिक या आध्यात्मिक कार्य में जुटा जाए, तो यात्रा बड़ी सरल हो जाती है।

सिंह जब हिरन पर झपटता है, बिल्ली जब चूहे पर छापा मारती है, बगुला जब मछली पर आक्रमण करता है, तो उसे एक क्षण स्तब्ध होकर, साँस रोककर, जरा पीछे हटकर अपने अन्दर की छिपी हुई शक्तियों को जाग्रत् और सतेज करना पड़ता है, तब वह अचानक अपने शिकार पर पूरी शक्ति के साथ टूट पड़ते हैं और मनोवाञ्छित लाभ प्राप्त करते हैं, ऊँची या लम्बी छलाँग भरने से पहले खिलाड़ी लोग कुछ क्षण रुकते, ठहरते और पीछे हटते हैं, तदुपरान्त छलांग भरते हैं। कुश्ती लड़ने वाले पहलवान ऐसे ही पैतरे बदलते हैं। बन्दूक चलाने वाले को भी घोड़ा दबाने से पहले यही करना पड़ता है। अनुष्ठान द्वारा यही कार्य आध्यात्मिक आधार पर होता है। किसी विपत्ति को छलाँग कर पार करना है या कोई सफलता प्राप्त करनी है, तो उस लक्ष्य पर पड़ने के लिए जो शक्ति सञ्चय आवश्यक है वह अनुष्ठान द्वारा प्राप्त होती है।

बच्चा दिन भर माँ-माँ पुकारता रहता है, माता भी दिन भर बेटा, लल्ला कहकर उसको उत्तर देती रहती है, यह लाड़-दुलार यों ही दिन भर चलता रहता है, पर जब कोई विशेष आवश्यकता पड़ती है, कष्ट होता है, कठिनाई आती है, आशंका होती है या साहस की जरूरत पड़ती है, तो बालक विशेष बलपूर्वक, विशेष स्वर से माता को पुकारता है। इस विशेष पुकार को सुनकर माता अपने अन्य कामों को छोड़कर बालक के पास दौड़ जाती है और उसकी सहायता करती है। अनुष्ठान, साधक की ऐसी ही पुकार है, जिसमें विशेष बल एवं विशेष आकर्षण होता है, उस आकर्षण से गायत्री-शक्ति विशेष रूप से साधक के समीप एकत्रित हो जाती है।

जब सांसारिक प्रयत्न असफल हो रहे हों, आपत्ति का निवारण होने का मार्ग न सूझ पड़ता हो, चारों ओर अन्धकार छाया हुआ हो, भविष्य निराशाजनक दिखाई दे रहा हो, परिस्थितियाँ दिन-दिन बिगड़ती जाती हों, सीधा करते उलटा परिणाम निकलता हो, तो स्वभावतः मनुष्य के हाथ-पैर फूल जाते हैं। चिन्ताग्रस्त और उद्विग्न मनुष्य

की बुद्धि ठीक काम नहीं करती। जाल में फँसे कबूतर की तरह वह जितना फड़फड़ाता है, उतना ही जाल में और फँसता जाता है। ऐसे अवसरों पर 'हारे को हरिनाम' बल होता है। गज, द्रौपदी, नरसी, प्रह्लाद आदि को उसी बल का आश्रय लेना पड़ा था। देखा गया है कि कई बार जब वह सांसारिक प्रयत्न विशेष कारगर नहीं होते, तो दैवी सहायता मिलने पर सारी स्थिति ही बदल जाती है और विपदाओं की रात्रि के घोर अन्धकार को चीरकर अचानक ऐसी बिजली कौंध जाती है, जिसके प्रकाश में पार होने का रास्ता मिल जाता है। अनुष्ठान ऐसी ही प्रक्रिया है। वह हारे हुए का चीत्कार है, जिससे देवताओं का सिंहासन हिलता है। अनुष्ठान का विस्फोट हृदयाकाश में एक ऐसे प्रकाश के रूप में होता है, जिसके द्वारा विपत्तिग्रस्त को पार होने का रास्ता दिखाई दे जाता है।

सांसारिक कठिनाइयों में, मानसिक उलझनों में, आन्तरिक उद्वेगों में गायत्री-अनुष्ठान से असाधारण सहायता मिलती है। यह ठीक है कि "किसी को सोने का घड़ा भर कर अशर्फियाँ गायत्री नहीं दे जाती" पर यह भी ठीक है कि उसके प्रभाव से मनोभूमि में ऐसे मौलिक परिवर्तन होते हैं, जिनके कारण कठिनाई का उचित हल निकल आता है। उपासक में ऐसी बुद्धि, ऐसी प्रतिभा, ऐसी सूझ, ऐसी दूरदर्शिता पैदा हो जाती है, जिसके कारण वह ऐसा रास्ता प्राप्त कर लेता है, जो कठिनाई के निवारण में रामबाण की तरह फलप्रद सिद्ध होता है। भ्रांत मस्तिष्क में कुछ असंगत, असम्भव और अनावश्यक विचारधारायें, कामनायें, मान्यतायें घुस पड़ती हैं, जिनके कारण वह व्यक्ति अकारण दुःखी बना रहता है। गायत्री साधना से मस्तिष्क का ऐसा परिमार्जन हो जाता है, जिसमें कुछ समय पहले जो बातें अत्यन्त आवश्यक और महत्त्वपूर्ण लगती थीं, वे ही पीछे अनावश्यक और अनुपयुक्त लगने लगती हैं। वह उधर से मुँह मोड़ लेता है। इस प्रकार यह मानसिक परिवर्तन इतना आनन्दमय सिद्ध होता है, जितना कि पूर्व कल्पित कामनाओं से पूर्ण होने पर भी सुख न मिलता। अनुष्ठान द्वारा ऐसे ही ज्ञात और अज्ञात परिवर्तन होते हैं, जिनके कारण दुःखों और चिन्ताओं से ग्रस्त मनुष्य थोड़े ही समय में सुख-शान्ति का स्वर्गीय जीवन बिताने की स्थिति में पहुँच जाता है।

सवालाख मन्त्रों के जप को अनुष्ठान कहते हैं। हर वस्तु के पकने की कुछ मर्यादा होती है। दाल, साग, ईंट, काँच आदि के पकने के लिये एक नियत श्रेणी का तापमान आवश्यक होता है। वृक्षों पर फल एक नियत अवधि में पकते हैं। अण्डे अपने पकने का समय पूरा कर लेते हैं, तब फूटते हैं। गर्भ में बालक जब अपना पूरा समय ले लेता है, तब जन्मता है। यदि उपर्युक्त क्रियाओं में नियत अवधि से पहले ही विक्षेप उत्पन्न हो जाय, तो उनकी सफलता की आशा नहीं रहती। अनुष्ठान की अवधि, मर्यादा, जप-मात्रा सवालक्ष जप है, इतनी मात्रा में जब वह पक जाता है, तब स्वस्थ परिणाम उत्पन्न होता है। पकी हुई साधना ही मधुर फल देती है।

अनुष्ठान की विधि

अनुष्ठान किसी भी मास में किया जा सकता है। तिथियों में पंचमी, एकादशी, पूर्णमासी शुभ मानी गयी हैं। पंचमी को दुर्गा, एकादशी को सरस्वती, पूर्णमासी को लक्ष्मी तत्त्व की प्रधानता रहती है। शुक्ल पक्ष और कृष्ण पक्ष दोनों में से किसी का निषेध नहीं है; किन्तु कृष्ण पक्ष की अपेक्षा शुक्लपक्ष अधिक शुभ है।

अनुष्ठान आरम्भ करते हुए नित्य गायत्री का आवाहन करें और अन्त करते हुए विसर्जन करना चाहिये। इस प्रतिष्ठा में भावना और निवेदन प्रधान है। श्रद्धापूर्वक "भगवती, जगज्जननी, भक्तवत्सला माँ गायत्री यहाँ प्रतिष्ठित होने का अनुग्रह कीजिये"—ऐसी प्रार्थना संस्कृत या मातृभाषा में करनी चाहिये। विश्वास करना चाहिये कि प्रार्थना को स्वीकार करके वे कृपापूर्वक पधार गयी हैं। विसर्जन करते समय प्रार्थना करनी चाहिये कि "आदि शक्ति, भयहारिणी, शक्तिदायिनी, तरणतारिणी मातृके! अब आप विसर्जित हों"। इस भावना को संस्कृत में या अपनी मातृभाषा में कह सकते हैं, इस प्रार्थना के साथ-साथ यह विश्वास करना चाहिये कि प्रार्थना स्वीकार करके वे विसर्जित हो गयी हैं।

कई ग्रन्थों में ऐसा उल्लेख मिलता है कि जप से दसवाँ भाग हवन, हवन से दसवाँ भाग तर्पण, तर्पण से दसवाँ भाग ब्राह्मण भोजन कराना चाहिये। यह नियम तन्त्रोक्त रीति से किये गये पुरश्चरण के लिये है। इन पंक्तियों

में वेदोक्त योग विधि की दक्षिण मार्गी साधना बताई जा रही है । इसके अनुसार तर्पण की आवश्यकता नहीं है । अनुष्ठान के अन्त में १०८ आहुति का हवन तो कम से कम होना आवश्यक है, अधिक सामर्थ्य और सुविधा के अनुसार है । इसी प्रकार त्रिपदा गायत्री के लिये कम से कम तीन ब्राह्मणों का भोजन भी होना ही चाहिये । दान के लिये इस प्रकार की कोई मर्यादा नहीं बाँधी जा सकती । यह साधक की श्रद्धा का विषय है, पर अन्त में दान करना अवश्य चाहिये ।

किसी छोटी चौकी, चबूतरी या आसन पर फूलों का एक छोटा सुन्दर-सा आसन बनाना चाहिये और उस पर गायत्री की प्रतिष्ठा होने की भावना करनी चाहिये । साकार उपासना के समर्थक भगवती का कोई सुन्दर-सा चित्र अथवा प्रतिमा को उन फूलों पर स्थापित कर सकते हैं । निराकार के उपासक निराकार भगवती की शक्ति पूजा का एक स्फुलिंग वहाँ प्रतिष्ठित होने की भावना कर सकते हैं । कोई-कोई साधक धूपबत्ती, दीपक की अग्नि-शिखा में भगवती की चैतन्य ज्वाला का दर्शन करते हैं और उसी दीपक या धूपबत्ती को फूलों पर प्रतिष्ठित करके अपनी आराध्य शक्ति की उपस्थिति अनुभव करते हैं । विसर्जन के समय प्रतिमा को हटाकर शयन करा देना चाहिये, पुष्पों को जलाशय या पवित्र स्थान में विसर्जित कर देना चाहिये । अधजली धूपबत्ती या रुई बत्ती को बुझाकर उसे भी पुष्पों के साथ विसर्जित कर देना चाहिये । दूसरे दिन जली हुई बत्ती का प्रयोग फिर न होना चाहिये ।

गायत्री पूजन के लिये पाँच वस्तुयें प्रधान रूप से मांगलिक मानी गयी हैं । इन पूजा पदार्थों में वह प्राण है, जो गायत्री के अनुकूल पड़ता है । इसलिये पुष्प आसन पर प्रतिष्ठित गायत्री के सम्मुख धूप जलाना, दीपक स्थापित करना, नैवेद्य चढ़ाना, चन्दन लगाना तथा अक्षतों की वृष्टि करनी चाहिये । अगर दीपक और धूप को गायत्री की स्थापना में रखा गया है, तो उसके स्थान पर जल का अर्घ्य देकर पाँचवें पूजा पदार्थ की पूर्ति करनी चाहिये ।

पूर्व वर्णित विधि से प्रातःकाल पूर्वाभिमुख होकर शुद्ध भूमि पर शुद्ध होकर कुश के आसन पर बैठें । जल का पात्र समीप रख लें । धूप और दीपक जप के समय जलते रहने चाहिये । बुझ जाय तो उस बत्ती को हटाकर नई बत्ती डालकर पुनः जलाना चाहिये । दीपक या उसमें पड़े हुए घृत को हटाने की आवश्यकता नहीं है ।

पुष्प आसन पर गायत्री की प्रतिष्ठा और पूजा के अनन्तर जप प्रारम्भ कर देना चाहिये । नित्य यही क्रम रहे । प्रतिष्ठा और पूजा अनुष्ठान काल में नित्य होती रहनी चाहिये । मन चारों ओर न दौड़े, इसलिये पूर्व वर्णित ध्यान भावना के अनुसार गायत्री का ध्यान करते हुए जप करना चाहिये । साधना के इस आवश्यक अंग के ध्यान में मन लगा देने से वह एक कार्य में उलझा रहता है और जगह-जगह नहीं भागता । भागे तो उसे रोक-रोककर बार-बार ध्यान भावना पर लगाना चाहिये । इस विधि से एकाग्रता की दिन-दिन वृद्धि होती चलती है ।

सवा लाख जप को चालीस दिन में पूरा करने का क्रम पूर्वकाल से चला आता है । पर निर्बल अथवा कम समय तक साधना कर सकने वाले साधक उसे दो मास में भी समाप्त कर सकते हैं । प्रतिदिन जप की संख्या बराबर होनी चाहिये, किसी दिन ज्यादा, किसी दिन कम ऐसा क्रम ठीक नहीं । यदि चालीस दिन में अनुष्ठान पूरा करना हो तो १२५०००/४०=३१२५ मन्त्र नित्य जपने चाहिये । माला में १०८ दाने होते हैं, इतने मन्त्रों की ३१२५/१०८=२९, इस प्रकार उन्तीस मालायें नित्य जपनी चाहिये । यदि दो मास में जप करना हो तो १२५०००/६०=२०८० मन्त्र प्रतिदिन जपने चाहिये । इन मंत्रों की मालायें २०८०/१०८=२० मालायें प्रतिदिन जपी जानी चाहिये । माला की गिनती याद रखने के लिये खड़िया मिट्टी को गंगाजल में सान कर छोटी-छोटी गोली बना लेनी चाहिये और एक माला जपने पर एक गोली एक स्थान से दूसरे स्थान पर रख लेनी चाहिये । इस प्रकार जब सब गोलियाँ इधर से उधर हो जाएँ, तो जप समाप्त कर देना चाहिये । इस क्रम से जप-संख्या में भूल नहीं पड़ती ।

गायत्री आवाहन का मन्त्र—

आयातु वरदे देवि ! त्र्यक्षरे ब्रह्मवादिनि ।
गायत्रिच्छन्दसां मातः ब्रह्मयोने नमोऽस्तुते ॥

गायत्री विसर्जन का मन्त्र—

उत्तमे शिखरे देवि! भूम्यां पर्वतमूर्धनि।
ब्राह्मणेभ्यो ह्यनुज्ञाता गच्छ देवि यथासुखम्॥

अनुष्ठान के अन्त में हवन करना चाहिये, तदनन्तर शक्ति के अनुसार दान और ब्रह्मभोज करना चाहिये। ब्रह्मभोज उन्हीं ब्राह्मणों को कराना चाहिये जो वास्तव में ब्राह्मण हैं, वास्तव में ब्रह्म-परायण हैं। कुपात्रों को दिया हुआ दान और कराया हुआ भोजन निष्फल जाता है, इसलिये निकटस्थ या दूरस्थ सच्चे ब्राह्मणों को ही भोजन कराना चाहिये। हवन की विधि नीचे लिखते हैं—

सदैव शुभ गायत्री यज्ञ

गायत्री अनुष्ठान के अन्त में या किसी भी शुभ अवसर पर 'गायत्री-यज्ञ' करना चाहिये। जिस प्रकार वेदमाता की सरलता, सौम्यता, वत्सलता, सुशीलता प्रसिद्ध है, उसी प्रकार गायत्री हवन भी अत्यन्त सुगम है। इसके लिये बड़ी भारी मीन-मेख निकालने की या कर्मकाण्डी पण्डितों का ही आश्रय लेने की अनिवार्यता नहीं है। साधारण बुद्धि के साधक इसको भली प्रकार कर सकते हैं।

कुण्ड खोदकर या वेदी बनाकर दोनों ही प्रकार से हवन किया जा सकता है। निष्काम बुद्धि से आत्म-कल्याण के लिये किये जाने वाले हवन, कुण्ड खोदकर करना ठीक है और किसी कामना से मनोरथ की पूर्ति के लिये किये जाने वाले यज्ञ वेदी पर किये जाने चाहिये। कुण्ड या वेदी की लम्बाई-चौड़ाई साधक की अँगुली से चौबीस-चौबीस अंगुल होनी चाहिये। कुण्ड खोदा जाए तो उसे चौबीस अंगुल ही गहरा भी खोदना चाहिये और इस प्रकार तिरछा खोदना चाहिये कि नीचे पहुँचते-पहुँचते छः अंगुल चौड़ा और छः अंगुल लम्बा रह जाए। वेदी बनानी हो तो पीली मिट्टी की चार अंगुल ऊँची वेदी चौबीस-चौबीस अंगुल लम्बी-चौड़ी बनानी चाहिये। वेदी या कुण्ड को हवन करने से दो घण्टे पूर्व पानी से इस प्रकार लीप देना चाहिये कि वह समतल हो जाए, ऊँचाई-नीचाई अधिक न रहे। कुण्ड या वेदी से चार अंगुल हटकर एक छोटी-सी नाली दो अंगुल गहरी खोद कर उसमें पानी भर देना चाहिये। वेदी या कुण्ड के आस-पास गेहूँ का आटा, हल्दी, रोली आदि मांगलिक द्रव्यों से चौक पूरकर अपनी कलाप्रियता का परिचय देना चाहिये। यज्ञ-स्थल को अपनी सुविधानुसार मण्डप, पुष्प, पल्लव आदि से जितना सुन्दर एवं आकर्षक बनाया जा सके उतना अच्छा है।

वेदी या कुण्ड के ईशानकोण में कलश स्थापित करना चाहिये। मिट्टी या उत्तम धातु के बने हुए कलश में पवित्र जल भरकर उसके मुख में आम्रपल्लव रखें और ऊपर ढक्कन में चावल, गेहूँ का आटा, मिष्टान्न अथवा कोई अन्य मांगलिक द्रव्य रख देना चाहिये। कलश के चारों ओर हल्दी से स्वस्तिक (सतिया) अंकित कर देना चाहिये। कलश के समीप एक छोटी चौकी या वेदी पर पुष्प और गायत्री की प्रतिमा, पूजन सामग्री रखनी चाहिये।

वेदी या कुण्ड के तीन ओर आसन बिछाकर इष्ट-मित्रों, बन्धु- बान्धवों सहित बैठना चाहिये। पूर्व दिशा में जिधर कलश और गायत्री स्थापित है, उधर किसी श्रेष्ठ ब्राह्मण अथवा अपने वयोवृद्ध को आचार्य वरण करके बिठाना चाहिये, वह इस यज्ञ का ब्रह्मा है। यजमान पहले ब्रह्मा के दाहिने हाथ में सूत्र (कलावा) बाँधे, रोली या चन्दन से उनका तिलक करे, चरण स्पर्श करे। तदुपरान्त ब्रह्मा उपस्थित सब लोगों को क्रमशः अपने आम बुलाकर उनके दाहिने हाथ में कलावा बाँधे, मस्तक पर रोली का तिलक करे और उनके ऊपर अक्षत छिड़क कर आशीर्वाद के मंगल वचन बोले।

यजमान को पश्चिम में बैठना चाहिये। उसका मुख पूर्व को रहे। हवन सामग्री और घृत अधिक हो, तो उसे कई पात्रों में विभाजित करके कई व्यक्ति हवन करने बैठ सकते हैं, सामग्री थोड़ी हो तो यजमान हवन सामग्री अपने पास रखे और उनकी पत्नी घृत पात्र सामने रखकर चम्मच (स्रुवा) सँभाले, पत्नी न हो तो भाई या मित्र घृत पात्र लेकर बैठ सकता है। समिधायें सात प्रकार की होती हैं। ये सब प्रकार की न मिल सकें, तो जितने प्रकार की मिल सकें, उतने प्रकार की ले लेनी चाहिये। हवन सामग्री त्रिगुणात्मक साधना में आगे दी हुई हैं—वे तीनों गुण वाली लेनी चाहिये, पर आध्यात्मिक हवन हो तो सतोगुणी सामग्री आधी और चौथाई-चौथाई रजोगुणी और तमोगुणी

लेनी चाहिये। यदि किसी भौतिक कामना के लिये हवन किया गया हो, तो रजोगुणी आधी और सतोगुणी और तमोगुणी चौथाई-चौथाई लेनी चाहिये। सामग्री भली प्रकार साफ कर धूप में सुखाकर जौकुट कर लेना चाहिये। सामग्रियों में किसी वस्तु के न मिलने पर या कम मिलने पर उसका भाग उसी गुण वाली दूसरी औषधि को मिलाकर पूरा किया जा सकता है।

उपस्थित लोगों में जो हवन की विधि में सम्मिलित हों, वे स्नान किये हुए हों। जो लोग दर्शक हों, वे थोड़ा हटकर बैठें। दोनों के बीच थोड़ा फासला रहना चाहिये।

हवन आरम्भ करते हुए यजमान ब्रह्म-संध्या के आरम्भ में प्रयोग होने वाले पञ्चकर्मों, आचमन, शिखाबन्धन (शिखावन्दन), प्राणायाम, अघमर्षण तथा न्यास की क्रियाएँ करें। तत्पश्चात् वेदी या कुण्ड पर समिधाएँ चिनकर कपूर की सहायता से गायत्री-मन्त्र के उच्चारण सहित अग्नि प्रज्वलित करें। सब लोग साथ-साथ मंत्र बोलें और अन्त में स्वाहा के साथ घृत तथा सामग्री से हवन करें। आहुति के अन्त में चम्मच में से बचे हुए घृत की एक-एक बूँद पास में रखे हुए जलपात्र में टपकाते जाना चाहिये और **"इदं गायत्र्यै इदं न मम"** का उच्चारण करना चाहिये। हवन में साथ-साथ बोलते हुए मधुर स्वर से मन्त्रोच्चार करना उत्तम है। उदात्त, अनुदात्त और स्वरित के अनुसार होने न होने को इस सामूहिक सम्मेलन में शास्त्रकारों ने छूट दी हुई है।

आहुतियाँ कम से कम १०८ होनी चाहिये। अधिक इससे दो-तीन या चाहे जितने गुने किये जा सकते हैं। हवन सामग्री कम से कम २५० ग्राम और घृत १०० ग्राम प्रति व्यक्ति होना चाहिये। सामर्थ्यानुसार इससे अधिक चाहे जितना बढ़ाया जा सकता है। ब्रह्मा माला लेकर बैठे और आहुतियाँ गिनता रहे। जब पूरा हो जाय तो आहुतियाँ समाप्त करा दें। उस दिन बने हुए पकवान-मिष्टान्न आदि में से अलौने और मधुर पदार्थ लेने चाहिये। नमक मिर्च मिले हुए शाक, अचार, रायते आदि को अग्नि में होमने का निषेध है। इस भोजन में से थोड़ा-थोड़ा भाग लेकर वे सभी लोग चढ़ायें, जिन्होंने स्नान किया है और हवन में भाग लिया है। अन्त में एक नारियल की भीतरी गिरी को लेकर उसमें छेद करके सामग्री भरना चाहिये और खड़े होकर पूर्णाहुति के रूप में उसे अग्नि में समर्पित कर देना चाहिये। यदि कुछ सामग्री बची हो, तो वह भी सब इसी समय चढ़ा देनी चाहिये।

इसके पश्चात् सब लोग खड़े होकर यज्ञ की चार परिक्रमा करें और 'इदं न मम' का पानी पर तैरता हुआ घृत उँगली से लेकर पलकों पर लगाएँ। हवन की बुझी हुई भस्म लेकर सब लोग मस्तक पर लगाएँ। कीर्तन या भजन गायन करें और प्रसाद वितरण करके सब लोग प्रसन्नता और अभिवादनपूर्वक विदा हों। यज्ञ की सामग्री को दूसरे दिन किसी पवित्र स्थान में विसर्जित करना चाहिये। यह गायत्री यज्ञ अनुष्ठान के अन्त में ही नहीं, अन्य समस्त शुभ-कर्मों में किया जा सकता है।

प्रयोजन के अनुरूप ही साधन भी जुटाने पड़ते हैं। लड़ाई के लिये युद्ध सामग्री जमा करनी पड़ती है और जिस प्रकार का व्यापार हो उसके लिये उसी तरह का सामान इकट्ठा करना होता है। भोजन बनाने वाला, रसोई सम्बन्धी वस्तुयें लाकर अपने पास रखता हैं और कलाकार को अपनी आवश्यक चीज जमा करनी होती है। व्यायाम करने और दफ्तर जाने की पोशाक में अन्तर रहता है। जिस प्रकार की साधना करनी होती है, उसी के अनुरूप, उन्हीं तत्त्वों वाली, उन्हीं प्राणों वाली, उन्हीं गुणों वाली सामग्री उपयोग में लानी होती है। सबसे प्रथम यह देखना चाहिये कि हमारी साधना किस उद्देश्य के लिये है? सत्, रज, तम में से किस तत्त्व की वृद्धि के लिये है? जिस प्रकार की साधना हो उसी प्रकार की साधना-सामग्री व्यवहृत करनी चाहिये। नीचे इस सम्बन्ध में एक विवरण दिया जाता है—

सतोगुण—

माला-तुलसी। आसन-कुश। पुष्प-श्वेत। पात्र-ताँबा। वस्त्र-सूती (खादी)।मुख पूर्व को। दीपक में घृत-गौ-घृत। तिलक चन्दन। हवन में समिधा-पीपल, बड़, गूलर। हवन सामग्री-श्वेत चन्दन, अगर, छोटी इलायची, लौंग, शंखपुष्पी, ब्राह्मी, शतावरी, खस, शीतलचीनी, आँवला, इन्द्रजौ, वंशलोचन, जावित्री, गिलोय, वच, नेत्रवाला, मुलहठी, कमल, केशर, बड़ की जटायें, नारियल, बादाम, दाख, जौ, मिश्री।

रजोगुण—

माला-चन्दन । आसन-सूत । पुष्प-पीले । पात्र- काँसा । वस्त्र- रेशम, मुख-उत्तर को । दीपक में घृत-भैंस का घृत । तिलक-रोली । समिधा-आम, ढाक, शीशम । हवन सामग्री-देवदारु, बड़ी इलायची, केसर, छार-छबीला, पुनर्नवा, जीवन्ती, कचूर, तालीस पत्र, रास्ना, नागर-मोथा, उन्नाव, तालमखाना, मोचरस, सौंफ, चित्रक, दालचीनी, पद्माख, छुआरा, किशमिश, चावल, खाँड़ ।

तमोगुण—

माला-रुद्राक्ष । आसन-ऊन । पुष्प-हरे या गहरे लाल ।पात्र लोहा । वस्त्र-ऊन । मुख-पश्चिम को । दीपक में घृत-बकरी का । तिलक-भस्म का । समिधा-बेल, छौंकर, करील । सामग्री-रक्त चन्दन, तगर, असगन्ध, जायफल, कमलगट्टा, नागकेशर, पीपल बड़ी, कुटकी, चिरायता, अपामार्ग, काकड़ासिंगी, पोहकरमूल, कुलञ्जन, मूसली स्याह, मेथी के बीज, काकजंघा, भारंगी, अकरकरा, पिस्ता, अखरोट, चिरौंजी, तिल, उड़द, गुड़ ।

गुणों के अनुसार साधन-सामग्री उपयोग करने से साधक में उन्हीं गुणों की अभिवृद्धि होती है, तदनुसार सफलता का मार्ग अधिक सुगम हो जाता है ।

नवदुर्गाओं में गायत्री साधना

यों तो वर्षा, शरद, शिशिर, हेमन्त, वसन्त, ग्रीष्म ये छः ऋतुएँ होती हैं और मोटे तौर से सर्दी, गर्मी, वर्षा यह तीन ऋतु मानी जाती हैं, पर वस्तुतः दो ही ऋतु हैं—(१) सर्दी (२) गर्मी । वर्षा तो दोनों ऋतुओं में होती है । गर्मियों में मेघ सावन-भादों में बरसते हैं, सर्दियों में पौष-माघ में वर्षा होती है । गर्मियों की वर्षा में अधिक पानी पड़ता है, सर्दियों में कम । इतना अन्तर होते हुए भी दोनों ही बार पानी पड़ने की आशा की जाती है । इन दो प्रधान ऋतुओं के मिलने की संधि वेला को नवदुर्गा कहते हैं ।

दिन और रात्रि के मिलन काल को सन्ध्याकाल कहते हैं और उस महत्त्वपूर्ण सन्ध्याकाल को बड़ी सावधानी से बिताते हैं । सूर्योदय और सूर्यास्त के समय भोजन करना, सोते रहना, मैथुन करना, यात्रा आरम्भ करना आदि कितने ही कार्य वर्जित हैं । उस समय को ईश्वराराधन, सन्ध्यावन्दन, आत्म-साधना आदि कार्यों में लगाते हैं, क्योंकि वह समय जिन कार्यों के लिये सूक्ष्म दृष्टि से अधिक उपयोगी है, वही कार्य करने में थोड़े ही श्रम से अधिक और आश्चर्यजनक सहायता मिलती है । इसी प्रकार जो कार्य वर्जित हैं, वे उस समय में अन्य समयों की अपेक्षा हानिकारक होते हैं । सर्दी और गर्मी की ऋतुओं का मिलन दिन और रात्रि के मिलन के समान सन्ध्याकाल है, पुण्य पर्व है । पुराणों में कहा है कि ऋतुयें नौ दिन के लिये ऋतुमयी, रजस्वला होती हैं । जैसे रजस्वला को विशेष आहार-विहार और आचार-विचार आदि का ध्यान रखना आवश्यक होता है, वैसे ही उस सन्ध्याकाल का सन्धि वेला में-रजस्वला अवधि में-विशेष स्थिति में रहने की आवश्यकता होती है ।

आरोग्य शास्त्र के पण्डित जानते हैं कि आश्विन और चैत्र में जो सूक्ष्म ऋतु परिवर्तन होता है, उसका प्रभाव शरीर पर कितनी अधिक मात्रा में होता है । उस प्रभाव से स्वास्थ्य की दीवारें हिल जाती हैं और अनेक व्यक्ति ज्वर, जूड़ी, हैजा, दस्त, चेचक, अवसाद आदि अनेक रोगों से ग्रस्त हो जाते हैं । वैद्य-डॉक्टरों के दवाखानों में उन दिनों बीमारों का मेला लगा रहता है । वैद्य लोग जानते हैं कि वमन, विरेचन, नस्य, स्वेदन, वस्ति, रक्तमोक्षण आदि शरीर-शोधन-कार्यों के लिये आश्विन और चैत्र का महीना ही सबसे उपयुक्त है । इस समय में दशहरा और राम नवमी जैसे दो प्रमुख त्योहार नवदुर्गाओं के अन्त में होते हैं । ऐसे महत्त्वपूर्ण त्योहारों के लिये यही समय सबसे उपयुक्त है । नवदुर्गाओं के अन्त में भगवती दुर्गा प्रकट हुई । चैत्र की नवदुर्गाओं के अन्त में भगवान् राम का अवतार हुआ । यह अमावस्या पूर्णमासी की सन्ध्या उषा जैसी ही है, जिनके अन्त में सूर्य या चन्द्रमा का उदय होता है ।

ऋतु परिवर्तन का अवसर वैसे सामान्य दृष्टि से तो कष्टकारक, हानि-प्रद जान पड़ता है, उस समय अधिकांश लोगों को कुछ न कुछ शारीरिक कष्ट, कोई छोटा-बड़ा रोग हो जाता है, पर वास्तव में बात उलटी होती है । उस समय शारीरिक जीवन शक्ति में ज्वर की सी अवस्था उत्पन्न होती है और उसके प्रभाव से पिछले छः मास में

आहार-विहार में जो अनियमिततायें हुई हैं, हमने कुअभ्यास या स्वादवश जो अनुचित और अतिरिक्त सामग्री ग्रहण करके दूषित तत्त्वों को बढ़ाया, वह शक्ति उनके निराकरण का उद्योग करने में लगती है। यही दोष निष्कासन की प्रतिक्रिया सामान्य जूड़ी-बुखार, जुकाम-खाँसी आदि के रूप में प्रकट होती है। यदि उपवास या स्वल्प आहार द्वारा शरीर को अपनी सफाई आप कर लेने का मौका दें और जप उपासना द्वारा मानसिक क्षेत्र के मल-विक्षेपों को दूर करने का प्रयत्न करें, तो आगामी कई महीनों के लिये रोगों से बचकर स्वस्थ जीवन बिताने के योग्य बन सकते हैं। गायत्री का यह लघु अनुष्ठान इस दृष्टि से परमोपयोगी है।

क्वार और चैत्र मास शुक्लपक्ष में प्रतिपदा (पड़वा) से लेकर नवमी तक नौ दुर्गायें रहती हैं। यह समय गायत्री-साधना के लिये सबसे अधिक उपयुक्त है। इन दिनों में उपवास रखकर चौबीस हजार मन्त्रों के जप का छोटा- सा अनुष्ठान कर लेना चाहिये। यह छोटी साधना भी बड़ी के समान उपयोगी सिद्ध होती है।

एक समय अन्नाहार, एक समय फलाहार, दो समय दूध और फल, एक समय आहार, एक समय फल-दूध का आहार, केवल दूध का आहार इनमें से जो भी उपवास अपनी सामर्थ्यानुकूल हो उसी के अनुसार साधना आरम्भ कर देनी चाहिये। प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त्त में उठकर शौच, स्नान से निवृत्त होकर पूर्व वर्णित नियमों को ध्यान में रखते हुए बैठना चाहिये। नौ दिन में २४ हजार जप करना है। प्रतिदिन २६६७ मन्त्र जपने हैं। एक माला में १०८ दाने होते हैं। प्रतिदिन २७ मालायें जपने से यह संख्या पूरी हो जाती है। तीन-चार घण्टे में अपनी गति के अनुसार इतनी मालायें आसानी से जपी जा सकती हैं। यदि एक बार में इतने समय लगातार जप करना कठिन हो, तो अधिकांश भाग प्रातःकाल पूरा करके न्यून-अंश सायंकाल को पूरा कर लेना चाहिये। अन्तिम दिन हवन के लिये है। उस दिन पूर्व वर्णित हवन के अनुसार कम से कम १०८ आहुतियों का हवन कर लेना चाहिये। ब्राह्मण भोजन और यज्ञ पूर्ति की दान-दक्षिणा की भी यथाविधि व्यवस्था करनी चाहिये।

यदि छोटा नौ दिन का अनुष्ठान नवदुर्गाओं के समय में प्रति वर्ष करते रहा जाए, तो सबसे उत्तम है। स्वयं न कर सकें, तो किसी अधिकारी सुपात्र ब्राह्मण से वह करा लेना चाहिये। ये नौ दिन साधना के लिये बड़े ही उपयुक्त हैं। कष्ट निवारण, कामनापूर्ति और आत्मबल बढ़ाने में इन दिनों की उपासना बहुत ही लाभदायक सिद्ध होती है। आगामी नवदुर्गायें निकट हैं। पाठक उस समय एक छोटा अनुष्ठान करके उसका लाभ देखें।

नवदुर्गाओं के अतिरिक्त भी छोटा अनुष्ठान उसी प्रकार कभी भी किया जा सकता है। सवालक्ष का जप चालीस दिन में होने वाला पूर्ण अनुष्ठान है। नौ दिन का एक पाद (पञ्चमांश) अनुष्ठान कहलाता है। सुविधा और आवश्यकतानुसार उसे भी करते रहना चाहिये। यह तपोधन जितनी अधिक मात्रा में एकत्रित किया जा सके, उतना ही उत्तम है।

छोटा गायत्री मन्त्र—

जैसे सवालक्ष जप का पूर्ण अनुष्ठान न कर सकने वालों के लिये नौ दिन का चौबीस हजार जप का लघु अनुष्ठान हो सकता है, उसी प्रकार अल्पशिक्षित-अशिक्षित बालक या स्त्रियों के लिये लघु गायत्री मन्त्र भी है। जो २४ अक्षरों का पूर्ण मन्त्र याद नहीं कर पाते, वे प्रणव और व्याहृतियाँ (ॐ भूर्भुवः स्वः) इतना पञ्चाक्षरी मन्त्र का जप करके काम चला सकते हैं। जैसे चारों वेदों का बीज चौबीस अक्षर वाली गायत्री है, वैसे ही गायत्री का मूल पंचाक्षरी मन्त्र प्रणव और व्याहृतियाँ हैं। ॐ भूर्भुवः स्वः यह मन्त्र स्वल्प ज्ञान वालों की सुविधा के लिये बड़ा उपयोगी है।

महिलाओं के लिये विशेष साधनाएँ

पुरुषों की भाँति स्त्रियों को भी वेदमाता गायत्री की साधना का अधिकार है। गतिहीन व्यवस्था को गतिशीलता में परिणत करने के लिये दो भिन्न जाति के पारस्परिक आकर्षण करने वाले तत्त्वों की आवश्यकता होती है। ऋण (निगेटिव) और धन (पोजेटिव) शक्तियों के पारस्परिक आकर्षण-विकर्षण द्वारा ही विद्युत् गति का संचार होता है। परमाणु के इलेक्ट्रोन और प्रोटोन भाग पारस्परिक आदान-प्रदान के कारण गतिशील होते हैं। शाश्वत चैतन्य को क्रियाशील बनाने के लिये सजीव सृष्टि को नर और मादा के दो रूपों में बाँटा गया है; क्योंकि

ऐसा विभाजन हुए बिना विश्व निश्चेष्ट अवस्था में ही पड़ा रहता। "रयि" और "प्राण" शक्ति का सम्मिलन ही तो चैतन्य है। नर-तत्त्व और नारी तत्त्व का पारस्परिक सम्मिलन न हो, तो चैतन्य, आनन्द, स्फुरणा, चेतना, गति, क्रिया, वृद्धि आदि का लोप होकर एक जड़ स्थिति रह जाएगी।

नर-तत्त्व और नारी तत्त्व एक-दूसरे के पूरक हैं। एक के बिना दूसरा अपूर्ण है। दोनों का महत्त्व, उपयोग, अधिकार और स्थान समान है। वेदमाता गायत्री की साधना का अधिकार भी स्त्रियों को पुरुषों के समान ही है। जो यह कहते हैं कि गायत्री वेद मन्त्र होने से उसका अधिकार स्त्रियों को नहीं है, वे भारी भूल करते हैं। प्राचीन काल में स्त्रियाँ मन्त्रद्रष्ट्री रही हैं। वेदमन्त्रों का उनके द्वारा अवतरण हुआ है। गायत्री स्वयं स्त्रीलिंग है फिर उसके अधिकार न होने का कोई कारण नहीं। हाँ; जो अशिक्षित, हीनमति, अपवित्र, स्त्री शूद्र हैं, वे स्वयमेव प्रवृत्ति नहीं रखतीं, न महत्त्व समझती हैं, इसलिये वे अपनी निज की मानसिक अवस्था से ही अधिकार-वंचित होती हैं।

स्त्रियाँ भी पुरुषों की भाँति गायत्री-साधनायें कर सकती हैं। जो साधनाएँ इस पुस्तक में दी गयी हैं, वे सभी उनके अधिकार क्षेत्र में हैं। परन्तु देखा गया है कि सधवा स्त्रियाँ जिन्हें घर के काम में विशेष रूप से व्यस्त रहना पड़ता है अथवा जिनके छोटे-छोटे बच्चे हैं और वे उनके मल-मूत्र के अधिक सम्पर्क में रहने के कारण उतनी स्वच्छता नहीं रख सकतीं, उनके लिये देर में पूरी हो सकने वाली साधनाएँ कठिन हैं। वे संक्षिप्त पंचाक्षरी गायत्री मंत्र (ॐ भूर्भुवः स्वः) से काम चला सकती हैं। रजस्वला होने के दिनों में उन्हें विधिपूर्वक साधना बन्द रखनी चाहिये। कोई अनुष्ठान चल रहा हो, तो इन दिनों में रोककर रज-स्नान के पश्चात् उसे फिर चालू किया जा सकता है।

निस्संतान महिलाएँ गायत्री-साधना को पुरुषों की भाँति ही सुविधापूर्वक कर सकती हैं। अविवाहित या विधवा देवियों के लिये तो वैसी ही सुविधाएँ हैं जैसी कि पुरुषों को, जिनके बच्चे बड़े हो गये हैं, गोदी में कोई छोटा बालक नहीं है या जो वयोवृद्ध हैं, उन्हें भी कुछ असुविधा नहीं हो सकती। साधारण दैनिक साधना में कोई विशेष नियमोपनियम पालन करने की आवश्यकता नहीं है। दाम्पत्य जीवन के साधारण धर्म-पालन करने में उसमें कोई बाधा नहीं। यदि कोई विशेष साधना या अनुष्ठान करना हो, तो उतनी अवधि के लिये ब्रह्मचर्य पालन करना आवश्यक होता है।

विविध प्रयोजनों के लिये कुछ साधनायें नीचे दी जाती हैं—

मनोनिग्रह और ब्रह्म-प्राप्ति के लिये—

विधवा बहिनें आत्म-संयम, सदाचार, विवेक, ब्रह्मचर्य पालन, इन्द्रिय निग्रह एवं मन को वश में करने के लिये गायत्री साधना का ब्रह्मास्त्र के रूप में प्रयोग कर सकती हैं। जिस दिन से यह साधना आरम्भ की जाती है, उसी दिन से मन में शान्ति, स्थिरता, सद्बुद्धि और आत्म-संयम की भावना पैदा होती है। मन पर अपना अधिकार होता है, चित्त की चंचलता नष्ट होती है, विचारों में सतोगुण बढ़ जाता है। इच्छायें, रुचियाँ, क्रियायें, भावनायें, सभी सतोगुणी, शुद्ध और पवित्र रहने लगती हैं। ईश्वर-प्राप्ति, धर्म-रक्षा, तपश्चर्या, आत्म-कल्याण और ईश्वर आराधना में मन विशेष रूप से लगता है। धीरे-धीरे उसकी साध्वी, तपस्विनी, ईश्वर-परायण एवं ब्रह्मवादिनी जैसी स्थिति हो जाती है। गायत्री के वेश में उसे भगवान् का साक्षात्कार होने लगता है और ऐसी आत्म-शान्ति मिलती है, जिसकी तुलना में सधवा रहने का सुख उसे नितान्त तुच्छ दिखाई पड़ता है।

प्रातःकाल ऐसे जल से स्नान करे जो शरीर को सह्य हो, अति शीतल या अति उष्ण जल स्नान के लिये अनुपयुक्त है। वैसे तो सभी के लिये, पर स्त्रियों के लिये विशेष रूप से, असह्य तापमान का जल स्नान के लिये हानिकारक है। स्नान के उपरान्त गायत्री-साधना के लिये बैठना चाहिये। पास में जल भरा हुआ पात्र रहे। जप के लिये तुलसी की माला और बिछाने के लिये कुशासन ठीक है। वृषभारूढ़, श्वेत वस्त्रधारी, चतुर्भुजी, प्रत्येक हाथ में - माला, कमण्डल, पुस्तक और कमल पुष्प लिये हुए प्रसन्न मुख प्रौढ़ावस्था गायत्री का ध्यान करना चाहिये। ध्यान सद्गुणों की वृद्धि के लिये, मनोनिग्रह के लिये बड़ा लाभदायक है। मन को बार-बार इस ध्यान में लगाना चाहिये और मुख से जप इस प्रकार करते जाना चाहिये कि कण्ठ से कुछ ध्वनि हो, होंठ हिलते रहें, परन्तु मन्त्र को

निकट बैठा हुआ मनुष्य भी भली प्रकार सुन न सके । प्रात: और सायं दोनों समय इस प्रकार का जप किया जा सकता है । एक माला तो कम से कम जप होना ही चाहिये । सुविधानुसार अधिक संख्या में भी जप करना चाहिये । तपश्चर्या प्रकरण में लिखी हुई तपश्चर्यायें साथ में की जायें, तो और भी उत्तम है । किस प्रकार के स्वास्थ्य और वातावरण में कौन-सी तपश्चर्या ठीक रहेगी, इस सम्बन्ध में शान्तिकुञ्ज, हरिद्वार से जवाबी पत्र द्वारा सलाह ली जा सकती है ।

कुमारियों के लिये आशाप्रद भविष्य की साधना

कुमारी कन्यायें अपने विवाहित जीवन में सब प्रकार के सुख शान्ति की प्राप्ति के लिये भगवती की उपासना कर सकती हैं । पार्वती जी ने मनचाहा वर पाने के लिये नारद जी के आदेशानुसार तप किया था और वे अन्त में सफल मनोरथ हुई थीं । सीता जी ने मनोवाञ्छित पति पाने के लिये गौरी (पार्वती) की उपासना की थी । नवदुर्गाओं में आस्तिक घरानों की कन्यायें भगवती की आराधना करती हैं, गायत्री की उपासना उनके लिये सब प्रकार मंगलमय है ।

गायत्री के चित्र अथवा मूर्ति को किसी छोटे आसन या चौकी पर स्थापित करके उनकी पूजा वैसे ही करनी चाहिये, जैसे अन्य देव-प्रतिमाओं की होती है । प्रतिमा के आगे एक छोटी तस्वीर रख लेनी चाहिये और उसी पर चन्दन, धूप, दीप, नैवेद्य, पुष्प, जल, भोग आदि पूजा सामग्री चढ़ानी चाहिये, मूर्ति के मस्तक पर चन्दन लगाया जा सकता है, पर यदि चित्र है तो उसके चन्दन आदि नहीं लगाना चाहिये, जिससे उसमें मैलापन न आए । नेत्र बन्द करके ध्यान करना चाहिये और मन ही मन कम से कम २४ मन्त्र गायत्री के जपने चाहिये । गायत्री का चित्र या मूर्ति अपने यहाँ प्राप्त न हो सके, तो इसके लिये गायत्री तपोभूमि मथुरा को लिखना चाहिये । इस प्रकार की गायत्री साधना कन्याओं को उनके लिये अनुकूल वर, अच्छा घर तथा सौभाग्य प्रदान करने में सहायक होती है ।

सधवाओं के लिये मंगलमयी साधना

अपने पतियों को सुखी, समृद्ध, स्वस्थ, सम्पन्न, प्रसन्न, दीर्घजीवी बनाने के लिये सधवा स्त्रियों को गायत्री की शरण लेनी चाहिये । इससे पतियों के बिगड़े हुए स्वभाव, विचार और आचरण शुद्ध होकर इनमें ऐसी सात्त्विक बुद्धि आती है कि वे अपने गृहस्थ जीवन के कर्तव्य-धर्मों को तत्परता एवं प्रसन्नतापूर्वक पालन कर सकें । इस साधना से स्त्रियों के स्वास्थ्य तथा स्वभाव में एक ऐसा आकर्षण पैदा होता है, जिससे वे सभी को परमप्रिय लगती हैं और उनका समुचित सत्कार होता है । अपना बिगड़ा हुआ स्वास्थ्य, घर के अन्य लोगों का बिगड़ा हुआ स्वास्थ्य, आर्थिक तंगी, दरिद्रता, बढ़ा हुआ खर्च, आमदनी की कमी, पारिवारिक क्लेश, मनमुटाव, आपसी राग-द्वेष एवं बुरे दिनों के उपद्रव को शान्त करने के लिये महिलाओं को गायत्री-उपासना करनी चाहिये । पिता के कुल एवं पति के कुल दोनों ही कुलों के लिये यह साधना उपयोगी है, पर सधवाओं की उपासना विशेष रूप से पतिकुल के लिये ही लाभदायक होती है ।

प्रात:काल से लेकर मध्याह्नकाल तक उपासना कर लेनी चाहिये । जब तक साधना न की जाए, भोजन नहीं करना चाहिये । हाँ, जल पिया जा सकता है । शुद्ध शरीर, मन और शुद्ध वस्त्र से पूर्व की ओर मुँह करके बैठना चाहिये । केशर डालकर चन्दन अपने हाथ से घिसें और मस्तक, हृदय तथा कण्ठ पर तिलक छापे के रूप में लगायें । तिलक छोटे-से-छोटा भी लगाया जा सकता है, गायत्री की मूर्ति अथवा चित्र की स्थापना करके उनकी विधिवत् पूजा करें । पीले रंग का पूजा के सब कार्यों में प्रयोग करें । प्रतिमा का आवरण पीले वस्त्रों का रखें । पीले पुष्प, पीले चावल, बेसनी लड्डू आदि पीले पदार्थ का भोग, केशर मिले चन्दन का तिलक, आरती के लिए पीला गोघृत, गोघृत न मिले तो उसमें केशर मिलाकर पीला कर लेना, चन्दन का चूरा, धूप । इस प्रकार पूजा में पीले रंग का अधिक से अधिक प्रयोग करना चाहिये । नेत्र बन्द करके पीतवर्ण आकाश में पीले सिंह पर सवार, पीतवस्त्र पहने गायत्री का ध्यान करना चाहिये । पूजा के समय सब वस्त्र पीले न हो सकें, तो कम से कम एक वस्त्र पीला अवश्य होना चाहिये । इस प्रकार पीतवर्ण गायत्री का ध्यान करते हुए कम-से-कम २४ मन्त्र गायत्री के जपने चाहिये । जब अवसर मिले, तभी मन ही मन भगवती का ध्यान करती रहें । महीने की हर एक पूर्णमासी को व्रत

रखना चाहिये । अपने नित्य आहार में एक चीज पीले रंग की अवश्य लें । शरीर पर कभी-कभी हल्दी का उबटन कर लेना अच्छा है । यह पीतवर्ण साधना दाम्पत्य जीवन को सुखी बनाने के लिये परम उत्तम है ।

सन्तान सुख देने वाली उपासना

जिनकी सन्तान बीमार रहती है, अल्प आयु में ही मर जाती हैं, केवल पुत्र या कन्यायें ही होती हैं, गर्भपात हो जाते हैं, गर्भ स्थापित ही नहीं होता, बन्ध्या दोष लगा हुआ है अथवा सन्तान दीर्घसूत्री, आलसी, मन्द-बुद्धि, दुर्गुणी, आज्ञा उल्लंघनकारी, कटुभाषी या कुमार्गगामी है, वे वेदमाता गायत्री की शरण में जाकर इन कष्टों से छुटकारा पा सकती हैं । हमारे सामने ऐसे सैकड़ों उदाहरण हैं, जिन स्त्रियों ने वेदमाता गायत्री के चरणों में अपना अञ्चल फैलाकर सन्तान-सुख माँगा है उन्हें भगवती ने प्रसन्नतापूर्वक दिया है । माता के भण्डार में किसी वस्तु की कमी नहीं है, उनकी कृपा को पाकर मनुष्य दुर्लभ से दुर्लभ वस्तु प्राप्त कर सकता है । कोई वस्तु ऐसी नहीं, जो माता की कृपा से प्राप्त न हो सकती हो, फिर सन्तान-सुख जैसी साधारण बात की उपलब्धि में कोई बड़ी अड़चन नहीं हो सकती ।

जो महिलायें गर्भवती हैं, वे प्रातः सूर्योदय से पूर्व या रात्रि को सूर्य अस्त के पश्चात् अपने गर्भ में गायत्री के सूर्य सदृश प्रचण्ड तेज का ध्यान किया करें और मन ही मन गायत्री जपें, तो उनका बालक तेजस्वी, बुद्धिमान्, चतुर, दीर्घजीवी तथा तपस्वी होता है ।

प्रातःकाल कटि प्रदेश में भीगे वस्त्र रखकर शांत चित्त से ध्यानावस्थित होना चाहिये और अपने योनि मार्ग में होकर गर्भाशय तक पहुँचता हुआ गायत्री का प्रकाश सूर्य किरणों जैसा ध्यान करना चाहिये । नेत्र बन्द रहें । यह साधना, शीघ्र गर्भ स्थापित करने वाली है । कुन्ती ने इस साधना के बल से गायत्री के दक्षिण भाग (सूर्य भगवान्) को आकर्षित करके कुमारी अवस्था में ही कर्ण को जन्म दिया था । यह साधना कुमारी कन्याओं को नहीं करनी चाहिये ।

साधना से उठकर सूर्य को जल चढ़ाना चाहिये और अर्घ्य से बचा हुआ एक चुल्लू जल स्वयं पीना चाहिये । इस प्रयोग से बन्ध्यायें गर्भ धारण करती हैं, जिनके बच्चे मर जाते हैं या गर्भपात हो जाता है, उनका यह कष्ट मिटकर सन्तोषदायी सन्तान उत्पन्न होती है ।

रोगी, कुबुद्धि, आलसी, चिड़चिड़े बालकों को गोद में लेकर मातायें हंसवाहिनी, गुलाबी कमल पुष्पों से लदी हुई, शंख-चक्र हाथ में लिये गायत्री का ध्यान करें और मन ही मन जप करें । माता के जप का प्रभाव गोदी में लिये बालक पर होता है और उसके शरीर तथा मस्तिष्क में आश्चर्यजनक प्रभाव होता है । छोटा बच्चा हो तो इस साधना के समय माता दूध पिलाती रहे । बड़ा बच्चा हो तो उसके शरीर पर हाथ फिराती रहे । बच्चों की शुभकामना के लिये गुरुवार का व्रत उपयोगी है । साधना से उठ कर जल का अर्घ्य सूर्य को चढ़ाएँ और पीछे बचा हुआ थोड़ा-सा जल बच्चों पर मार्जन की तरह छिड़क दें ।

किसी विशेष आवश्यकता के लिये

अपने परिवार पर, परिजनों पर, प्रियजनों पर आयी हुई किसी आपत्ति के निवारण के लिये अथवा किसी आवश्यक कार्य में आई हुई किसी बड़ी रुकावट एवं कठिनाई को हटाने के लिये गायत्री-साधना के समान दैवी सहायता के माध्यम कठिनाई से मिलेंगे । कोई विशेष कामना मन में हो और उसके पूर्ण होने में भारी बाधायें दिखाई पड़ रही हों, तो सच्चे हृदय से वेदमाता गायत्री को पुकारना चाहिये । माता जैसे अपने प्रिय बालक की पुकार सुनकर दौड़ी आती है, वैसे ही गायत्री की उपासिकायें भी माता की अमित करुणा का प्रत्यक्ष परिचय प्राप्त करती हैं ।

नौ दिन का लघु अनुष्ठान, चालीस दिन का पूर्ण अनुष्ठान इसी पुस्तक में अन्यत्र वर्णित है । तत्कालीन आवश्यकता के लिये उनका उपयोग करना चाहिये । तपश्चर्या प्रकरण में लिखी हुई तपश्चर्यायें भगवती को प्रसन्न करने के लिये प्रायः सफल होती हैं । एक वर्ष का गायत्री उद्यापन सब कामनाओं को पूर्ण करने वाला है, उसका उल्लेख आगे किया जायेगा । जैसे पुरुष के लिये गायत्री अनुष्ठान एक सर्वप्रधान साधन है, उसी प्रकार महिलाओं

के लिये गायत्री उद्यापन की विशेष महिमा है। उसे आरम्भ कर देने में विशेष कठिनाई भी नहीं है और विशेष प्रतिबन्ध भी नहीं है। सरलता की दृष्टि से यह स्त्रियों के लिये विशेष उपयोगी है। माता को प्रसन्न करने के लिये उद्यापन की पुष्पमाला उसका एक परमप्रिय उपहार है।

नित्य की साधना में गायत्री चालीसा का पाठ महिलाओं के लिये बड़ा हितकारी है, जनेऊ की जगह पर कण्ठी गले में धारण करके महिलायें द्विजत्व प्राप्त कर लेती हैं और गायत्री अधिकारिणी बन जाती हैं। साधना आरम्भ करने से पूर्व उत्कीलन कर लेना चाहिये। इसी पुस्तक के पिछले पृष्ठों में गायत्री उत्कीलन के सम्बन्ध में सविस्तार बताया गया है।

एक वर्ष की उद्यापन साधना

कई व्यक्तियों का जीवन-क्रम बड़ा अस्त-व्यस्त होता है, वे सदा कार्य में व्यस्त रहते हैं। व्यावहारिक जीवन की कठिनाइयाँ उन्हें चैन नहीं लेने देतीं। जीविका कमाने में, सामाजिक व्यवहारों को निभाने में, पारिवारिक उत्तरदायित्वों को पूरा करने में, उलझी हुई परिस्थितियों को सुलझाने में, कठिनाइयों के निवारण की चिन्ता में उनके समय और शक्ति का इतना व्यय हो जाता है कि जब फुरसत मिलने की घड़ी आती है, तब वे अपने को थका-माँदा, शक्तिहीन, शिथिल और परिश्रम के भार से चकनाचूर पाते हैं। उस समय उनकी एक ही इच्छा होती है कि उन्हें चुपचाप पड़े रहने दिया जाए, कोई उन्हें छेड़े नहीं; ताकि वे सुस्ताकर अपनी थकान उतार सकें। कई व्यक्तियों का शरीर एवं मस्तिष्क अल्प शक्ति वाला होता है, मामूली दैनिक कार्यों के श्रम में ही वे अपनी शक्ति खर्च कर देते हैं, फिर उनके हाथ-पैर शिथिल हो जाते हैं।

साधारणत: सभी आध्यात्मिक साधनाओं के लिये और विशेष कर गायत्री-साधना के लिये उत्साहित मन एवं शक्ति-सम्पन्न शरीर की आवश्यकता होती है; ताकि स्थिरता, दृढ़ता, एकाग्रता और शान्ति के साथ मन साधना में लग सके। इस स्थिति में की गयी साधनायें सफल होती हैं। परन्तु कितने लोग हैं, जो ऐसी स्थिति को उपलब्ध कर पाते हैं। अस्थिर, अव्यवस्थित चित्त किसी प्रकार साधना में जुट जाए तो उससे वैसा परिणाम नहीं निकल पाता, जैसा कि निकलना चाहिये। अधूरे मन से की गयी उपासना भी अधूरी होती है और उसका फल भी वैसा ही अधूरा मिलता है।

ऐसे स्त्री, पुरुषों के लिये एक अति सरल एवं बहुत महत्त्वपूर्ण साधना "गायत्री-उद्यापन" है। इसे बहुधन्धी, काम-काजी और कार्य व्यस्त व्यक्ति भी कर सकते हैं। कहते हैं कि बूँद-बूँद जोड़ने से धीरे-धीरे घड़ा भरा जाता है। थोड़ी-थोड़ी आराधना करने से कुछ समय में एक बड़े परिमाण में साधना-शक्ति जमा हो जाती है।

प्रतिमास अमावस्या और पूर्णमासी दो दिन उद्यापन की साधना करनी पड़ती है। किसी मास की पूर्णिमा से उसे आरम्भ किया जा सकता है। ठीक एक वर्ष बाद इसी पूर्णमासी को उसकी समाप्ति करनी चाहिये। प्रति अमावस्या और पूर्णमासी को निम्न कार्यक्रम होना चाहिये और इन नियमों का पालन करना चाहिये।

(१) गायत्री उद्यापन के लिये कोई सुयोग्य, सदाचारी, गायत्री-विद्या का ज्ञाता ब्राह्मण वरण करके उसे ब्रह्मा नियुक्त करना चाहिये।

(२) ब्रह्मा को उद्यापन आरम्भ करते समय अन्न, वस्त्र, पात्र और यथासम्भव दक्षिणा देकर इस यज्ञ के लिये वरण करना चाहिये।

(३) प्रत्येक अमावस्या व पूर्णमासी को साधक की तरह ब्रह्मा भी अपने निवास स्थान पर रहकर यजमान की सहायता के लिये उसी प्रकार की साधना करे। यजमान और ब्रह्मा को एक समान नियमों का पालन करना चाहिये, जिससे उभयपक्षीय साधनायें मिलकर एक सर्वांगपूर्ण साधना प्रस्तुत हो।

(४) उस दिन ब्रह्मचर्य से रहना आवश्यक है।

(५) उस दिन उपवास रखें। अपनी स्थिति और स्वास्थ्य को ध्यान में रखते हुए एक बार एक अन्न का आहार, फलाहार, दुग्धाहार या इनके मिश्रण के आधार पर उपवास किया जा सकता है। तपश्चर्या एवं प्रायश्चित्त प्रकरण में इस सम्बन्ध में विस्तृत बातें लिखी जा चुकी हैं।

(६) तपश्चर्या प्रकरण में बताई हुई तपश्चर्याओं में से जो अन्य नियम, व्रत पालन किये जा सकें, उनका यथा सम्भव पालन करना चाहिये। उस दिन पुरुषों को हजामत बनाना, स्त्रियों को सुसज्जित चोटी गूँथना वर्जित है।

(७) उस दिन प्रातःकाल नित्यकर्म से निवृत्त होकर स्वच्छतापूर्वक साधना के लिये बैठना चाहिये। गायत्री सन्ध्या करने के उपरान्त गायत्री की प्रतिमा (चित्र या मूर्ति) का पूजन धूप, दीप, अक्षत, पुष्प, चन्दन, रोली, जल, मिष्टान्न से करें। तदुपरान्त यजमान इस उद्यापन के ब्रह्मा का ध्यान करके मन ही मन उसे प्रणाम करे और ब्रह्मा यजमान का ध्यान करते हुए उसे आशीर्वाद दे। इसके पश्चात् गायत्री मन्त्र का जप आरम्भ करे। जप के समय इस पुस्तक के आरम्भ में दिये हुए गायत्री-चित्र का ध्यान करता रहे। इस मन्त्र का जप करने के लिये दस मालायें फेरनी चाहिये। मिट्टी के एक पात्र में अग्नि रखकर उसमें घी में मिली हुई धूप डालता रहे, जिससे यज्ञ जैसी सुगन्ध उड़ती रहे। साथ ही घी का दीपक जलता रहे।

(८) जप पूरा होने पर कपूर या घृत की बत्ती जलाकर आरती करे। आरती के उपरान्त भगवती को मिष्टान्न का भोग लगाएँ और उसे प्रसाद की तरह समीपवर्ती लोगों में बाँट दें।

(९) पात्र के जल को सूर्य के सम्मुख अर्घ्यरूप से चढ़ा दें।

(१०) यह सब कृत्य लगभग दो घण्टे में पूरा हो जाता है, पन्द्रह दिन बाद इतना समय निकाल लेना कुछ कठिन बात नहीं है। जो अधिक कार्य व्यस्त व्यक्ति हैं, वे दो घण्टे तड़के उठकर सूर्योदय तक अपना कार्य समाप्त कर सकते हैं। सन्ध्या को यदि समय मिल सके, तो थोड़ा-बहुत उस समय भी साधारण रीति से कर लेना चाहिये। सन्ध्या पूजन आदि की आवश्यकता नहीं। प्रातः और सायं का एक समय पूर्व निश्चित होना चाहिये, जिस पर यजमान और ब्रह्मा साथ-साथ साधना कर सकें।

(११) यदि किसी बार बीमारी, सूतक, आकस्मिक कार्य आदि के कारण साधना न हो सके, तो दूसरी बार दूना करके क्षति-पूर्ति कर लेनी चाहिये या यजमान का कार्य ब्रह्मा एवं ब्रह्मा का कार्य यजमान पूरा कर दे।

(१२) अमावस्या, पूर्णमासी के अतिरिक्त भी गायत्री का जप चालू रखना चाहिये। अधिक न बन पड़े, तो स्नान के उपरान्त या स्नान करते समय कम से कम ४ मन्त्र मन ही मन अवश्य जप लेना चाहिये।

(१३) उद्यापन पूरा होने पर उसी पूर्णमासी को गायत्री-पूजन, हवन, जप तथा ब्राह्मण भोजन कराना चाहिये। ब्राह्मणों को गायत्री सम्बन्धी छोटी या बड़ी पुस्तकें तथा और जो बन पड़े दक्षिणा में देना चाहिये। गायत्री-पूजन के लिये अपनी सामर्थ्यानुसार सोना, चाँदी या ताँबे की गायत्री-प्रतिमा बनवानी चाहिये। प्रतिमा, वस्त्र, पात्र तथा दक्षिणा देकर ब्रह्मा की विदाई करनी चाहिये।

यह गायत्री उद्यापन स्वास्थ्य, धन, सन्तान तथा सुख-शान्ति की रक्षा करने वाला है। आपत्तियों का निवारण करता है, शत्रुता तथा द्वेष को मिटाता है, सद्बुद्धि तथा विवेकशीलता उत्पन्न करता है एवं मानसिक शक्तियों को बढ़ाता है। किसी अभिलाषा को पूर्ण करने के लिये, गायत्री की कृपा प्राप्त करने के लिये यह एक उत्तम तप है, जिससे भगवती प्रसन्न होकर साधक का मनोरथ पूरा करती हैं। यदि कोई सफलता मिले, अभीष्ट कामना की पूर्ति हो, प्रसन्नता का अवसर आए, तो उसकी खुशी में भगवती के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने के रूप में उद्यापन करते रहना चाहिये। गीता में भगवान् ने कहा है—

देवान् भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ॥ —अ० ३।११

"इस यज्ञ द्वारा तुम देवताओं की आराधना करो, वे देवता तुम्हारी रक्षा करेंगे। इस प्रकार आपस में आदान-प्रदान करने से परम कल्याण की प्राप्ति होगी।"

गायत्री साधना से अनेकों प्रयोजनों की सिद्धि

गायत्री-मन्त्र सर्वोपरि मन्त्र है। इससे बड़ा और कोई मन्त्र नहीं। जो काम संसार के किसी अन्य मन्त्र से नहीं हो सकता, वह निश्चित रूप से गायत्री द्वारा हो सकता है। दक्षिण-मार्गी योग-साधक वेदोक्त पद्धति से जिन कार्यों

के लिये अन्य किसी मन्त्र से सफलता प्राप्त करते हैं, वे सब प्रयोजन गायत्री से पूरे हो सकते हैं। इसी प्रकार वाममार्गी तान्त्रिक जो कार्य तन्त्र प्रणाली से किसी मन्त्र के आधार पर करते हैं, वह भी गायत्री द्वारा किये जा सकते हैं। यह एक प्रचण्ड शक्ति है, जिसे जिधर भी लगा दिया जायेगा, उधर ही चमत्कारी सफलता मिलेगी।

काम्य कर्मों के लिये, सकाम प्रयोजनों के लिये अनुष्ठान करना आवश्यक होता है। सवालक्ष का पूर्ण अनुष्ठान, चौबीस हजार का आंशिक अनुष्ठान अपनी-अपनी मर्यादा के अनुसार फल देते हैं। "जितना गुड़ डालो उतना मीठा" वाली कहावत इस क्षेत्र में भी चरितार्थ होती है। साधना और तपश्चर्या द्वारा जो आत्म-बल संग्रह किया गया है, उसे जिस काम में भी खर्च किया जायेगा, उसका प्रतिफल अवश्य मिलेगा। बन्दूक उतनी ही उपयोगी सिद्ध होगी, जितनी बढ़िया और जितने अधिक कारतूस होंगे। गायत्री की प्रयोग विधि एक प्रकार की आध्यात्मिक बन्दूक है। तपश्चर्या या साधना द्वारा संग्रह की हुई आत्मिक शक्ति कारतूसों की पेटी है। दोनों के मिलने से ही निशाने को मार गिराया जा सकता है। कोई व्यक्ति प्रयोग विधि जानता हो, पर उसके पास साधन-बल न हो, तो ऐसा ही परिणाम होगा, जैसा खाली बन्दूक का घोड़ा बार-बार चटकाकर कोई यह आशा करे कि अचूक निशाना लगेगा। इसी प्रकार जिनके पास तपोबल है, पर उसका काम्य प्रयोजन के लिये विधिवत् प्रयोग करना नहीं जानते, वैसे हैं जैसे कोई कारतूस की पोटली बाँधे फिरे और उन्हें हाथ से फेंक-फेंक कर शत्रुओं की सेना का संहार करना चाहे। यह उपहासास्पद तरीके हैं।

आत्म-बल संचय करने के लिये जितनी अधिक साधनायें की जाएँ उतना ही अच्छा है। पाँच प्रकार के साधक गायत्री सिद्ध समझे जाते हैं—(१) लगातार बारह वर्ष तक प्रतिदिन कम से कम एक माला नित्य जप किया हो। (२) गायत्री की ब्रह्म-सन्ध्या को नौ वर्ष किया हो, (३) ब्रह्मचर्यपूर्वक पाँच वर्ष तक प्रतिदिन एक हजार मन्त्र जपे हों, (४) चौबीस लक्ष गायत्री का अनुष्ठान किया हो, (५) पाँच वर्ष तक विशेष गायत्री जप किया हो। जो व्यक्ति इन साधनाओं में कम से कम एक या एक से अधिक का तप पूरा कर चुके हों, वे गायत्री मन्त्र का काम्य कर्म में प्रयोग करके सफलता प्राप्त कर सकते हैं। चौबीस हजार वाले अनुष्ठानों की पूँजी जिनके पास है, वे भी अपनी-अपनी पूँजी के अनुसार एक सीमा तक सफल हो सकते हैं।

नीचे कुछ खास-खास प्रयोजनों के लिये गायत्री प्रयोग की विधियाँ दी जाती हैं—

रोग निवारण—

स्वयं रोगी होने पर जिस स्थिति में भी रहना पड़े, उसी में मन ही मन गायत्री का जप करना चाहिये। एक मन्त्र समाप्त होने और दूसरा आरम्भ होने के बीच में एक "बीज मन्त्र" का सम्पुट भी लगाते चलना चाहिये। सर्दी प्रधान (कफ) रोग में 'एं' बीज मन्त्र, गर्मी प्रधान पित्त रोगों में 'ऐं', अपच एवं विष तथा वात रोगों में 'हूं' बीज मन्त्र का प्रयोग करना चाहिये। नीरोग होने के लिये वृषभ-वाहिनी हरित वस्त्रा गायत्री का ध्यान करना चाहिये।

दूसरों को नीरोग करने के लिये भी इन्हीं बीज मन्त्रों का और इसी ध्यान का प्रयोग करना चाहिये। रोगी के पीड़ित अंगों पर उपर्युक्त ध्यान और जप करते हुए हाथ फेरना, जल अभिमन्त्रित करके रोगी पर मार्जन देना एवं छिड़कना चाहिये। इन्हीं परिस्थितियों में तुलसी पत्र और कालीमिर्च गंगाजल में पीसकर दवा के रूप में देना, यह सब उपचार ऐसे हैं, जो किसी भी रोग के रोगी को दिये जाएँ, उसे लाभ पहुँचाये बिना न रहेंगे।

विष- निवारण—

सर्प, बिच्छू, बर्र, ततैया, मधुमक्खी और जहरीले जीवों के काट लेने पर बड़ी पीड़ा होती है। साथ ही शरीर में विष फैलने से मृत्यु हो जाने की सम्भावना रहती है, इस प्रकार की घटनायें घटित होने पर गायत्री शक्ति द्वारा उपचार किया जा सकता है।

पीपल वृक्ष की समिधाओं से विधिवत् हवन करके उसकी भस्म को सुरक्षित रख लेना चाहिये। अपनी नासिका का जो स्वर चल रहा है उसी हाथ पर थोड़ी-सी भस्म रखकर दूसरे हाथ से उसे अभिमन्त्रित करता चले और बीच में 'हूं' बीजमन्त्र का सम्पुट लगावे तथा रक्तवर्ण अश्वारूढ़ा गायत्री का ध्यान करता हुआ उस भस्म को विषैले कीड़े के काटे हुए स्थान पर दो-चार मिनट मसले। पीड़ा में जादू के समान आराम होता है।

सर्प के काटे हुए स्थान पर रक्त चन्दन से किये हुए हवन की भस्म मलनी चाहिये और अभिमन्त्रित करके घृत पिलाना चाहिये। पीली सरसों अभिमन्त्रित करके उसे पीसकर दशों इन्द्रियों के द्वार पर थोड़ा-थोड़ा लगा देना चाहिये। ऐसा करने से सर्प-विष दूर हो जाता है।

बुद्धि-वृद्धि—

गायत्री प्रधानतः बुद्धि को शुद्ध, प्रखर और समुन्नत करने वाला मन्त्र है। मन्द बुद्धि, स्मरण शक्ति की कमी वाले लोग इससे विशेष रूप से लाभ उठा सकते हैं। जो बालक अनुत्तीर्ण हो जाते हैं, पाठ ठीक प्रकार याद नहीं कर पाते, उनके लिये निम्न उपासना बहुत उपयोगी है।

सूर्योदय के समय की प्रथम किरणें पानी से भीगे हुए मस्तक पर लगने दें। पूर्व की ओर मुख करके अधखुले नेत्रों से सूर्य का दर्शन करते हुए आरम्भ में तीन बार ॐ का उच्चारण करते हुए गायत्री का जप करें। कम से कम एक माला (१०८ मन्त्र) अवश्य जपना चाहिये। पीछे हाथों की हथेली का भाग सूर्य की ओर इस प्रकार करें, मानो आग पर ताप रहे हैं। इस स्थिति में बारह मन्त्र जपकर हथेलियों को आपस में रगड़ना चाहिये और उन उष्ण हाथों को मुख, नेत्र, नासिका, ग्रीवा, कर्ण, मस्तक आदि समस्त शिरोभागों पर फिराना चाहिये।

राजकीय सफलता—

किसी सरकारी कार्य, मुकदमा, राज्य स्वीकृति, नियुक्ति आदि में सफलता प्राप्त करने के लिये गायत्री का उपयोग किया जा सकता है। जिस समय अधिकारी के सम्मुख उपस्थित होना हो अथवा कोई आवेदन पत्र लिखना हो, उस समय यह देखना चाहिये कि कौन-सा स्वर चल रहा है। यदि दाहिना स्वर चल रहा हो तो पीतवर्ण ज्योति का मस्तिष्क में ध्यान करना चाहिये और यदि बायाँ स्वर चल रहा हो तो हरे रंग के प्रकाश का ध्यान करना चाहिये। मन्त्र में सप्त व्याहृतियाँ (ॐ भूः भुवः स्वः महः जनः तपः सत्यम्) लगाते हुए बारह मन्त्रों का मन ही मन जप करना चाहिये। दृष्टि उस हाथ के अँगूठे के नाखून पर रखनी चाहिये, जिसका स्वर चल रहा हो। भगवती की मानसिक आराधना, प्रार्थना करते हुए राजद्वार में प्रवेश करने से सफलता मिलती है।

दरिद्रता का नाश—

दरिद्रता, हानि, ऋण, बेकारी, साधनहीनता, वस्तुओं का अभाव, कम आमदनी, बढ़ा हुआ खर्च, कोई रुका हुआ आवश्यक कार्य आदि की व्यर्थ चिन्ता से मुक्ति दिलाने में गायत्री साधना बड़ी सहायक सिद्ध होती है। उससे ऐसी मनोभूमि तैयार हो जाती है, जो वर्तमान अर्थ-चक्र से निकालकर साधक को सन्तोषजनक स्थिति पर पहुँचा दे।

दरिद्रता-नाश के लिये गायत्री की 'श्रीं' शक्ति की उपासना करनी चाहिये। मन्त्र के अन्त में तीन बार 'श्रीं' बीज का सम्पुट लगाना चाहिये। साधना काल के लिये पीत वस्त्र, पीले पुष्प, पीला यज्ञोपवीत, पीला तिलक, पीला आसन प्रयोग करना चाहिये और रविवार को उपवास करना चाहिये। शरीर पर शुक्रवार को हल्दी मिले हुए तेल की मालिश करनी चाहिये और रविवार को उपवास करना चाहिये। पीताम्बर धारी, हाथी पर चढ़ी हुई गायत्री का ध्यान करना चाहिये। पीतवर्ण लक्ष्मी का प्रतीक है, भोजन में भी पीली चीजें प्रधान रूप से लेनी चाहिये। इस प्रकार की साधना से धन की वृद्धि और दरिद्रता का नाश होता है।

सुसंतति की प्राप्ति—

जिसके सन्तान नहीं होती हैं, होकर मर जाती हैं, रोगी रहती हैं, गर्भपात हो जाते हैं, केवल कन्यायें होती हैं, तो इन कारणों से माता-पिता को दुःखी रहना स्वाभाविक है। इस प्रकार के दुःखों से भगवती की कृपा द्वारा छुटकारा मिल सकता है।

इस प्रकार की साधना में स्त्री-पुरुष दोनों ही सम्मिलित हो सकें, तो बहुत ही अच्छा, एक पक्ष के द्वारा ही पूरा भार कन्धे पर लिये जाने से आंशिक सफलता ही मिलती है। प्रातःकाल नित्यकर्म से निवृत्त होकर पूर्वाभिमुख होकर साधना पर बैठें। नेत्र बन्द करके श्वेत वस्त्राभूषण अलंकृत, किशोर आयु वाली, कमल पुष्प हाथ में धारण किये हुए गायत्री का ध्यान करें। 'यैं' बीज के तीन सम्पुट लगाकर गायत्री का जप चन्दन की माला पर करें।

नासिका से साँस खींचते हुए पेडू तक ले जानी चाहिये । पेडू को जितना वायु से भरा जा सके भरना चाहिये । फिर साँस रोककर 'यैं' बीज सम्पुटित गायत्री का कम से कम एक, अधिक से अधिक तीन बार जप करना चाहिये । इस प्रकार पेडू में गायत्री-शक्ति का आकर्षण और धारण कराने वाला यह प्राणायाम दस बार करना चाहिये । तदनन्तर अपने वीर्यकोष या गर्भाशय में शुभ्र वर्ण ज्योति का ध्यान करना चाहिये । यह साधना स्वस्थ, सुन्दर, तेजस्वी, गुणवान्, बुद्धिमान् सन्तान उत्पन्न करने के लिये है ।

इस साधना के दिनों में प्रत्येक रविवार को चावल, दूध, दही आदि केवल श्वेत वस्तुओं का ही भोजन करना चाहिये ।

शत्रुता का संहार—

द्वेष, कलह, मुकदमाबाजी, मनमुटाव को दूर करना और अत्याचारी, अन्यायी, अकारण, आक्रमण करने वाली मनोवृत्ति का संहार करना, आत्मा तथा समाज में शान्ति रखने के लिये चार 'क्लीं' बीजमन्त्रों के सम्पुट समेत रक्त चन्दन की माला से पश्चिमाभिमुख होकर गायत्री का जप करना चाहिये । जप काल में सिर पर यज्ञ भस्म का तिलक लगाना तथा ऊन का आसन बिछाना चाहिये । लाल वस्त्र पहनकर सिंहारूढ़, खड्ग हस्ता, विकराल बदना, दुर्गा वेशधारी गायत्री का ध्यान करना चाहिये ।

जिन व्यक्तियों का द्वेष-दुर्भाव निवारण करना हो उनका नाम पीपल के पत्ते पर रक्त चन्दन की स्याही और अनार की कलम से लिखना चाहिये । इस पत्ते को उल्टा रखकर प्रत्येक मन्त्र के बाद जल पात्र में से एक छोटी चम्मच भर के जल लेकर उस पत्ते पर डालना चाहिये । इस प्रकार १०८ मन्त्र जपने चाहिये । इससे शत्रु के स्वभाव का परिवर्तन होता है और उसकी द्वेष करने वाली सामर्थ्य घट जाती है ।

भूत-बाधा की शान्ति—

कुछ मनोवैज्ञानिक कारणों, सांसारिक विकृतियों तथा प्रेतात्माओं के कोप से कई बार भूत बाधा के उपद्रव होने लगते हैं । कोई व्यक्ति उन्मादियों जैसी चेष्टा करने लगता है, उसके मस्तिष्क पर किसी दूसरी आत्मा का आधिपत्य दृष्टिगोचर होता है । इसके अतिरिक्त कोई मनुष्य या पशु ऐसी विचित्र दशा का रोगी होता है, जैसा कि साधारण रोगों से नहीं होता । भयानक आकृतियाँ दिखाई पड़ना, अदृश्य मनुष्य द्वारा की जाने जैसी क्रियाओं का देखा जाना भूत बाधा के लक्षण हैं ।

इसके लिये गायत्री हवन सर्वश्रेष्ठ है । सतोगुणी हवन सामग्री से विधिपूर्वक यज्ञ करना चाहिये और रोगी को उसके निकट बिठा लेना चाहिये, हवन की अग्नि में तपाया हुआ जल रोगी को पिलाना चाहिये, बुझी हुई यज्ञ भस्म सुरक्षित रख लेनी चाहिये, किसी को अचानक भूत बाधा हो तो उस यज्ञ-भस्म को उसके हृदय, ग्रीवा, मस्तक, नेत्र, कर्ण, मुख, नासिका आदि पर लगाना चाहिये ।

दूसरों को प्रभावित करना—

जो व्यक्ति अपने प्रतिकूल हैं उन्हें अनुकूल बनाने के लिये, उपेक्षा करने वालों में प्रेम उत्पन्न करने के लिये गायत्री द्वारा आकर्षण क्रिया की जा सकती है । वशीकरण तो घोर तांत्रिक क्रिया द्वारा ही होता है, पर चुम्बकीय आकर्षण, जिससे किसी व्यक्ति का मन अपनी ओर सद्भावनापूर्वक आकर्षित हो, गायत्री की दक्षिण मार्गी इस योग-साधना से हो सकता है ।

गायत्री मन्त्र का जप तीन प्रणव लगाकर करना चाहिये और ऐसा ध्यान करना चाहिये कि अपनी त्रिकुटी (मस्तिष्क के मध्य भाग) में से एक नील वर्ण विद्युत्-तेज की रस्सी जैसी शक्ति निकलकर उस व्यक्ति तक पहुँचती है, जिसे आपको आकर्षित करना है और उसके चारों ओर अनेक लपेट मारकर लिपट जाती है । इस प्रकार लिपटा हुआ वह व्यक्ति अर्द्धतंद्रित अवस्था में धीरे-धीरे खिंचता चला आता है और अनुकूलता की प्रसन्न मुद्रा उसके चेहरे पर छाई हुई होती है । आकर्षण के लिये यह ध्यान बड़ा प्रभावशाली है ।

किसी के मन में, मस्तिष्क में से उसके अनुचित विचार हटाकर उचित विचार भरने हों, तो ऐसा करना चाहिये कि शान्तचित्त होकर उस व्यक्ति को अखिल नील आकाश में अकेला सोता हुआ ध्यान करें और भावना करें कि

उसके कुविचारों को हटाकर आप उसके मन में सद्विचार भर रहे हैं । इस ध्यान-साधना के समय अपना शरीर भी बिल्कुल शिथिल और नील वस्त्र से ढका होना चाहिये ।

रक्षा-कवच—

किसी शुभ दिन उपवास रखकर केशर, कस्तूरी, जायफल, जावित्री, गोरोचन इन पाँच चीजों के मिश्रण की स्याही बनाकर अनार की कलम से पाँच प्रणव संयुक्त गायत्री मंत्र बिना पालिश किये हुए कागज या भोज-पत्र पर लिखना चाहिये । कवच चाँदी के ताबीज में बन्द करके जिस किसी को धारण कराया जाए, उसकी सब प्रकार की रक्षा करता है । रोग, अकाल मृत्यु, शत्रु, चोर, हानि, बुरे दिन, कलह, भय, राज्य दण्ड, भूत-प्रेत, अभिचार आदि से यह कवच रक्षा करता है । इसके प्रताप और प्रभाव से शारीरिक, आर्थिक और मानसिक सुख साधनों में वृद्धि होती है ।

काँसे की थाली में उपर्युक्त प्रकार से गायत्री मन्त्र लिखकर उसे प्रसव-कष्ट से पीड़ित प्रसूता को दिखाया जाय और फिर पानी में घोलकर उसे पिला दिया जाय तो कष्ट दूर होकर सुख-पूर्वक शीघ्र प्रसव हो जाता है ।

बुरे मुहूर्त और शकुनों का परिहार—

कभी-कभी ऐसे अवसर आते हैं कि कोई कार्य करना या कहीं जाना है, उस समय कोई शकुन या मुहूर्त ऐसे उपस्थित हो रहे हैं, जिनके कारण आगे कदम बढ़ाते हुए झिझक होती है, ऐसे अवसरों पर गायत्री की एक माला जपने के पश्चात् कार्य आरम्भ किया जा सकता है । इससे सारे अनिष्टों और आशंकाओं का समाधान हो जाता है और किसी अनिष्ट की संभावना नहीं रहती । विवाह न बनता हो या विधि वर्ग न मिलते हों, विवाह मुहूर्त में सूर्य, बृहस्पति, चन्द्रमा आदि की बाधा हो, तो चौबीस हजार जप का नौ दिन वाला लघु अनुष्ठान करके विवाह कर देना चाहिये । ऐसे विवाह से किसी प्रकार के अनिष्ट होने की कोई सम्भावना नहीं है । वह सब प्रकार शुद्ध और ज्योतिष सम्मत विवाह के समान ही ठीक माना जाना चाहिये ।

बुरे स्वप्नों के फल का नाश—

रात्रि या दिन में सोने में कभी-कभी कई बार ऐसे भयंकर स्वप्न दिखाई पड़ते हैं, जिससे स्वप्न काल में भयंकर त्रास और दुःख मिलता है एवं जागने पर भी उसका स्मरण करके दिल धड़कता है । ऐसे स्वप्न कभी अनिष्ट की आशंका का संकेत करते हैं । जब ऐसे स्वप्न हों, तो एक सप्ताह तक प्रतिदिन दस-दस मालायें गायत्री जप करना चाहिये और गायत्री का पूजन करना या कराना चाहिये । गायत्री सहस्रनाम या गायत्री चालीसा का पाठ भी दुःस्वप्नों के प्रभाव को नष्ट करने वाला है ।

उपर्युक्त पंक्तियों में कुछ थोड़े से प्रयोग और उपचारों का अभ्यास कराया गया है । अनेक विषयों में अनेक विधियों से गायत्री का जो उपयोग हो सकता है, उसका विवरण बहुत विस्तृत है । ऐसे छोटे-छोटे लेखों में नहीं आ सकता, उसे तो स्वयं अनुभव करके अथवा इस मार्ग के किसी अनुभवी सफल प्रयोक्ता को एक प्रदर्शक नियुक्त करके ही जाना जा सकता है । गायत्री की महिमा अपार है, वह कामधेनु है । उसकी साधना-उपासना करने वाला कभी निराश नहीं लौटता ।

गायत्री का अर्थ चिन्तन

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्‌ ।

ॐ—ब्रह्म
भूः—प्राणस्वरूप
भुवः—दुःखनाशक
स्वः—सुख स्वरूप
तत्—उस
सवितुः—तेजस्वी, प्रकाशवान्
वरेण्यं—श्रेष्ठ
भर्गो—पापनाशक
देवस्य—दिव्य को, देने वाले को
धीमहि—धारण करें
धियो—बुद्धि को
यो—जो
नः—हमारी
प्रचोदयात्—प्रेरित करे ।

गायत्री-मन्त्र के इस अर्थ पर मनन एवं चिन्तन करने से अन्त:करण में उन तत्त्वों की वृद्धि होती है, जो मनुष्य को देवत्व की ओर ले जाते हैं। यह भाव बड़े ही शक्तिदायक, उत्साहप्रद, सतोगुणी, उन्नायक एवं आत्मबल बढ़ाने वाले हैं। इन भावों का नित्यप्रति कुछ समय मनन करना चाहिये।

१—"भू: लोक, भुव: लोक, स्व: लोक- इन तीन लोकों में ॐ परमात्मा समाया हुआ है। यह जितना भी विश्व ब्रह्माण्ड है, परमात्मा की साकार प्रतिमा है। कण-कण में भगवान् समाये हुए हैं। सर्वव्यापक परमात्मा को सर्वत्र देखते हुए, मुझे कुविचारों और कुकर्मों से सदा दूर रहना चाहिये एवं संसार की सुख-शान्ति तथा शोभा बढ़ाने में सहयोग देकर प्रभु की सच्ची पूजा करना चाहिये।"

२ "तत्- वह परमात्मा, सवितु:-तेजस्वी, वरेण्यं- श्रेष्ठ, भर्गो- पाप रहित और देवस्य- दिव्य है, उसको अन्त:करण में धारण करता हूँ। इन गुणों वाले भगवान् मेरे अन्त:करण में प्रविष्ट होकर मुझे भी तेजस्वी, श्रेष्ठ, पाप रहित एवं दिव्य बनाते हैं। मैं प्रतिक्षण इन गुणों से युक्त होता जाता हूँ। इन दोनों की मात्रा मेरे मस्तिष्क तथा शरीर के कण-कण में बढ़ती है। इन गुणों से ओत-प्रोत होता जाता हूँ।"

३-'वह परमात्मा, न:-हमारी, धियो-बुद्धि को, प्रचोदयात्-सन्मार्ग में प्रेरित करे। हम सब की, हमारे स्वजन-परिजनों की बुद्धि सन्मार्गगामी हो। संसार की सबसे बड़ी विभूति, सुखों की आदि माता सद्बुद्धि को पाकर हम इस जीवन में ही स्वर्गीय आनन्द का उपयोग करें। मानव जन्म को सफल बनायें।"

उपर्युक्त तीन चिन्तन-संकल्प धीरे-धीरे मनन करने चाहिये। एक-एक शब्द पर कुछ क्षण रुकना चाहिये और उस शब्द का कल्पना चित्र मन में बनाना चाहिये।

जब यह शब्द पढ़े जा रहे हों कि परमात्मा भू: भुव: स्व: तीनों लोकों में व्याप्त है, तब ऐसी कल्पना करनी चाहिये, जैसे हम पाताल, पृथ्वी, स्वर्ग को भली प्रकार देख रहे हैं और उसमें गर्मी, प्रकाश, बिजली, शक्ति या प्राण की तरह परमात्मा सर्वत्र समाया हुआ है। यह विराट् ब्रह्माण्ड ईश्वर की एक जीवित-जाग्रत् साकार प्रतिमा है। गीता में अर्जुन को जिस प्रकार भगवान् ने अपना विराट् रूप दिखाया है, वैसे ही विराट् पुरुष के दर्शन अपने कल्पना-लोक में मानस चक्षुओं से करने चाहिये। जी भरकर इस विराट् ब्रह्म के, विश्व पुरुष के दर्शन करने चाहिये कि मैं इस विश्व पुरुष के पेट में बैठा हूँ। मेरे चारों ओर परमात्मा ही परमात्मा है। ऐसी महाशक्ति की उपस्थिति में कुविचारों और कुकर्मों को मैं किस प्रकार अंगीकार कर सकता हूँ। इस विश्वपुरुष का कण-कण मेरे लिये पूजनीय है। उसकी सेवा, सुरक्षा एवं शोभा बढ़ाने में प्रवृत्त रहना ही मेरे लिये श्रेयस्कर है।

संकल्प के दूसरे भाग का चिन्तन करते हुए अपने हृदय को भगवान् का सिंहासन अनुभव करना चाहिये और उस तेजस्वी, सर्वश्रेष्ठ, निर्विकार, दिव्य गुणों वाले परमात्मा को विराजमान देखना चाहिये। भगवान् की झाँकी तीन रूप में की जा सकती है। (१) विराट् पुरुष के रूप में (२) राम, कृष्ण, विष्णु, गायत्री, सरस्वती आदि के रूप में (३) दीपक की ज्योति के रूप में। यह अपनी भावना, इच्छा और रुचि के ऊपर है। परमात्मा का पुरुष रूप में, गायत्री का मातृ रूप में अपनी रुचि के अनुसार ध्यान किया जा सकता है। परमात्मा स्त्री भी है और पुरुष भी। गायत्री साधकों को माता गायत्री के रूप में ब्रह्म का ध्यान करना अधिक रुचता है। सुन्दर छवि का ध्यान करते हुए उसमें सूर्य के समान तेजस्विता, सर्वोपरि श्रेष्ठता, परम पवित्र निर्मलता और दिव्य सतोगुण की झाँकी करनी चाहिये। इस प्रकार गुण और रूप वाली ब्रह्म-शक्ति को अपने हृदय में स्थायी रूप से बस जाने की, अपने रोम-रोम में रम जाने की भावना करनी चाहिये।

संकल्प के तीसरे भाग का चिन्तन करते हुए ऐसा अनुभव करना चाहिये कि वह गायत्री ब्रह्म-शक्ति, हमारे हृदय में निवास करने वाली भावना तथा मस्तिष्क में रहने वाली बुद्धि को पकड़कर सात्त्विकता के, धर्म कर्त्तव्य के, सेवा के सत्पथ पर घसीटे लिये जा रही हैं। बुद्धि और भावना को इसी दिशा में चलाने का अभ्यास तथा प्रेम उत्पन्न कर रही है और वे तीनों बड़े आनन्द, उत्साह तथा सन्तोष का अनुभव करते हुए, माता गायत्री के साथ-साथ चल रही हैं।

गायत्री में दी हुई यह तीन भावनायें क्रमश: ज्ञान-योग, भक्ति-योग और कर्मयोग की प्रतीक हैं। इन्हीं तीन

भावनाओं का विस्तार होकर योग के ज्ञान, भक्ति और कर्म यह तीन आधार बने हैं । गायत्री का अर्थ चिन्तन, बीज रूप से अपनी अन्तरात्मा को तीनों योगों की त्रिवेणी में स्नान कराने के समान है ।

इस प्रकार चिन्तन करने से गायत्री मन्त्र का अर्थ भली प्रकार हृदयंगम हो जाता है और उसकी प्रत्येक भावना मन पर अपनी छाप जमा लेती है । जिससे यह परिणाम कुछ ही दिनों में दिखाई पड़ने लगता है कि मन कुविचारों और कुकर्मों की ओर से हट गया है और मनुष्योचित सद्‌विचारों एवं सत्कर्मों में उत्साहपूर्वक रस लेने लगा है । यह प्रवृत्ति, आरम्भ में चाहे कितनी ही मन्द क्यों न हो, यह निश्चित है कि यदि वह बनी रहे, बुझने न पाए, तो निश्चय ही आत्मा दिन-दिन समुन्नत होती जाती है और जीवन का परम लक्ष्य समीप खिसकता चला आता है ।

माता से वार्त्तालाप करने की साधना

साधना की दिव्य ज्योति जैसे-जैसे अधिक प्रकाशित होती चलती है, वैसे ही वैसे अन्तरात्मा की ग्राह्यशक्ति बढ़ती चलती है । रेडियो यंत्र के भीतर बल्ब लगे होते हैं, बिजली का संचार होने से वे जलने लगते हैं । प्रकाश होते ही यन्त्र की ध्वनि पकड़ने वाला भाग जाग्रत् हो जाता है और ईथर तत्त्व में भ्रमण करती हुई सूक्ष्म शब्द-तरंगों को पकड़ने लगता है, इसी क्रिया को रेडियो बजाना कहते हैं । साधना एक बिजली है, जिससे मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार के बल्ब दिव्य ज्योति से जगमगाने लगते हैं । इस प्रकार का सीधा प्रभाव अन्तरात्मा पर पड़ता है, जिससे उसकी सूक्ष्म चेतना जाग्रत् हो जाती है और दिव्य सन्देशों को, ईश्वरीय आदेशों को, प्रकृति के गुप्त रहस्यों को समझने की योग्यता उत्पन्न हो जाती है । इस प्रकार साधक का अन्त:करण रेडियो का उदाहरण बन जाता है और उसके द्वारा सूक्ष्म जगत् की बड़ी-बड़ी रहस्यमय बातों का प्रकटीकरण होने लगता है ।

दर्पण जितना ही स्वच्छ, निर्मल होगा; उतनी ही उसमें प्रतिच्छाया स्पष्ट दिखाई देगी । मैला दर्पण धुँधला होता है, उसमें चेहरा साफ दिखाई नहीं पड़ता । साधना से अन्तरात्मा निर्मल हो जाती है और उसमें दैवी तत्त्वों का, ईश्वरीय संकेतों का अनुभव स्पष्ट रूप से होता है । अँधेरे में क्या हो रहा है, यह जानना कठिन है, पर दीपक जला देने पर क्षण भर में अन्धकार में छिपी हुई सारी बातें प्रकट हो जाती हैं और पहले का रहस्य तब भली प्रकार प्रत्यक्ष हो जाता है ।

गायत्री-साधकों की मनोभूमि साफ हो जाती है, उनमें अनेक गुप्त बातों के रहस्य अपने आप स्पष्ट होने लगते हैं, इसी तथ्य को गायत्री दर्शन का वार्त्तालाप भी कह सकते हैं । साधना की परिपक्वावस्था में, स्वप्न में या जाग्रत् अवस्था में भगवती के दर्शन करने का दिव्य कानों को सौभाग्य प्राप्त होता है । किसी को प्रकाशमयी ज्योति के रूप में, किसी को अलौकिक देवी रूप में, किसी को सम्बन्धित किसी स्नेहमयी नारी के रूप में दर्शन होते हैं । कोई उसके सन्देश प्रत्यक्ष वार्त्तालाप जैसे प्राप्त करते हैं । किसी को किसी बहाने घुमा-फिराकर बात सुनाई या समझाई गई प्रतीत होती है । किन्हीं को आकाशवाणी की तरह स्पष्ट शब्दों में आदेश होता है । यह साधकों की विशेष मनोभूमि पर निर्भर है । हर एक को इस प्रकार के अनुभव नहीं हो सकते ।

परन्तु एक प्रकार से हर एक साधक माता के समीप पहुँच जाता है और उनसे अपनी आत्मिक स्थिति के अनुरूप स्पष्ट या अस्पष्ट उत्तर प्राप्त कर सकता है । एक तरीका यह है कि एकान्त स्थान में शान्त चित्त होकर आराम से शरीर को ढीला करके बैठें, चित्त को चिन्ता से रहित रखें, शरीर और वस्त्र शुद्ध हों, नेत्र बन्द करके प्रकाश, ज्योति या हंसवाहिनी के रूप में हृदय स्थान पर गायत्री शक्ति का ध्यान करें और मन-ही-मन अपने को भगवती के सन्मुख बार-बार दुहराएँ । यह ध्यान दस मिनट करने के उपरान्त तीन लम्बे श्वास इस प्रकार खींचें मानो अखिल वायु मण्डल में व्याप्त महाशक्ति श्वास द्वारा प्रवेश करके अन्त:करण के कण-कण में व्याप्त हो गयी है । अब ध्यान बन्द कर दीजिये । मन को सब प्रकार के विचारों से बिल्कुल शून्य कर दीजिये । अपनी ओर से कोई भी विचार न उठाएँ । मन और हृदय सर्वथा विचारशून्य हो जाना चाहिये ।

इस शून्यावस्था में स्तब्धता को भंग करती हुई अन्त:करण में स्फुरणा होती है, जिसमें अनायास ही कोई अचिन्त्य भाव उपज पड़ता है । यकायक कोई विचार अन्तरात्मा में इस प्रकार उद्‌भूत होता है मानो किसी अज्ञात शक्ति ने उत्तर सुझाया हो । पवित्र हृदय जब उपर्युक्त साधना द्वारा और भी अधिक दिव्य पवित्रता से परिपूर्ण हो

जाता है तो सूक्ष्म दैवी शक्ति जो व्यष्टि अन्तरात्मा और समष्टि परमात्मा में समान रूप से व्याप्त है, उस पवित्र हृदय-पटल पर अपना कार्य करना आरम्भ कर देती है और कई ऐसे प्रश्नों, संदेहों और शंकाओं का उत्तर मिल जाता है, जो पहले बहुत विवादास्पद, सन्देहयुक्त एवं रहस्यमय बने हुए थे। इस प्रक्रिया से भगवती वेदमाता गायत्री साधक से वार्त्तालाप करती हैं और उसकी जिज्ञासाओं का समाधान करती हैं। यह क्रम यदि व्यवस्थापूर्वक आगे बढ़ता रहे, तो आगे चलकर उस शरीर रहित दिव्य माता से उसी प्रकार वार्त्तालाप करना संभव हो सकता है, जैसा कि जन्म देने वाली तनधारी माता से बातें करना सम्भव और सुगम होता है।

माता से वार्त्तालाप का विषय अपनी निम्नकोटि की आवश्यकताओं के सम्बन्ध में नहीं होना चाहिये, विशेषत: आर्थिक प्रश्नों का लोभी न बनना चाहिये, क्योंकि ऐसे प्रश्नों के साथ-साथ मन में स्वार्थ, सांसारिकता आदि के अन्य अनेक मलिन भाव उठ जाते हैं और अन्त:करण की उस पवित्रता को नष्ट कर देते हैं, जो कि माता से बात करने के सम्बन्ध में आवश्यक हैं। चोरी में गयी वस्तु, जमीन में गढ़ा धन, तेजी-मन्दी, सट्टा, लाटरी, हार-जीत, आयु, सन्तान, स्त्री, मुकदमा, नौकरी, लाभ-हानि जैसे प्रश्नों को माध्यम बनाकर जो लोग उस दैवी शक्ति से वार्त्तालाप करना चाहते हैं, वे माता की दृष्टि में इस योग्य, ऐसे अधिकारी नहीं समझे जाते, जिनके साथ उसे वार्त्तालाप करना चाहिये। ऐसे अनधिकारी लोगों के प्रयत्न प्राय: असफल रहते हैं। उनकी मनोभूमि में प्राय: कोई दैवी सन्देश आते ही नहीं, यदि आते हैं तो वे माता के शब्द न होकर अन्य स्रोतों से उद्‌भूत हुए होते हैं। फलस्वरूप उनकी सहायता और विश्वस्तता सन्दिग्ध होती है।

वर्तमान समय में यह दोष लोगों में बहुत अधिक फैल गया है। इस अर्थ-युग में धन को इतना अधिक महत्त्व दे दिया गया है कि उसके सामने मनुष्य की आध्यात्मिक शक्तियाँ प्राय: कुण्ठित हो गयी हैं। ऐसे लोगों की दृष्टि में देवी-देवताओं की पूजा और ईश्वर की उपासना का मूल्य भी यही है, कि इनके द्वारा सांसारिक वैभव, सम्पत्ति की प्राप्ति हो। रुपये की मोहिनी-माया ने मनुष्यों की बुद्धि को इतना अधिक आच्छादित कर दिया है कि वे धन के लिये धर्म को बड़ी जल्दी त्यागने, बेचने को तैयार हो जाते हैं। ऐसे लोगों का यह आशा करना कि थोड़े बहुत-पूजा-पाठ, जप-कीर्तन या अन्य प्रकार के धार्मिक कर्मकाण्ड से उनको अलौकिक शक्ति का आभास मिलने लगेगा या वे आवश्यकता पड़ने पर दैवी सहायता पा सकेंगे, निरर्थक है। इस प्रकार की विशेष सुविधाओं और अनुग्रह के अधिकारी वे ही व्यक्ति हो सकते हैं, जो अपना दृष्टिकोण पर्याप्त ऊँचा रखें और केवल स्वार्थ पर ही नहीं परमार्थ की ओर भी सदैव ध्यान देते रहें।

माता से वार्त्तालाप आध्यात्मिक, धार्मिक, आत्म-कल्याणकारी, जनहितकारी, पारमार्थिक, लोकहित के प्रश्नों को लेकर करना चाहिये। कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य की गुत्थियों को, विवादास्पद विचारों, विश्वासों और मान्यताओं को लेकर यह वार्त्तालाप आरम्भ होना चाहिये।

इस प्रकार के वार्त्तालाप में अपने तथा दूसरे मनुष्यों के पूर्व- जन्मों, पूर्व सम्बन्धों के बारे में कई महत्त्वपूर्ण बातें प्रकाश में आती हैं। जीवन-निर्माण के सुझाव मिलते हैं तथा ऐसे संकेत मिलते हैं, जिनके अनुसार कार्य करने पर इसी जीवन में आशाजनक सफलतायें प्राप्त होती हैं। सद्‌गुणों का, सात्त्विकता का, मनोबल का, दूरदर्शिता का, बुद्धिमत्ता का तथा आन्तरिक शान्ति का उद्‌भव तो अवश्य ही होता है। इस प्रकार माता का वार्त्तालाप साधक के लिये सब प्रकार से कल्याणकारक ही सिद्ध होता है।

साधकों के स्वप्न निरर्थक नहीं होते

साधना से एक विशेष दिशा में मनोभूमि का निर्माण होता है। श्रद्धा, विश्वास तथा साधना विधि की कार्य-प्रणाली के अनुसार आंतरिक क्रियायें उसी दिशा में प्रवाहित होती हैं, जिससे मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार-चतुष्टय वैसा ही रूप धारण करने लगता है। भावनाओं के संस्कार अन्तर्मन में गहराई तक प्रवेश कर जाते हैं। गायत्री साधक की मानसिक गतिविधियों में आध्यात्मिकता एवं सात्त्विकता का प्रमुख स्थान बन जाता है। इसलिये जाग्रत् अवस्था की भाँति स्वप्नावस्था में भी उसकी क्रियाशीलता सारगर्भित ही होती है, उसे प्राय: सार्थक स्वप्न ही आते हैं।

गायत्री-साधकों को साधारण व्यक्तियों की तरह निरर्थक स्वप्न प्राय: बहुत कम आते हैं। उनकी मनोभूमि ऐसी अव्यवस्थित नहीं होती, जिसमें चाहे जिस प्रकार के उल्टे-सीधे स्वप्नों का उद्‌भव होता हो। जहाँ व्यवस्था स्थापित हो चुकी है, वहाँ की क्रियायें भी व्यवस्थित होती हैं। गायत्री-साधकों के स्वप्नों को हम बहुत समय से ध्यानपूर्वक सुनते रहे हैं और उनके मूल कारणों पर विचार करते रहे हैं। तदनुसार हमें इस निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ा है कि लोगों के स्वप्न निरर्थक बहुत कम होते हैं, उनमें सार्थकता की मात्रा अधिक रहती है।

निरर्थक स्वप्न अत्यन्त अपूर्ण होते हैं। उनमें केवल किसी बात की छोटी-सी झाँकी होती है, फिर तुरन्त उनका तारतम्य बिगड़ जाता है। दैनिक व्यवहार की साधारण क्रियाओं की सामान्य स्मृति मस्तिष्क में पुनः-पुनः जाग्रत् होती रहती है और भोजन, स्नान, वायु-सेवन जैसी साधारण बातों की दैनिक स्मृति के अस्त-व्यस्त स्वप्न दिखाई देते हैं। ऐसे स्वप्नों को निरर्थक कहा जाता है। सार्थक स्वप्न कुछ विशेषता लिये हुए होते हैं। उनमें कोई विचित्रता, नवीनता, घटनाक्रम एवं प्रभावोत्पादक क्षमता होती है। उन्हें देखकर मन में भय, शोक, चिन्ता, क्रोध, हर्ष, विषाद, लोभ- मोह आदि के भाव उत्पन्न होते हैं। निद्रा त्याग देने पर भी उसकी छाप मन पर बनी रहती है और चित्त में बार-बार यह जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि इस स्वप्न का अर्थ क्या है?

साधकों के सार्थक स्वप्नों को चार भागों में विभक्त किया जा सकता है—(१) पूर्व संचित कुसंस्कारों का निष्कासन, (२) श्रेष्ठ तत्त्वों की स्थापना का प्रकटीकरण, (३) भविष्य-सम्भावना का पूर्वाभास, (४) दिव्य-दर्शन। इन चार श्रेणियों के अन्तर्गत विविध प्रकार के सभी सार्थक स्वप्न आ जाते हैं।

(१) कुसंस्कारों का निष्कासन—

कुसंस्कारों को नष्ट करने वाले स्वप्न पूर्व संचित कुसंस्कारों के निष्कासन में इसलिये होते हैं कि गायत्री-साधना द्वारा आध्यात्मिक नये तत्त्वों की वृद्धि साधक के अन्तःकरण में हो जाती है। जहाँ तक वस्तु रखी जाती है, वहाँ से दूसरी को हटाना पड़ता है। गिलास में पानी भरा जाए, तो उसमें से पहले से भरी हुई वायु को हटाना पड़ेगा। रेल के डिब्बे में नये मुसाफिरों को स्थान मिलने के लिये यह आवश्यक है कि उसमें से बैठे हुए पुराने मुसाफिर उतरें। दिन का प्रकाश आने पर अन्धकार को भागना ही पड़ता है। इसी प्रकार गायत्री साधक के अन्तर्जगत् में जिन दिव्य तत्त्वों की वृद्धि होती है, उन सुसंस्कारों के लिये स्थान नियुक्त होने से पूर्व कुसंस्कारों का निष्कासन स्वाभाविक है। यह निष्कासन जाग्रत् अवस्था में भी होता रहता है और स्वप्न अवस्था में भी। विज्ञान के सिद्धान्तानुसार विस्फोट द्वारा उष्णवीर्य के पदार्थ जब स्थान- च्युत होते हैं, तो वे एक झटका मारते हैं। बन्दूक जब चलाई जाती है, तो पीछे की ओर एक जोरदार झटका मारती है। बारूद जब जलती है, तो एक धड़ाके की आवाज करती है। दीपक के बुझते समय एक बार जोर से लौ उठती है। इसी प्रकार कुसंस्कार भी मानस लोक से प्रयाण करते समय मस्तिष्कीय तन्तुओं पर आघात करते हैं और उन आघातों की प्रतिक्रिया स्वरूप जो विक्षोभ उत्पन्न होता है, उसे स्वप्नावस्था में भयंकर, अस्वाभाविक, अनिष्ट एवं उपद्रव के रूप में देखा जाता है।

भयानक-हिंसक पशु, सर्प, सिंह, व्याघ्र, पिशाच, चोर, डाकू आदि का आक्रमण होना, सुनसान, एकान्त, डरावना जंगल दिखाई देना, किसी प्रियजन की मृत्यु, अग्निकाण्ड, बाढ़, भूकम्प, युद्ध आदि के भयानक दृश्य दीखना, अपहरण, अन्याय, शोषण, विश्वासघात द्वारा अपना शिकार होना, कोई विपत्ति आना, अनिष्ट की आशंका से चित्त घबराना आदि भयंकर दिल धड़काने वाले ऐसे स्वप्न, जिनके कारण मन में चिन्ता, बेचैनी, पीड़ा, भय, क्रोध, द्वेष, शोक, कायरता, ग्लानि, घृणा आदि के भाव उत्पन्न होते हैं, वे पूर्व संचित इन्हीं कुसंस्कारों की अन्तिम झाँकी का प्रमाण होते हैं। यह स्वप्न बताते हैं कि जन्म-जन्मान्तरों की संचित यह कुप्रवृत्तियाँ अब अपना अन्तिम दर्शन और अभिवादन करती हुई जा रही हैं और मन ने स्वप्न में इस परिवर्तन को ध्यानपूर्वक देखने के साथ-साथ एक आलंकारिक कथा के रूप में किसी शृंखलाबद्ध घटना का चित्र गढ़ डाला है और उसे स्वप्न रूप में देखकर जी बहलाया है।

कामवासना अन्य सब मनोवृत्तियों से अधिक प्रबल है। काम भोग की अनियन्त्रित इच्छायें मन में उठती हैं, उन सबका सफल होना असभव है। इसलिये वे परिस्थितियों द्वारा कुचली जाती रहती हैं और मन मसोस कर

वे अतृप्त, असंतुष्ट प्रेमिका की भाँति अन्तर्मन के कोपभवन में खटपाटी लेकर पड़ी रहती हैं । यह अतृप्ति चुपचाप पड़ी नहीं रहती, वरन् जब अवसर पाती है निद्रावस्था में अपने मनसूबों को चरितार्थ करने के लिये, मन के लड्डू खाने के लिये मनचीते स्वप्न का अभिनय रचती है । दिन में घर के लोगों के जाग्रत् रहने के कारण चूहे डरते और बिलों में छिपे रहते हैं, पर रात्रि को जब घर के आदमी सो जाते हैं, तो चूहे अपने बिलों में से निकलकर निर्भयतापूर्वक उछल-कूद मचाते हैं । कुचली हुई काम-वासना भी यही करती है और "खयाली पुलाव" खाकर किसी प्रकार अपनी क्षुधा को बुझाती है । स्वप्नावस्था में सुन्दर-सुन्दर वस्तुओं का देखना, उनसे खेलना, प्यार करना, जमा करना, रूपवती स्त्रियों को देखना, उनकी निकटता में आना, मनोहर नदी, तड़ाग, वन, उपवन, पुष्प, फल, नृत्य, गीत, वाद्य, उत्सव, समारोह जैसे दृश्यों को देखकर कुचली हुई वासनायें किसी प्रकार अपने को तृप्त करती हैं । धन की, पद की, महत्त्व प्राप्ति की अतृप्त आकाँक्षायें भी अपनी तृप्ति के झूठे अभिनय रचा करती हैं । कभी-कभी ऐसा होता है कि अपनी अतृप्ति के दर्द को, घाव को, पीड़ा को स्पष्ट रूप में अनुभव करने के लिये ऐसे स्वप्न दिखाई देते हैं , मानों अतृप्ति भी बढ़ गयी । जो थोड़ा-बहुत सुख था, वह भी हाथ से चला गया अथवा मनोवांछा पूरी होते-होते किसी आकस्मिक बाधा के कारण रुक गयी ।

अतृप्तियों को किसी अंश में या किसी अन्य प्रकार से तृप्त करने के एवं अतृप्ति को और भी उग्र रूप से अनुभव करने के लिये उपर्युक्त प्रकार के स्वप्न आया करते हैं । यह दबी हुई वृत्तियाँ गायत्री की साधना के कारण उखड़कर अपना स्थान खाली करती हैं । इसलिये परिवर्तन काल में वे अपने गुप्त रूप को प्रकट करती हुई विदा होती हैं । तदनुसार साधना काल में प्रायः इस प्रकार के स्वप्न आते रहते हैं । किसी मृत प्रेमी का दर्शन, सुन्दर दृश्यों का अवलोकन, स्त्रियों से मिलना-जुलना, मनोवांछाओं का पूरा होना आदि घटनाओं के स्वप्न भी विशेष रूप से दिखाई देते हैं । इनका अर्थ है कि अनेकों दबी हुई अतृप्त तृष्णायें , कामनाएँ, वासनाएँ धीरे-धीरे करके अपनी विदाई की तैयारी कर रही हैं । आत्मिक तत्त्वों की वृद्धि के कारण ऐसा होना स्वाभाविक भी है ।

(२) दिव्य तत्त्वों के वृद्धि सूचक स्वप्न—

दूसरी श्रेणी के स्वप्न वे होते हैं, जिनसे इस बात का पता चलता है कि अपने अन्दर सात्त्विकता की मात्रा में लगातार अभिवृद्धि हो रही है । सतोगुणी कार्यों को स्वयं करने या किसी अन्य के द्वारा होते हुए, स्वप्न ऐसा ही परिचय देते हैं । पीड़ितों की सेवा, अभावग्रस्तों की सहायता, दान, जप, यज्ञ, उपासना, तीर्थ, मन्दिर, पूजा, धार्मिक कर्मकाण्ड, कथा, कीर्तन, प्रवचन, उपदेश, माता, पिता, साधु, महात्मा, नेता, विद्वान्, सज्जनों की समीपता, स्वाध्याय, अध्ययन, आकाशवाणी, देवी-देवताओं के दर्शन, दिव्य प्रकाश आदि आध्यात्मिक सतोगुणी, शुभ स्वप्नों से अपने आप अन्दर आये हुए शुभ तत्त्वों को देखता है और उन दृश्यों से शान्ति लाभ प्राप्त करता है ।

(३) भविष्य का आभास एवं दैवी सन्देश का स्वप्न—

तीसरे प्रकार के स्वप्न भविष्य में होने वाली किन्हीं घटनाओं की ओर संकेत करते हैं । प्रातःकाल सूर्योदय से एक-दो घण्टे पूर्व देखे हुए स्वप्न में सच्चाई का बहुत अंश होता है । ब्राह्म मुहूर्त में एक तो साधक का मस्तिष्क निर्मल होता है, दूसरे प्रकृति के अन्तराल का कोलाहल भी रात्रि की स्तब्धता के कारण बहुत अंशों में शान्त हो जाता है । उस समय सत् तत्त्व की प्रधानता के कारण वातावरण स्वच्छ रहता है और सूक्ष्म जगत् में विचरण करते हुए भविष्य का, भावी विधानों का, बहुत कुछ आभास मिलने लगता है ।

कभी-कभी अस्पष्ट और उलझे हुए ऐसे दृश्य दिखाई देते हैं, जिनसे मालूम होता है कि भविष्य में होने वाले किसी लाभ या हानि के संकेत हैं, पर स्पष्ट रूप से यह विदित नहीं हो पाता कि इनका वास्तविक तात्पर्य क्या है ? ऐसे उलझन भरे स्वप्नों के कारण होते हैं (१) भविष्य का विधान प्रारब्ध कर्मों से बनता है, पर वर्तमान कर्मों से उस विधान में हेर-फेर हो सकता है । कोई पूर्व निर्धारित विधि का विधान साधक के वर्तमान कर्मों के कारण कुछ परिवर्तित हो जाता है, तो उसका निश्चित और स्पष्ट रूप दिखाकर अनिश्चित और अस्पष्ट हो जाता है, तदनुसार स्वप्न में उलझी हुई बात दिखाई पड़ती है (२) कुछ भावी विधान ऐसे हैं , जो नये कर्मों के नई परिस्थिति के अनुसार बनते और परिवर्तित होते रहते हैं । तेजी, मन्दी, सट्टा, लाटरी आदि के बारे में जब तक भविष्य का भ्रूण ही तैयार

हो पाता है, पूर्ण रूप से उसकी स्पष्टता नहीं हो पाती, तब तक उसका पूर्वाभास साधक को स्वप्न में मिले, तो वह एकांगी एवं अपूर्ण होता है, (३) अपनेपन की सीमा जितने क्षेत्र में होती है, वह व्यक्ति के 'अहम्' के सीमा क्षेत्र तक अपने को दिखाई पड़ सकते हैं, इसलिये ऐसा भी हो जाता है कि जो सन्देश स्वप्न में मिला है, वह अपनेपन की मर्यादा में आने वाले किसी कुटुम्बी, पड़ोसी, रिश्तेदार या मित्र के लिये हो, (४) साधक की मनोभूमि पूर्णरूप से निर्मल न हो गयी हो, तो आकाश के सूक्ष्म अन्तराल में बहते हुए तथ्य अधूरे या रूपान्तरित होकर दिखाई पड़ते हैं, जैसे कोई व्यक्ति अपने घर से हमसे मिलने के लिये रवाना हो चुका हो, तो उस व्यक्ति के स्थान पर किसी अन्य व्यक्ति के आने का आभास मिले। होता यह है कि साधक की दिव्य दृष्टि धुँधली होती है। जैसे दृष्टिदोष होने पर दूर चलने वाले मनुष्य पुतले से दिखाई पड़ते हैं, पर उनकी शक्ल नहीं पहचानी जाती है। जब धुँधले, स्पष्ट आभास के ऊपर हमारी स्वप्न माया एक कल्पित आवरण चढ़ा कर कोई झूठ-मूठ की आकृति जोड़ देती है और रस्सी को सर्प बना देती है। ऐसे स्वप्न आधे असत्य होते हैं, परन्तु जैसे-जैसे साधक की मनोभूमि अधिक निर्मल होती जाती है, वैसे ही वैसे, उसकी दिव्य दृष्टि स्वच्छ होती जाती है और उसके स्वप्न अधिक सार्थकता युक्त होने लगते हैं।

(४) जाग्रत् स्वप्न या दिव्य दर्शन—

स्वप्न केवल रात्रि में या निद्राग्रस्त होने पर ही नहीं आते। वे जाग्रत् अवस्था में भी आते हैं। ध्यान को एक प्रकार का जाग्रत् स्वप्न ही समझना चाहिये। कल्पना के घोड़े पर चढ़कर हम सुदूर स्थानों के विविध-विधि सम्भव और असम्भव दृश्य देखा करते हैं, यह एक प्रकार के स्वप्न ही हैं। निद्राग्रस्त स्वप्नों में क्रियायें प्रधान होती हैं, जाग्रत् स्वप्नों में बहिर्मन की क्रियायें प्रमुख रूप से काम करती हैं। इतना अन्तर तो अवश्य है पर इसके अतिरिक्त निद्रा स्वप्न और जाग्रत् स्वप्नों की एक-सी प्रणाली है। जाग्रत् अवस्था में साधक के मनोलोक में नाना प्रकार की विचारधारायें और कल्पनायें घुड़दौड़ मचाती हैं। यह भी तीन प्रकार की होती हैं- पूर्व कुसंस्कारों के निष्कासन, श्रेष्ठ तत्त्वों के प्रकटीकरण तथा भविष्य के पूर्वाभास की सूचना देने के लिये मस्तिष्क में विविध प्रकार के विचार, भाव एवं कल्पना चित्र आते हैं।

कभी-कभी जाग्रत् अवस्था में भी कोई चमत्कारी, दैवी, अलौकिक दृश्य किसी-किसी को दिखाई दे जाते हैं। इष्टदेव का किसी-किसी को चर्म-चक्षुओं से दर्शन होता है, कोई-कोई भूत-प्रेतों को प्रत्यक्ष देखते हैं, किन्हीं-किन्हीं को दूसरों के चेहरे पर तेजोवलय और मनोगत भावों का आकार दिखाई देता है, जिसके आधार पर वह दूसरों की आन्तरिक स्थिति को पहचान लेते हैं। रोगी का अच्छा होना न होना, संघर्ष में जीतना, चोरी में गयी वस्तु, आगामी लाभ-हानि, विपत्ति-सम्पत्ति आदि के बारे में कई मनुष्यों के अन्तःकरण में एक प्रकार की आकाशवाणी-सी होती है और वह कई बार इतनी सच्ची निकलती है कि आश्चर्य से दंग रह जाना पड़ता है।

सफलता के लक्षण

गायत्री साधना से साधक में एक सूक्ष्म दैवी चेतना का आविर्भाव होता है। प्रत्यक्ष रूप से उसके शरीर या आकृति में कोई विशेष अन्तर नहीं आता, पर भीतर ही भीतर भारी हेर-फेर हो जाता है। आध्यात्मिक तत्त्वों की वृद्धि से प्राणमय कोष, विज्ञानमय कोष और मनोमय कोष में जो परिवर्तन होता है, उसकी छाया अन्नमय कोष में बिल्कुल ही दृष्टिगोचर न हो ऐसा नहीं हो सकता। यह सच है कि शरीर का ढाँचा आसानी से नहीं बदलता, पर यह भी सच है कि आंतरिक हेर-फेर के चिह्न शरीर में प्रकट हुए बिना नहीं रह सकते।

सर्प के मांस कोष में जब एक नई त्वचा तैयार होती है, तो उसका लक्षण सर्प के शरीर में परिलक्षित होता है। उसकी देह भारी हो जाती है, तेजी से वह नहीं दौड़ता, स्फूर्ति और उत्साह से वह वंचित हो जाता है, एक स्थान पर पड़ा रहता है। जब वह चमड़ी पक जाती है, तो सर्प बाहरी त्वचा को बदल देता है, इसे केंचुली बदलना कहते हैं। केंचुली छोड़ने के बाद सर्प में एक नया उत्साह आता है, उसकी चेष्टायें बदल जाती हैं, उसकी नई चमड़ी पर चिकनाई, चमक और कोमलता स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। ऐसा ही हेर-फेर साधक में होता है। जब उसकी साधना गर्भ में पकती है, तो उसे कुछ उदासी, भारीपन, अनुत्साह एवं शिथिलता के लक्षण प्रतीत होते हैं,

पर जब साधना पूर्ण हो जाती है, तो दूसरे ही लक्षण प्रकट होने लगते हैं। माता के उदर में जब तक गर्भ पकता है, तब तक माता का शरीर भारी, गिरा-गिरा-सा रहता है, उसमें अनुत्साह रहता है, पर जब प्रसूति से निवृत्ति हो जाती है, तो वह अपने में एक हल्कापन, उत्साह एवं चैतन्यता अनुभव करती है।

साधक जब साधना करने बैठता है, तो अपने अन्दर एक प्रकार का आध्यात्मिक गर्भ धारण करता है। तन्त्र शास्त्रों में साधना को मैथुन कहा है। जैसे मैथुन को गुप्त रखा जाता है, वैसे ही साधना को गुप्त रखने का आदेश किया गया है। आत्मा जब परमात्मा से लिपटती है, आलिंगन करती है, तो उसे एक अनिर्वचनीय आनन्द आता है, इसे भक्ति की तन्मयता कहते हैं। जब दोनों का प्रगाढ़ मिलन होता है, एक-दूसरे में आत्मसात् होते हैं, तो उस स्खलन को 'समाधि' कहा जाता है। आध्यात्मिक मैथुन का समाधि-सुख अन्तिम स्खलन है। गायत्री उपनिषद् और सावित्री उपनिषद् में अनेक मैथुनों का वर्णन किया गया है। यहाँ बताया गया है कि सविता और सावित्री का मिथुन है। सावित्री-गायत्री की आराधना करने से साधक अपनी आत्मा को एक योनि बना लेता है, जिसमें सविता का तेजपुंज, परमात्मा का तेज वीर्य गिरता है। इसे शक्तिपात भी कहा गया है। इस शक्तिपात विज्ञान के अनुसार अमैथुनी सृष्टि उत्पन्न हो सकती है। कुन्ती से कर्ण का, मरियम के पेट से ईसा का उत्पन्न होना असंभव नहीं है। देव शक्तियों की उत्पत्ति इसी प्रकार के सूक्ष्म मैथुनों से होती है, समुद्र मन्थन एक मैथुन था, जिसके फलस्वरूप चौदह रत्नों का प्रसव हुआ। ऋण और धन (निगेटिव और पोजेटिव) परमाणुओं के आलिंगन से विद्युत् प्रवाह का रस उत्पन्न होता है। तन्त्र शास्त्रों में स्थान-स्थान पर मैथुन को प्रशंसित किया गया है, वह यही साधना मैथुन है।

साधना का अर्थ है- अपने भीतर की श्रद्धा तथा विश्वास की शक्तियों का सम्मिलन कराके एक नई शक्ति का आविर्भाव करना, जिसे सिद्धि, दैवी वरदान या चमत्कार भी कहा जा सकता है। इस प्रकार के उद्देश्य की प्राप्ति के लिये अपने पास कुछ साधन पहले भी होने आवश्यक हैं। जैसे किसी गन्तव्य स्थान को कोई व्यक्ति किसी भी मार्ग से जाए, रास्ते में खर्च के लिये रुपया, पैसा, खाने-पीने, वस्त्रादि की आवश्यकता पड़ती है, वैसे ही किसी दैवी शक्ति की साधना करने के लिये सद्गुणों, सद्विचारों और सत्कर्मों की आवश्यकता होती है। जिसका जीवन आरम्भ से ही कलुषित-पापपूर्ण और दूषित रहा है, उसकी साधना का सम्पन्न होना असम्भव-सा ही है। इसलिये जो व्यक्ति सच्चे मन से साधना के इच्छुक हैं और उससे कोई उच्च लक्ष्य प्राप्त करना चाहते हैं, तो उनको पहले अपने मन, वचन, काया की शुद्धि का भी प्रयत्न करना चाहिये। ऐसा करने पर ही किसी प्रकार की सिद्धि की आशा कर सकते हैं।

आत्मा और परमात्मा का, सविता और सावित्री का मैथुन जब प्रगाढ़ आलिंगन में आबद्ध होता है, तो उसके फलस्वरूप एक आध्यात्मिक गर्भ धारण होता है। इसी गर्भ को आध्यात्मिक भाषा में भर्ग कहते हैं। भर्ग को जो साधक जितने अंशों में धारण करता है, उसे उतना ही स्थान अपने अन्दर इस नये तत्त्व के लिये देना होता है। नये तत्त्वों की स्थापना के लिये पुराने तत्त्वों को पदच्युत होना पड़ता है, इस संक्रान्ति के कारण स्वाभाविक क्रिया-विधि में अन्तर आ जाता है और उस अन्तर के लक्षण साधक में उसी प्रकार प्रकट होने लगते हैं, जैसे गर्भवती स्त्री को अरुचि, उबकाई, कोष्ठबद्धता, आलस्य आदि लक्षण होते हैं, वैसे ही लक्षण साधक को भी उस समय तक जब तक कि उसकी अन्त:योनि में गर्भ पकता रहता है, परिलक्षित होते हैं। केंचुली में भरे हुए सर्प की तरह वह भी अपने को भारी-भारी, बिंधा हुआ, जकड़ा हुआ, अवसादग्रस्त अनुभव करता है। आत्म-विद्या के आचार्य जानते हैं कि साधनावस्था में साधक को कैसी विषम स्थिति में रहना पड़ता है। इसलिये वे अनुयायियों को साधनाकाल में बड़े आचार-विचार के साथ रहने का आदेश करते हैं। रजस्वला या गर्भवती स्त्रियों से मिलता-जुलता आहार-विहार साधकों को अपनाना होता है, तभी वे साधना संक्रान्ति को ठीक प्रकार से पार कर पाते हैं।

मनुष्य कोई भी महत्त्वपूर्ण कार्य करना चाहे, उसमें किसी न किसी प्रकार की विघ्न-बाधायें, भय-प्रलोभन आते ही हैं, किन्तु जो लोग उनका सफलतापूर्वक सामना कर सकते हैं, वे ही सफलता के द्वार पर पहुँचते हैं।

आहार दोष, आलस्य, अधैर्य, असंयम, घृणा, द्वेष, विलासिता, कुसंग, अभिमान आदि के कारण भी साधक अपने मार्ग से भटक जाता है। भ्रष्टाचार, चोरी की कमाई, दूसरे के अधिकार का अपहरण, घोर स्वार्थपरता आदि जैसे दोषों का आजकल बाहुल्य है। वे भी मनुष्य को किसी प्रकार की दैवी सफलता के अयोग्य बना देते हैं। इसलिये जो व्यक्ति वास्तव में साधना को पूर्ण करके सफलता और सिद्धि की आकांक्षा रखते हैं, उनको उसके लिये सब प्रकार के त्याग, बलिदान, कष्ट-सहन आदि के लिये सहर्ष प्रस्तुत रहना चाहिये, जिससे साधना परिपक्व होकर इच्छित फल प्रदान करेगी।

अण्डे से बच्चा निकलता है, गर्भ से सन्तान पैदा होती है, साधक को भी साधना के फलस्वरूप एक सन्तान मिलती है, जिसे शक्ति या सिद्धि कहते हैं। मुक्ति, समाधि, ब्राह्मी स्थिति, तुरीयावस्था आदि नाम भी इसी के हैं। यह सन्तान आरम्भ में बड़ी निर्बल तथा लघु आकार की होती है। जैसे अण्डे से निकलने पर बच्चे बड़े ही लुञ्ज-पुञ्ज होते हैं, जैसे माता के गर्भ से उत्पन्न हुए बालक बड़े ही कोमल होते हैं, वैसे ही साधना पूर्ण होने पर प्रसव हुई नवजात सिद्धि भी बड़ी कोमल होती है। बुद्धिमान् साधक उसे उसी प्रकार पाल-पोस कर बड़ा करते हैं, जैसे कुशल मातायें अपनी सन्तान को अनिष्टों से बचाती हुई पौष्टिक पोषण देकर पालती हैं।

साधना जब तक साधक के गर्भ में पकती रहती है, कच्ची रहती है, तब तक उसके शरीर में आलस्य और अवसाद के चिह्न रहते हैं, स्वास्थ्य गिरा हुआ और चेहरा उतरा हुआ दिखाई देता है, पर जब साधना पक जाती है और सिद्धि की सुकोमल सन्तति का प्रसव होता है, तो साधक में तेज, ओज, हल्कापन, चैतन्य, उत्साह आ जाता है, वैसा ही जैसा कि केंचुली बदलने के बाद सर्प में आता है। सिद्धि का प्रसव हुआ या नहीं, इसकी परीक्षा इन लक्षणों से हो सकती है। यह दस लक्षण नीचे दिये जाते हैं—

१—शरीर में हल्कापन और मन में उत्साह होता है।

२—शरीर में से एक विशेष प्रकार की सुगन्ध आने लगती है।

३—त्वचा पर चिकनाई और कोमलता का अंश बढ़ जाता है।

४—तामसिक आहार-विहार से घृणा बढ़ जाती है और सात्त्विक दिशा में मन लगने लगता है।

५—स्वार्थ का कम और परमार्थ का अधिक ध्यान रहता है।

६—नेत्रों में तेज झलकने लगता है।

७—किसी व्यक्ति या कार्य के विषय में वह जरा भी विचार करता है, तो उसके सम्बन्ध में बहुत-सी ऐसी बातें स्वयमेव प्रतिभासित होती हैं, जो परीक्षा करने पर ठीक निकलती हैं।

८—दूसरों के मन के भाव जान लेने में देर नहीं लगती।

९—भविष्य में घटित होने वाली बातों का पूर्वाभास मिलने लगता है।

१०—शाप या आशीर्वाद सफल होने लगते हैं। अपनी गुप्त शक्तियों से वह दूसरों का बहुत कुछ लाभ या बुरा कर सकता है।

यह दस लक्षण इस बात के प्रमाण हैं कि साधक का गर्भ पक गया और सिद्धि का प्रसव हो चुका है। इस शक्ति - सन्तति को जो साधक सावधानी के साथ पालते - पोषते हैं, उसे पुष्ट करते हैं, वे भविष्य में आज्ञाकारी सन्तान वाले बुजुर्ग की तरह आनन्दमय परिणामों का उपभोग करते हैं। किन्तु जो फूहड़ जन्मते ही सिद्धि का दुरुपयोग करते हैं, अपनी स्वल्प शक्ति का विचार न करते हुए उस पर अधिक भार डालते हैं, उनकी गोदी खाली हो जाती है और मृतवत्सा माता की तरह उन्हें पश्चात्ताप करना पड़ता है।

सिद्धियों का दुरुपयोग न होना चाहिये

गायत्री-साधना करने वालों को अनेक प्रकार की अलौकिक शक्तियों के आभास होते हैं। कारण यह है कि यह एक श्रेष्ठ साधना है। जो लाभ अन्य साधनाओं से होते हैं, जो सिद्धियाँ किसी अन्य योग से मिल सकती हैं, वे सभी गायत्री साधना से मिल सकती हैं। जब थोड़े दिनों श्रद्धा, विश्वास और विनयपूर्वक उपासना चलती है, तो आत्म-ाक्ति की मात्रा दिन-दिन बढ़ती रहती है। आत्म-तेज प्रकाशित होने लगता है। अन्तःकरण पर चढ़े हुए

मैल छूटने लगते हैं। आन्तरिक निर्मलता की अभिवृद्धि होती है। फलस्वरूप आत्मा की मन्दज्योति अपने असली रूप में प्रकट होने लगती है।

अंगार के ऊपर जब राख का मोटा परत जम जाता है, तो वह दाहक शक्ति से रहित हो जाता है। उसे छूने से कोई विशेष अनुभव नहीं होता, पर जब उस अंगार पर से राख का पर्दा हटा दिया जाता है, तो धधकती हुई अग्नि प्रज्वलित हो जाती है। यही बात आत्मा के सम्बन्ध में है। आमतौर से मनुष्य मायाग्रस्त होते हैं, भौतिक जीवन की बहिर्मुखी वृत्तियों में उलझे रहते हैं। यह एक प्रकार से भस्म का पर्दा है, जिसके कारण आत्मतेज की उष्णता एवं रोशनी की झाँकी नहीं हो पाती, जब मनुष्य अपने को अन्तर्मुखी बनाता है, आत्मा की झाँकी करता है, साधना द्वारा अपने कषाय-कल्मषों को हटाकर निर्मलता प्राप्त करता है, तो आत्म दर्शन की स्थिति प्राप्त होती है।

आत्मा, परमात्मा का अंश है। उसमें वे सब तत्त्व, गुण एवं बल मौजूद हैं, जो परमात्मा में होते हैं। अग्नि के सब गुण चिन्गारी में उपस्थित हैं, यदि चिन्गारी को अवसर मिले, तो वह दावानल का कार्य कर सकती है। आत्मा के ऊपर चढ़े हुए मलों का यदि निवारण हो जाए, तो वही परमात्मा का प्रत्यक्ष प्रतिबिम्ब दिखाई देगा और उसमें वे सब शक्तियाँ परिलक्षित होंगी, जो परमात्मा के अंश में होनी चाहिये।

अष्ट सिद्धियाँ, नौ निधियाँ प्रसिद्ध हैं। उनके अतिरिक्त भी अगणित छोटी-बड़ी ऋद्धि-सिद्धियाँ होती हैं। वे साधना का परिपाक होने के साथ-साथ उठती, प्रकट होतीं और बढ़ती हैं। किसी विशेष सिद्धि की प्राप्ति के लिये चाहे भले ही प्रयत्न न किया जाए, पर युवावस्था आने पर जैसे यौवन के चिह्न अपने आप प्रस्फुटित हो जाते हैं, उसी प्रकार साधना के परिपाक के साथ-साथ सिद्धियाँ अपने आप आती-जाती हैं। गायत्री का साधक धीरे-धीरे सिद्धावस्था की ओर अग्रसर होता जाता है। उसमें अनेक अलौकिक शक्तियाँ दिखाई पड़ती हैं। देखा गया है कि जो लोग श्रद्धा और निष्ठापूर्वक गायत्री साधना में दीर्घकाल तक तल्लीन रहे हैं, उनमें ये विशेषतायें स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती हैं—

(१) उनका व्यक्तित्व आकर्षक, नेत्रों में चमक, वाणी में बल, चेहरे पर प्रतिभा, गम्भीरता तथा स्थिरता होती है, जिससे दूसरों पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। जो व्यक्ति उनके सम्पर्क में आ जाते हैं, वे उनसे काफी प्रभावित हो जाते हैं तथा उनकी इच्छानुसार आचरण करते हैं।

(२) साधक को अपने अन्दर एक दैवी तेज की उपस्थिति प्रतीत होती है। वह अनुभव करता है कि उसके अन्तःकरण में कोई नई शक्ति काम कर रही है।

(३) बुरे कामों से उसकी रुचि हटती जाती है और भले कामों में मन लगता है। कोई बुराई बन पड़ती है, तो उसके लिये बड़ा खेद और पश्चात्ताप होता है। सुख के समय वैभव में अधिक आनन्द न होना और दुःख, कठिनाई तथा आपत्ति में धैर्य खोकर किंकर्त्तव्यविमूढ़ न होना उनकी विशेषता होती है।

(४) भविष्य में जो घटनायें घटित होने वाली हैं, उनका उनके मन में पहले से ही आभास आने लगता है। आरम्भ में तो कुछ हल्का-सा ही अन्दाज होता है, पर धीरे-धीरे उसे भविष्य का ज्ञान बिल्कुल सही होने लगता है।

(५) उसके शाप और आशीर्वाद सफल होते हैं। यदि वह अन्तरात्मा से दुःखी होकर किसी को शाप देता है, तो उस व्यक्ति पर भारी विपत्तियाँ आती हैं और प्रसन्न होकर जिसे वह सच्चे अन्तःकरण से आशीर्वाद देता है, उसका मंगल होता है। उसके आशीर्वाद विफल नहीं होते।

(६) वह दूसरों के मनोभावों को देखते ही पहचान लेता है, कोई व्यक्ति कितना ही छिपावे, उसके सामने यह भाव छिपते नहीं। वह किसी के भी गुण, दोषों, विचारों तथा आचरणों को पारदर्शी की तरह सूक्ष्म दृष्टि से देख सकता है।

(७) वह अपने विचारों को दूसरे के हृदय में प्रवेश करा सकता है। दूर रहने वाले मनुष्यों तक बिना तार या पत्र की सहायता के अपने सन्देश पहुँचा सकता है।

(८) जहाँ वह रहता है, उसके आस-पास का वातावरण बड़ा शान्त एवं सात्त्विक रहता है। उसके पास बैठने

वालों को जब तक वे समीप रहते हैं, अपने अन्दर अद्‌भुत शान्ति, सात्त्विकता तथा पवित्रता अनुभव होती है।

(९) वह अपनी तपस्या, आयु या शक्ति का एक भाग किसी को दे सकता है और उसके द्वारा दूसरा व्यक्ति बिना प्रयास या स्वल्प प्रयास में ही अधिक लाभान्वित हो सकता है। ऐसे व्यक्ति दूसरों पर 'शक्तिपात' कर सकते हैं।

(१०) उसे स्वप्न में, जाग्रत् अवस्था में, ध्यानावस्था में रंग-बिरंगे प्रकाश पुञ्ज, दिव्य ध्वनियाँ, दिव्य प्रकाश एवं दिव्य वाणियाँ सुनाई पड़ती हैं। कोई अलौकिक शक्ति उसके साथ बार-बार छेड़खानी, खिलवाड़ करती हुई-सी दिखाई पड़ती है। उसे अनेकों प्रकार के ऐसे दिव्य अनुभव होते हैं, जो बिना अलौकिक शक्ति के प्रभाव के साधारणत: नहीं होते।

यह चिह्न तो प्रत्यक्ष प्रकट होते हैं। अप्रत्यक्ष रूप से अणिमा, लघिमा, महिमा आदि योग शास्त्रों में वर्णित अन्य सिद्धियों का भी आभास मिलता है। वह कभी-कभी ऐसे कार्य कर सकने में सफल होता है, जो बड़े ही अद्‌भुत, अलौकिक और आश्चर्यजनक होते हैं।

जिस समय सिद्धियों का उत्पादन एवं विकास हो रहा हो, वह समय बड़ा ही नाजुक एवं बड़ी ही सावधानी का है। जब किशोर अवस्था का अन्त एवं नवयौवन का प्रारम्भ होता है, उस समय वीर्य का शरीर में नवीन उद्‌भव होता है। इस उद्‌भवकाल में मन बड़ा उत्साहित, काम-क्रीड़ा का इच्छुक एवं चंचल रहता है। यदि इस मनोदशा पर नियन्त्रण न किया जाए, तो कच्चे वीर्य का अपव्यय होने लगता है, नवयुवक थोड़े ही समय में शक्तिहीन, वीर्यहीन, यौवनहीन होकर सदा के लिये निकम्मा बन जाता है, साधना में भी सिद्धि का प्रारम्भ ऐसी ही अवस्था है, जबकि साधक अपने अन्दर एक नवीन आत्मिक चेतना अनुभव करता है और उत्साहित होकर प्रदर्शन द्वारा दूसरों पर अपनी महत्ता की छाप बिठाना चाहता है। यह क्रम यदि चल पड़े तो वह कच्चा वीर्य प्रारम्भिक सिद्धि तत्त्व स्वल्प काल में ही अपव्यय होकर समाप्त हो जाता है और साधक को सदा के लिये छूँछ एवं निकम्मा हो जाना पड़ता है।

संसार में जो कार्यक्रम चल रहा है, वह कर्मफल के आधार पर चल रहा है। ईश्वरीय सुनिश्चित नियमों के आधार पर कर्म-बन्धन में बँधे हुए प्राणी अपना-अपना जीवन चलाते हैं। प्राणियों की सेवा का सच्चा मार्ग यह है कि उन्हें सत्कर्म में प्रवृत्त किया जाए, आपत्तियों को सहने का साहस दिया जाए, यह आत्मिक सहायता हुई। तात्कालिक कठिनाई का हल करने वाली भौतिक सहायता देनी चाहिये। आत्म-शक्ति खर्च करके कर्त्तव्यहीन व्यक्तियों को सम्पन्न बनाया जाए, तो वह उनको और अधिक निकम्मा बनाना होगा, इसलिये दूसरों को सेवा के लिये सद्‌गुण और विवेक दान देना ही श्रेष्ठ है। दान देना हो तो धन आदि जो हो, उसका दान करना चाहिये। दूसरों का वैभव बढ़ाने में आत्म-शक्ति का सीधा प्रत्यावर्तन करना, अपनी शक्तियों को समाप्त करना है। दूसरों को आश्चर्य में डालने या उन पर अपनी अलौकिक सिद्धि प्रकट करने जैसी तुच्छ बातों में कष्टसाध्य आत्मबल को व्यय करना ऐसा ही है, जैसे कोई मूर्ख होली खेलने का कौतुक करने के लिये अपना रक्त निकालकर उसे उलीचे, यह मूर्खता की हद है। जो अध्यात्मवादी दूरदर्शी होते हैं, वे सांसारिक मान-बड़ाई की रत्ती भर परवाह नहीं करते।

पर आजकल समाज में इसके विपरीत धारा ही बहती दिखाई पड़ती है। लोगों ने ईश्वर-उपासना, पूजा-पाठ, जप-तप को भी सांसारिक प्रलोभनों का साधन बना लिया है। वे जुआ, लाटरी आदि में सफलता प्राप्त करने के लिये भजन, जप करते हैं और देवताओं की मनौती करते हैं, उन्हें प्रसाद चढ़ाते हैं। उनका उद्देश्य किसी प्रकार धन प्राप्त करना होता है, चाहे वह चोरी-ठगी से और चाहे जप-तप भजन से। ऐसे लोगों को प्रथम तो उपासना जनित शक्ति ही प्राप्त नहीं होती और यदि किसी कारणवश थोड़ी-बहुत सफलता प्राप्त हो गयी, तो वह उससे ही ऐसे फूल जाते हैं और तरह-तरह के अनुचित कार्यों में उसका इस प्रकार अपव्यय करने लगते हैं कि जो कुछ कमाई होती है, वह शीघ्र ही नष्ट हो जाती है और आगे के लिये रास्ता बन्द हो जाता है। दैवी शक्तियाँ कभी किसी अयोग्य व्यक्ति को ऐसी सामर्थ्य प्रदान नहीं कर सकतीं, जिससे वह दूसरों का अनिष्ट करने लग जाए।

तान्त्रिक पद्धति से किसी का मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण करना, किसी के गुप्त आचरणों या मनोभावों

को जानकर उनको प्रकट कर देना और उसकी प्रतिष्ठा को घटाना आदि कार्य आध्यात्मिक साधकों के लिये सर्वथा निषिद्ध हैं। कोई ऐसा अद्भुत कार्य करके दिखाना जिससे लोग यह समझ लें कि यह सिद्ध पुरुष है, गायत्री-उपासकों के लिये कड़ाई के साथ वर्जित है। यदि वे इस चक्कर में पड़े, तो निश्चित रूप से कुछ ही दिनों में उनकी शक्ति का स्रोत सूख जाएगा और छूँछ बनकर अपनी कष्टसाध्य आध्यात्मिक कमाई से हाथ धो बैठेंगे। उसके लिये संसार का सद्ज्ञान दान कार्य ही इतना बड़ा एवं महत्त्वपूर्ण है कि उसी के द्वारा वे जनसाधारण के आन्तरिक, बाह्य और सामाजिक कष्टों को भली प्रकार दूर कर सकते हैं और स्वल्प साधनों से ही स्वर्गीय सुखों का आस्वादन कराते हुए लोगों के जीवन सफल बना सकते हैं। इस दिशा में कार्य करने से उनकी आध्यात्मिक शक्ति बढ़ती है। इसके प्रतिकूल यदि वे चमत्कारों के 'प्रदर्शन' के चक्कर में पड़ेंगे, तो लोगों का क्षणिक कौतूहल, अपने प्रति उनका आकर्षण थोड़े समय के लिये भले ही बढ़ा लें, पर वस्तुतः अपनी और दूसरों की इस प्रकार भारी कुसेवा होनी सम्भव है।

इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए हम इस पुस्तक के पाठकों और अनुयायियों को सावधान करते हैं, कड़े शब्दों में आदेश करते हैं कि वे अपनी सिद्धियों को गुप्त रखें, किसी के सामने प्रकट न करें। जो दैवी चमत्कार अपने को दृष्टिगोचर हों, उन्हें विश्वस्त अभिन्न हृदय मित्रों के अतिरिक्त और किसी से न कहें। आवश्यकता होने पर ऐसी घटनाओं के सम्बन्ध में शान्तिकुञ्ज, हरिद्वार से भी परामर्श किया जा सकता है। गायत्री साधकों की यह जिम्मेदारी है कि वे प्राप्त शक्ति का रत्तीभर भी दुरुपयोग न करें। हम सावधान करते हैं कि कोई साधक इस मर्यादा का उल्लंघन न करे।

गायत्री द्वारा वाममार्गी तान्त्रिक साधनायें

इस पुस्तक के प्रारम्भिक पृष्ठों में गायत्री की उत्पत्ति की चर्चा करते हुए यह बताया जा चुका है कि ब्रह्मा से शक्ति की उत्पत्ति हुई और वह शक्ति दो विभागों में बँटी। एक संकल्पमयी गायत्री, दूसरी परमाणुमयी सावित्री। संकल्पमयी गायत्री का उपयोग आत्मिक शक्तियों को बढ़ाने एवं दैवी सान्निध्य प्राप्त करने में होता है। आत्मिक गुणों और विशेषताओं के बढ़ने के कारण साधक को सांसारिक कठिनाइयाँ पार करना, स्वल्प साधन में भी सुखी रहना एवं सुखकर स्थिति को उपलब्ध करना सहज होता है। अब तक इसी विधि-विधान की चर्चा इस पुस्तक में की गयी है। यह योग विज्ञान है, इसे दक्षिण मार्ग भी कहते हैं। यह सत् प्रधान होने से हानि रहित एवं व्यक्ति तथा समाज के लिये सब प्रकार हितकर है।

शक्ति की दूसरी श्रेणी परमाणुमयी सावित्री है। इसे स्थूल प्रकृति, पंचभूत, भौतिक सृष्टि आदि नामों से भी पुकारते हैं। इसमें प्रकृति के परमाणुओं के आकर्षण-विकर्षण से संसार में नाना प्रकार के पदार्थों की उत्पत्ति, वृद्धि और समाप्ति होती रहती है। इन परमाणुओं की स्वाभाविक साधारण क्रिया में हेर-फेर करके अपने लिये अधिक उपयोगी बना लेने की क्रिया का नाम विज्ञान है। यह विज्ञान दो भागों में विभक्त है—एक वह जो यन्त्रों द्वारा प्रकृति के परमाणुओं को अपने लिये उपयोगी बनाता है। रेल, तार, टेलीफोन, रेडियो, हवाई जहाज, टेलीविजन, विद्युत् शक्ति आदि अनेकों वैज्ञानिक यन्त्र आविष्कृत हुए हैं और होने वाले हैं। यह यन्त्र विज्ञान है। दूसरा है तन्त्र विज्ञान - जिसमें यन्त्रों के स्थान पर मानव अन्तराल में रहने वाली विद्युत् शक्ति को कुछ ऐसी विशेषता से सम्पन्न बनाया जाता है, जिससे प्रकृति के सूक्ष्म परमाणु उसी स्थिति में परिणत हो जाते हैं, जिसमें कि मनुष्य चाहता है। पदार्थों की रचना, परिवर्तन और विनाश का बड़ा भारी काम बिना किन्हीं यन्त्रों की सहायता के तन्त्र विद्या द्वारा हो सकता है। विज्ञान के इस तन्त्र भाग को सावित्री-विद्या, तन्त्र साधना, वाममार्ग आदि नामों से पुकारते हैं।

तन्त्र-विद्या एक स्वतंत्र विद्या है। इस पुस्तक में उसके आधार और कार्य की चर्चा नहीं की जा सकती। इन पंक्तियों में तो हमें तंत्र के विज्ञान का पाठकों को थोड़ा-सा परिचय कराना है। प्राचीनकाल में भारत के विज्ञानाचार्य अनेक प्रयोजनों के लिये इसी मार्ग का अवलम्बन करते थे। प्राचीन इतिहास में ऐसी अनेक साक्षियाँ मिलती हैं, जिनसे प्रकट होता है कि उस समय बिना यन्त्रों के भी ऐसे अद्भुत कार्य होते थे, जैसे आज यन्त्रों से भी संभव नहीं हो पाते हैं। युद्धों में आज अनेक प्रकार के बहुमूल्य वैज्ञानिक अस्त्र-शस्त्र प्रयुक्त होते हैं, पर प्राचीनकाल में

जैसे—वरुणास्त्र-जो जल की भारी वर्षा कर दे, आग्नेयास्त्र—जो भयंकर अग्नि ज्वाला का दावानल प्रकट कर दे, सम्मोहनास्त्र—जो लोगों को संज्ञाशून्य बना दे, नागपाश—जो लकवे की तरह जकड़ दे, आज कहाँ हैं ? इसी प्रकार इंजन, भाप, पेट्रोल के बिना आकाश में, भूमि पर और जल में चलने वाले रथ आज कहाँ हैं ? मारीच की तरह मनुष्य से पशु बन जाना, सुरसा की तरह बहुत बड़ा शरीर बना लेना, हनुमान् की तरह मच्छर के समान अति लघु रूप धारण करना, समुद्र लाँघना, पर्वत उठाना, नल की भाँति पानी पर तैरने वाले पत्थरों का पुल बनाना, रावण-अहिरावण की भाँति बिना रेडियो के अमरीका और लंका के बीच वार्तालाप होना, अदृश्य हो जाना आदि अनेकों ऐसे अद्‌भुत कार्य थे, जो आज यन्त्रों से भी नहीं हो पाते, पर एक समय, बिना किसी यन्त्र की सहायता के, केवल आत्मशक्ति व तान्त्रिक उपयोग से सुगमता पूर्वक हो जाते थे । इस क्षेत्र में भारत भारी उन्नति कर चुका था और संसार पर चक्रवर्ती शासन करने एवं जगद्‌गुरु कहलाने का यह भी एक कारण था ।

नागार्जुन, गोरखनाथ, मछीन्द्रनाथ आदि सिद्ध पुरुषों के पश्चात् भारत से इस विद्या का लोप होता गया और आज तो इस क्षेत्र में अधिकार रखने वाले व्यक्ति कठिनाई से ढूँढ़े मिलेंगे । इस तन्त्र महाविज्ञान की कुछ लँगड़ी-लूली, टूटी-फूटी, शाखा-प्रशाखायें जहाँ-तहाँ मिलती हैं, उनके चमत्कार दिखाने वाले जहाँ-तहाँ मिल पाते हैं । उनमें से एक शाखा है "दूसरों के शरीर मन पर अच्छा या बुरा प्रभाव डालना", जो इसे कर सकते हैं, वे यदि अभिचार करें , तो स्वस्थ आदमी को रोगी बना सकते हैं, किसी भयंकर प्राणघातक पीड़ा, वेदना या बीमारी में अटका सकते हैं, उस पर प्राणघातक सूक्ष्म प्रहार कर सकते हैं, किसी की बुद्धि को फेर सकते हैं, उसे पागल, उन्मत्त, विक्षिप्त, मन्दबुद्धि या उल्टा सोचने वाला कर सकते हैं । भ्रम, भय, सन्देह, आशंका और बेचैनी के गहरे दलदल में फँसाकर उसके मानसिक धरातल को अस्त-व्यस्त कर सकते हैं । इसी प्रकार अप्रत्यक्ष चेतना शक्ति द्वारा किसी व्यक्ति पर बुरा प्रभाव पड़ा हो, तो उसे दूर कर सकते हैं । नजर लगना, उन्माद, भूतोन्माद, ग्रह अनिष्ट, बुरे दिन, किसी के द्वारा प्रेरित अभिचार या मानसिक उद्वेग आदि को शान्त किया जा सकता है । शारीरिक रोगों का निवारण, सर्प, बिच्छू आदि का दंशन एवं विषैले फोड़ों का समाधान भी मन्त्र द्वारा होता है । छोटे बालकों पर इस विद्या का बड़ी आसानी से भला या बुरा प्रभाव डाला जा सकता है ।

तन्त्र साधना द्वारा सूक्ष्म जगत् में विचरण करने वाली अनेक चेतना ग्रन्थियों में से किसी विशेष प्रकार की ग्रन्थि को अपने लिये जाग्रत्, चैतन्य, क्रियाशील एवं अनुचरी बनाया जा सकता है । देखा गया है कि कई तांत्रिकों को श्मशान, पिशाच, भैरव, छाया पुरुष, ब्रह्म-राक्षस, वेताल, कर्ण-पिशाचिनी, त्रिपुर-सुन्दरी, कालरात्रि, दुर्गा आदि की सिद्धि होती है । जैसे कोई सेवक प्रत्यक्ष शरीर से किसी के यहाँ नौकर रहता है और मालिक की आज्ञानुसार काम करता है, वैसे ही यह शक्तियाँ अप्रत्यक्ष रूप से उस तन्त्रसिद्ध पुरुष के वश में होकर सदा उसके समीप उपस्थित रहती हैं और जो आज्ञा दी जाती है, उसको वे अपनी सामर्थ्यानुसार पूरा करती हैं । इस रीति से कई बार ऐसे-ऐसे अद्‌भुत काम किये जाते हैं कि उनके कारण आश्चर्य से दंग हो जाना पड़ता है ।

होता यह है कि अदृश्य लोक की "चेतना ग्रन्थियाँ" सदा विचरण करती रहती हैं । तांत्रिक साधना-विधानों द्वारा अपने योग्य ग्रन्थियों को पकड़कर उनमें प्राण डाला जाता है । जब वे प्राणवान् हो जाती हैं, तब उनका सीधा आक्रमण साधक पर होता है, यदि साधक अपनी आत्मिक बलिष्ठता द्वारा उस आक्रमण को सह गया, उससे परास्त न हुआ, तो प्रतिहत होकर वह ग्रन्थि उसके वशवर्ती हो जाती है और चौबीसों घण्टे के साथी, आज्ञाकारी सेवक की तरह काम करती हैं । ऐसी साधनायें बड़े खतरे से भरी हुई होती हैं । निर्जन, श्मशान आदि भयंकर प्रदेशों में ऐसी रोमांचकारी विधि-व्यवस्था का प्रयोग करना पड़ता है, जिससे साधारण मनुष्य का कलेजा दहल जाता है । उस समय ऐसे-ऐसे घोर अनुभव होते हैं , जिनसे डर जाने, बीमार पड़ जाने, पागल हो जाने या मृत्यु के मुख में चले जाने की आशंका रहती है । ऐसी साधनायें हर कोई नहीं कर सकता । कर ले, तो सिद्धि मिलने पर उन अदृश्य शक्तियों को साथ रखने की कष्टसाध्य शर्तें होती हैं, उन्हें पालन नहीं कर सकता । यही कारण है कि इस मार्ग पर चलने का कोई बिरले ही साहस करते हैं, उनमें से कोई बिरले ही सफल होते हैं और जो सफल होते हैं, उनमें से कोई बिरले ही अन्त काल तक उनसे समुचित लाभ उठा पाते हैं ।

यहाँ तन्त्र साधना की किन्हीं विधियों को बताने का हमारा कोई इरादा नहीं है ; क्योंकि उन गुप्त रहस्यों को जनसाधारण के लिये प्रकाशित कर देने का अर्थ-बालकों के क्रीड़ा-स्थल में बारूद बिखेर देना है । जिनमें वे बेचारे क्रीड़ा-कौतुक करने के उपलक्ष्य में सर्वनाश का उपहार प्राप्त करें । यह परम्परा तो अधिकार और अधिकारी के आधार पर एक-दूसरे को सिखाने की रही है । हमें स्वयं इस मार्ग पर प्राण घातक खतरे में होकर गुजरने का कटु अनुभव है, फिर भोले-भाले पाठकों को कोई खतरा उपस्थित कर देने के लिये उस शिक्षण विधि को लिख मारने की भूल हम कैसे कर सकते हैं ? इन पंक्तियों में तो हमारा इरादा केवल यह बताने का है कि प्रकृति की परमाणुमयी शक्ति पर भी आत्मिक विद्युत् द्वारा भूतकाल में अधिकार प्राप्त किया जा चुका है और आगे भी प्राप्त किया जा सकता है ।

यह ठीक है कि आज ऐसे व्यक्ति दिखाई नहीं पड़ते, जो प्रत्यक्ष रूप से यह प्रमाण दे सकें कि किस प्रकार अमुक यन्त्र का काम, अन्दर की बिजली से अमुक प्रकार हो सकता है । यह विद्या विगत दो हजार वर्षों से धीरे-धीरे विलुप्त होती चली गयी है और अब तो इस विद्या के ज्ञाता ढूँढ़े नहीं मिलते । वैसे तो वैज्ञानिक यन्त्रों के अनेक आविष्कारों के कारण उतनी आवश्यकता आज नहीं रही, फिर भी उस महाविद्या का प्रकाश तो जारी रहना ही चाहिये । यह आज के तांत्रिकों का कर्त्तव्य है कि इस लुप्त प्राय सावित्री विद्या को अथक परिश्रम द्वारा पुनर्जीवित करके भारतीय विज्ञान की महत्ता संसार के सामने प्रतिष्ठित करें । आज के तांत्रिक जितना कर लेते हैं यद्यपि यह भी कम महत्त्वपूर्ण और कम आश्चर्यजनक नहीं है, फिर भी इस मार्ग के पथिकों को तब तक चैन नहीं लेना चाहिये, जब तक कि परमाणु प्रकृति पर आत्मशक्ति द्वारा अधिकार करने के विज्ञान में पूर्वकाल जैसी सफलता प्राप्त न हो जाए ।

वर्तमान काल में तन्त्र का जितना अंश प्रचलित, ज्ञात एवं क्रियान्वित है, उसकी चर्चा ऊपर की जा चुकी है । मनुष्यों पर अदृश्य प्रकार से भला या बुरा प्रभाव डालना आज के तन्त्र विज्ञान की मर्यादा है । वस्तुओं का रूपान्तर, परिवर्तन, प्रकटीकरण, लोप एवं विशेष जाति के परमाणुओं का एकीकरण करके उनके शक्तिशाली प्रयोग का भाग आज प्राय: लुप्त है । चैतन्य ग्रन्थियों का जागरण और उनको वशवर्ती बनाकर आज्ञापालन कराने में विक्रमादित्य के समान साधक आज नहीं हैं, पर किन्हीं अंशों में इस विद्या का अस्तित्व मौजूद अवश्य है ।

साथ ही इस सम्बन्ध में हम एक बात यह भी स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि इस समय तन्त्र के नाम पर सर्व साधारण को बहकाने वाले या ठगने वाले लोगों की बहुतायत हो गयी है । ऐसे लोग धन के लालच से या पारस्परिक राग-द्वेष के कारण अन्य व्यक्तियों को हानि पहुँचाने की चेष्टा किया करते हैं । उनके प्रयत्न कहाँ तक सफल होते हैं अथवा उनके कथन में कहाँ तक सच्चाई होती है, यह तो दूसरी बात है, पर इतना अवश्य है कि ऐसे लोगों के कार्यों के परिणामस्वरूप इस विद्या की बदनामी होती है और इसे लोग श्रेष्ठजनों के अनुपयुक्त समझने लगते हैं । यह अवस्था सर्वथा अवांछनीय है और जो लोग ऐसा कुकृत्य करते हैं, वे निस्संदेह दण्ड के भागी हैं ।

तन्त्र-शास्त्र में अनेक मन्त्र हैं, पर उन सब मन्त्रों का कार्य गायत्री से भी हो सकता है । गायत्री की संकल्प शक्ति की साधना इस पुस्तक में सविस्तार लिखी जा चुकी है, क्योंकि वह सर्व हितकारी, सुलभ और सर्वमंगलमय है । परमाणुमयी तन्त्र प्रधान, वाममार्गी सावित्री-विद्या का विषय गोपनीय है । इसका परिचय मात्र इन पंक्तियों में कर दिया गया है । इस सम्बन्ध में गुप्त बातों पर प्रकाश डालना और तत्सम्बन्धी साधनायें प्रकाशित करना जनसाधारण के हित में अनुपयुक्त है, इसलिये इस लेख को अधिक न बढ़ाकर यहीं समाप्त किया जाता है ।

गायत्री द्वारा कुण्डलिनी जागरण

शरीर में अनेक साधारण और अनेक असाधारण अंग हैं । असाधारण अंग जिन्हें 'मर्म स्थान' कहते हैं, केवल इसलिये मर्म स्थान नहीं कहे जाते कि वे बहुत सुकोमल एवं उपयोगी होते हैं, वरन् इसलिये भी कहे जाते हैं कि इनके भीतर गुप्त आध्यात्मिक शक्तियों के महत्त्वपूर्ण केन्द्र होते हैं । इन केन्द्रों में वे बीज सुरक्षित रखे रहते हैं, जिनका उत्कर्ष, जागरण हो जाये, तो मनुष्य कुछ से कुछ बन सकता है । उसमें आत्मिक शक्तियों के स्रोत उमड़

सकते हैं और उस उभार के फलस्वरूप वह ऐसी अलौकिक शक्तियों का भण्डार बन सकता है, जो साधारण लोगों के लिये "अलौकिक आश्चर्य" से कम प्रतीत नहीं होती ।

ऐसे मर्मस्थलों में मेरुदण्ड या रीढ़ का प्रमुख स्थान है । यह शरीर की आधार शिला है । यह मेरुदण्ड छोटे-छोटे तैंतीस अस्थि खण्डों से मिलकर बना है । इस प्रत्येक खण्ड में तत्त्वदर्शियों को ऐसी विशेष शक्तियाँ परिलक्षित होती हैं, जिनका सम्बन्ध दैवी शक्तियों से है । देवताओं में जिन शक्तियों का केन्द्र होता है, वे शक्तियाँ भिन्न-भिन्न रूप में मेरुदण्ड के इन अस्थि-खण्डों में पायी जाती हैं, इसलिये यह निष्कर्ष निकाला गया है कि मेरुदण्ड तैंतीस देवताओं का प्रतिनिधित्व करता है । आठ वसु, बारह आदित्य, ग्यारह रुद्र, इन्द्र और प्रजापति इन तैंतीसों की शक्तियाँ उसमें बीज रूप से उपस्थित रहती हैं ।

इस पोले मेरुदण्ड में शरीर विज्ञान के अनुसार नाड़ियाँ हैं और वे विविध कार्यों में नियोजित रहती हैं । अध्यात्म विज्ञान के अनुसार उनमें प्रमुख नाड़ियाँ हैं—(१) इड़ा, (२) पिंगला, (३) सुषुम्ना । यह तीन नाड़ियाँ मेरुदण्ड को चीरने पर प्रत्यक्ष रूप से आँखों द्वारा नहीं देखी जा सकतीं, इनका सम्बन्ध सूक्ष्म जगत् से है । यह एक प्रकार का विद्युत् प्रवाह है । जैसे बिजली से चलने वाले यन्त्रों में नेगेटिव और पोजेटिव, ऋण और धन धारायें दौड़ती हैं और उन दोनों का जहाँ मिलन होता है, वहीं शक्ति पैदा हो जाती है । इसी प्रकार इड़ा को नेगेटिव, पिंगला को पोजेटिव कह सकते हैं । इड़ा को चन्द्र नाड़ी और पिंगला को सूर्य नाड़ी भी कहते हैं । मोटे शब्दों में इन्हें ठण्डी-गरम धारायें कहा जा सकता है । दोनों के मिलने से जो तीसरी शक्ति उत्पन्न होती है, उसे सुषुम्ना कहते हैं । प्रयाग में गंगा और यमुना मिलती हैं । इस मिलन से एक तीसरी सूक्ष्म सरिता और विनिर्मित होती है, जिसे सरस्वती कहते हैं । इस प्रकार तीन नदियों से त्रिवेणी बन जाती है । मेरुदण्ड के अन्तर्गत भी ऐसी आध्यात्मिक त्रिवेणी है । इड़ा, पिंगला की दो धारायें मिलकर सुषुम्ना की सृष्टि करती हैं और एक पूर्ण त्रिवर्ग बन जाता है ।

यह त्रिवेणी ऊपर मस्तिष्क के मध्य केन्द्र से, ब्रह्मरन्ध्र से, सहस्रार कमल से सम्बन्धित और नीचे मेरुदण्ड का जहाँ नुकीला अन्त है, वहाँ लिंग मूल और गुदा के बीच 'सीवन' स्थान की सीध में पहुँच कर रुक जाती है, यही इस त्रिवेणी का आदि- अन्त है ।

सुषुम्ना नाड़ी के भीतर एक और त्रिवर्ग है । उसके अन्तर्गत भी तीन अत्यन्त सूक्ष्म धारायें प्रवाहित होती हैं, जिन्हें वज्रा, चित्रणी और ब्रह्म नाड़ी कहते हैं । जैसे केले के तने को काटने पर उसमें एक के भीतर एक परत दिखाई पड़ती है, वैसे ही सुषुम्ना के भीतर वज्रा है । वज्रा के चित्रणी और चित्रणी के भीतर ब्रह्मनाड़ी है । यह ब्रह्म नाड़ी सब नाड़ियों का मर्मस्थल, केन्द्र एवं शक्तिसार है । इस मर्म की सुरक्षा के लिये ही उस पर इतने परत चढ़े हैं ।

यह ब्रह्मनाड़ी मस्तिष्क के केन्द्र में — ब्रह्मरन्ध्र में-पहुँचकर हजारों भागों में चारों ओर फैल जाती है, इसी से उस स्थान को सहस्रदल कमल कहते हैं, विष्णुजी की शय्या शेषजी के सहस्र फनों पर होने का अलंकार भी इस सहस्रदल कमल से ही लिया गया है । भगवान् बुद्ध आदि अवतारी पुरुषों के मस्तक पर एक विशेष प्रकार के गुञ्जलकदार बालों का अस्तित्व हम उनकी मूर्तियों अथवा चित्रों में देखते हैं । यह इस प्रकार के बाल नहीं हैं, वरन् सहस्रदल कमल का कलात्मक चित्र है । यह सहस्रदल सूक्ष्म लोकों में, विश्व-व्यापी शक्तियों से सम्बन्धित है । रेडियो - ट्रांसमीटर से ध्वनि विस्तारक तन्तु फैलाये जाते हैं, जिन्हें 'एरियल' कहते हैं । तन्तुओं के द्वारा सूक्ष्म आकाश में ध्वनि को फेंका जाता है और बढ़ती हुई तरंगों को पकड़ा जाता है । मस्तिष्क का 'एरियल' सहस्रार कमल है । उसके द्वारा परमात्म-सत्ता की अनन्त शक्तियों को सूक्ष्म लोक में से पकड़ा जाता है । जैसे भूखा अजगर जब जाग्रत् होकर लम्बी साँसें खींचता है, तो आकाश में उड़ते पक्षियों को अपनी तीव्र शक्ति से जकड़ लेता है और वे मन्त्रमुग्ध की तरह खिंचते हुए अजगर के मुँह में चले जाते हैं । उसी प्रकार जाग्रत् हुआ सहस्रमुखी शेषनाग-सहस्रार कमल अनन्त प्रकार की सिद्धियों को लोक-लोकान्तरों से खींच लेता है । जैसे कोई अजगर जब क्रुद्ध होकर विषैली फुँफकार मारता है, तो एक सीमा तक वायु मण्डल को विषैला कर देता है, उसी प्रकार जाग्रत् हुए सहस्रार कमल द्वारा शक्तिशाली भावना तरंगें प्रवाहित करके साधारण जीव-जन्तुओं एवं मनुष्यों को ही नहीं वरन् सूक्ष्म लोकों की आत्माओं को भी प्रभावित और आकर्षित किया जा सकता है । शक्तिशाली ट्रांसमीटर द्वारा

किया हुआ अमेरिका का ब्राडकास्ट भारत में सुना जाता है । शक्तिशाली सहस्रार द्वारा निक्षेपित भावना प्रवाह भी लोक-लोकान्तरों के सूक्ष्म तत्त्वों को हिला देता है ।

अब मेरुदण्ड के नीचे के भाग को, मूल को लीजिये । सुषुम्ना के भीतर रहने वाली तीन नाड़ियों में सबसे सूक्ष्म ब्रह्म नाड़ी मेरुदण्ड के अन्तिम भाग के समीप एक काले वर्ण के षट्कोण वाले परमाणु से लिपटकर बँध जाती है । छप्पर को मजबूत बाँधने के लिये दीवार में खूँटे गाड़ते हैं और उन खूँटों में छप्पर से सम्बन्धित रस्सी को बाँध देते हैं । इसी प्रकार उस षट्कोण कृष्ण वर्ण परमाणु से ब्रह्म नाड़ी को बाँधकर इस शरीर से प्राणों के छप्पर को जकड़ देने की व्यवस्था की गयी है ।

कूर्म से ब्रह्मनाड़ी के गुन्थन स्थल को आध्यात्मिक भाषा में 'कुण्डलिनी' कहते हैं । जैसे काले रंग का होने से आदमी का नाम कलुआ भी पड़ जाता है, वैसे ही कुण्डलाकार बनी हुई, इस आकृति को 'कुण्डलिनी' कहा जाता है । यह साढ़े तीन लपेटे उस कूर्म में लगाये हुए है और मुँह नीचे को है । विवाह संस्कारों में इसी की नकल करके "भाँवर या फेरे" होते हैं । साढ़े तीन (सुविधा की दृष्टि से चार) परिक्रमा किये जाने और मुँह नीचा किये जाने का विधान इस कुण्डलिनी के आधार पर ही रखा गया है, क्योंकि भावी जीवन-निर्माण की व्यवस्थित आधार शिला, पति-पत्नी का कूर्म और ब्रह्मनाड़ी मिलन वैसा ही महत्त्वपूर्ण है जैसा कि शरीर और प्राण को जोड़ने में कुण्डलिनी का महत्त्व है ।

इस कुण्डलिनी की महिमा, शक्ति और उपयोगिता इतनी अधिक है कि उसको भली प्रकार समझने में मनुष्य की बुद्धि लड़खड़ा जाती है । भौतिक विज्ञान के अन्वेषकों के लिये आज 'परमाणु' एक पहेली बना हुआ है । उसके तोड़ने की एक क्रिया मालूम हो जाने का चमत्कार दुनिया ने प्रलयंकर परमाणु बम के रूप में देख लिया । अभी उसके अनेकों विध्वंसक और रचनात्मक पहलू बाकी हैं । सर आर्थर का कथन है कि—"यदि परमाणु शक्ति का पूरा ज्ञान और उपयोग मनुष्य को मालूम हो गया, तो उसके लिये कुछ भी असंभव नहीं रहेगा । यह सूर्य के टुकड़े-टुकड़े करके उसे गर्द में मिला सकेगा और जो चाहेगा, वह वस्तु या प्राणी मनमाने ढंग से पैदा कर लिया करेगा । ऐसे-ऐसे यन्त्र उसके पास होंगे, जिनसे सारी पृथ्वी एक मुहल्ले में रहने वाली आबादी की तरह हो जायेगी । कोई व्यक्ति चाहे कहीं क्षण भर में आ जा सकेगा और चाहे जिससे चाहे जो वस्तु ले दे सकेगा तथा देश-देशान्तरों में स्थित लोगों से ऐसे ही घुल - मिलकर वार्त्तालाप कर सकेगा, जैसे दो मित्र आपस में बैठे-बैठे गप्पें लड़ाते रहते हैं ।" जड़ जगत् के एक परमाणु की शक्ति इतनी कूती जा रही है कि उसकी महत्ता को देखकर आश्चर्य की सीमा नहीं रहती । फिर चैतन्य जगत् का एक स्फुल्लिंग जो जड़ परमाणु की अपेक्षा अनन्त गुना शक्तिशाली है, कितना अद्भुत होगा, इसकी तो कल्पना कर सकना भी कठिन है ।

योगियों में अनेक प्रकार की अद्भुत शक्तियाँ होने के वर्णन और प्रमाण हमें मिलते हैं । योग की ऋद्धि—सिद्धियों की अनेक गाथायें सुनी जाती हैं । उनसे आश्चर्य होता है और विश्वास नहीं होता कि यह कहाँ तक ठीक है, पर जो लोग विज्ञान से परिचित हैं और जड़ परमाणु तथा चैतन्य स्फुल्लिंग को जानते हैं, उनके लिये इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं । जिस प्रकार आज परमाणु की शोध में प्रत्येक देश के वैज्ञानिक व्यस्त हैं, उसी प्रकार पूर्वकाल में आध्यात्मिक विज्ञानवेत्ताओं ने, तत्त्वदर्शी ऋषियों ने मानव-शरीर के अन्तर्गत एक बीज परमाणु की अत्यधिक शोध की थी । दो परमाणुओं को तोड़ने, मिलाने या स्थानांतरित करने का सर्वोच्च स्थान कुण्डलिनी केन्द्र में होता है, क्योंकि अन्य सब जगह के चैतन्य परमाणु गोल और चिकने होते हैं, पर कुण्डलिनी में यह मिथुन लिपटा हुआ है । जैसे यूरेनियम और प्लेटोनियम धातु में परमाणुओं का गुन्थन कुछ ऐसे टेढ़े-तिरछे ढंग से होता है कि उनका तोड़ा जाना अन्य पदार्थों के परमाणुओं की अपेक्षा अधिक सरल है, उसी प्रकार कुण्डलिनी स्थित स्फुल्लिंग परमाणुओं की गतिविधि को इच्छानुकूल संचालित करना अधिक सुगम है । इसलिये प्राचीनकाल में कुण्डलिनी जागरण की उतनी ही तत्परता से शोध हुई थी, जितनी कि आजकल परमाणु विज्ञान के बारे में हो रही है । इन शोधों के परीक्षणों और प्रयोगों के फलस्वरूप उन्हें ऐसे कितने ही रहस्य भी करतलगत हुए थे, जिन्हें आज 'योग के चमत्कार' के नाम से पुकारते हैं ।

मैडम ब्लेवेटस्की ने कुण्डलिनी शक्ति के बारे में काफी खोजबीन की है। वे लिखती हैं—"कुण्डलिनी विश्वव्यापी सूक्ष्म विद्युत् शक्ति है, जो स्थूल बिजली की अपेक्षा कहीं अधिक शक्तिशालिनी है, इसकी चाल सर्प की चाल की तरह टेढ़ी है, इससे इसे सर्पाकार कहते हैं। प्रकाश एक लाख पचासी हजार मील प्रति सेकण्ड चलता है, पर कुण्डलिनी की गति एक सेकण्ड में ३४५००० मील है।" पाश्चात्य वैज्ञानिक इसे "स्प्रिट-फायर" "सरपेन्टलपावर" कहते हैं। इस सम्बन्ध में सर जान वुडरफ ने भी बहुत विस्तृत विवेचन किया है।

कुण्डलिनी को गुप्त शक्तियों की तिजोरी कहा जा सकता है। बहुमूल्य रत्नों को रखने के लिये किसी अज्ञात स्थान में गुप्त परिस्थितियों में तिजोरी रखी जाती है और उसमें कई ताले लगा दिये जाते हैं; ताकि घर या बाहर के अनधिकारी लोग उस खजाने में रखी हुई सम्पत्ति को न ले सकें। परमात्मा ने हमें शक्तियों का अक्षय भण्डार देकर उसमें छः ताले लगा दिये। ताले इसलिये लगा दिये हैं कि वे जब पात्रता आ जाये, धन के उत्तरदायित्व को ठीक प्रकार समझने लगें, तभी वह सब प्राप्त हो सके। उन छहों तालों की ताली मनुष्य को ही सौंप दी गयी है, ताकि वह आवश्यकता के समय तालों को खोलकर उचित लाभ उठा सके।

षट्—चक्र
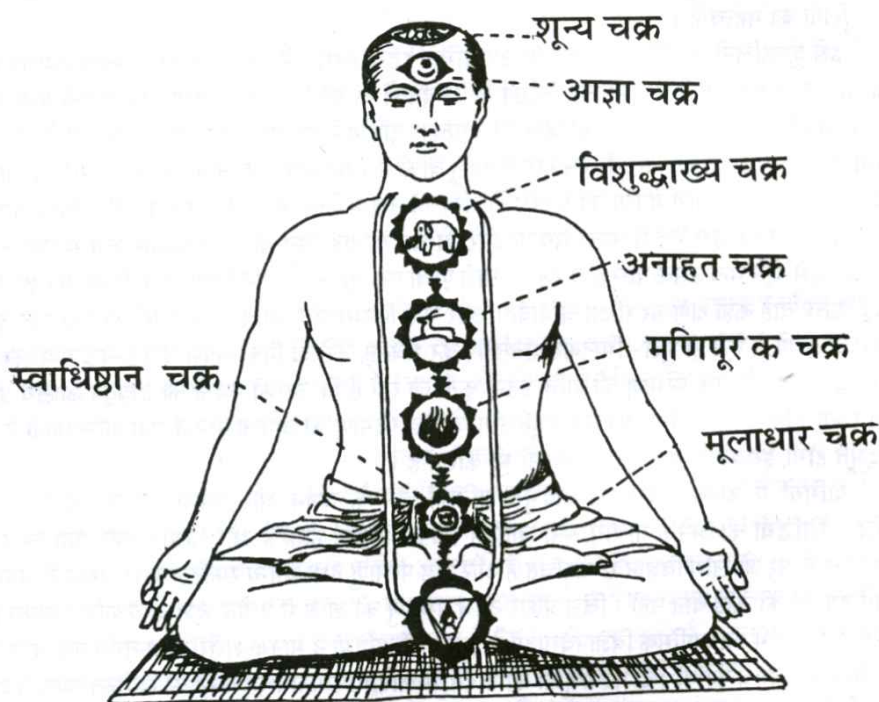
यह छः ताले जो कुण्डलिनी पर लगे हुए हैं, छः चक्र कहलाते हैं । इन चक्रों को वेधन करके जीव कुण्डलिनी के समीप पहुँच सकता है और उसका यथोचित उपयोग करके जीवन-लाभ प्राप्त कर सकता है । सब लोगों की कुण्डलिनी साधारणतः अस्त-व्यस्त अवस्था में पड़ी रहती है, पर जब उसे जगाया जाता है, तो वह अपने स्थान पर से हट जाती है और उस लोक में प्रवेश कर जाने देती है, जिसमें परमात्म-शक्तियों की प्राप्ति हो जाती है । बड़े-बड़े गुप्त खजाने जो प्राचीनकाल से भूमि में छिपे पड़े होते हैं, उन पर सर्प की चौकीदारी पाई जाती है । खजाने के मुख पर कुण्डलीदार सर्प बैठा रहता है और चौकीदारी किया करता है । देवलोक भी ऐसा ही खजाना है, जिसके मुँह पर षट्कोण कूर्म की शिला रक्खी हुई है और शिला से लिपटी हुई भयंकर सर्पिणी कुण्डलिनी बैठी है । वह सर्पिणी अधिकारी पात्र की प्रतीक्षा में बैठी होती है । जैसे ही कोई अधिकारी उसके समीप पहुँचता है, वह उसे रोकने या हानि पहुँचाने की अपेक्षा अपने स्थान से हटकर उसको रास्ता दे देती है और उसका कार्य समाप्त हो जाता है ।

कुण्डलिनी—जागरण के लाभों पर प्रकाश डालते हुए एक अनुभवी साधक ने लिखा है—"भगवती कुण्डलिनी की कृपा से साधक सर्वगुण सम्पन्न होता है । सब कलायें, सब सिद्धियाँ उसे अनायास प्राप्त हो जाती हैं । ऐसे साधक का शरीर १०० वर्ष तक बिल्कुल स्वस्थ और सुदृढ़ रहता है । वह अपना जीवन परमात्मा की सेवा में लगा देता है और उसके आदेशानुसार लोकोपकार करते हुए अन्त में स्वेच्छा से अपना कलेवर छोड़ जाता है । कुण्डलिनी शक्ति सम्पन्न व्यक्ति पूर्ण निर्भय और आनन्दमय रहता है । भगवती की उस पर पूर्ण कृपा रहती है और वह स्वयं सदैव अपने ऊपर उसकी छत्रछाया होने का अनुभव करता है । उसके कानों में माता के ये शब्द गूँजते रहते हैं कि —भय नहीं, मैं तुम्हारे पीछे खड़ी हूँ ।" इसमें सन्देह नहीं कि कुण्डलिनी शक्ति के प्रभाव से मनुष्य का दृष्टिकोण दैवी हो जाता है और इस कारण उसका व्यक्तित्व सब प्रकार से शक्ति सम्पन्न और सुखी बन जाता है ।

मस्तिष्क के ब्रह्मरन्ध्र में बिखरे हुए सहस्त्रदल भी साधारणतः उसी प्रकार प्रसुप्त अवस्था में पड़े रहते हैं, जैसे कि कुण्डलिनी सोया करती है । उतने बहुमूल्य यन्त्रों और कोषों के होते हुए भी मनुष्य साधारणतः बड़ा दीन, दुर्बल, तुच्छ, क्षुद्र, विषय-विकारों का गुलाम बनकर कीट-पतंगों की तरह जीवन व्यतीत करता है और दुःख-दारिद्र्य की दासता में बँधा हुआ फड़फड़ाया करता है, पर जब इन यन्त्रों और रत्नागारों से परिचित होकर उनके उपयोग को जान लेता है, उन पर अधिकार कर लेता है, तो वह परमात्मा के सच्चे उत्तराधिकारी की समस्त योग्यताओं और शक्तियों से सम्पन्न हो जाता है । कुण्डलिनी जागरण से होने वाले लाभों के सम्बन्ध में योग-शास्त्रों में बड़ा विस्तृत और आकर्षक वर्णन है । उन सबकी चर्चा न करके यहाँ इतना कह देना पर्याप्त होगा कि कुण्डलिनी शक्ति के जागरण से इस विश्व में जो कुछ है , वह सब कुछ मिल सकता है । उसके लिये कोई वस्तु अप्राप्य नहीं रहती ।

षट्चक्रों का वेधन

कुण्डलिनी की शक्ति के मूल तक पहुँचने के मार्ग में छः फाटक हैं अथवा यों कहना चाहिये कि छः ताले लगे हुए हैं । यह फाटक या ताले खोलकर ही कोई जीव उन शक्ति-केन्द्रों तक पहुँच सकता है । इन छः अवरोधों को आध्यात्मिक भाषा में 'षट्चक्र' कहते हैं ।

सुषुम्ना के अन्तर्गत रहने वाली तीन नाड़ियों में सबसे भीतर स्थित ब्रह्मनाड़ी से वह छः चक्र सम्बन्धित हैं । माला के सूत्र में पिरोये हुए कमल पुष्पों से इनकी उपमा दी जाती है । पिछले पृष्ठ पर दिये गये चित्र में पाठक यह देख सकेंगे कि कौन-सा चक्र किस स्थान पर है । मूलाधार चक्र योनि की सीध में, स्वाधिष्ठान चक्र पेडू की सीध में, मणिपूर चक्र नाभि की सीध में, अनाहत चक्र हृदय की सीध में, विशुद्धाख्य चक्र कण्ठ की सीध में और आज्ञा चक्र भृकुटि के मध्य में अवस्थित है । उनसे ऊपर सहस्त्रार है ।

सुषुम्ना तथा उसके अन्तर्गत रहने वाली चित्रणी आदि नाड़ियाँ इतनी सूक्ष्म हैं कि उन्हें साधारण नेत्रों से देख सकना कठिन है । फिर उनसे सम्बन्धित यह चक्र तो और भी सूक्ष्म हैं । किसी शरीर को चीर-फाड़ करते समय इन चक्रों को नस-नाड़ियों की तरह स्पष्ट रूप से नहीं देखा जा सकता, क्योंकि हमारे चर्म-चक्षुओं की वीक्षण शक्ति

बहुत ही सीमित है । शब्द की तरंगें, वायु के परमाणु तथा रोगों के कीटाणु हमें आँखों से दिखाई नहीं पड़ते, तो भी उनके अस्तित्व से इन्कार नहीं किया जा सकता । इन चक्रों को योगियों ने अपनी योग दृष्टि से देखा है और उनका वैज्ञानिक परीक्षण करके महत्त्वपूर्ण लाभ उठाया है और उनके व्यवस्थित विज्ञान का निर्माण करके योग-मार्ग के पथिकों के लिये उसे उपस्थित किया है ।

'षट्चक्र' एक प्रकार की सूक्ष्म ग्रन्थियाँ हैं, जो ब्रह्मनाड़ी के मार्ग में बनी हुई हैं । इन चक्र ग्रन्थियों में जब साधक अपने ध्यान को केन्द्रित करता है, तो उसे वहाँ की सूक्ष्म स्थिति का बड़ा विचित्र अनुभव होता है । वे ग्रन्थियाँ गोल नहीं होतीं; वरन् उनमें इस प्रकार के कोण निकले होते हैं, जैसे पुष्प में पंखुड़ियाँ होती हैं । इन कोष या पंखुड़ियों को 'पद्मदल' कहते हैं । यह एक प्रकार के तन्तु-गुच्छक हैं ।

इन चक्रों के रंग भी विचित्र प्रकार के होते हैं, क्योंकि किसी ग्रन्थि में कोई और किसी में कोई तत्त्व प्रधान होता है । इस तत्त्व प्रधानता का उस स्थान के रक्त पर प्रभाव पड़ता है और उसका रंग बदल जाता है । पृथ्वी तत्त्व की प्रधानता का मिश्रण होने से गुलाबी, अग्नि से नीला, वायु से शुद्ध लाल और आकाश से धुमैला हो जाता है । यही मिश्रण चक्रों का रंग बदल देता है ।

घुन नामक कीड़ा लकड़ी को काटता चलता है, तो उस काटे हुए स्थान की कुछ आकृतियाँ बन जाती हैं । उन चक्रों में होता हुआ प्राण वायु आता-जाता है, उसका मार्ग उस ग्रन्थि की स्थिति के अनुसार कुछ टेढ़ा-मेढ़ा होता है, इस गति की आकृति कई देवनागरी अक्षरों की आकृति से मिलती है, इसलिये वायुमार्ग चक्रों के अक्षर कहलाते हैं ।

द्रुतगति से बहती हुई नदी में कुछ विशेष स्थानों में भँवर पड़ जाते हैं । यह पानी के भँवर कहीं उथले, कहीं गहरे, कहीं तिरछे, कहीं गोल-चौकोर हो जाते हैं । प्राण-वायु का सुषुम्ना प्रवाह इन चक्रों में होकर द्रुतगति से गुजरता है, तो वहाँ एक प्रकार से सूक्ष्म भँवर पड़ते हैं, जिनकी आकृति चतुष्कोण, अर्धचन्द्राकार, त्रिकोण, षट्कोण, गोलाकार, लिंगाकार तथा पूर्ण चन्द्राकार बनती है । अग्नि जब भी जलती है, उसकी लौ ऊपर की ओर उठती है, जो नीचे मोटी और ऊपर पतली होती है । इस प्रकार अव्यवस्थित त्रिकोण-सा बन जाता है । इस प्रकार की विविध आकृतियाँ वायु-प्रवाह से बनती हैं । इन आकृतियों को चक्रों के यन्त्र कहते हैं ।

शरीर पंचतत्त्वों का बना हुआ है । इन तत्त्वों के न्यूनाधिक सम्मिश्रण से विविध अंग-प्रत्यंगों का निर्माण कार्य, उनका संचालन होता है । जिस स्थान में जिस तत्त्व की जितनी आवश्यकता है, उससे न्यूनाधिक हो जाने पर शरीर रोगग्रस्त हो जाता है । तत्त्वों का यथास्थान, यथा मात्रा में होना ही नीरोगिता का चिह्न समझा जाता है । चक्रों में भी एक-एक तत्त्व की प्रधानता रहती है, जिस चक्र में जो तत्त्व प्रधान होता है, वही उसका तत्त्व कहा जाता है ।

ब्रह्म नाड़ी की पोली नली में होकर वायु का अभिगमन होता है, तो चक्रों के सूक्ष्म छिद्रों के आघात से उनमें एक वैसी ध्वनि होती है, जैसी कि वंशी में वायु का प्रवेश होने पर छिद्रों के आधार से ध्वनि उत्पन्न होती है । हर चक्र के एक सूक्ष्म छिद्र में वंशी के स्वर छिद्र की-सी प्रतिक्रिया होने के कारण स, र, ग, म, जैसे स्वरों की एक विशेष ध्वनि प्रवाहित होती है, जो यँ, लँ, रँ, हँ, ॐ जैसे स्वरों में सुनाई पड़ती है, इसे चक्रों का बीज कहते हैं ।

चक्रों में वायु की चाल में अन्तर होता है । जैसे वात, पित्त, कफ की नाड़ी कपोत, मंडूक, सर्प, कुक्कुट आदि की चाल से चलती है, उस चाल को पहचान कर वैद्य लोग अपना कार्य करते हैं । तत्त्वों के मिश्रण, टेढ़-मेढ़ा मार्ग, भँवर, बीज आदि के समन्वय से प्रत्येक चक्र में रक्ताभिसरण, वायु अभिगमन के संयोग से एक विशेष चाल वहाँ परिलक्षित होती है । यह चाल किसी चक्र में हाथी के समान मन्दगामी, किसी में मगर की तरह डुबकी मारने वाली, किसी में हिरण की-सी छलाँग मारने वाली, किसी में मेढक की तरह फुदकने वाली होती है, उस चाल को चक्रों का वाहन कहते हैं ।

इन चक्रों में विविध दैवी शक्तियाँ सन्निहित हैं, उत्पादन, पोषण, संहार, ज्ञान, समृद्धि, बल आदि शक्तियों को देवता विशेषों की शक्ति माना गया है अथवा यों कहिये कि यह शक्तियाँ ही देवता हैं । प्रत्येक चक्र में एक पुरुष

वर्ग की उष्णवीर्य और एक स्त्री वर्ग की शीतवीर्य शक्ति रहती है, क्योंकि धन और ऋण, अग्नि और सोम दोनों तत्त्वों के मिले बिना गति और जीव का प्रवाह उत्पन्न नहीं होता, यह शक्तियाँ ही चक्रों के देवी-देवता हैं।

पंच तत्त्वों के अपने-अपने गुण होते हैं। पृथ्वी का गंध, जल का रस, अग्नि का रूप, वायु का स्पर्श और आकाश का गुण शब्द होता है। चक्रों में तत्त्वों की प्रधानता के अनुरूप उनके गुण भी प्रधानता में होते हैं। यही चक्रों के गुण हैं।

यह चक्र अपनी सूक्ष्म शक्ति को वैसे तो समस्त शरीर में प्रवाहित करते हैं ; पर एक ज्ञानेन्द्रिय और एक कर्मेन्द्रिय से उनका सम्बन्ध विशेष रूप से होता है। सम्बन्धित इन्द्रियों को वे अधिक प्रभावित करते हैं। चक्रों के जागरण के चिह्न उन इन्द्रियों पर तुरन्त परिलक्षित होते हैं। इसी सम्बन्ध विशेष के कारण वे इन्द्रियाँ चक्रों की इन्द्रियाँ कहलाती हैं।

देव शक्तियों में डाकिनी, राकिनी, शाकिनी, हाकिनी आदि के विचित्र नामों को सुनकर उनके भूतनी, चुड़ैल, मशानी जैसी कोई चीज होने का भ्रम होता है, वस्तुतः बात ऐसी नहीं है। मुख से लेकर नाभि तक चक्राकार 'अ' से लेकर 'ह' तक के समस्त अक्षरों की एक ग्रन्थि माला है, उस माला के दानों को 'मातृकायें' कहते हैं। इन मातृकाओं के योग-दर्शन द्वारा ही ऋषियों ने देवनागरी वर्णमाला के अक्षरों की रचना की है। चक्रों के देव जिन मातृकाओं से झंकृत होते हैं, सम्बद्ध होते हैं, उन्हें उन देवों की देव शक्ति कहते हैं। ड, र, ल, क, श, के आगे आदि मातृकाओं का बोधक 'किनी' शब्द जोड़कर राकिनी, डाकिनी बना दिये गये हैं। यही देव शक्तियाँ हैं।

उपर्युक्त परिभाषाओं को समझ लेने के उपरान्त प्रत्येक चक्र की निम्न जानकारी को ठीक प्रकार समझ लेना पाठकों के लिये सुगम होगा। अब छहों चक्रों का परिचय नीचे दिया जाता है—

मूलाधार चक्र—

स्थान—योनि (गुदा के समीप)। वर्ण—लाल। लोक—भूःलोक। दलों के अक्षर—वँ, शँ, षँ, सँ। तत्त्व-पृथ्वी तत्त्व। बीज—लँ। वाहन—ऐरावत हाथी। गुण—गन्ध। देव शक्ति—डाकिनी। यन्त्र चतुष्कोण। ज्ञानेन्द्रिय—नासिका। कर्मेन्द्रिय—गुदा। ध्यान का फल—वक्ता, मनुष्यों के श्रेष्ठ, सर्व विद्याविनोदी, आरोग्य, आनन्द-चित्त, काव्य और लेखन की सामर्थ्य।

स्वाधिष्ठान चक्र—

स्थान—पेड़ू (शिश्न के सामने)। दल—छः। वर्ण—सिन्दूर। लोक—भुवः। दलों के अक्षर—बँ, भँ, मँ, यँ, रँ, लँ। तत्त्व-जल तत्त्व। बीज—बँ। बीज का वाहन—मगर। गुण—रस। देव—विष्णु। देव शक्ति—डाकिनी। यन्त्र—चन्द्राकार। ज्ञानेन्द्रिय—रसना। कर्मेन्द्रिय—लिंग। ध्यान का फल—अहंकारादि विकारों का नाश, श्रेष्ठ योग, मोह - निवृत्ति, रचना शक्ति।

मणिपूर चक्र—

स्थान - नाभि। दल—दस। वर्ण—नील। लोक—स्वः। दलों के अक्षर—डं, ढं, णं, तं, थं, दं, धं, नं, पं, फं। तत्त्व-अग्नितत्त्व। बीज—रं। बीज का वाहन—मेंढ़ा। गुण—रूप। देव—वृद्ध रुद्र। देव शक्ति—शाकिनी। यन्त्र—त्रिकोण। ज्ञानेन्द्रिय—चक्षु। कर्मेन्द्रिय—चरण। ध्यान का फल—संहार और पालन की सामर्थ्य, वचन-सिद्धि।

अनाहत चक्र—

स्थान—हृदय। दल—बारह। वर्ण—अरुण। लोक—महः। दलों के अक्षर कं, खं, गं, घं, चं, छं, जं, झं, ञं, टं, ठं। तत्त्व—वायु। देव शक्ति—काकिनी। यन्त्र—षट्कोण। ज्ञानेन्द्रिय—त्वचा। कर्मेन्द्रिय—हाथ। फल—स्वामित्व, योग सिद्धि, ज्ञान जागृति, इन्द्रिय जय, परकाया प्रवेश।

विशुद्धाख्य चक्र—

स्थान—कण्ठ। दल—सोलह। वर्ण—धूम्र। लोक—जनः। दलों के अक्षर—'अ' से लेकर 'अः' तक सोलह अक्षर। तत्त्व—आकाश। तत्त्व बीज—हं। वाहन—हाथी। गुण—शब्द। देव—पंचमुखी सदाशिव।

देवशक्ति—शाकिनी। यन्त्र—शून्य (गोलाकार)। ज्ञानेन्द्रिय—कर्ण। कर्मेन्द्रिय—पाद। ध्यान फल—चित्त शान्ति, त्रिकाल दर्शित्व, दीर्घ जीवन, तेजस्विता, सर्वहित परायणता।

आज्ञा चक्र—

स्थान—भ्रू मध्य। दल—दो। वर्ण—श्वेत। दलों के अक्षर हं, क्षं। तत्त्व—महः तत्त्व। बीज—ॐ। बीज का वाहन—नाद। देव—ज्योतिर्लिंग। देवशक्ति—हाकिनी। यन्त्र—लिंगाकार। लोक—तपः। ध्यान फल—सर्वार्थ साधन।

षट् चक्रों में उपर्युक्त छः चक्र ही आते हैं। परन्तु सहस्रार या सहस्र दल कमल को कोई-कोई लोग सातवाँ-शून्य चक्र मानते हैं। उसका भी वर्णन नीचे किया जाता है।

शून्य चक्र—

स्थान—मस्तक। दल—सहस्र।दलों के अक्षर—अं से क्षं तक की पुनरावृत्तियाँ। लोक—सत्य। तत्त्वों से अतीत। बीज तत्त्व—(:) विसर्ग। बीज का वाहन—बिन्दु। देव—परब्रह्म। देव शक्ति—महाशक्ति। यन्त्र—पूर्ण चन्द्रवत्। प्रकाश—निराकार। ध्यानफल—भक्ति, अमरता, समाधि, समस्त ऋद्धि - सिद्धियों का करतलगत होना।

पाठक जानते हैं कि कुण्डलिनी शक्ति का स्रोत है। वह हमारे शरीर का सबसे अधिक समीप चैतन्य स्फुल्लिंग है, उसमें बीज रूप से इतनी रहस्यमय शक्तियाँ गर्भित हैं, जिनकी कल्पना तक नहीं हो सकती। कुण्डलिनी शक्ति के इन छः केन्द्रों में, षट् चक्रों में भी उसका काफी प्रकाश है। जैसे सौर मण्डल में नौ ग्रह हैं, सूर्य उनका केन्द्र है और चन्द्रमा, मंगल आदि उसमें सम्बद्ध होने के कारण सूर्य की परिक्रमा करते हैं। वे सूर्य की ऊष्मा, आकर्षणी, विलयिनी आदि शक्तियों से प्रभावित और ओत - प्रोत रहते हैं। वैसे ही कुण्डलिनी की शक्तियाँ चक्रों में भी प्रसारित होती रहती हैं। एक बड़ी तिजोरी में जैसे कई छोटे-छोटे अनेक दराज होते हैं, जैसे मधुमक्खी के एक बड़े छत्ते में छोटे-छोटे अनेक छिद्र होते हैं और उनमें भी कुछ मधु भरा रहता है, वैसे ही कुण्डलिनी की कुछ शक्ति का प्रकाश चक्रों में भी होता है। चक्रों के जागरण के साथ-साथ उनमें सन्निहित कितनी ही रहस्यमय शक्तियाँ भी जाग पड़ती हैं। उनका संक्षिप्त-सा संकेत ऊपर चक्रों के ध्यान फल में बताया गया है। इनको विस्तार करके कहा जाए, तो यह शक्तियाँ भी आश्चर्यों से किसी प्रकार कम प्रतीत नहीं होंगी।

चक्रों का वेधन—

षट् चक्रों का वेधन करते हुए कुण्डलिनी तक पहुँचना और उसे जाग्रत् करके आत्मोन्नति के मार्ग में लगा देना यह एक महाविज्ञान है। ऐसा ही महाविज्ञान, जैसा कि परमाणु बम का निर्माण एवं उसका विस्फोट करना एक अत्यन्त उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य है। इसे यों ही अपने आप केवल पुस्तक पढ़कर आरम्भ नहीं कर देना चाहिये, वरन् किसी अनुभवी पथ- प्रदर्शक की संरक्षकता में यह सब किया जाना चाहिये।

चक्रों का वेधन ध्यान - शक्ति के द्वारा किया जाता है। यह सभी जानते हैं कि हमारा मस्तिष्क एक प्रकार का बिजलीघर है और उस बिजली घर की प्रमुख धारा का नाम—'मन' है। मन की गति चंचल और बहुमुखी होती है। यह हर घड़ी चंचलता मग्न और सदा उछल—कूद में व्यस्त रहता है। इस उथल—पुथल के कारण उस विद्युत् पुञ्ज का एक स्थान पर केन्द्रीकरण नहीं होता, जिससे कोई महत्त्वपूर्ण कार्य सम्पादन हो। इस के अभाव में जीवन के क्षण यों ही अस्त—व्यस्त, नष्ट होते रहते हैं। यदि उस शक्ति का एकीकरण हो जाता है, उसे एक स्थान पर संचित कर लिया जाता है तो आतिशी शीशे द्वारा, एकत्रित हुई सूर्य किरणों द्वारा आग की लपटें उठने लगना जैसे दृश्य उपस्थित हो जाते हैं। ध्यान का एक ऐसा सूक्ष्म विज्ञान है जिसके द्वारा मन की बिखरी हुई बहुमुखी शक्तियाँ एक स्थान पर एकत्रित होकर एक कार्य में लगती हैं। फलस्वरूप वहाँ असाधारण शक्ति का स्रोत प्रवाहित हो जाता है। ध्यान द्वारा मनःक्षेत्र की केन्द्रीय भूत इस बिजली से साधक षट्चक्रों का वेधन कर सकता है।

षट् चक्रों के वेधन की साधना करने के लिये अनेक ग्रन्थों में अनेक मार्ग बताये गये हैं। इसी प्रकार गुरु परम्परा से चली आने वाली साधनायें भी विविध प्रकार की हैं। इन सभी मार्गों से उद्देश्य की पूर्ति हो सकती है,

सफलता मिल सकती है, पर शर्त यह है कि उसे पूर्ण विश्वास, श्रद्धा, निष्ठा उचित पथ--प्रदर्शन में किया जाए।

अन्य साधनाओं की चर्चा और तुलना करके उनकी आलोचना, प्रत्यालोचना करना यहाँ हमें अभीष्ट नहीं है। इन पंक्तियों में तो हम एक ऐसी सुगम साधना पाठकों के सामने उपस्थित करना चाहते हैं, जिसके द्वारा गायत्री शक्ति से चक्रों का जागरण बड़ी सुविधापूर्वक हो सकता है और अन्य साधनाओं में आने वाली असाधारण कठिनाइयों एवं खतरों से स्वतंत्र रहा जा सकता है।

प्रात:काल शुद्ध शरीर और स्वस्थ चित्त से सावधान होकर पद्मासन से बैठिये। पूर्व वर्णित ब्रह्म संध्या के आरम्भिक पंचकोषों की क्रिया कीजिये। आचमन, शिखाबन्धन (शिखावन्दन), प्राणायाम, अघमर्षण और न्यास करने के बाद गायत्री के एक सौ आठ मन्त्रों की माला जपिये।

ब्रह्म संध्या कर चुकने के पश्चात् मस्तिष्क के मध्य भाग त्रिकुटी में (एक रेखा एक कान से दूसरे कान तक खींची जाए और दूसरी रेखा दोनों भौंहों के मध्य में से मस्तिष्क के मध्य तक खींची जाए, तो दोनों का मिलन जहाँ होता है, उस स्थान को त्रिकुटी कहते हैं) वेदमाता गायत्री का ज्योतिस्वरूप ध्यान करना चाहिये। मन को उसके मध्य से ज्योतिर्लिंग के मध्य में इस प्रकार अवस्थित करना चाहिये, जैसे लुहार अपने लोहे को गरम करने के लिये भट्ठी में डाल देता है और जब वह लाल हो जाता है, तो उसे बाहर निकाल कर ठोकता-पीटता और अभीष्ट वस्तु बनाता है। त्रिकुटी स्थित गायत्री ज्योति में मन को अवस्थित रखने से मन स्वयं भी तेज स्वरूप हो जाता है। तब उसे आज्ञाचक्र के स्थान में लाना चाहिये। ब्रह्मनाड़ी मेरुदण्ड से आगे बढ़कर त्रिकुटी में होती हुई सहस्रार को गयी है। इस ब्रह्मनाड़ी की पोली नली में दीप्तिमान् मन में प्रवेश करके आज्ञाचक्र में ले जाया जाता है। वहाँ स्थिरता करने पर वे सब अनुभव होते हैं, जो चक्र के लक्षणों में वर्णित हैं। मन को चक्र के दलों का, अक्षरों का, तत्त्व का, बीज का, देवशक्ति का, यन्त्र का, वाहन का, गुण—रंग का अनुभव होता है। आरम्भ में अनुभव बहुत अधूरे होते हैं। धीरे-धीरे वे अधिक स्पष्ट हो जाते हैं। कभी-कभी किन्हीं व्यक्तियों के चक्रों में कुछ लक्षण भेद भी होता है। उसे अपने अन्दर के चक्र की आकृति का अनुभव होगा।

स्वस्थ चित्त से, सावधान होकर, एक मास तक एक चक्र की साधना करने से वह प्रस्फुटित हो जाता है। ध्यान में उसके लक्षण अधिक स्पष्ट होने लगते हैं और चक्र के स्थान पर उससे सम्बन्धित मातृकाओं, ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों में अचानक कम्पन, रोमांच, प्रस्फुरण, उत्तेजना, दाद, खाज, खुजली जैसे अनुभव होते हैं। यह इस बात के चिह्न हैं कि चक्रों का जागरण हो रहा है। एक मास या न्यूनाधिक काल में इस प्रकार के चिह्न प्रकट होने लगें, ध्यान में चक्र का रूप स्पष्ट होने लगे, तो उससे आगे बढ़कर इससे नीचे की ओर दूसरे चक्र में प्रवेश करना चाहिये। विधि यही है—मार्ग वही। गायत्री ज्योति में मन को तपाकर ब्रह्मनाड़ी में प्रवेश करना और उसमें होकर पहले चक्र में जाना, फिर उसे पार करके दूसरे में जाना। इस प्रकार एक चक्र में लगभग एक मास लगता है। जब साधना पक जाती है, तो एक चक्र से दूसरे चक्र में जाने का मार्ग खुल जाता है। जब तक साधना कच्ची रहती है, तब तक द्वार रुका रहता है। साधक का मन आगे बढ़ना चाहे, तो भी द्वार नहीं मिलता और यह उसी चक्र के तन्तु जाल की भूल-भुलैयों में उलझा रह जाता है।

जब साधना देर तक नहीं पकती और साधक को आगे का मार्ग नहीं मिलता, तो उसे अनुभवी गुरु की सहायता की आवश्यकता होती है, वह जैसा उपाय बताएँ वैसा उसे करना होता है। इसी प्रकार धीरे-धीरे क्रमश: छहों चक्रों को पार करता हुआ साधक मूलाधार में स्थित कुण्डलिनी तक पहुँचता है और वहाँ उस ज्वालामुखी कराल कालस्वरूप महाशक्ति सर्पिणी के विकराल रूप का दर्शन करता है। महाकाली का प्रचण्ड स्वरूप यहीं दिखाई पड़ता है। कई साधक इस सोते सिंह को जगाने का साहस करते हुए काँप जाते हैं।

कुण्डलिनी को जगाने में उसे पीड़ित करना पड़ता है, छेदना पड़ता है, जैसे परमाणु का विस्फोट करने के लिये उसे बीच में से छेदना पड़ता है, उसी प्रकार सुप्त कुण्डलिनी को गतिशील बनाने के लिये उसी पर आघात करना होता है। इसे आध्यात्मिक भाषा में कुण्डलिनी पीड़न कहते हैं। इससे पीड़ित होकर क्षुब्ध कुण्डलिनी फुसकारती हुई जाग पड़ती है और उसका सबसे प्रथम आक्रमण, मन में लगे हुए जन्म-जन्मान्तरों के संस्कारों पर

होता है । वह संस्कारों को चबा जाती है, मन की छाती पर अपने अस्त्रों सहित चढ़ बैठती है और उसकी स्थूलता, माया-परायणता को नष्ट कर ब्रह्मभाव में परिणत कर देती है ।

इस कुण्डलिनी को जगाने और उसके जागने पर आक्रमण होने की क्रिया का पुराणों ने बड़े ही आलंकारिक और हृदयग्राही रूप से वर्णन किया है ।

महिषासुर और दुर्गा का युद्ध इसी आध्यात्मिक रहस्य का प्रतीक है । अपनी मुक्ति की कामना करते हुए, देवी के हाथों मरने की कामना से उत्साहित होकर महिषासुर (महि: पृथ्वी आदि पंचभूतों से बना हुआ मन) चण्डी (कुण्डलिनी) से लड़ने लगता है । उस चुपचाप बैठी हुई पर आक्रमण करता है । देवी क्रुद्ध होकर उससे युद्ध करती हैं । उस पर प्रत्याघात करती हैं । उसके वाहन महिष को, संस्कारों के समूह को चबा डालती हैं । मन के भौतिक आचरण को महिषासुर के शरीर को, दसों भुजाओं को, दसों दिशाओं से, सब ओर से विदीर्ण कर डालती हैं और अन्त में महि[illegible]ासुर, (साधारण बीज) चण्डी की ज्योति में मिल जाता है । महाशक्ति का अंश होकर जीवन लाभ को प्राप्त कर [illegible] है । भक्तिमयी साधना का वह रौद्ररूप बड़ा विचित्र है । इसे 'साधना—समर' कहते हैं ।

[illegible] कितने ही भक्त, प्रेम और भक्ति द्वारा ब्रह्म को प्राप्त करते हैं, वहाँ ऐसे भी कितने ही भक्त हैं , जो साधन-समर में ब्रह्म से लड़कर उसे प्राप्त करते हैं । भगवान् तो निष्ठा के भूखे हैं, वे सच्चे प्रेमी को भी मिल सकते हैं , सच्चे शत्रु को भी । भक्त योगी भी उन्हें पा सकते हैं और साधन—समर में अपने दो-दो हाथ दिखाने वाले हठयोगी, तन्त्र-मार्गी भी उन्हें प्राप्त कर सकते हैं । कुण्डलिनी जागरण ऐसा ही हठ-तंत्र है, जिसके आधार पर आत्मा तुच्छ से महान् और अणु से विभु बनकर ईश्वरीय सर्व शक्तियों से सम्पन्न हो जाती है ।

षट् चक्रों की साधना करते समय प्रतिदिन ब्रह्मनाड़ी में प्रवेश करके चक्रों का ध्यान करते हैं । यह ध्यान पाँच मिनट से आरम्भ करके तीस मिनट तक पहुँचाया जा सकता है । एक बार में इससे अधिक ध्यान करना हानिकारक है, क्योंकि अधिक ध्यान से बढ़ी ऊष्मा को सहन करना कठिन हो जाता है । ध्यान समाप्त करते समय उसी मार्ग पर वापस लौटकर मन को त्रिकुटी में लगाया जाता है और फिर ध्यान को समाप्त कर दिया जाता है ।

यह कहने की आवश्यकता ही नहीं कि साधनाकाल में ब्रह्मचर्य से रहना, एक बार भोजन करना, सात्त्विक खाद्य पदार्थ ग्रहण करना, एकान्त सेवन करना, स्वस्थ वातावरण में रहना, दिनचर्या को ठीक रखना अनिवार्य है, क्योंकि यह साधनाओं की प्रारम्भिक शर्तें मानी गई हैं ।

षट्चक्रों के वेधन और कुण्डलिनी के जागरण से ब्रह्मरन्ध्र में ईश्वरीय दिव्य शक्ति के दर्शन होते हैं और गुप्त सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं ।

यह दिव्य प्रसाद औरों को भी बाँटिये

पुण्य कर्मों के साथ प्रसाद बाँटना एक आवश्यक धर्मकृत्य माना गया है । सत्यनारायण की कथा के अन्त में पञ्चामृत, पँजीरी बाँटी जाती है, यज्ञ के अन्त में उपस्थित व्यक्तियों को हलुआ या अन्य मिष्टान्न बाँटते हैं । गीत-मंगल, पूजा-कीर्तन आदि के पश्चात् प्रसाद बाँटा जाता है, देवता, पीर-मुरीद आदि की प्रसन्नता के लिये बतासे, रेवड़ी या अन्य प्रसाद बाँटा जाता है । मन्दिरों में जहाँ अधिक भीड़ होती है और अधिक धन खर्चने को नहीं होता, वहाँ जल में तुलसी पत्र डालकर चरणामृत को ही प्रसाद रूप में बाँटते हैं । तात्पर्य यह है कि शुभ कार्यों के पश्चात् कोई न कोई प्रसाद बाँटना आवश्यक होता है । इसका कारण यह है कि शुभ कार्य के साथ जो शुभ वातावरण पैदा होता है, उसे खाद्य पदार्थों के साथ सम्बन्धित करके उपस्थित व्यक्तियों को देते हैं, ताकि वे भी उन शुभ तत्त्वों को ग्रहण करके आत्मसात् कर सकें । दूसरी बात यह है कि उस प्रसाद के साथ दिव्य तत्त्वों के प्रति श्रद्धा की धारणा होती है और मधुर पदार्थों को ग्रहण करते समय प्रसन्नता का आविर्भाव होता है । इन तत्त्वों की अभिवृद्धि से प्रसाद ग्रहण करने वाला अध्यात्म की ओर आकर्षित होता है और यह आकर्षण अन्ततः उसके लिये सर्वतोमुखी कल्याण को प्राप्त कराने वाला सिद्ध होता है । यह परम्परा एक से दूसरे में, दूसरे से तीसरे में चलती रहे और धर्मवृद्धि का यह क्रम बराबर बढ़ता रहे, इस लाभ को ध्यान में रखते हुए अध्यात्म-विद्या के आचार्यों ने यह आदेश किया कि प्रत्येक शुभ कार्य के अन्त में प्रसाद बाँटना आवश्यक है । शास्त्रों में ऐसे आदेश मिलते हैं, जिनमें कहा

गया है कि अन्त में प्रसाद वितरण न करने से यह कार्य निष्फल हो जाता है । इसका तात्पर्य प्रसाद के महत्त्व की ओर लोगों को सावधान करने का है ।

गायत्री साधना भी एक यज्ञ है । यह असाधारण यज्ञ है । अग्नि में सामग्री की आहुति देना स्थूल कर्मकाण्ड है, पर आत्मा में परमात्मा की स्थापना सूक्ष्म यज्ञ है, जिसकी महत्ता स्थूल अग्निहोत्र की अपेक्षा अनेक गुनी अधिक होती है । इतने महान् धर्मकृत्य के साथ-साथ प्रसाद का वितरण भी ऐसा होना चाहिये , जो उसकी महत्ता के अनुरूप हो । रेवड़ी, बतासे, लड्डू या हलुआ-पूरी बाँट देने मात्र से यह कार्य पूरा नहीं हो सकता । गायत्री का प्रसाद तो ऐसा होना चाहिये, जिसे ग्रहण करने वाले को स्वर्गीय स्वाद मिले, जिसे खाकर उसकी आत्मा तृप्त हो जाए । गायत्री ब्राह्मी शक्ति है, उसका प्रसाद भी 'ब्राह्मी प्रसाद' होना चाहिये, तभी वह उपयुक्त गौरव का कार्य होगा । इस प्रकार का प्रसाद हो सकता है—ब्रह्मदान, ब्राह्मी स्थिति की ओर चलाने का आकर्षण, प्रोत्साहन । जिस व्यक्ति को ब्रह्म-प्रसाद लेना है, उसे आत्म-कल्याण की दिशा में आकर्षित करना और उस ओर चलने के लिये उसे प्रोत्साहित करना ही प्रसाद है ।

यह प्रकट है कि भौतिक और आत्मिक आनन्द के समस्त स्रोत मानव प्राणी के अन्तःकरण में छिपे हुए हैं । सम्पत्तियाँ संसार में बाहर नहीं हैं, बाहर तो पत्थर, धातुओं के टुकड़े और निर्जीव पदार्थ भरे पड़े हैं, सम्पत्तियों के समस्त कोष आत्मा में सन्निहित हैं, जिनके दर्शन मात्र से मनुष्य को तृप्ति मिल जाती है और उनके उपयोग करने पर आनन्द का पारावार नहीं रहता । उन आनन्द भण्डारों को खोलने की कुञ्जी आध्यात्मिक साधनाओं में है और उन समस्त साधनाओं में गायत्री-साधना सर्वश्रेष्ठ है । यह श्रेष्ठता अतुलनीय है, असाधारण है । उनकी सिद्धियाँ-चमत्कारों का कोई पारावार नहीं । ऐसे श्रेष्ठ साधना के मार्ग पर यदि किसी को आकर्षित किया जाए, प्रोत्साहित किया जाए और जुटा दिया जाए, तो इससे बढ़कर उस व्यक्ति का और कोई उपकार नहीं हो सकता । जैसे-जैसे उसके अन्दर सात्त्विक तत्त्वों की वृद्धि होगी, वैसे-वैसे उसके विचार और कार्य पुण्यमय होते जायेंगे और उसका प्रभाव दूसरों पर पड़ने से वे भी सन्मार्ग का अवलम्बन प्राप्त करेंगे । यह शृंखला जैसे-जैसे बढ़ेगी, वैसे ही वैसे संसार में सुख-शान्ति की, पुण्य की मात्रा बढ़ेगी और इस कर्म के पुण्य फल में उस व्यक्ति का भी भाग होगा, जिसने किसी को आत्म-मार्ग में प्रोत्साहित किया था ।

जो व्यक्ति गायत्री की साधना करे, उसे प्रतिज्ञा करनी चाहिये कि मैं भगवती को प्रसन्न करने के लिये उसका महाप्रसाद, ब्रह्म-प्रसाद अवश्य वितरण करूँगा । यह वितरण इस प्रकार का होना चाहिये, जिनमें पहले के कुछ शुभ संस्कारों के बीज मौजूद हों, उन्हें धीरे-धीरे गायत्री का माहात्म्य, रहस्य, लाभ समझाते रहा जाए । जो लोग आध्यात्मिक उन्नति के महत्त्व को नहीं समझते, उन्हें गायत्री से होने वाले भौतिक लाभों का सविस्तार वर्णन किया जाए, 'अखण्ड ज्योति' द्वारा प्रकाशित गायत्री साहित्य पढ़ाया जाए । इस प्रकार उनकी रुचि को इस दिशा में मोड़ा जाए, जिससे वे आरम्भ में भले ही सकाम भावना से ही सही, वेदमाता का आश्रय ग्रहण करें, पीछे तो स्वयं ही इस महा-लाभ पर मुग्ध होकर छोड़ने का नाम न लेंगे । एक बार रास्ते पर डाल देने से गाड़ी अपने आप ठीक मार्ग पर चलती जाती है ।

यह ब्रह्म प्रसाद अन्य साधारण स्थूल पदार्थों की अपेक्षा कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है । आइये, इसे धन से ही नहीं, प्रयत्न से ही वितरण हो सकने वाले ब्रह्म प्रसाद को वितरण करके वेदमाता की कृपा प्राप्त कीजिये और अक्षय पुण्य के भागीदार बनिये ।

गायत्री से यज्ञ का सम्बन्ध

यज्ञ भारतीय संस्कृति का आदि प्रतीक है । हमारे धर्म में जितनी महानता यज्ञ को दी गयी है, उतनी और किसी को नहीं दी गयी है । हमारा कोई भी शुभ-अशुभ, धर्म-कृत्य यज्ञ के बिना पूर्ण नहीं होता । जन्म से लेकर अन्त्येष्टि तक १६ संस्कार होते हैं, इनमें अग्निहोत्र आवश्यक है । जब बालक का जन्म होता है, तो उसकी रक्षार्थ सूतक-निवृत्ति तक घर में अखण्ड अग्नि स्थापित रखी जाती है । नामकरण, यज्ञोपवीत, विवाह आदि संस्कारों में भी हवन अवश्य होता है । अन्त में जब शरीर छूटता है तो उसे अग्नि को ही सौंपते हैं । अब लोग मृत्यु के समय

चिता जला कर यों ही लाश को भस्म कर देते हैं, पर शास्त्रों में देखा जाए, तो वह भी एक संस्कार है। इसमें वेदमन्त्रों से विधिपूर्वक आहुतियाँ चढ़ाई जाती हैं और शरीर यज्ञ भगवान् को अर्पण किया जाता है।

प्रत्येक कथा, कीर्तन, व्रत, उपवास, पर्व, त्योहार, उत्सव, उद्यापन में हवन को आवश्यक माना जाता है। अब लोग उसका महत्त्व एवं विधान भूल गये हैं और केवल चिह्न पूजा करके काम चला लेते हैं। घरों में स्त्रियाँ किसी रूप में यज्ञ की चिह्न पूजा करती हैं। वे त्योहारों या पर्वों पर 'अग्नि को जिमाने' या 'अगियारी' करने का कृत्य किसी न किसी रूप में करती रहती हैं। थोड़ी-सी अग्नि लेकर उस पर घी डालकर प्रज्वलित करना और उस पर पकवान के छोटे-छोटे ग्रास-चढ़ाना और फिर जल से अग्नि की परिक्रमा कर देना-यह विधान हम घर-घर में प्रत्येक पर्व एवं त्योहारों पर होते देख सकते हैं। पितरों का श्राद्ध जिस दिन होगा, उस दिन ब्राह्मण भोजन से पूर्व इस प्रकार अग्नि को भोजन अवश्य कराया जाएगा, क्योंकि यह स्थिर मान्यता है कि अग्नि के मुख में दी हुई आहुति देवताओं और पितरों को अवश्य पहुँचती है।

विशेष अवसर पर तो हवन करना ही पड़ता है। नित्य की चूल्हा, चक्की, बुहारी आदि से होने वाली जीव हिंसा एवं पातकों के निवारणार्थ नित्य पंच यज्ञ करने का विधान है। उन पाँचों में बलिवैश्व भी है। बलिवैश्व अग्नि में आहुति देने से होता है। इस प्रकार शास्त्रों की आज्ञानुसार तो नित्य हवन करना भी हमारे लिये आवश्यक है। होली तो यज्ञ का त्योहार है। आजकल लोग लकड़ी, उपले जलाकर होली मनाते हैं। शास्त्रों में देखा जाए, तो यह यज्ञ है। लोग यज्ञ की आवश्यकता और विधि को भूल गये, पर केवल ईंधन जलाकर उस प्राचीन परम्परा की किसी प्रकार पूर्ति कर देते हैं। इसी प्रकार श्रावणी, दशहरा, दीपावली के त्योहारों पर किसी न किसी रूप में हवन अवश्य होता है। नवरात्र में स्त्रियाँ देवी की पूजा करती हैं, तो अग्नि के मुख में देवी के निमित्त घी, लौंग, जायफल आदि अवश्य चढ़ाती हैं। सत्यनारायण व्रत कथा, रामायण-पारायण, गीता-पाठ, भागवत-सप्ताह आदि कोई भी शुभ-कर्म क्यों न हो, हवन इसमें अवश्य रहेगा।

साधनाओं में भी हवन अनिवार्य है। जितने भी पाठ, पुरश्चरण, जप, साधन किये जाते हैं, वे चाहे वेदोक्त हों, चाहे तांत्रिक, हवन उसमें किसी न किसी रूप में अवश्य करना पड़ेगा। गायत्री उपासना में भी हवन आवश्यक है। अनुष्ठान या पुरश्चरण में जप से दसवाँ भाग हवन करने का विधान है। परिस्थितिवश दसवाँ भाग आहुति न दी जा सके, तो शतांश (सौवाँ भाग) आवश्यक ही है। गायत्री को माता और यज्ञ को पिता माना गया है। इन्हीं दोनों के संयोग से मनुष्य का जन्म होता है, जिसे 'द्विजत्व' कहते हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य को द्विज कहते हैं। द्विज का अर्थ है—दूसरा जन्म। जैसे अपने शरीर को जन्म देने वाले माता-पिता की सेवा-पूजा करना मनुष्य का नित्य-कर्म है, उसी प्रकार गायत्री माता और यज्ञ पिता की पूजा भी प्रत्येक द्विज का आवश्यक धर्म-कर्त्तव्य है।

धर्म ग्रन्थों में पग-पग पर यज्ञ की महिमा का गान है। वेद में यज्ञ का विषय प्रधान है, क्योंकि यज्ञ एक ऐसा विज्ञानमय विधान है जिससे मनुष्य का भौतिक और आध्यात्मिक दृष्टि से कल्याणकारक उत्कर्ष होता है। भगवान् यज्ञ से प्रसन्न होते हैं। कहा गया है—

यो यज्ञैः यज्ञपरमैरिज्यते यज्ञसंज्ञितः।
तं यज्ञपुरुषं विष्णुं नमामि प्रभुमीश्वरम्॥

"जो यज्ञ द्वारा पूजे जाते हैं, यज्ञमय हैं, यज्ञ रूप हैं, उन यज्ञ पुरुष विष्णु भगवान् को नमस्कार है।"

यज्ञ मनुष्य की अनेक कामनाओं को पूर्ण करने वाला तथा स्वर्ग एवं मुक्ति प्रदान करने वाला है। यज्ञ को छोड़ने वालों की शास्त्रों में बहुत निन्दा की गयी है—

कस्त्वा विमुञ्चति स त्वा विमुञ्चति कस्मै त्वा विमुञ्चति
तस्मै त्वा विमुञ्चति। पोषाय रक्षसां भागोसि॥ - यजु.२.२३

"सुख-शान्ति चाहने वाला कोई व्यक्ति यज्ञ का परित्याग नहीं करता। जो यज्ञ को छोड़ता है, उसे यज्ञ रूप परमात्मा भी छोड़ देते हैं। सबकी उन्नति के लिये आहुतियाँ यज्ञ में छोड़ी जाती हैं, जो नहीं छोड़ता वह राक्षस हो जाता है।"

यज्ञेन पापैः बहुभिर्विमुक्तः प्राप्नोति लोकान् परमस्य विष्णोः। —हारीत

"यज्ञ से अनेक पापों से छुटकारा मिलता है तथा परमात्मा के लोक की भी प्राप्ति होती है।"

पुत्रार्थी लभते पुत्रान् धनार्थी लभते धनम्।
भार्यार्थी शोभनां भार्यां कुमारी च शुभं पतिम्॥
भ्रष्टराज्यस्तथा राज्यं श्रीकामः श्रियमाप्नुयात्।
यं यं प्रार्थयते कामं स वै भवति पुष्कलः॥
निष्कामः कुरुते यस्तु स परं ब्रह्म गच्छति। —मत्स्यपुराण ९३।११७-११८

यज्ञ से पुत्रार्थी को पुत्र लाभ, धनार्थी को धन लाभ, विवाहार्थी को सुन्दर भार्या, कुमारी को सुन्दर पति, श्री-कामना वाले को ऐश्वर्य प्राप्त होता है और निष्काम भाव से यज्ञानुष्ठान करने से परमात्मा की प्राप्ति होती है।

न तस्य ग्रहपीडा स्यान्नच बन्धु-धनक्षयः।
ग्रह यज्ञ व्रतं गेहे लिखितं यत्र तिष्ठति॥
न तत्र पीडा पापानां न रोगो न च बन्धनम्।
अशेष - यज्ञ - फलदमशेषाघौघनाशनम्॥ —कोटि होम पद्धति

यज्ञ करने वाले को ग्रह पीड़ा, बन्धु नाश, धन क्षय, पाप, रोग, बन्धन आदि की पीड़ा नहीं सहनी पड़ती। यज्ञ का फल अनन्त है।

देवाः सन्तोषिता यज्ञैर्लोकान् सम्बंधयन्त्युत।
उभयोर्लोकयो र्देव भूतिर्यज्ञः प्रदृश्यते॥
तस्माद्यद् याति देवत्वं पूर्वजैः सह मोदते।
नास्ति यज्ञ-समं दानं नास्ति यज्ञ-समो विधिः॥
सर्व धर्म समुद्देश्यो देव यज्ञे समाहितः॥

"यज्ञों से सन्तुष्ट होकर देवता संसार का कल्याण करते हैं। यज्ञ द्वारा लोक-परलोक का सुख प्राप्त हो सकता है। यज्ञ से स्वर्ग की प्राप्ति होती है। यज्ञ के समान कोई दान नहीं, यज्ञ के समान कोई विधि-विधान नहीं, यज्ञ में ही सब धर्मों का उद्देश्य समाया हुआ है।"

असुराश्च सुराश्चैव पुण्यहेतोर्मख-क्रियाम्।
प्रयतन्ते महात्मानस्तस्माद्यज्ञाः परायणाः।
यज्ञैरेव महात्मानो बभूवुरधिकाः सुराः॥ —महाभारत आश्व० ३६,७

"असुर और सुर सभी पुण्य के मूल हेतु यज्ञ के लिये प्रयत्न करते हैं। सत्पुरुषों को सदा यज्ञ-परायण होना चाहिये। यज्ञों से ही बहुत से सत्पुरुष देवता बने हैं।"

यदिक्षितायुर्यदि वा परेतो यदि मृत्योरन्तिकं नीत एव।
तमाहरामि निर्ऋते रुपस्थादस्पार्शमेनं शत-शारदाय॥ -अथर्व० ३।११।२

"यदि रोगी अपनी जीवनी-शक्ति को खो भी चुका हो, निराशाजनक स्थिति को पहुँच गया हो, यदि मरणकाल भी समीप आ पहुँचा हो, तो भी यज्ञ उसे मृत्यु के चंगुल से बचा लेता है और सौ वर्ष जीवित रहने के लिये पुनः बलवान् बना देता है।"

यज्ञैराप्यायिता देवा वृष्ट्युत्सर्गेण वै प्रजाः।
आप्यायन्ते तु धर्मज्ञ! यज्ञाः कल्याण-हेतवः॥ —विष्णु पुराण

"यज्ञ से देवताओं को बल मिलता है। यज्ञ द्वारा वर्षा होती है। वर्षा से अन्न और प्रजापालन होता है। हे धर्मज्ञ! यज्ञ ही कल्याण का हेतु है।"

प्रयुक्तया यया चेष्ट्या राजयक्ष्मा पुरा जितः ।
तां वेदविहितामिष्टिमारोग्यार्थी प्रयोजयेत् ।। —चरक चि० खण्ड ८ ।१२२

"तपेदिक सरीखे रोगों को प्राचीनकाल में यज्ञ के प्रयोगों से नष्ट किया जाता था। रोग-मुक्ति की इच्छा रखने वालों को चाहिये कि उस वेद विहित यज्ञ का आश्रय लें।"

अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाहमहमौषधम् ।
मन्त्रोऽहमहमेवाज्यमहमग्निरहं हुतम् ।। —गीता ९ ।१६

"मैं ही क्रतु हूँ, मैं ही यज्ञ हूँ, मैं ही स्वधा हूँ, मैं ही औषधि हूँ और मन्त्र, घृत, अग्नि और हवन भी मैं ही हूँ।"

नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम । —गीता ४ ।३१

"हे अर्जुन ! यज्ञ रहित मनुष्य को इस लोक में भी सुख नहीं मिल सकता, फिर परलोक का सुख तो होगा ही कैसे ?"

नास्ति अयज्ञस्य लोको वै नायज्ञो विन्दते शुभम् ।
अयज्ञो न च पूतात्मा नश्यतिच्छिन्नपर्णवत् ।। -शंख स्मृति

"यज्ञ न करने वाला मनुष्य लौकिक और पारलौकिक सुखों से वञ्चित हो जाता है। यज्ञ न करने वाले की आत्मा पवित्र नहीं होती और वह पेड़ से टूटे हुए पत्ते की तरह नष्ट होता है।"

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः ।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक् ।।
देवान् भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः ।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ ।।
इष्टान्भोगान्हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः । —गीता ३ ।१० ।११

'ब्रह्माजी ने मनुष्य के साथ ही यज्ञ को भी पैदा किया और उनसे कहा कि इस यज्ञ से तुम्हारी उन्नति होगी, यह यज्ञ तुम्हारी इच्छित कामनाओं, आवश्यकताओं को पूर्ण करेगा। तुम लोग यज्ञ द्वारा देवताओं की पुष्टि करो, वे देवता तुम्हारी उन्नति करेंगे। इस प्रकार दोनों अपने कर्तव्य का पालन करते हुए कल्याण को प्राप्त होंगे। यज्ञ द्वारा पुष्ट किये हुए देवता अनायास ही तुम्हारी सुख-शान्ति की वस्तुयें प्रदान करेंगे।'

असंख्यों शास्त्र वचनों में से कुछ प्रमाण ऊपर दिये गये हैं। इनसे यज्ञ की महत्ता का अनुमान सहज ही हो जाता है। पूर्वकाल में आध्यात्मिक एवं भौतिक उद्देश्यों के निमित्त बड़े-बड़े यज्ञ हुआ करते थे। देवता भी यज्ञ करते थे, असुर भी यज्ञ करते थे, ऋषियों द्वारा यज्ञ किये जाते थे, राजा लोग अश्वमेध आदि विशाल यज्ञों का आयोजन करते थे, साधारण गृहस्थ अपनी-अपनी सामर्थ्यों के अनुसार समय-समय पर यज्ञ किया करते थे। असुर लोग सदैव यज्ञों को विध्वंस करने का प्रयत्न इसलिये किया करते थे कि उनके शत्रुओं का लाभ एवं उत्कर्ष न होने पाये। इसी प्रकार असुरों के यज्ञों का विध्वंस भी कराया गया है। रामायण में राक्षसों के ऐसे यज्ञ का वर्णन है, जिसे हनुमान् जी ने नष्ट किया था। यदि वह सफल हो जाता, तो राक्षस अजेय हो जाते।

राजा दशरथ ने पुत्रेष्टि यज्ञ करके चार पुत्र पाये थे। राजा नृग यज्ञों के द्वारा स्वर्ग जाकर इन्द्रासन के अधिकारी हुए थे। राजा अश्वपति ने यज्ञ द्वारा सन्तान प्राप्त करने का सुयोग प्राप्त किया था। इन्द्र ने स्वयं भी यज्ञों द्वारा ही स्वर्ग पाया था। भगवान् राम ने अपने यहाँ अश्वमेध यज्ञ कराया था। श्रीकृष्णजी की प्रेरणा से पाण्डवों ने राजसूय यज्ञ कराया था, जिसमें श्रीकृष्णजी ने आगन्तुकों के स्वागत-सत्कार का भार अपने ऊपर लिया था। पापों के प्रायश्चित्त स्वरूप, अनिष्टों और प्रारब्धजन्य दुर्भाग्यों की शान्ति के निमित्त, किसी अभाव की पूर्ति के लिये, कोई सहयोग या सौभाग्य प्राप्त करने के प्रयोजन से, रोग निवारणार्थ देवताओं को प्रसन्न करने हेतु, धन-धान्य की अधिक उपज के लिये अमृतमयी वर्षा के निमित्त, वायु-मण्डल में से अस्वास्थ्यकर तत्त्वों का उन्मूलन करने के निमित्त हवन-यज्ञ किये जाते थे और उनका परिणाम भी वैसा ही होता था।

यज्ञ एक महत्त्वपूर्ण विज्ञान है। जिन वृक्षों की समिधायें काम में ली जाती हैं, उनमें विशेष प्रकार के गुण होते हैं। किस प्रयोग के लिये किस प्रकार की हव्य वस्तुयें होमी जाती हैं, उनका भी विज्ञान है। उन वस्तुओं के आपस में मिलने से एक विशेष गुण संयुक्त सम्मिश्रण तैयार होता है, जो जलने पर वायुमण्डल में एक विशिष्ट प्रवाह पैदा करता है। वेद-मन्त्रों के उच्चारण की शक्ति से उस प्रभाव में और भी अधिक वृद्धि होती है। फलस्वरूप जो व्यक्ति उसमें सम्मिलित होते हैं उन पर तथा निकटवर्ती वायुमण्डल पर उसका बड़ा प्रभाव पड़ता है। सूक्ष्म प्रकृति के अन्तराल में जो नाना प्रकार की दिव्य शक्तियाँ काम करती हैं, उन्हें देवता कहते हैं। इन देवताओं को अनुकूल बनाना, उनको उपयोगी दिशा में प्रयोग करना, उनसे सम्बन्ध स्थापित करना, यही देवताओं को प्रसन्न करना है। यह प्रयोजन यज्ञ द्वारा आसानी से पूरा हो जाता है।

संसार में कभी भी किसी वस्तु का नाश नहीं होता केवल रूपान्तर होता रहता है। जो वस्तुएँ हवन में होमी जाती हैं, वे तथा वेद-मन्त्रों की शक्ति के साथ जो सद्भावनायें यज्ञ द्वारा उत्पन्न की जाती हैं, वे दोनों मिलकर आकाश में छा जाती हैं। उनका प्रवाह समस्त संसार के लिये कल्याणकारक परिणाम उत्पन्न करने वाला होता है। इस प्रकार यह संसार की सेवा का, विश्व में सुख-शान्ति उत्पन्न करने का एक उत्तम माध्यम एवं पुण्य-परमार्थ है। यज्ञ से याज्ञिक की आत्म-शुद्धि होती है, उनके पाप-ताप नष्ट होते हैं तथा शान्ति एवं सद्गति उपलब्ध होती है। सच्चे हृदय से यज्ञ करने वाले मनुष्यों का लोक-परलोक सुधरता है। यदि उनका पुण्य पर्याप्त हुआ, तब तो उन्हें स्वर्ग या मुक्ति की प्राप्ति होती है अन्यथा यदि दूसरा जन्म भी लेना पड़ा तो सुखी, श्रीमान्, साधन-सम्पन्न उच्च परिवार में जन्म होता है, ताकि आगे के लिये वह सुविधा के साथ सत्कर्म करता हुआ लक्ष्य को सफलतापूर्वक प्राप्त कर सके।

यज्ञ का अर्थ दान, एकता, उपासना से है। यज्ञ का वेदोक्त आयोजन शक्तिशाली मन्त्रों का विधिवत् उच्चारण, विधिपूर्वक बनाये हुए कुण्ड, शास्त्रोक्त समिधायें तथा सामग्रियाँ जब ठीक विधानपूर्वक हवन की जाती हैं, उनका दिव्य प्रभाव विस्तृत आकाश मण्डल में फैल जाता है। उसके प्रभाव के फलस्वरूप प्रजा के अन्तःकरण में प्रेम, एकता, सहयोग, सद्भाव, उदारता, ईमानदारी, संयम, सदाचार, आस्तिकता आदि सद्भावों एवं सद्विचारों का स्वयमेव आविर्भाव होने लगता है। पत्तों से आच्छादित दिव्य आध्यात्मिक वातावरण के स्थान पर जो सन्तान पैदा होती है, वह स्वस्थ, सद्गुणी एवं उच्च विचारधाराओं से परिपूर्ण होती है। पूर्वकाल में पुत्र प्राप्ति के लिये ही पुत्रेष्टि यज्ञ कराते हों सो बात नहीं, जिनको बराबर सन्तानें प्राप्त होती थीं, वे भी सद्गुणी एवं प्रतिभावान् सन्तान प्राप्त करने के लिये पुत्रेष्टि यज्ञ कराते थे। गर्भाधान, सीमान्त, पुंसवन, जातकर्म, नामकरण आदि संस्कार बालक के जन्म लेते-लेते अबोध अवस्था में ही हो जाते थे। इनमें से प्रत्येक में हवन होता था, ताकि बालक के मन पर दिव्य प्रभाव पड़ें और वह बड़ा होने पर पुरुष सिंह एवं महापुरुष बने। प्राचीनकाल का इतिहास साक्षी है, कि जिन दिनों इस देश में यज्ञ की प्रतिष्ठा थी, उन दिनों यहाँ महापुरुषों की कमी नहीं थी। आज यज्ञ का तिरस्कार करके अनेक दुर्गुणों, रोगों, कुसंस्कारों और बुरी आदतों से ग्रसित बालकों से ही हमारे घर भरे हुए हैं।

यज्ञ से अदृश्य आकाश में जो आध्यात्मिक विद्युत् तरंगें फैलती हैं, वे लोगों के मनों से द्वेष, पाप, अनीति, वासना, स्वार्थपरता, कुटिलता आदि बुराइयों को हटाती हैं। फलस्वरूप, उससे अनेकों समस्यायें हल होती हैं। अनेकों उलझनें, गुत्थियाँ, पेचीदगियाँ, चिन्तायें, भय, आशंकायें तथा बुरी संभावनायें समूल नष्ट हो जाती हैं। राजा, धनी, सम्पन्न लोग, ऋषि-मुनि बड़े-बड़े यज्ञ करते थे, जिससे दूर-दूर तक का वातावरण निर्मल होता था और देश-व्यापी, विश्व-व्यापी बुराइयाँ तथा उलझनें सुलझती थीं।

बड़े रूप में यज्ञ करने की जिनकी सामर्थ्य है, उन्हें वैसे आयोजन करने चाहिये। अग्नि का मुख ईश्वर का मुख है। उसमें जो कुछ खिलाया जाता है, वह सच्चे अर्थों में ब्रह्मभोज है। ब्रह्म अर्थात् परमात्मा, भोज अर्थात् भोजन, परमात्मा को भोजन कराना, यज्ञ के मुख में आहुति छोड़ना ही है। भगवान् हम सबको खिलाता है, हमारा भी कर्तव्य है कि अपने उपकारी के प्रति पूजा करने में कंजूसी न करें। जिनकी आर्थिक स्थिति वैसी नहीं है, वे कई व्यक्ति थोड़ा-थोड़ा सहयोग करके सामूहिक यज्ञ की व्यवस्था कर सकते हैं। जहाँ साधन, सुयोग न हों, वहाँ

यदाकदा छोटे-छोटे हवन किये जा सकते हैं अथवा जहाँ नियमित यज्ञ होते हैं, वहाँ अपनी ओर से कुछ आहुतियों का हवन कराया जा सकता है । कोई अन्य व्यक्ति यज्ञ कर रहे हों तो उसमें समय, सहयोग एवं सहायता देकर उसे सफल बनाने का प्रयत्न भी यज्ञ में भागीदार होना ही है ।

हमें यह निश्चित रूप से समझ लेना चाहिये कि यज्ञ में जो कुछ धन, सामग्री, श्रम लगाया जाता है वह कभी निरर्थक नहीं जाता । एक प्रकार से वह देवताओं के बैंक में जमा हो जाता है और उचित अवसर पर सन्तोषजनक ब्याज समेत वापस मिल जाता है । विधिपूर्वक शास्त्रीय पद्धति और विशिष्ट उपचारों तथा विधानों के साथ किये गये हवन तो और भी महत्त्वपूर्ण होते हैं । वे एक प्रकार से दिव्य अस्त्र बन जाते हैं । पूर्वकाल में यज्ञ के द्वारा मनोवांछित वर्षा होती थी, योद्धा लोग युद्ध में विजयश्री प्राप्त करते थे और योगी आत्म-साक्षात्कार करते थे । यज्ञ को वेदों में 'कामधुक्' कहा है, जिसका आशय यही है कि वह मनुष्य के सभी अभावों और बाधाओं को दूर करने वाला है ।

नित्य का अग्निहोत्र बहुत सरल है । उसमें कुछ इतना भारी खर्च नहीं होता कि मध्यम वृत्ति का मनुष्य उस भार को उठा न सके । जो लोग नित्य हवन नहीं कर सकते, वे सप्ताह में एक बार रविवार अथवा अमावस्या, पूर्णमासी को अथवा महीने में एक बार पूर्णमासी को थोड़ा या बहुत हवन करने का प्रयत्न करें । विधि-विधान भी इन साधारण हवनों का कोई कठिन नहीं है । "गायत्री यज्ञ विधान" पुस्तक में उसकी सरल विधियाँ बताई जा चुकी हैं । उनके आधार पर बिना पण्डित-पुरोहित की सहायता के कोई भी द्विज आसानी से वह करा सकता है । जहाँ कुछ भी विधान न मालूम हो, वहाँ केवल शुद्ध घृत की आहुतियाँ गायत्री मन्त्र के अन्त में 'स्वाहा' शब्द लगाते हुए दी जा सकती हैं । किसी न किसी रूप में यज्ञ परम्परा को जारी रखा जाए, तो वह भारतीय संस्कृति की एक बड़ी भारी सेवा है ।

साधारण होम भी बहुत उपयोगी होता है, उससे घर की वायु शुद्धि, रोग-निवृत्ति, अनिष्टों से आत्म-रक्षा होती है । फिर विशेष आयोजन के साथ विधि-विधानपूर्वक किये गये यज्ञ तो असाधारण फल उत्पन्न करते हैं । यह एक विद्या है । पाँचों तत्त्वों के होम में एक वैज्ञानिक सम्मिश्रण होता है जिससे एक प्रचण्ड शक्ति को "द्वि मूर्धा, द्वि नासिका, सप्तहस्त, द्वि मुख, सप्त जिह्वा, उत्तर मुख कोटि द्वादश मूर्धा, द्वि पंचाशत्कला युतम्" आदि विशेषण युक्त कहा गया है । इस रहस्यपूर्ण संकेत में यह बताया गया है कि यज्ञाग्नि की मूर्धा भौतिक और आध्यात्मिक दोनों हैं । ये क्षेत्र सफल बनाये जा सकते हैं । स्थूल और सूक्ष्म प्रकृति यज्ञ की नासिका है, उन पर अधिकार प्राप्त किया जा सकता है । सातों प्रकार की सम्पदायें यज्ञाग्नि के हाथ में हैं, वाममार्ग और दक्षिण मार्ग ये दो मुख हैं, सातों लोक जिह्वायें हैं । इन सब लोकों में जो कुछ भी विशेषतायें हैं , वे यज्ञाग्नि के मुख में मौजूद हैं । उत्तर ध्रुव का चुम्बकत्व केन्द्र अग्नि मुख है । ५२ कलायें यज्ञ की ऐसी हैं , जिनमें से कुछ को प्राप्त करके ही रावण इतना शक्तिशाली हो गया था । यदि यह सभी कलायें उपलब्ध हो जाएँ, तो मनुष्य साक्षात् अग्नि स्वरूप हो सकता है और विश्व के सभी पदार्थ उसके करतलगत हो सकते हैं । यज्ञ की महिमा अनन्त है और उसका आयोजन भी फलदायक होता है । गायत्री उपासकों के लिये तो यज्ञ पिता तुल्य पूजनीय है । यज्ञ भगवान् की पूजा होती रहे, यह प्रयत्न करना आवश्यक है ।

* * *

गायत्री महाविज्ञान

द्वितीय भाग

भूमिका

गायत्री के विषय में हमारे प्राचीन ग्रन्थों सुविस्तृत वर्णन है । अनेक ग्रन्थों में गायत्री के विवेचन, इतिहास, विवरण, साधन एवं माहात्म्य के सम्बन्ध में बहुत कुछ लिखा हुआ है । विगत बीस वर्षों में गायत्री सम्बन्धी शोध के लिए हमने प्राय: दो हजार आर्ष ग्रन्थ पढ़े हैं । उनमें कितने ही प्रकरण तो ऐसे गूढ़ हैं, जिनका समझना केवल इस मार्ग के विशेषज्ञों के लिए ही सम्भव है; परन्तु सर्वसाधारण के लिए उपयोगी साहित्य भी इतना अधिक है कि उसे पढ़ने और समझने की उपयोगिता भी कम नहीं है ।

गायत्री विद्या का सर्वसुलभ प्राचीन साहित्य इस पुस्तक में संकलित किया गया है । यद्यपि हमारे तत् सम्बन्धी संकलित साहित्य का यह एक अंश मात्र ही है, फिर भी इससे यह तो जाना जा सकता है कि गायत्री विद्या का कितना अधिक महत्त्व है । यदि सुयोग हुआ तो अन्य साहित्य भी प्रकाशित करेंगे ।

गायत्री मन्त्र अकेला ही इतना सारगर्भित है, कि उसे समझने में कई जन्म लग सकते हैं । साथ ही उसके गर्भ में वह सभी तत्त्वज्ञान भरा हुआ है, जिसकी व्याख्या के लिए वेद, शास्त्र, पुराण, इतिहास, दर्शन, उपनिषद् , ब्राह्मण, आरण्यक, स्मृति, नीति, संहिता एवं सूत्र ग्रन्थों की रचना की गई है । इस पुस्तक में वर्णित गायत्री सम्बन्धी लघु संग्रहों से पाठक इस बात का अनुमान कर सकते हैं कि गायत्री विद्या कितनी अगाध है ।

इस पुस्तक के प्रथम खण्ड में गायत्री सम्बन्धी आवश्यक जानकारी एवं सर्वसाधारण के लिए उपयोगी साधन-विधान का विस्तारपूर्वक उल्लेख कर चुके हैं, जो बात समझ में न आये, जवाबी पत्र द्वारा उसको पूछा जा सकता है । वाममार्गी तांत्रिक साधनाओं के सम्बन्ध में पूछताछ करना निरर्थक है; क्योंकि यह विज्ञान केवल सुपरीक्षित, अधिकारी एवं उपयुक्त मनोभूमि के लोगों के लिए ही सीमित एवं सुरक्षित है ।

हमारा सुनिश्चित विश्वास है कि मनुष्य के लिए गायत्री से बढ़कर और कोई तत्त्वज्ञान एवं जीवनक्रम नही हो सकता । इस महाविद्या के प्रचार में यह पुस्तक सहायक सिद्ध होगी- ऐसा हमारा विश्वास है ।

– श्रीराम शर्मा आचार्य

गायत्री महाविज्ञान

द्वितीय-भाग

गायत्री माहात्म्य

गायत्री के इतने महान् लाभों के मूल में क्या-क्या कारण हैं , जिनके कारण इतना सब आश्चर्य होता है, इसके बारे में पूर्ण जानकारी होना तो मनुष्यों के लिए कठिन है, पर उन महान् कारणों में एक कारण यह भी है कि गायत्री के पीछे अनेक मनस्वी साधकों का जगमगाता हुआ साधना-बल है । सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा से लेकर आधुनिक काल तक समस्त ऋषि-मुनियों ने, साधु-महात्माओं ने, श्रेयमार्गियों ने गायत्री मंत्र का आश्रय लिया है । इन सबके द्वारा जितना साधन, जप, अनुष्ठान गायत्री मन्त्र का हुआ है उतना और किसी का नहीं हुआ । अत्यन्त उच्चकोटि की आत्माओं ने अपनी सर्वश्रेष्ठ भावनाओं को सर्वाधिक एकाग्रता और तन्मयता के साथ गायत्री में लगाया है । कल्प-कल्पान्तरों से यह क्रम चलता आया है । इस प्रकार इस एक मंत्र के पीछे इतनी उच्चकोटि की आत्म-विद्युत् सम्मिलित हो गयी है कि सूक्ष्म लोकों में उसका एक भारी पुञ्ज जमा हो गया है ।

विज्ञान बताता है कि कोई शब्द या विचार कभी नष्ट नहीं होता । आज जो बातें कही जा रही हैं या सोची जा रही हैं, वे अपनी तरंगों के साथ आकाश में फैल जायेंगी और अनन्तकाल तक सृष्टि के अन्तराल में किसी न किसी रूप में विद्यमान रहेंगी । जो तरंगें विशेष बलवान् होती हैं, वे तो विशेष रूप से प्रदीप्त रहती हैं । महाभारत युद्ध के संस्मरण और तानसेन के गायन की तरंगों को सूक्ष्म आकाश में से पकड़ कर रिकार्ड बना लेने के लिए वैज्ञानिक प्रयत्न चल रहे हैं । यदि वे सफल हुए तो प्राचीनकाल की महत्त्वपूर्ण वार्ताओं को ज्यों का त्यों हम कानों से सुन सकेंगे, तब भगवान् कृष्ण के मुख से निकली गीता को ज्यों का त्यों अपने कानों से सुनना सम्भव हो जायेगा । शब्द और विचारों को सूक्ष्म से स्थूल करना भले ही अभी बहुत काल तक कठिन रहे, पर इतना निश्चित है कि उनका अस्तित्व नष्ट नहीं होता । अब तक असंख्यों महान् व्यक्तियों के द्वारा गायत्री के प्रति जिस श्रद्धा और साधना का उपयोग हुआ है, वह नष्ट नहीं हो गयी है, वरन् सूक्ष्म-जगत् में उसका प्रबल अस्तित्व बना हुआ है । "एक प्रकार के पदार्थों का एक स्थान पर सम्मिलन" के सिद्धान्तानुसार उन सभी साधकों की श्रद्धाएँ, साधनाएँ, भावनाएँ, तपश्चर्याएँ एक स्थान पर एकत्रित होकर एक प्रबल चैतन्यता-युक्त आध्यात्मिक विद्युत्-भण्डार जमा हो गया है ।

जिन्हें विचार-विज्ञान का थोड़ा-सा भी परिचय है, वे जानते हैं कि मनुष्य जिस प्रकार सोचता है उसी प्रकार का एक आकर्षण-चुम्बकत्व उसके मस्तिष्क में उत्पन्न हो जाता है । यह चुम्बकत्व निखिल आकाश में उड़ते हुए उसी जाति के अन्य विचारों को आकर्षित करके अपने पास बुला लेता है और थोड़े ही समय में उसके पास उस जाति के विचारों का भारी जमाव जुड़ जाता है । साधुता की बात सोचने वाले दिन-दिन साधुता के विचारों, गुणों, कर्मों और स्वभावों से परिपूर्ण होते जाते हैं । इसी प्रकार दुष्टता एवं पाप के विचार का मस्तिष्क थोड़े ही समय में उस दिशा में बड़ा कुशल हो जाता है । यह सब विचार-आकर्षण विज्ञान के अनुसार होता है । इसी विज्ञान के अनुसार गायत्री के साधकों की, ये विचार - शृंखलाएँ सम्बद्ध हो जाती हैं, जो सृष्टि के आदि को लेकर अब तक की महान् आत्माओं द्वारा तैयार की गयी है । ऊँची दीवारों पर कोई व्यक्ति अपने बाहुबल द्वारा बड़ी मुश्किल से चढ़ सकता है, परन्तु कोई अच्छी सीढ़ी दीवार के सहारे लगा दी जाए, तो उस पर पैर रखते ही आसानी से मनुष्य दीवार पर चढ़ जाता है । भूतकाल के साधकों की बनायी हुई सीढ़ी पर चढ़कर हम गायत्री तत्त्व तक आसानी से चढ़ सकते हैं और उस स्थान पर प्राप्त होने वाली समृद्धियों को सुगमतापूर्वक प्राप्त कर सकते हैं ।

गायत्री-साधना में जितना श्रम हमें करना पड़ता है, उससे अनेक गुनी सहायता पूर्वकाल के महान् साधकों द्वारा छोड़ी हुई सम्पत्ति से मिल जाती है और हम अनायास ही उन महान् लाभों से लाभान्वित हो जाते हैं, जिसके

लिए किसी समय किन्हीं साधकों को बहुत अधिक श्रम करना पड़ता होगा, परन्तु सूक्ष्म जगत् में ऐसे सूक्ष्म विधान निर्मित हो चुके हैं, जिन पर आरूढ़ होते ही हम द्रुतगति से दौड़ने लगते हैं । पानी की बूँद समुद्र में गिर कर समुद्र बन जाती है, एक सिपाही जब सेना में भर्ती हो जाता है, तो वह सेना का अंग बन जाता है, एक नागरिक की पीठ पर उसकी सरकार की समस्त ताकत होती है, इसी प्रकार एक साधक जो गायत्री शक्ति-पुञ्ज के साथ आबद्ध हो जाता है, उसे उस शक्ति-पुञ्ज द्वारा लाभ उठाने का पूरा-पूरा अवसर मिल जाता है । जितना प्रकाशवान् शक्ति-पुञ्ज गायत्री मन्त्र के पीछे है, उतना और किसी वेद-मन्त्र के पीछे नहीं है । यही कारण है कि गायत्री की साधना से स्वल्प श्रम में अत्यधिक लाभ प्राप्त होता है ।

इतने पर भी हम देखते हैं कि कितने ही मनुष्य गायत्री की महिमा को जानते हुए भी उससे लाभ नहीं उठाते । किसी के बिल्कुल पास, यहाँ तक कि जेब में ही प्रचुर धन रखा हो, पर यदि वह उसका उपयोग करके आनंद प्राप्त न करे, तो वह उसका दुर्भाग्य ही समझना चाहिये । गायत्री एक दैवी विद्या है, जो परमात्मा ने हमारे लिए सुलभ बनाई है । ऋषि-मुनियों ने धर्म-शास्त्रों में पग-पग पर हमारे लिए गायत्री-साधना द्वारा लाभान्वित होने का आदेश किया है, इतने पर भी यदि हम उससे लाभ न उठाएँ, साधना न करें, तो उसे दुर्भाग्य के अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है ।

अथ गायत्री माहात्म्य

गायत्री की महिमा का वेद, शास्त्र, पुराण सभी वर्णन करते हैं । अथर्ववेद में गायत्री की स्तुति की गयी है, जिसमें उसे आयु, प्राण, शक्ति, पशु, कीर्ति, धन और ब्रह्मतेज प्रदान करने वाली कहा गया है-

ॐ स्तुता मया वरदा वेदमाता प्रचोदयन्तां पावमानी द्विजानाम् । आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम् । मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्मलोकम् ।। -अथर्व० १९/७१/१

अथर्ववेद में स्वयं वेद भगवान् ने कहा है—

मेरे द्वारा स्तुति की गई, द्विजों को पवित्र करने वाली वेदमाता गायत्री, आयु, प्राण, शक्ति, पशु, कीर्ति, धन एवं ब्रह्मतेज उन्हें प्रदान करें ।

यथा मधु च पुष्पेभ्यो घृतं दुग्धाद्रसात्पयः ।
एवं हि सर्ववेदानां गायत्री सारमुच्यते ।। - बृहद् योगियाज्ञवल्क्यस्मृति ४.१६

"जिस प्रकार पुष्पों का सारभूत मधु, दूध का घृत, रसों का सारभूत पय है, उसी प्रकार गायत्री मन्त्र समस्त वेदों का सार है ।"

तदित्यृचः समो नास्ति मन्त्रो वेदचतुष्टये ।
सर्वे वेदाश्च यज्ञाश्च दानानि च तपांसि च ।
समानि कलया प्राहुर्मुनयो न तदित्यृचः ।। - विश्वामित्र

"गायत्री मन्त्र के समान मन्त्र चारों वेदों में नहीं है । सम्पूर्ण वेद, यज्ञ, दान, तप, गायत्री मन्त्र की एक कला के समान भी नहीं हैं, ऐसा मुनि लोग कहते हैं ।"

गायत्री छन्दसां मातेति ।। - महानारायणोपनिषद् १५/१

"गायत्री वेदों की माता अर्थात् आदि कारण है ।"

त्रिभ्य एव तु वेदेभ्यः पादम्पादमदूदुहत् ।
तदित्यृचोऽस्याः सावित्र्याः परमेष्ठी प्रजापतिः ।। - मनु० अ० २/७७

"परमेष्ठी प्रजापति ब्रह्माजी ने तीन ऋचा वाली गायत्री के तीनों चरणों को तीन वेदों से सारभूत निकाला है ।"

गायत्र्यास्तु परन्नास्ति शोधनं पापकर्मणाम् ।
महाव्याहृतिसंयुक्ता प्रणवेन च संजपेत् ।। - सम्वर्त स्मृ०श्लो० २१४

"पाप को नाश करने में समर्थ गायत्री के समान अन्य कोई मन्त्र नहीं है, अतः प्रणव तथा महाव्याहृतियों के सहित गायत्री मन्त्र का जाप करें।"

नान्नतोय-समं दानं न चाहिंसापरं तपः।
न गायत्री समं जाप्यं न व्याहृति-समं हुतम्॥ - सूत संहिता यज्ञ वैभव खण्ड अ० ६/३०

"अन्न और जल के समान कोई भी दान, अहिंसा के समान तप, गायत्री के समान जप, व्याहृति के समान अग्निहोत्र कोई भी नहीं है।"

हस्तत्राणप्रदा देवी पततां नरकार्णवे।
तस्मात्तामभ्यसेन्नित्यं ब्राह्मणो हृदये शुचिः॥

"गायत्री, नरक रूपी समुद्र में गिरते हुए को हाथ पकड़कर बचाने वाली है, अतः द्विज नित्य ही पवित्र हृदय से गायत्री का अभ्यास करें अर्थात् जपें।"

गायत्रीं चैव वेदांश्च तुलया समतोलयत्।
वेदा एकत्र सांगास्तु गायत्री चैकतः स्थिता॥ - योगी याज्ञवल्क्य० ४८०

"गायत्री और समस्त वेदों को तराजू में तोला गया। षट् अंगों सहित वेद एक ओर रखे गये और गायत्री को एक ओर रखा गया।"

सारभूतास्तु वेदानां गुह्योपनिषदो मताः।
ताभ्यः सारस्तु गायत्री तिस्रो व्याहृतयस्तथा॥ - योगी याज्ञ० ४.७७

"वेदों के सार उपनिषद् हैं और उपनिषदों का सार गायत्री और तीनों महा व्याहृतियाँ हैं।"

गायत्री वेदजननी गायत्री पापनाशिनी।
गायत्र्यास्तु परन्नास्ति दिवि चेह च पावनम्॥ - शंख स्मृति १२/२४

गायत्री वेदों की जननी है। गायत्री पापों को नाश करने वाली है। गायत्री से अन्य कोई पवित्र करने वाला मन्त्र स्वर्ग और पृथ्वी पर नहीं है।

यद्यथाग्निर्देवानां, ब्राह्मणो मनुष्याणाम्।
वसन्त ऋतूनामियं गायत्री चास्ति छन्दसाम्॥

"जिस प्रकार देवताओं में अग्नि, मनुष्यों में ब्राह्मण, ऋतुओं में वसन्त ऋतु श्रेष्ठ है, उसी प्रकार छन्दों में गायत्री श्रेष्ठ है।"

अष्टादशसु विद्यासु मीमांसाति गरीयसी।
ततोऽपि तर्कशास्त्राणि पुराणं तेभ्य एव च॥
ततोऽपि धर्मशास्त्राणि तेभ्यो गुर्वी श्रुतिर्द्विज!।
ततोऽप्युपनिषच्छ्रेष्ठा गायत्री च ततोऽधिका॥
दुर्लभा सर्वमन्त्रेषु गायत्री प्रणवान्विता। - स्कन्द पु० ४/९/४९-५१

"अठारह विद्याओं में मीमांसा अत्यंत श्रेष्ठ है। मीमांसा से तर्कशास्त्र श्रेष्ठ है और तर्कशास्त्र से पुराण श्रेष्ठ हैं। पुराणों से भी धर्मशास्त्र श्रेष्ठ हैं। हे द्विज ! धर्मशास्त्रों से वेद श्रेष्ठ हैं और वेदों से उपनिषद् श्रेष्ठ हैं और उपनिषदों से गायत्री मन्त्र अत्यधिक श्रेष्ठ है।"

प्रणव युक्त यह गायत्री समस्त वेदों में दुर्लभ है।

नास्ति गंगा समं तीर्थं न देवः केशवात्परः।
गायत्र्यास्तु परं जाप्यं न भूतं न भविष्यति॥ - बृ.यो० याज्ञ०अ० १०.१०-११

"गंगाजी के समान कोई तीर्थ नहीं है, केशव से श्रेष्ठ कोई देवता नहीं है। गायत्री मन्त्र के जप से श्रेष्ठ कोई जप न आज तक हुआ है और न होगा।"

सर्वेषां जप्यसूक्तानामृचां च यजुषां तथा।
साम्नां चैकाक्षरादीनां गायत्री परमो जपः॥ - बृ० पाराशर स्मृति अ० ३/४

"समस्त जप सूक्तों में, ऋक्-यजु एवं सामवेद में तथा एकाक्षरादि मन्त्रों में गायत्री मन्त्र जप परम श्रेष्ठ है।"

एकाक्षरं परं ब्रह्म प्राणायामः परन्तपः।
सावित्र्यास्तु परन्नास्ति पावनं परमं स्मृतम्॥ - अग्नि पुराण १६६/१८

"एकाक्षर अर्थात् 'ओ३म्' परब्रह्म है। प्राणायाम परम तप है और गायत्री मन्त्र से बढ़कर पवित्र करने वाला कोई मन्त्र नहीं है।"

गायत्र्याः परमं नास्ति दिवि चेह च पावनम्।
हस्तत्राणप्रदा देवी पततां नरकार्णवे॥ - शंख स्मृति अ० १२/२५

"नरक रूपी समुद्र में गिरते हुए को हाथ पकड़ कर बचाने वाली गायत्री के समान पवित्र करने वाली वस्तु या मन्त्र पृथ्वी पर तथा स्वर्ग में भी नहीं है।"

गायत्री चैव वेदाश्च ब्रह्मणा तोलिताः पुरा।
वेदेभ्यश्च चतुर्भ्योऽपि गायत्र्यतिगरीयसी॥ - बृ० पाराशर स्मृति अ० ४/१६

"प्राचीनकाल में ब्रह्माजी ने गायत्री को वेदों से तोला। चारों वेदों से भी गायत्री का पलड़ा भारी रहा।"

सोमादित्यान्वयाः सर्वे राघवाः कुरवस्तथा।
पठन्ति शुचयो नित्यं सावित्रीं परमां गतिम्॥ - महाभारत अनु० पर्व अ० १५०/७७

"हे युधिष्ठिर! सम्पूर्ण चन्द्रवंशी, सूर्यवंशी, रघुवंशी तथा कुरुवंशी नित्य ही पवित्र होकर परम गतिदायक गायत्री मन्त्र का जप करते हैं।"

बहुना किमिहोक्तेन यथावत् साधु साधिता।
द्विजन्मानामियं विद्या सिद्धा कामदुघा स्मृता॥

"यहाँ पर अधिक कहने से क्या लाभ ? अच्छी प्रकार सिद्ध की गयी गायत्री विद्या, द्विज जाति के लिए कामधेनु कही गई है।"

सर्ववेदोद्धृतः सारो मन्त्रोऽयं समुदाहृतः।
ब्रह्मादिदेवा गायत्री परमात्मा समीरितः॥

"यह गायत्री मन्त्र समस्त वेदों का सार कहा गया है। गायत्री ही ब्रह्मा आदि देवता है। गायत्री ही परमात्मा कही गयी है।"

या नित्या ब्रह्मगायत्री सैव गंगा न संशयः।
सर्वतीर्थमयी गंगा तेन गंगा प्रकीर्तिता॥ - गायत्री तन्त्र ३/१४३

"गंगा सर्व तीर्थमय होने से 'गंगा' कहलाती है। वह गंगा ब्रह्म गायत्री का ही रूप है।"

सर्वशास्त्रमयी गीता गायत्री सैव निश्चिता।
यागतीर्थं च गोलोकं गायत्रीरूपमद्भुतम्॥ - गायत्री तन्त्र ३/१४४

"गीता में सब शास्त्र भरे हुए हैं। वह गीता निश्चय ही गायत्री रूप है। याग, तीर्थ और गोलोक यह भी गायत्री के ही रूप हैं।"

अशुचिर्वा शुचिर्वापि गच्छन्तिष्ठन् यथा तथा।
गायत्रीं प्रजपेद्धीमान् जपात् पापान्निवर्तते॥ - गायत्री तन्त्र

"अपवित्र हो अथवा पवित्र हो, चलता हो अथवा बैठा हो, जिस भी स्थिति में हो, बुद्धिमान् मनुष्य गायत्री का जप करता रहे। इस जप के द्वारा पापों से छुटकारा होता है।"

मननात् पापतस्त्राति मननात् स्वर्गमश्नुते।
मननात् मोक्षमाप्नोति चतुर्वर्गमयो भवेत्॥ -गायत्री तन्त्र

"गायत्री का मनन करने से पाप से छूटते हैं, स्वर्ग प्राप्त होता है और मुक्ति मिलती है तथा चतुर्वर्ग (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) सिद्ध होते हैं।

गायत्रीं तु परित्यज्य अन्यमन्त्रानुपासते।
त्यक्त्वा सिद्धान्नमन्यत्र भिक्षामटति दुर्मतिः॥

"जो गायत्री को छोड़कर दूसरे मन्त्रों की उपासना करता है, वह दुर्बुद्धि मनुष्य पकाये हुए अन्न को छोड़कर भिक्षा के लिए घूमने वाले पुरुष के समान है।"

नित्ये नैमित्तिके काम्ये तृतीये तपो वर्धने।
गायत्र्यास्तु परं नास्ति इह लोके परत्र च॥

"नित्य, नैमित्तिक, काम्य की सफलता तथा तप की वृद्धि के लिये इस लोक तथा परलोक में गायत्री से बढ़कर कोई नहीं है।"

सावित्री - जाप्यनिरतः स्वर्गमाप्नोति मानवः।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन स्नातः प्रयतमानसः।
गायत्रीं तु जपेत् भक्त्या सर्वपापप्रणाशिनीम्॥ - शंख० १२/३०-३१

"गायत्री मन्त्र जानने वाला मनुष्य स्वर्ग को प्राप्त करता है। इसी कारण स्नान कर समस्त प्रयत्नों से स्थिर चित्त हो सारे पापों के नाश करने वाली गायत्री का जाप करे।"

गायत्री जप के लाभ

गायत्री का जप करने से कितना महत्त्वपूर्ण लाभ होता है, इसका कुछ आभास निम्नलिखित थोड़े से प्रमाणों से जाना जा सकता है। ब्राह्मण के लिए तो इसे विशेष रूप से आवश्यक कहा है, क्योंकि ब्राह्मणत्व का सम्पूर्ण आधार सद्बुद्धि पर निर्भर है और वह सद्बुद्धि गायत्री के बताये हुए मार्ग पर चलने से मिलती है।

सर्वेषां वेदानां गुह्योपनिषत्सारभूतां ततो गायत्रीं जपेत्। - छान्दोग्य परिशिष्ट

'गायत्री समस्त वेदों का और गुह्य उपनिषदों का सार है। इसलिए गायत्री मन्त्र का नित्य जाप करें।

सर्ववेदसारभूता गायत्र्यास्तु समर्चना।
ब्रह्मादयोऽपि संध्यायां तां ध्यायन्ति जपन्ति च॥ -दे० भा० स्क० ११ अ० १६/१५-१६

'गायत्री मन्त्र की आराधना समस्त वेदों का सारभूत है। ब्रह्मादि देवता भी संध्या काल में गायत्री का ध्यान करते हैं और जप करते हैं।'

गायत्रीमात्रनिष्णातो द्विजो मोक्षमवाप्नुयात्॥ - दे० भा० स्क० १२ अ० ८/९०

'गायत्री मात्र की उपासना करने वाला ब्राह्मण भी मोक्ष को प्राप्त होता है।'

ऐहिकामुष्मिकं सर्वं गायत्रीजपतो भवेत्। - अग्नि पुराण

'गायत्री जपने वाले को सांसारिक और पारलौकिक समस्त सुख प्राप्त हो जाते हैं।'

योऽधीतेऽहन्यहन्येतां त्रीणि वर्षाण्यतन्द्रितः।
स ब्रह्म परमभ्येति वायुभूतः खमूर्तिमान्॥ - मनुस्मृति २/८२

'जो मनुष्य तीन वर्ष तक प्रतिदिन तत्परतापूर्वक गायत्री मन्त्र जपता है, वह अवश्य ब्रह्म को प्राप्त करता है और वायु के समान स्वेच्छागमन वाला होता है।'

कुर्यादन्यन्न वा कुर्यात् इति प्राह मनुः स्वयम्।
अक्षयमोक्षमाप्नोति गायत्री - मात्र - जापनात्॥ - शौनक

'इस प्रकार मनु जी ने स्वयं कहा है कि अन्य देवताओं की उपासना करे या न करे, केवल गायत्री के जप से द्विज अक्षय मोक्ष को प्राप्त होता है।'

त्रिभ्य एव तु वेदेभ्यः पादं पादमदूदुहत्।
तदित्यृचोऽस्याः सावित्र्याः परमेष्ठी प्रजापतिः॥ - मनु० २/७७

'परमेष्ठी पितामह ब्रह्माजी ने एक-एक वेद से सावित्री के एक-एक पद की रचना की, इस प्रकार तीन पदों का सृजन किया।'

एतया ज्ञातया सर्वं वाङ्मयं विदितं भवेत्।
उपासितं भवेत्तेन विश्वं भुवनसप्तकम्॥ - योगी याज्ञ० ४७०

'गायत्री के जान लेने से समस्त विद्याओं का ज्ञाता हो जाता है, इस प्रकार उसने केवल गायत्री की ही उपासना नहीं की; अपितु सात लोकों की उपासना कर ली।'

ओंकारपूर्विकास्तिस्रो गायत्रीं यश्च विन्दति।
चरितब्रह्मचर्यश्च स वै श्रोत्रिय उच्यते॥ - योगी याज्ञ०

'जो ब्रह्मचर्य पूर्वक, ओंकार, महाव्याहृतियों सहित गायत्री मन्त्र का जप करता है, वह श्रोत्रिय है।'

ओंकारसहितां जपन् तां च व्याहृतिपूर्विकाम्।
सन्ध्ययोर्वेदविद्विप्रो वेद - पुण्येन युज्यते॥ - मनुस्मृति अ० २/७८

'जो ब्राह्मण दोनों संध्याओं में प्रणव-व्याहृति सहित गायत्री मंत्र का जप करता है, वह वेदों के पढ़ने के फल को प्राप्त करता है।'

गायत्रीं जपते यस्तु द्विकालं ब्राह्मणः सदा।
असत्प्रतिगृहीतोऽपि स याति परमां गतिम्॥ अग्निपुराण

'जो ब्राह्मण सदा सायंकाल और प्रातःकाल गायत्री का जप करता है, वह ब्राह्मण अयोग्य प्रतिग्रह (दान) लेने पर भी परमगति को प्राप्त होता है।'

सकृदपि जपेद्विद्वान् गायत्रीं परमाक्षरीम्।
तत्क्षणात् संभवेत्सिद्धिर्ब्रह्मसायुज्यमाप्नुयात्॥ - गायत्री पुरश्चरण २८

'श्रेष्ठ अक्षरों वाली गायत्री को विद्वान् यदि एक बार भी जपे, तो तत्क्षण सिद्धि होती है और वह ब्रह्मा की सायुज्यता को प्राप्त करता है।'

जप्येनैव तु संसिद्ध्येत् ब्राह्मणो नात्र संशयः।
कुर्यादन्यन्न वा कुर्यान्मैत्रो ब्राह्मण उच्यते॥ - मनु० २/८७

'ब्राह्मण अन्य कुछ करे या न करे, परन्तु वह केवल गायत्री से ही सिद्धि पा सकता है।'

कुर्यादन्यन्न वा कुर्यादनुष्ठानादिकं तथा।
गायत्रीमात्रनिष्ठस्तु कृतकृत्यो भवेद् द्विजः॥ - गायत्री तन्त्र ८

'अन्य अनुष्ठानादिक करे या न करे, गायत्री की उपासना करने वाला द्विज कृतकृत्य हो जाता है।'

सन्ध्यासु चार्घ्यदानं च गायत्रीजपमेव च।
सहस्रत्रितयं कुर्वन् सुरैः पूज्यो भवेन्मुने॥ - गायत्री तन्त्र श्लोक ९

'हे मुने! संध्याकाल में ही सूर्य को अर्घ्यदान और तीन हजार नित्य गायत्री जपने मात्र से पुरुष देवताओं का भी पूजनीय हो जाता है।'

यदक्षरैकसंसिद्धेः स्पर्धते ब्राह्मणोत्तमः ।
हरिशंकरकंजोत्थ - सूर्यचन्द्रहुताशनैः ॥ - गायत्री पुर० ११

'गायत्री के एक अक्षर की सिद्धि मात्र से हरि, शंकर, ब्रह्मा, सूर्य, चन्द्र, अग्नि आदि देवताओं से भी साधक स्पर्धा करने लगता है ।'

दशसाहस्त्रमभ्यस्ता गायत्री शोधनी परा । - लघु अत्रिसंहिता ४.४

दस हजार बार जपी गयी गायत्री परम शोधन करने वाली है ।

सर्वेषाञ्चैव पापानां संकटे समुपस्थिते ।
दशसहस्त्रकाभ्यासो गायत्र्याः शोधनं परम् ॥

'दस हजार गायत्री का जप, समस्त पापों को तथा संकटों को नाश करके परम शुद्ध करने वाला है ।'

गायत्रीमेव यो ज्ञात्वा सम्यगुच्चरते पुनः ।
इहामुत्र च पूज्योऽसौ ब्रह्मलोकमवाप्नुयात् ॥ - व्यास

'जो गायत्री को भली प्रकार जानकर उसका उच्चारण करता है, वह इस लोक और परलोक में ब्रह्म की सायुज्यता को प्राप्त करता है ।'

मोक्षाय च मुमुक्षूणां श्रीकामानां श्रिये तथा ।
विजयाय युयुत्सूनां व्याधितानामरोगकृत् ॥ - गायत्री पंचांग १

'गायत्री-साधना से मुमुक्षुओं को मोक्ष मिलेगा, श्री कामियों को सम्पत्ति प्राप्त होगी, युद्धेच्छुओं को विजय तथा व्याधिग्रस्त को नीरोगिता प्राप्त होगी ।'

वश्याय वश्यकामानां विद्यायै वेदकामिनाम् ।
द्रविणाय दरिद्राणां पापिनां पापशान्तये ॥

'वशीकरण करने वालों के वशीकरण सिद्ध होंगे, वेदार्थियों को विद्या प्राप्ति, दरिद्रों को धन प्राप्ति, पापियों के पाप की शान्ति हो जाती है ।'

वादिनां वाद -विजये कवीनां कविताप्रदम् ।
अन्नाय क्षुधितानां च स्वर्गाय नाकमिच्छताम् ॥

'शास्त्रार्थियों को शास्त्र विजय, कवियों को काव्य लाभ, भूखों को अन्न तथा स्वर्गेच्छुकों को स्वर्ग प्राप्त होता है ।'

पशुभ्यः पशुकामानां पुत्रेभ्यः पुत्रकामिनाम् ।
क्लेशिनां शोक-शान्त्यर्थं नृणां शत्रुभयाय च ॥

'पशु इच्छुकों को पशु, पुत्रार्थियों को पुत्र, क्लेश-पीड़ितों को शोक-शान्ति, शस्त्रु-भय वालों को अभय मिलता है ।'

अष्टादशसु विद्यासु मीमांसाऽतिगरीयसी ।
ततोऽपि तर्कशास्त्राणि पुराणं तेभ्य एव च ॥

'अठारह विद्याओं में मीमांसा श्रेष्ठ है, उससे श्रेष्ठ तर्कशास्त्र तथा पुराण उससे भी श्रेष्ठ कहे गये हैं ।'

ततोऽपि धर्मशास्त्राणि तेभ्यो गुर्वी श्रुतिर्नृप ।
ततो ह्युपनिषत् श्रेष्ठा गायत्री च ततोऽधिका ॥

'धर्मशास्त्र उनसे भी श्रेष्ठ हैं तथा हे राजन् ! उनसे भी श्रेष्ठ श्रुतियाँ कही गयी हैं । उन श्रुतियों से भी श्रेष्ठ उपनिषद् हैं और उपनिषदों से भी गरीयसी गायत्री कही गयी है ।'

तां देवीमुपतिष्ठन्ते ब्राह्मणा ये जितेन्द्रियाः।
ते प्रयान्ति सूर्य्यलोकं क्रमान्मुक्तिञ्च पार्थिव॥ - पद्म पुराण

'जो इन्द्रियजित् ब्राह्मण इस गायत्री की उपासना करते हैं, हे पार्थिव ! वे अवश्य ही सूर्य लोक को प्राप्त होते हैं तथा क्रमशः मुक्ति को भी प्राप्त करते हैं।'

गायत्री-सार-मात्रोऽपि वरं विप्रः सुसंयतः। - पद्म पु० सृ० खं० १७/२८१

'चार वेदों की सारभूत गायत्री को विधि सहित जानने वाला ब्राह्मण श्रेष्ठ है।'

गायत्रीं यस्तु जपति त्रिकालं ब्राह्मणः सदा।
अर्थी प्रतिग्रही वापि स गच्छेत्परमां गतिम्॥

'जो ब्राह्मण गायत्री को त्रिकाल में जपता है, वह माँगने वाला या दान लेने वाला (अग्राह्य दान को ग्रहण करने वाला) ही क्यों न हो, वह भी परम गति को प्राप्त हो जाता है।'

गायत्रीं यस्तु जपति कल्यमुत्थाय यो द्विजः।
स लिम्पति न पापेन पद्म - पत्रमिवांभसा॥

'जो ब्राह्मण प्रातः उठकर गायत्री का जप करता है, वह जल में कमलपत्र की भाँति पापग्रस्त नहीं होता।'

अर्थोऽयं ब्रह्मसूत्राणां भारतार्थो विनिर्णयः।
गायत्री- भाष्य- रूपोऽसौ वेदार्थः परिबृंहितः॥ - मत्स्य पुराण

'गायत्री का अर्थ ब्रह्मसूत्र है। गायत्री का निर्णय महाभारत है, गायत्री का अर्थ वेदों में हुआ है।'

जपन् हि पावनीं देवीं गायत्रीं वेदमातरम्।
तपसा भावितो देव्या ब्राह्मणः पूतकिल्विषः॥

'ब्राह्मण वेद-जननी गायत्री को जपता हुआ अनेक पापों से मुक्त हो जाता है।'

गायत्री-ध्यानपूतस्य कलां नार्हति षोडशीम्।
एवं किल्विषयुक्तस्य विनिर्दहति पातकम्॥

'गायत्री के ध्यान से पवित्र हुई सोलह कलाओं का कोई मूल्यांकन नहीं हो सकता। इस प्रकार वह पाप-युक्त के पापों को शीघ्र ही दहन कर देती है।'

उभे सन्ध्ये ह्युपासीत तस्मान्नित्यं द्विजोत्तम।
छन्दस्तस्यास्तु गायत्रं गायत्रीत्युच्यते ततः॥ - मत्स्य पुराण

'हे द्विज श्रेष्ठ ! गायत्री का छन्दानुसार दोनों संध्याकाल में ध्यान करना चाहिये।' 'गान करने वाले का यह त्राण करती है, इसीलिये इसे गायत्री कहा है।'

गायन्तं त्रायते यस्मात् गायत्री तु ततः स्मृता।
मारीच ! कारणात्तस्मात् गायत्री कीर्तिता मया॥ - लंकेश तन्त्र

' हे मारीच ! गान करने वाले का त्राण करती है, इसी हेतु मैंने इसे गायत्री कहा है।'

ततः बुद्धिमतां श्रेष्ठ नित्यं सर्वेषु कर्मसु।
सव्याहृतिं सप्रणवां गायत्रीं शिरसा सह॥
जपन्ति ये सदा तेषां न भयं विद्यते क्वचित्।
दशकृत्वः प्रजप्या सा रात्र्यह्नापि कृतं लघु॥

'बुद्धिमानों में श्रेष्ठ, अपने नित्य नियमित सभी कार्यों को करते हुए, व्याहृतियों के सहित तथा प्रणव के उच्चारण सहित गायत्री को जो पुरुष सदा जपते हैं, उनको कहीं भी भय नहीं है। दस बार जपने से रात्रि तथा दिन के लघु दोषों का निवारण होता है।'

कामकामो लभेत्कामं गतिकामस्तु सद्‌गतिम्।
अकामस्तु तदाप्नोति यद्विष्णोः परमं पदम्॥ -वि० धर्मोत्तर पु० - ३

'कामाभिलाषी को काम की प्राप्ति होती है और जो मोक्ष की आकांक्षा करते हैं, उन्हें सद्‌गति प्राप्त होती है। जो पुरुष निष्काम भाव से गायत्री की उपासना करते हैं, वे विष्णु के परम पद को प्राप्त हो जाते हैं।'

एतदक्षरमेतां च जपन् व्याहृतिपूर्विकाम्।
सन्ध्ययोर्वेदविद्विप्रो वेद-पुण्येन युज्यते॥ - मनु० २/७८

'व्याहृतिपूर्वक इस गायत्री को दोनों संध्या काल में जपता हुआ ब्राह्मण, वेद पढ़ने के पुण्य को प्राप्त होता है।'

इयन्तु सव्याहृतिका द्वारं ब्रह्मपदाप्तये।
तस्मात्प्रतिदिनं विप्रैरध्येतव्या तथैव सा॥

'यह गायत्री ब्रह्मपद की प्राप्ति का द्वार है, अतः ब्राह्मणों को व्याहृतिपूर्वक प्रतिदिन इसका अध्ययन (मनन) करना चाहिये।'

योऽधीतेऽहन्यहन्येतांस्त्रीणि वर्षाण्यतन्द्रितः।
स ब्रह्म पदमभ्येति वायुभूतः खमूर्तिमान्॥ - मनु० २/८२

'जो इस गायत्री को तन्द्रा रहित (आलस्य को छोड़कर) तीन वर्ष तक नियमित रूप से जपता है, वह ब्रह्मपद को निस्संदेह उपलब्ध हो जाता है।'

तत् पापं प्रणुदत्याशु नात्र कार्या विचारणा।
शतं जप्त्वा तु सा देवी पापौघशमनी स्मृता॥

'इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये कि सब पापों का शीघ्र ही निवारण हो जाता है। सौ बार जप करने पर यह गायत्री पापों के समूह का विनाश कर देती है।

विधिना नियतं ध्यायेत् प्राप्नोति परमं पदम्।
यथा कथञ्चिज्जपिता गायत्री पापहारिणी॥
सर्व-कामप्रदा प्रोक्ता पृथक्कर्म्मसु निष्ठिता।

'विधिपूर्वक नियत ध्यान करने पर परम पद की प्राप्ति होती है। जिस-किसी भी प्रकार जपी हुई गायत्री पापों का विनाश करती है, भिन्न-भिन्न कार्यों के उद्देश्य से किया हुआ जप भी अभीष्ट की सिद्धि कर देता है।

गायत्री से पाप और दुःखों से निवृत्ति

गायत्री साधना से सब पापों की और सब दुःखों की निवृत्ति के अनेक प्रमाण मिलते हैं, जिनमें से कुछ नीचे दिये जाते हैं-

ब्रह्महत्यादिपापानि गुरूणि च लघूनि च।
नाशयत्यचिरेणैव गायत्रीजापको द्विजः॥ -गा०पु०पृ० ६२

'गायत्री जपने वाले के ब्रह्महत्यादि सभी पाप, छोटे हों चाहे बड़े हों, शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं।'

गायत्रीजपकृद् भक्त्या सर्वपापैः प्रमुच्यते। - पाराशर

'भक्तिपूर्वक गायत्री जपने वाला समस्त पापों से छूट जाता है।'

सर्वपापानि नश्यन्ति गायत्रीजपतो नृणाम्। - भविष्य पुराण

गायत्री जपने वाला समस्त पापों से छूट जाता है।'

गायत्र्यष्टसहस्त्रं तु जपं कृत्वा स्थिते रवौ।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो यदि न ब्रह्मद्विड् भवेत्॥ - अत्रि स्मृति ३/१५

'सूर्य के समक्ष यदि गायत्री का आठ हजार जप करे, तो वह सब पापों से मुक्त हो जाता है। यदि ब्राह्मण अर्थात् ज्ञानी पुरुषों की निन्दा करने वाला न हो, तो।'

सहस्रकृत्वस्त्वभ्यस्य बहिरेतत्त्रिकं द्विजः।
महतोप्येनसो मासात्त्वचेवाहिर्विमुच्यते॥ - मनु० अ० २/७९

'एकान्त स्थान में प्रणव, महाव्याहृतिपूर्वक गायत्री का एक हजार जप करने वाला द्विज, बड़े से बड़े पापों से ऐसे छूट जाता है जैसे केंचुली से सर्प छूट जाता है।'

जना यैस्तरन्ति तानि तीर्थानि।

'जिनसे पुरुषों के पाप दूर हो जाते हैं और वे इस संसार से तर जाते हैं, उनको तीर्थ कहते हैं। गायत्री के इन तीन अक्षरों में वह तीर्थ विद्यमान हैं- ग = गंगा, य = यमुना, त्र = त्रिवेणी समझनी चाहिये।'

ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वंगनागमः।
महान्ति पातकादीनि, स्मरणान्नाशमाप्नुयुः॥ - गायत्री पु० २/२

'गायत्री के स्मरण मात्र से ब्रह्महत्या, सुरापान, चोरी, गुरु-स्त्री गमन आदि महापातक भी नष्ट हो जाते हैं।'

य एतां वेद गायत्रीं पुमान् सर्वगुणान्विताम्।
तत्त्वेन भरतश्रेष्ठ ! स लोके न प्रणश्यति॥ - महा० भा० भीष्म प० अ० १४/१६

' हे युधिष्ठिर ! जो मनुष्य तत्त्वपूर्वक सर्वगुण सम्पन्न पुण्यमयी गायत्री को जान लेता है, वह संसार में दुःखित नहीं होता।'

गायत्री-निरतं हव्य-कव्येषु विनियोजयेत्।
तस्मिन्न तिष्ठते पापं जलबिन्दुरिव पुष्करे॥

'गायत्री जपने वालों को ही पितृकार्य तथा देवकार्य में बुलाना चाहिये, क्योंकि गायत्री उपासक में पाप उसी प्रकार नहीं रहता, जैसे कमल के पत्ते पर पानी की बूँद नहीं ठहरती।'

गायत्रीं यः पठेद्विप्रो न स पापेन लिप्यते। - लघु अत्रि संहिता २/१२

'जो द्विज गायत्री को जपता है, वह पाप में लिप्त नहीं होता।'

चरक संहिता में गायत्री-साधना के साथ आँवला सेवन करने से दीर्घ जीवन का वर्णन आया है।

सावित्रीं मनसा ध्यायन् ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः।
सम्वत्सरान्ते पौषीं वा माघीं वा फाल्गुनीं तिथिम्॥- चरक चिकित्सा आँव० रसा०श्लो० ९

'मन से गायत्री का ब्रह्मचर्य पूर्वक एक वर्ष तक ध्यान करता हुआ, वर्ष के उपरान्त में पौष मास अथवा माघ मास की अथवा फाल्गुन मास की किसी शुभ तिथि में तीन दिन क्रमशः उपासना के उपरान्त आँवले के वृक्ष पर चढ़कर जितने आँवले मनुष्य खायेगा, उतने ही वर्ष वह जीवित रहेगा।'

यदिह वा अप्येवं विद् बहु इव प्रतिगृह्णाति न हैव तद् गायत्र्या एकं च न पदं प्रति। स य इमान् त्रींल्लोकान् पूर्णान् प्रतिगृह्णीयात् सोऽस्या एतत्प्रथमं पदमाप्नुयादथ यावतीयं त्रयी विद्या यस्तावत्प्रतिगृह्णीयात् सोऽस्या एतद् द्वितीयं पदमाप्नुयादथ यावदिदं प्राणि यस्तावत् प्रतिगृह्णीयात् सोऽस्या एतत्तृतीयं पदमाप्नुयात् अथास्या एतदेव तुरीयं दर्शतं पदं परोरजा य एष तपति नैव केनचनाप्यं कुत उ एतावत्प्रतिगृह्णीयात्। बृह० उ० ५/१४/५-६

'गायत्री को सर्वात्मक भाव से जपने वाला मनुष्य, यदि बहुत ही प्रतिग्रह लेता है, तो भी उस प्रतिग्रह का दोष गायत्री के प्रथम पाद उच्चारण के समान भी नहीं होता। यदि समस्त तीन लोकों को प्रतिग्रह में लें, तो उसका दोष प्रथम पाद उच्चारण से नष्ट हो जाता है। यदि तीन वेदों का प्रतिग्रह लें, तो उसका दोष द्वितीय पाद से नष्ट हो जाता है। यदि संसार के समस्त प्राणियों का भी प्रतिग्रह लें, तो उसका दोष तृतीय पाद से नष्ट हो जाता है। अतः

गायत्री जपने वाले को कोई हानि नहीं पहुँचती और गायत्री का चौथा पद परब्रह्म है, इसके सदृश दुनिया में भी कुछ नहीं है।'

यदह्ना कुरुते पापं तदह्नाप्रतिमुच्यते।
यद्रात्र्या कुरुते पापं तद्रात्र्या प्रतिमुच्यते॥ -तै०आ०प्र०१० अ०३४

'हे गायत्री ! तुम्हारे प्रभाव से दिन में किये पाप दिन में ही नष्ट हो जाते हैं और रात्रि में किये पाप रात्रि में ही नष्ट हो जाते हैं।'

गायत्रीं तु परित्यज्य येऽन्यमन्त्रमुपासते।
मुण्डकरा वै ते ज्ञेया इति वेदविदो विदुः॥

'जो गायत्री मन्त्र को त्याग कर अन्य मन्त्र की उपासना करते हैं, वे नास्तिक हैं, ऐसा देवताओं ने कहा है।'

गायत्रीं चिन्तयेद्यस्तु हृत्पद्मे समुपस्थिताम्।
धर्माधर्मविनिर्मुक्तः स याति परमां गतिम्॥

'जो मनुष्य हृदय कमल में बैठी हुई गायत्री का चिन्तन करता है, वह धर्म, अधर्म के द्वन्द्व से छूटकर परम गति को प्राप्त होता है।'

सहस्रं जप्ता सा देवी ह्युपपातकनाशिनी।
लक्षजाप्ये तथा सा च महापातकनाशिनी॥
कोटिजाप्येन राजेन्द्र ! यदिच्छति तदाप्नुयात्।

'एक सहस्र जप करने में गायत्री उपपातकों का विनाश करती है। एक लाख जप करने से महापातकों का विनाश होता है। एक करोड़ जप करने से अभीष्ट की सिद्धि प्राप्त होती है।'

गायत्री उपेक्षा की भर्त्सना

गायत्री को न जानने वाले अथवा जानने पर भी, उसकी उपासना न करने वाले द्विजों की शास्त्रकारों ने कड़ी भर्त्सना की है और उन्हें अधोगामी बताया है। इस निन्दा में इस बात की चेतावनी दी है कि जो आलस्य या अश्रद्धा के कारण गायत्री साधना में ढील करते हों, उन्हें सावधान होकर इस श्रेष्ठ उपासना में प्रवृत्त होना चाहिये।

गायत्र्युपासना नित्या सर्ववेदैः समीरिता।
यया विना त्वधः पातो ब्राह्मणस्यास्ति सर्वथा॥ - देवी भागवत स्कं० १२/अ० ८/८९

'गायत्री की उपासना नित्य ही समस्त वेदों में वर्णित है। गायत्री के बिना ब्राह्मण की सब प्रकार से अधोगति होती है।'

स्सांगांश्च चतुरो वेदानधीत्यापि सवाङ्मयान्।
गायत्रीं यो न जानाति वृथा तस्य परिश्रमः॥ - यो० याज्ञवल्क्य

'सस्वर और सांग चारों वेदों को जानकर भी जो गायत्री मन्त्र को नहीं जानता, उसका परिश्रम व्यर्थ है।'

गायत्रीं यः परित्यज्य चान्यमन्त्रमुपासते।
न साफल्यमवाप्नोति कल्पकोटिशतैरपि॥ - बृ० सन्ध्या भाष्य

'जो गायत्री मन्त्र को छोड़कर अन्य मन्त्र की उपासना करते हैं, वह करोड़ों जन्मों में भी सफलता प्राप्त नहीं कर सकते हैं।'

विहाय तां तु गायत्रीं विष्णूपासनतत्परः।
शिवोपासनतो विप्रो नरकं याति सर्वथा॥ - देवी भागवत १२/८/९२

'गायत्री को त्याग कर विष्णु और शिव की पूजा करने पर भी ब्राह्मण नरक में जाता है।'

गायत्र्या रहितो विप्रः शूद्रादप्यशुचिर्भवेत्।
गायत्री-ब्रह्म-तत्त्वज्ञः सम्पूज्यस्तु द्विजोत्तमः ॥ - पारा० स्मृति ८/३१

'गायत्री से रहित ब्राह्मण शूद्र से भी अपवित्र है। गायत्री रूपी ब्रह्म तत्त्व को जानने वाला सर्वत्र पूज्य है।'

एतयर्चा विसंयुक्तः काले च क्रियया स्वया।
ब्रह्मक्षत्रियविड्योनिर्गर्हणां याति साधुषु ॥ - मनुस्मृति अ० २/८०

'प्रणव व्याहृतिपूर्वक गायत्री मन्त्र का जप सन्ध्याकाल में न करने वाला द्विज, सज्जनों में निन्दा का पात्र होता है।'

एवं यस्तु विजानाति गायत्रीं ब्राह्मणस्तु सः।
अन्यथा शूद्रधर्मा स्याद् वेदानामपि पारगः ॥ - यो० याज्ञ० ४/४१-४२

'जो गायत्री को जानता है और जपता है, वह ब्राह्मण है; अन्यथा वेदों में पारंगत होने पर भी शूद्र के संमान है।'

अज्ञात्वैतां तु गायत्रीं ब्राह्मण्यादेव हीयते।
अपवादेन संयुक्तो भवेच्छ्रुतिनिदर्शनात् ॥ - यो० याज्ञ० ४/७१

'गायत्री को न जानने से ब्राह्मण ब्राह्मणत्व से हीन होकर पापयुक्त हो जाता है, ऐसा श्रुति में कहा गया है।'

किं वेदैः पठितैः सर्वैः सेतिहासपुराणकैः।
सांगैः सावित्रिहीनेन न विप्रत्वमवाप्यते ॥ - बृ० पा० अ० ५/१४

'इतिहास, पुराणों के तथा समस्त वेदों के पढ़ लेने पर भी यदि ब्राह्मण गायत्री मन्त्र से हीन हो, तो वह ब्राह्मणत्व को नहीं प्राप्त होता है।'

न ब्राह्मणो वेदपाठान्न शास्त्र पठनादपि।
देव्यास्त्रिकालमभ्यासाद् ब्राह्मणः स्याद् द्विजोऽन्यथा। - बृ० संध्या भाष्य

'वेद और शास्त्रों के पढ़ने से ब्राह्मणत्व नहीं हो सकता। तीनों कालों में गायत्री की उपासना से ब्राह्मणत्व होता है, अन्यथा वह द्विज नहीं रहता है।'

ओंकारं पितृरूपेण गायत्रीं मातरं तथा।
पितरौ यो न जानाति स विप्रस्त्वन्यरेतसः ॥

'ओंकार को पिता और गायत्री को माता रूप से जो नहीं जानता, वह पुरुष अन्य की सन्तान है, अर्थात् व्यभिचार से उत्पन्न है।'

उपलभ्य च सावित्रीं नोपतिष्ठति यो द्विजः।
काले त्रिकालं सप्ताहात् स पतेन् नात्र संशयः ॥

'गायत्री मन्त्र को जानकर, जो द्विज इसका आचरण नहीं करता अर्थात् इसे त्रिकाल में नहीं जपता, उसका निश्चय पतन हो जाता है।'

गायत्री आध्यात्मिक त्रिवेणी है

पिछले पृष्ठों पर कुछ थोड़े से प्रमाण गायत्री की महिमा-सूचक दिये गये हैं। इस प्रकार के प्रमाण धर्म-शास्त्रों में इतनी बड़ी मात्रा में भरे पड़े हैं कि उनका संग्रह और प्रकाशन करना कठिन है। गंगा, गीता, गौ, गायत्री यह चार आर्य धर्म की शिक्षायें हैं। भारतीय धर्म को मानने वाला प्रत्येक व्यक्ति इन चारों का माता के समान आदर करता है और एक माता की सन्तान के समान आपस में एकता का अनुभव करता है।

गायत्री को आध्यात्मिक त्रिवेणी कहा गया है। गंगा, यमुना के मिलने से एक अदृश्य, सूक्ष्म एवं अलौकिक दिव्य सरिता का आविर्भाव होता है, जिसे सरस्वती कहते हैं। गंगा, यमुना और सरस्वती तीनों का सम्मिलन

त्रिवेणी कहलाता है। त्रिवेणी होने के कारण ही प्रयाग को तीर्थराज कहा गया है, सब तीर्थों का राजा माना गया है। इसी प्रकार आध्यात्मिक जगत् की त्रिवेणी गायत्री है। इसके तीनों अक्षर संकेत रूप से इसी प्रकार के त्रिगुणात्मक सम्मेलन का रहस्योद्घाटन करते हैं। गा-पहला अक्षर, गंगा बोधक है। य-दूसरा अक्षर यमुना का संकेत करता है। त्री-तीसरा अक्षर त्रिवेणी का अस्तित्व बताता है। त्रयी शक्ति में कितने ही त्रिक् घुसे हुए हैं। (१) सत्, चित्, आनन्द (२) सत्य, शिव, सुन्दर (३) सत्, रज, तम, (४) ईश्वर, जीव, प्रकृति (५) ऋक्, यजु, साम, (६) ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य (७) गुण, कर्म, स्वभाव (८) शैशव, यौवन, बुढ़ापा (९) ब्रह्मा, विष्णु, महेश (१०) उत्पत्ति, वृद्धि, नाश (११) सर्दी, गर्मी, वर्षा (१२) धर्म, अर्थ, काम (१३) आकाश, पाताल, पृथ्वी, (१४) देव, मनुष्य, असुर आदि अगणित त्रिक् गायत्री छन्द के गर्भ में सम्पुटित हैं। जिसमें गहराई तक प्रवेश करके मनन, चिन्तन, परिशीलन रूपी स्नान करने से, वैसा ही आध्यात्मिक लाभ प्राप्त होता है जैसा कि भौतिक जगत् में त्रिवेणी के स्नान का पुण्य फल माना गया है। इन तीन अक्षरों के अनेक प्रकार की तीन-तीन समस्यायें मनुष्य के सामने उपस्थित की गयी हैं, जिनका भली प्रकार अवगाहन करने से जीवन-मुक्ति के परम फल को प्राप्त किया जा सकता है।

त्रिवेणी की तीन धारायें देखने में बड़ी दुस्तर, भयंकर, विशाल और अगाध दिखाई पड़ती हैं। इसी प्रकार से गायत्री में जो समस्यायें सिमटी हुई हैं, वे काफी प्रतीत होती हैं, पर जैसे त्रिवेणी की जलधारा में प्रवेश करके स्नान करने से भय दूर हो जाता है और शान्तिदायक, शीतल प्रफुल्लता प्राप्त होती है, वैसे ही गायत्री में सन्निहित समस्याओं का चिन्तन, मनन और अवगाहन करने से ऐसे तत्त्वज्ञान की प्राप्ति होती है, जो सत्पथ की ओर प्रेरित करता है और शाश्वत शान्ति एवं परमानन्द के द्वार तक पहुँचा देता है।

गायत्री निस्संदेह आध्यात्मिक त्रिवेणी है, उसे तीर्थराज ही समझना चाहिये, क्योंकि उसमें सन्निहित तत्त्वज्ञान अति सरल, सुबोध, सुगम, सीधा और स्थायी सुख-शान्ति प्रदान करने वाला है।

गायत्री की महिमा अनन्त है। वेद- पुराण, शास्त्र-इतिहास, ऋषि-मुनि, गृही-विरागी सभी समान रूप से उनका महत्त्व स्वीकार करते हैं। उसमें हमारे दृष्टिकोण को बदल देने की अद्‌भुत शक्ति है। अपनी उलटी विचारधारा, भ्रान्त मनोभूमि यदि सीधी हो जाए, हमारी इच्छायें, आकांक्षायें, विचारधारा, भावनायें यदि उचित स्थान पर आ जायें, तो यह मनुष्य शरीर देवयोनि से बढ़कर और यह भूलोक सुरलोक से बढ़कर हर किसी के लिए आनन्ददायक हो सकता है। हमारी उलटी बुद्धि ही स्वर्ग को नरक बनाये हुए है। इस विषम स्थिति से उबारकर हमारे मस्तिष्क को सीधा करने की शक्ति गायत्री में है। जो उस शक्ति का उपयोग करता है, वह विषय विकारों, भ्रान्त विचारों और दुर्भावों के भव-बन्धन से छूटकर जीवन के सत्य, शिव और सुन्दर रूप का दर्शन करता हुआ परमात्मा की शाश्वत शान्ति को प्राप्त करता है। इसलिये वेदमाता गायत्री को महामहिमामयी कहा गया है। उसका माहात्म्य अनन्त है।

गायत्री गीता

वेदमाता गायत्री का मन्त्र छोटा-सा है। उसमें २४ अक्षर हैं, पर इतने थोड़े में ही अनन्त ज्ञान का समुद्र भरा पड़ा है। जो ज्ञान गायत्री के गर्भ में है, वह इतना सर्वांगपूर्ण एवं परिमार्जित है कि मनुष्य यदि उसे भली प्रकार समझ ले और अपने जीवन में व्यवहार करे, तो उससे लोक-परलोक सब प्रकार से सुख-शान्तिमय बन सकते हैं।

आध्यात्मिक और सांसारिक दोनों ही दृष्टिकोण से गायत्री का सन्देश बहुत ही अर्थ पूर्ण है। उसे गम्भीरतापूर्वक समझा और मनन किया जाए, तो सद्ज्ञान का अविरल स्रोत प्रस्फुटित होता है। नीचे संक्षिप्त-सा गायत्री-मन्त्रार्थ दिया जाता है। यही गायत्री गीता है-

ओमित्येव सुनामधेयमनघं विश्वात्मनो ब्रह्मणः।
सर्वेष्वेव हि तस्य नामसु वसोरेतत्प्रधानं मतम्॥

यं वेदा निगदन्ति न्यायनिरतं श्रीसच्चिदानन्दकम्।
लोकेशं समदर्शिनं नियमनं चाकारहीनं प्रभुम्॥१॥

अर्थ- जिसको वेद न्यायकारी, सच्चिदानन्द, सर्वेश्वर, समदर्शी, नियामक, प्रभु और निराकार कहते हैं, जो विश्व में आत्मा रूप से उस ब्रह्म के समस्त नामों में श्रेष्ठ नाम, पाप-रहित, पवित्र और ध्यान करने योग्य है, वह "ॐ" ही मुख्य नाम माना गया है।

भावार्थ- "परमात्मा को प्राप्त करने और प्रसन्न करने का मार्ग उसके नियमों पर चलना है। वह निन्दा-स्तुति से प्रभावित नहीं होता, वरन् कर्मों के अनुसार फल देता है। परमात्मा को सर्वत्र व्यापक समझकर गुप्त रूप से भी पाप न करना चाहिये। प्राणियों की सेवा करना परमात्मा की ही पूजा करना है। परमात्मा को अपने अन्तस् में अनुभव करने से आत्मा पवित्र होती है और सत्, चैतन्यता तथा आनन्द की अनुभूति होती है।

भूर्वै प्राण इति ब्रुवन्ति मुनयो वेदान्तपारं गताः,
प्राणः सर्वविचेतनेषु प्रसृतः सामान्यरूपेण च।
एतेनैव विसिद्ध्यते हि सकलं नूनं समानं जगत्,
द्रष्टव्यः सकलेषु जन्तुषु जनैर्नित्यं ह्यसुश्चात्मवत्॥२॥

अर्थ- मुनि लोग प्राण को 'भूः' कहते हैं। यह प्राण समस्त प्राणियों में सामान्य रूप से फैला हुआ है। इससे सिद्ध है कि यहाँ सब समान हैं। अतएव सब मनुष्यों और प्राणियों को अपने समान ही देखना चाहिए।

भावार्थ- अपने समान सबको कष्ट होता है, इसलिये किसी को सताना नहीं चाहिये। दूसरों के प्रति वही व्यवहार करना चाहिये, जो हम दूसरों से अपने लिये चाहते हैं, सबमें समत्व की दृष्टि रखनी चाहिये। कुल, वंश, देश, जाति, समुदाय, स्त्री, पुरुष आदि भेदों के कारण किसी को नीचा-ऊँचा, छोटा-बड़ा नहीं समझना चाहिये। उच्चता और नीचता का कारण तो भले-बुरे कर्म ही हो सकते हैं।

भुवर्नाशो लोके सकलविपदां वै निगदितः,
कृतं कार्यं कर्त्तव्यमिति मनसा चास्य करणम्।
फलाशां मर्त्या ये विदधति न वै कर्मनिरताः,
लभन्ते नित्यं ते जगति हि प्रसादं सुमनसाम्॥३॥

अर्थ- संसार में समस्त दुःखों का नाश ही 'भुवः' कहलाता है। कर्त्तव्य-भावना से किया गया कार्य ही कर्म कहलाता है। परिणाम में सुख की अभिलाषा को छोड़कर जो कार्य करते हैं, वे मनुष्य सदा प्रसन्न रहते हैं।

भावार्थ- मनुष्य का अधिकार कार्य करना है, फल देने वाला ईश्वर है। अमुक वस्तु प्राप्त होने पर ही सुख माना जाए, ऐसा सोचने के बजाय ऐसा सोचना चाहिये, कि कर्त्तव्य-पालन ही हमारे लिये आनन्द का सर्वोत्तम केन्द्र है। जो अपने कर्त्तव्य कर्म को ही लक्ष्य मान लेता है, वह कर्मयोगी हर घड़ी सुखी रहता है। जो इच्छित फल की आशा के लिये लटका रहता है, उस तृष्णावान् को सदा सत्कर्म करते रहना चाहिये, गीता के कर्मयोग का यही तत्त्व है।

स्वरेषो वै शब्दो निगदति मनःस्थैर्य-करणम्,
तथा सौख्यं स्वास्थ्यं ह्युपदिशति चित्तस्य चलतः।
निमग्नत्वं सत्यव्रतसरसि चाचक्षति उत,
त्रिधां शांतिं ह्येतां भुवि च लभते संयमरतः॥४॥

अर्थ- 'स्वः' यह शब्द मन की स्थिरता का निर्देश करता है। चञ्चल मन को सुस्थिर और स्वस्थ रखो, यह उपदेश देता है। सत्य में निमग्न रहो, यह कहता है। इस उपाय से संयमी पुरुष तीनों प्रकार की शान्ति को प्राप्त करते हैं।

भावार्थ- अनिच्छित परिस्थिति प्राप्त होने पर प्राय: मनुष्य शोक, दु:ख, क्रोध, द्वेष, दीनता, निराशा, चिन्ता, भय, बेचैनी आदि से उद्विग्न होकर अपना मानसिक संतुलन खो बैठते हैं और अनुकूल परिस्थिति प्राप्त होने पर अहंकार, मद, उद्दण्डता, खुशी में फूलकर अस्वाभाविक आचरण करना, इतराना, अपव्यय, शेखी आदि से ग्रस्त हो जाते हैं। ये दोनों ही स्थितियाँ एक प्रकार का नशा या ज्वर हैं। ये विवेक को अन्धा कर देते हैं, जिससे विचार और कार्यों की उचित शृंखला नष्ट-भ्रष्ट हो जाती है और आदमी अन्धा तथा बावला बन जाता है। इन सत्यानाशी तूफानों से आत्मा की रक्षा करने के लिये मन को स्थिर, सन्तुलित, स्वच्छ एवं सत्यप्रेमी बनाना चाहिये, तभी मनुष्य को आत्मिक, बौद्धिक तथा शारीरिक शांति मिल सकती है।

ततो वै निष्पत्तिः स भुवि मतिमान् पण्डितवरः,
विजानन् गुह्यं यो मरणजीवनयोस्तदखिलम्।
अनन्ते संसारे विचरति भयासक्तिरहित,
स्तथा निर्माणं वै निजगतिविधीनां प्रकुरुते ॥५॥

अर्थ- 'तत्' शब्द यह बतलाता है कि इस संसार में वही बुद्धिमान् है, जो जीवन और मरण के रहस्य को जानता है। भय और आसक्ति रहित जीता और अपनी गतिविधियों का निर्माण करता है।

भावार्थ- मृत्यु सदा सिर पर खड़ी नाचती रहती है। इस समय साँस चल रही है, अगले ही क्षण बन्द हो जाए, इसका क्या ठिकाना है ? यह सोचकर इस सुर-दुर्लभ मानव-जीवन का श्रेष्ठतम उपयोग करना चाहिये और थोड़े जीवन में क्षणिक सुख के लिये पाप क्यों किये जाएँ, जिससे चिरकाल तक दु:ख भोगने पड़ें, ऐसा विचार करना चाहिये।

यदि विद्याध्ययन, समाज-सुधार, धर्म-प्रचार आदि श्रेष्ठ कार्य करने हों, तो ऐसा सोचना चाहिये कि जीवन अखण्ड है। यदि इस शरीर से वह कार्य पूरा न हो सका, तो अगले में पूरा करेंगे। यह निर्विवाद है, कि जो इस जीवन का सदुपयोग कर रहा है, उसे मृत्यु के पश्चात् आनन्द ही मिलेगा। परलोक, पुनर्जन्म आदि में सुख ही प्राप्त होगा, पर जो इन जीवन-क्षणों का दुरुपयोग कर रहा है, उसका भविष्य अन्धकारमय है। इसलिये जो बीत चुका है, उसके लिये दु:ख न करते हुए शेष जीवन का सदुपयोग करना चाहिये।

सवितुस्तु पदं वितनोति ध्रुवं,
मनुजो बलवान् सवितेव भवेत्।
विषया अनुभूतिपरिस्थितय -
स्तु सदात्मन एव गणेदिति सः ॥६॥

अर्थ- 'सवितु:' यह पद बतलाता है कि मनुष्य को सूर्य के समान बलवान् होना चाहिये और सभी विषय तथा अनुभूतियाँ अपनी आत्मा से ही सम्बन्धित हैं, ऐसा विचारना चाहिये।

भावार्थ- सूर्य को वीर्य और पृथ्वी को रज कहा जाता है। सूर्य की शक्ति से संसार की सब क्रियायें होती हैं। इसी प्रकार आत्मा अपनी क्रियाशीलता द्वारा विविध प्रकार की परिस्थितियाँ उत्पन्न करती है। प्रारब्ध, भाग्य, दैव आदि भी अपने प्राचीन कर्मों का ही परिपाक मात्र है। इसलिये अपने लिये जैसी परिस्थिति अच्छी लगती है, उसी के योग्य अपने को बनाना चाहिये। अपना भाग्य-निर्माण करना हर मनुष्य के अपने हाथ में है। इसलिये आत्म-निर्माण की ओर ही सबसे अधिक ध्यान देना चाहिये। बाहर की सहायता भी अपनी अन्तरंग स्थिति के अनुकूल ही मिलती है।

मनुष्य को तेजस्वी, बलवान्, पुरुषार्थी बनना चाहिये। स्वास्थ्य, विद्या, धन, चतुरता, संगठन, यश, साहस और सत्य इन आठ बलों से अपने को सदैव बलवान् बनाने का प्रयत्न करना चाहिये।

वरेण्यञ्चैतद्वै प्रकटयति श्रेष्ठत्वमनिशम्,
सदा पश्येच्छ्रेष्ठं मननमपि श्रेष्ठस्य विदधेत्।

तथा लोके श्रेष्ठं सरलमनसा कर्म च भजेत्,
तदित्थं श्रेष्ठत्वं व्रजति मनुजः शोभितगुणैः ।।७ ।।

अर्थ- 'वरेण्यं' यह शब्द प्रकट करता है कि प्रत्येक मनुष्य को नित्य श्रेष्ठता की ओर बढ़ना चाहिये । श्रेष्ठ देखना, श्रेष्ठ चिन्तन करना, श्रेष्ठ विचारना, श्रेष्ठ कार्य करना इस प्रकार से मनुष्य को श्रेष्ठता प्राप्त होती है ।

भावार्थ- मनुष्य वैसा ही बनता है, जैसे उसके विचार होते हैं । विचार साँचा है और जीवन गीली मिट्टी । जैसे विचारों में हम डूबे रहते हैं, हमारा जीवन उसी ढाँचे में ढलता जाता है, वैसे ही आचरण होने लगते हैं, वैसे ही साथी मिलते हैं, उसी दिशा में जानकारी, रुचि तथा प्रेरणा मिलती है । इसलिये यदि अपने को श्रेष्ठ बनाना है, तो सदा श्रेष्ठ मनुष्यों के संपर्क में रहना, श्रेष्ठ पुस्तकें पढ़ना, श्रेष्ठ बातें सोचना, श्रेष्ठ घटनायें देखना, श्रेष्ठ कार्य करना आवश्यक है । दूसरों में जो श्रेष्ठतायें हों उनकी कदर करना और उन्हें अपनाना, श्रेष्ठता में श्रद्धा रखना ये सब बातें उन लोगों के लिये बहुत आवश्यक हैं, जो अपने को श्रेष्ठ बनाना चाहते हैं ।

भर्गो व्याहरते पदं हि नितरां लोकः सुलोको भवेत्,
पापे पाप-विनाशने त्वविरतं, दत्तावधानो वसेत् ।
दृष्ट्वा दुष्कृतिदुर्विपाक-निचयं तेभ्यो जुगुप्सेद्धि च,
तन्नाशाय विधीयतां च सततं, संघर्षमेभिः सह ।।८ ।।

अर्थ- 'भर्गो' यह पद बताता है कि मनुष्य को निष्पाप बनना चाहिये । पापों से सावधान रहना चाहिये । पापों के दुष्परिणामों को देखकर उनसे घृणा करे और निरन्तर उनको नष्ट करने के लिये संघर्ष करता रहे ।

भावार्थ-संसार में जितने दुःख हैं, पापों के कारण हैं । अस्पतालों में, जेलखानों में तथा अन्यत्र नाना प्रकार के कष्टों से पीड़ित मनुष्य अब के या पुराने पापों से ही दुःख भोगते हैं । नरक में भी पापी ही त्रास पाते हैं । सन्त और परोपकारी पुरुष दूसरों के पापों का बोझ अपने सिर पर लेकर दुःख उठाते हैं और उन्हें शुद्ध करते हैं । चाहे, दूसरों का दुःख कोई सन्त सहे, चाहे पापी स्वयं सहे, हर हालत में दुःखों का कारण पाप ही है । इसलिये जिन्हें दुःख का भय है और सुख की इच्छा है, उन्हें चाहिये कि पापों से बचें और भूतकाल के पापों के लिये प्रायश्चित्त करें । पापों से सावधानी रखना और उन्हें भीतर-बाहर से नष्ट करने के लिये संघर्ष करना- यह बहुत बड़ा पुण्य-कार्य है, क्योंकि इससे अगणित प्राणी दुःखों से छुटकारा पाकर सुखी बनते हैं । निष्पापता में ही सच्चे आनन्द का निवास है ।

देवस्येति तु व्याकरोत्यमरतां मर्त्योऽपि संप्राप्यते,
देवानामिव शुद्धदृष्टिकरणात् सेवोपचाराद् भुवि ।
निःस्वार्थं परमार्थ-कर्मकरणात् दीनाय दानात्तथा,
बाह्याभ्यन्तरमस्य देवभुवनं संसृज्यते चैव हि ।।९ ।।

अर्थ- 'देवस्य' यह पद बतलाता है कि मरणधर्मा मनुष्य भी अमरता अर्थात् देवत्व को प्राप्त कर सकता है । देवताओं के समान शुद्ध दृष्टि रखने से, प्राणियों की सेवा करने से, परमार्थ कर्म करने से, निर्बलों की सहायता करने से मनुष्य के भीतर और बाहर देवलोक की सृष्टि होती है ।

भावार्थ- परमात्मा की बनाई हुई इस पवित्र सृष्टि में जो कुछ है, पवित्र और आनन्दमय ही है । इस सृष्टि को, संसार को प्रसन्नता की दृष्टि से देखना, उसमें मनुष्यों द्वारा उत्पन्न की गयी बुराइयों को दूर करना और ईश्वरीय श्रेष्ठताओं को विकसित करना, प्रचलित करना देवकर्म है । इस देव-दृष्टि को धारण करने से मनुष्य देवता बन सकता है । जो अपने को शरीर न समझ कर आत्मा अनुभव करता है, वह अमर है । उसके पास से मृत्यु का भय दूर हो जाता है । प्राणियों को प्रेम और आत्मीयता की पवित्र दृष्टि से देखना, अपने आचरणों को पवित्र रखना, अपने से निर्बलों को ऊँचा उठाने के लिये अपनी शक्ति का दान करना यह देवत्व है । इन गुण वालों के लिये यह भूलोक भी देवलोक के समान आनन्दमय बन जाता है ।

धीमहि सर्वविधं शुचिमेव,

शक्तिचय वयमित्युपदिष्टाः ।
नो मनुजो लभते सुखशांति-
मनेन विनेति वदन्ति हि वेदाः ॥१० ॥

अर्थ- 'धीमहि' का आशय है कि हम सब लोग हृदय में सब प्रकार की पवित्र शक्तियों को धारण करें । वेद कहते हैं कि इसके बिना मनुष्य सुख-शान्ति को प्राप्त नहीं होता ।

भावार्थ- संसार में भौतिक शक्तियाँ अनेक हैं । धन, पद, वैभव, राज्य, शरीर-बल, संगठन, शस्त्र, विद्या, बुद्धि, चतुरता, कोई विशेष योग्यता आदि के बल पर लोग ऐश्वर्य और प्रशंसा प्राप्त कर लेते हैं, पर यह अस्थायी होती हैं । इनसे सुख मिल सकता है, पर वह छोटे-मोटे आघात में ही नष्ट भी हो सकता है । स्थायी सुख आध्यात्मिक पवित्र गुणों में है, जिन्हें 'दैवी सम्पदायें' या 'दिव्य शक्तियाँ' भी कहते हैं । निर्भयता, विवेक, स्थिरता, उदारता, संयम, परमार्थ, स्वाध्याय, तपश्चर्या, दया, सत्य, अहिंसा, नम्रता, धैर्य, अद्रोह, प्रेम, न्यायशीलता, निरालस्य आदि दैवी गुणों के कारण जो सुख मिलता है, उसकी तुलना किसी भी भौतिक सम्पदा से नहीं हो सकती । इसलिये अपनी दैवी सम्पदाओं का कोश बढ़ाने का प्रयत्न करते रहना चाहिये ।

धियो मत्योन्मथ्यागमनिगममन्त्रान् सुमतिमान्,
विजानीयात्तत्त्वं विमलनवनीतं परमिव ।
यतोऽस्मिन् लोके वै संशयगत - विचार-स्थलशते,
मतिः शुद्धैवाच्छा प्रकटयति सत्यं सुमनसे ।११ ।

अर्थ- 'धियो' पद बतलाता है कि बुद्धिमान् को चाहिये, वह वेद-शास्त्रों को बुद्धि से मथ कर मक्खन के समान उत्कृष्ट तत्त्वों को जाने, क्योंकि शुद्ध बुद्धि से ही सत्य को जाना जाता है ।

भावार्थ- संसार में अनेक विचारधारायें हैं, उनमें से अनेकों आपस में टकराती भी हैं । एक शास्त्र के सिद्धान्त दूसरे शास्त्र के विपरीत भी बैठते हैं । इसी कारण एक विद्वान् या ऋषि के विचार दूसरे विद्वान् या ऋषि के विचारों से पूर्णतया मेल नहीं खाते । ऐसी स्थिति में विचलित नहीं होना चाहिये । देश, काल, पात्र और परिस्थिति के अनुसार जो बात एक समय बिल्कुल ठीक होती है, वही भिन्न परिस्थितियों में गलत भी हो सकती है । जाड़े के दिनों में जो कपड़े लाभदायक होते हैं, उनसे गर्मी में काम नहीं चलाया जा सकता । इसी प्रकार एक परिस्थिति में जो बात उचित है, वह दूसरी परिस्थिति में अनुचित हो जाती है । इसलिये किसी ऋषि, विद्वान्, नेता व शास्त्र की निन्दा न करते हुए हमें उसमें से वही तत्त्व लेने चाहिये, जो आज की स्थिति के अनुकूल हैं । इस उचित-अनुचित का निर्णय तर्क, विवेक और न्याय के आधार पर वर्तमान परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए करना चाहिये ।

योनो वास्ति तु शक्तिसाधनचयो न्यूनाधिकश्चाथवा,
भागं न्यूनतमं हि तस्य विदधेमात्मप्रसादाय च ।
यत्पश्चादवशिष्टभागमखिलं त्यक्त्वा फलाशां हृदि,
तद्धीनेष्वभिलाषवत्सु वितरेद् ये शक्तिहीनाः स्वयम् ॥१२ ॥

अर्थ- 'योनः' पद का तात्पर्य है कि हमारी जो भी शक्तियाँ एवं साधन हैं, चाहे वे न्यून हों अथवा अधिक हों, उनके न्यून से न्यून भाग को ही अपनी आवश्यकता के लिये प्रयोग में लायें और शेष को निःस्वार्थ भाव से अशक्त व्यक्तियों को बाँट दें ।

भावार्थ- भगवान् ने मनुष्य को ज्ञान, बल तथा वैभव एक अमानत के रूप में इसलिये दिये हैं कि इन विभूतियों से सुसज्जित होकर अपने आप का मान, यश, सुख तथा पुण्य का श्रेय प्राप्त करे और इनका लाभ अधिक से अधिक मात्रा में दूसरों को उठाने दें । अपने ऐश, आराम, भोग, संचय या अहंकार की पूर्ति में इनका उपयोग नहीं होना चाहिये । वरन् लोकहित के लिये, अपने से निर्बलों की सहायता के लिये इनका उपयोग किया जाना चाहिये । विद्वान्, बलवान् या धनवान् का गौरव इसी बात में है कि उनके द्वारा कम ज्ञान वालों को, निर्धनों

को ऊँचा उठाने का प्रयास किया जाए। जैसे वृक्ष, कूप, तड़ाग, उपवन, पुष्प, अग्नि, जल, वायु, बिजली आदि श्रेष्ठ समझे जाने वाले पदार्थ, अपनी महान् शक्तियों को लोक-हित के लिये सदैव वितरित करते रहते हैं, वैसे ही हमें भी अपनी शक्तियों का जीवन-निर्वाह मात्र अपने लिये रख कर शेष को जनहित के लिये समर्पित कर देना चाहिये।

प्रचोदयात् स्वं त्वितरांश्च मानवान्,
नरः प्रयाणाय च सत्यवर्त्मनि।
कृतं हि कर्माखिलमित्थमंगिना,
वदन्ति धर्मं इति हि विपश्चितः ॥१३॥

अर्थ- 'प्रचोदयात्' पद का अर्थ है कि मनुष्य अपने आपको तथा दूसरों को सत्य मार्ग पर चलने के लिये प्रेरणा दे। इस प्रकार किये हुए सब कामों को विद्वान् लोग धर्म कहते हैं।

भावार्थ- प्रेरणा संसार की सबसे बड़ी शक्ति है। इसके बिना सारी साधन सामग्री बेकार है, चाहे वह कितनी ही बड़ी क्यों न हो। प्रेरणा से उत्साहित और प्रवृत्त हुआ मनुष्य यदि कार्य आरम्भ कर देता है, तो साधन अपने आप जुटा लेता है। उसे ईश्वरीय सहायतायें मिलती हैं और अनेक सहयोगी प्राप्त हो जाते हैं। इसलिये अपने आपको सन्मार्ग पर चलाने के लिए प्रेरणा तथा प्रोत्साहन प्राप्त करना चाहिये तथा दूसरों को श्रेष्ठता की दिशा में अग्रसर करने के लिये उन्हें प्रेरित करना चाहिये। वस्तुयें देकर किसी का उतना उपकार नहीं किया जा सकता है। सत्कार्य के लिये प्रेरणा देना इतना बड़ा पुण्य कार्य है कि उसकी तुलना में छोटी-मोटी पुण्य-क्रियायें बहुत ही तुच्छ बैठती हैं।

गायत्री-गीतां ह्येतां यो नरो वेत्ति तत्त्वतः।
स मुक्त्वा सर्वदुःखेभ्यः सदानन्दे निमज्जति ॥१४॥

अर्थ- जो मनुष्य इस गायत्री-गीता को भली प्रकार जान लेता है, वह सब प्रकार के दुःखों से छूट कर सदा आनन्दमग्न रहता है।

गायत्री गीता के उपर्युक्त १४ श्लोक समस्त वेद शास्त्रों में भरे हुए ज्ञान का निचोड़ है। समुद्र मन्थन से १४ रत्न निकले थे। समस्त शास्त्रों के समुद्र का मन्थन करके निकाले गये यह १४ श्लोक रूपी १४ रत्न हैं। जो व्यक्ति इन्हें भली प्रकार हृदयंगम कर लेता है, वह कभी भी दुःखी नहीं रह सकता, उसे सदा आनन्द ही आनन्द रहेगा।

गायत्री स्मृति

भूर्भुवः स्वस्त्रयो लोका व्याप्तमोम्ब्रह्म तेषु हि।
स एव तथ्यतो ज्ञानी यस्तद्वेत्ति विचक्षणः ॥१॥

"भूः भुवः और स्वः ये तीन लोक हैं, उन तीनों लोकों में ॐ ब्रह्म व्याप्त है। जो बुद्धिमान् उस ब्रह्म को जानता है, वही वास्तव में ज्ञानी है।"

परमात्मा का वैदिक नाम 'ॐ' है। ब्रह्म की स्फुरणा का सूक्ष्म प्रकृति पर निरन्तर आघात होता रहता है। इन्हीं आघातों के कारण सृष्टि में गतिशीलता उत्पन्न होती रहती है। काँसे के बर्तन पर जैसे हथौड़ी की हल्की चोट मारी जाए, तो वह बहुत देर तक झनझनाता रहता है, इसी प्रकार ब्रह्म और प्रकृति के मिलन-स्पन्दन स्थल पर ॐ की झन्कार होती रहती है। इसलिये यही परमात्मा का स्वयं घोषित नाम माना गया है।

यह ॐ तीनों ही लोकों में व्याप्त है। भूः पृथ्वी, भुवः पाताल, स्वः स्वर्ग- ये तीनों ही लोक परमात्मा से परिपूर्ण हैं। भूः शरीर, भुवः संसार, स्वः आत्मा यह तीनों ही परमात्मा के क्रीड़ा-स्थल हैं। इन सभी स्थलों को, निखिल ब्रह्माण्ड को भगवान् का विराट् रूप समझ कर उस आध्यात्मिक उच्च भूमिका को प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिये, जो गीता के ११ वें अध्याय में भगवान् ने अर्जुन को अपना विराट् रूप दिखाकर प्राप्त कराई थी। परमात्मा को सर्वत्र सर्वव्यापक, सर्वेश्वर, सर्वात्मा देखने वाला मनुष्य माया, मोह, ममता, संकीर्णता, अनुदारता, कुविचार एवं

कुकर्मों की अग्नि में झुलसने से बच जाता है और हर घड़ी परमात्मा के दर्शन करने से परमानन्द सुख में निमग्न रहता है। ॐ भूर्भुवः स्वः का तत्त्वज्ञान समझ लेने वाला ब्रह्मज्ञानी एक प्रकार से जीवन-मुक्त ही हो जाता है।

तत्- तत्त्वज्ञास्तु विद्वांसो ब्राह्मणाः स्वतपोबलैः।
अंधकारमपाकुर्युः लोकादज्ञानसम्भवम्॥२॥

'तत्त्वदर्शी विद्वान् ब्राह्मण अपने एकत्रित तप के द्वारा संसार से अज्ञान द्वारा उत्पन्न अन्धकार को दूर करें।'

ब्राह्मण वे हैं जो तत्त्व को, वास्तविकता को, परिणाम को देखते हैं, जिन्होंने अपनी पढ़ाई को भाषा साहित्य, शिल्पकला, विज्ञान आदि की पेटभरू शिक्षा तक ही सीमित न रखकर जीवन का उद्देश्य, आनन्द और साफल्य प्राप्त करने की 'विद्या' भी सीखी है। शिक्षित तो गली-कूचों में मक्खी-मच्छरों की तरह भरे पड़े हैं, पर जो विद्वान् हैं, वे ही ब्राह्मण हैं।

भगवान् ने जिन्हें तत्त्वदर्शी और विद्वान् बनने की सुविधा एवं प्रेरणा दी है, उन ब्राह्मणों को अपनी जिम्मेदारी अनुभव करनी चाहिये, क्योंकि वे सबसे बड़े धनी हैं। लोग व्यर्थ ही ऐसा सोचते हैं कि धन की अधिकता ही सुख का कारण है। सच्च बात यह है कि बिना सद्ज्ञान के कोई मनुष्य सुख-शान्ति का जीवन नहीं बिता सकता, चाहे वह करोड़ों रुपयों का स्वामी क्यों न हो। भारतवासी सद्ज्ञान का महत्त्व आदि काल से समझते आये हैं, इसलिये यहाँ सद्ज्ञान के, ब्रह्मज्ञान के धनी ब्राह्मणों की मान-प्रतिष्ठा सबसे अधिक होती रही है। आज इस गये बीते जमाने में भी उसकी चिह्न पूजा किसी न किसी रूप में ब्राह्मणों के अनधिकारी वंशजों तक को प्राप्त हो जाती है।

ब्राह्मणत्व विश्व का सबसे बड़ा धन है। रत्नों का भण्डार बढ़िया, कीमती, मजबूत तिजोरी में रखा जाता है। जो शरीर तपःपूत है, तपस्या की, संयम की, तितिक्षा की, त्याग की अग्नि में तपा-तपा कर जिस तिजोरी को भली प्रकार से मजबूती से गढ़ा गया है, उसी में ब्राह्मणत्व रहेगा और ठहरेगा। जो असंयमी, भोगी, स्वार्थी, तपोविहीन हैं, वे शास्त्रों की तोतारटन्त भले ही करते हों, पर उस बकवाद के अतिरिक्त अपने में ब्राह्मणत्व को भली प्रकार सुरक्षित एवं स्थिर रखने में समर्थ नहीं हो सकते। इसलिये ब्राह्मण को, सद्ज्ञान के धनी को, अपने को तपःपूत बनाना चाहिये। तप और ब्राह्मणत्व के सम्मिश्रण से ही सोना और सुगन्ध की उक्ति चरितार्थ होती है।

ब्राह्मण को भूसुर कहा जाता है। भूसुर का अर्थ है- पृथ्वी का देवता। देवता वह है जो दे। ब्राह्मण संसार का सर्वश्रेष्ठ धन का, सद्ज्ञान का धनपति होता है। वह देखता है कि जो धन उसके पास अटूट भण्डार के रूप में भरा हुआ है, उसी के अभाव के कारण सारी जनता दुःख पा रही है। अज्ञान से, अविद्या से बढ़कर दुःखों का कारण और कोई नहीं है। जैसे भूख से छटपटाते हुए, करुण क्रन्दन करते हुए मनुष्य को देखकर सहृदय धनी व्यक्ति उन्हें कुछ दान दिये बिना नहीं रह सकते, उसी प्रकार अविद्या के अन्धकार में भटकते हुए जन समूह को सच्चा ब्राह्मण, अपनी सद्ज्ञान रूपी सम्पदा से लाभ पहुँचाता है। यह कर्तव्य आवश्यक एवं अनिवार्य है। यह ब्राह्मण की स्वाभाविक जिम्मेदारी है।

गायत्री का प्रथम शब्द 'तत्' ब्राह्मणत्व की इस महान् जिम्मेदारी की ओर संकेत करता है। जिसकी आत्मा, जितने अंशों में तत्त्वदर्शी, विद्वान् और तपस्वी है, वह उतने ही अंश में ब्राह्मण है। यह ब्राह्मणत्व जिस वर्ण, कुल, वंश के मनुष्य में निवास करता है, उसी का यह कर्तव्य-धर्म है कि अज्ञान से उत्पन्न अन्धकार को दूर करने के लिये जो कुछ कर सकता हो, अवश्य करता रहे।

स-सत्तावन्तस्तथा शूराः क्षत्रिया लोकरक्षकाः।
अन्यायाशक्तिसम्भूता ध्वंसयेयुर्हि त्वापदः॥३॥

"सत्तावान् और संसार के रक्षक क्षत्रिय अन्याय और अशक्ति से उत्पन्न होने वाली आपत्तियों को नष्ट करें।"

जन-बल, शरीर-बल, बुद्धि-बल, सत्ता-शक्ति, पद, शासन, गौरव, बड़प्पन, संगठन, तेज, पुरुषार्थ, चातुर्य, साधन, साहस, शौर्य यह क्षत्रियत्व के लक्षण हैं। जिसके पास इन वस्तुओं में से जितनी अधिक मात्रा है, उतने ही अंशों में उसका क्षत्रियत्व बढ़ा हुआ है।

देखा गया है कि यह क्षत्रियत्व जब अनधिकारियों के हाथ में पहुँच जाता है तो इससे उन्हें अहंकार और मद बढ़ जाता है। अहंकार को बड़प्पन समझकर वे उसकी रक्षा के लिये अनेक प्रकार के अनावश्यक खर्च और आडम्बर बढ़ाते हैं। उसकी पूर्ति के लिये अधिक धन की आवश्यकता पड़ती है, जिसे वे अनीति, अन्याय, शोषण, अपहरण द्वारा पूरी करते हैं। दूसरों को सताने में अपना पराक्रम समझते हैं। व्यसनों की अधिकता होती है और इन्द्रिय लिप्सा में प्रवृत्ति बढ़ती है। ऐसी दशा में वह क्षत्रियत्व उस व्यक्ति की आत्मा को ऊँचा उठाने और तेजस्वी महापुरुष बनाने की अपेक्षा अहंकारी, दम्भी, अत्याचारी, व्यसनी और दुराचारी बना देता है। ऐसे दुरुपयोग से बचना ही उचित है।

गायत्री का 'स' अक्षर कहता है कि हे सत्तावानो ! तुम्हें सत्ता इसलिये दी गयी है कि शोषितों और निर्बलों को हाथ पकड़कर ऊँचा उठाओ, उनकी सहायता करो और जो दुष्ट उन्हें निर्बल समझकर सताने का प्रयास करते हैं, उन्हें अपनी शक्ति से परास्त करो। बुराइयों से लड़ने और अच्छाइयों को बढ़ाने के लिये ही ईश्वर शक्ति देता है। उसका उपयोग इसी दिशा में होना चाहिये।

वि-वित्तशक्त्या तु कर्त्तव्या उचिताभावपूर्तयः।
न तु शक्त्या तया कार्यं दर्पौद्धत्यप्रदर्शनम्॥४॥

'धन की शक्ति द्वारा तो उचित अभावों की पूर्ति करनी चाहिये। उस शक्ति द्वारा घमण्ड और उद्दण्डता का प्रदर्शन नहीं करना चाहिये।'

विद्या और सत्ता की भाँति धन भी एक महत्त्वपूर्ण शक्ति है। इसका उपार्जन इसलिये आवश्यक है कि अपने तथा दूसरों के उचित अभावों की पूर्ति की जा सके। शरीर, मन, बुद्धि तथा आत्मा के विकास के लिये, सांसारिक उत्तरदायित्वों की पूर्ति के लिए धन का उपयोग होना चाहिये और इसलिये उसे कमाया जाना चाहिये।

पर कई व्यक्ति प्रचुर मात्रा में धन जमा करने में अपनी प्रतिष्ठा अनुभव करते हैं। अधिक धन का स्वामी होना उनकी दृष्टि में कोई 'बहुत बड़ी बात' होती है। अधिक कीमती सामान का उपयोग करना, अधिक अपव्यय, अधिक भोग, अधिक विलास उन्हें जीवन की सफलता के चिह्न मालूम पड़ते हैं। इसलिये जैसे भी बने धन कमाने की उनकी तृष्णा प्रबल रहती है। इसके लिये वे धर्म-अधर्म का, उचित-अनुचित का विचार करना भी छोड़ देते हैं। धन में उनकी इतनी तन्मयता होती है कि स्वास्थ्य, मनोरंजन, स्वाध्याय, आत्मोन्नति, लोक-सेवा, ईश्वराराधन आदि सभी उपयोगी दिशाओं से वे मुँह मोड़ लेते हैं। धनपतियों को एक प्रकार का नशा-सा चढ़ा रहता है, जिससे उनकी सद्बुद्धि, दूरदर्शिता और सत्-असत् परीक्षणी प्रज्ञा कुण्ठित हो जाती है। धनोपार्जन की यह दशा निन्दनीय है।

धन कमाना आवश्यक है, इसलिये कि उससे हमारी वास्तविक आवश्यकताएँ उचित सीमा तक पूरी हो सकें। इसी दृष्टि से प्रयत्न और परिश्रमपूर्वक लोग धन कमाएँ, गायत्री का 'वि' अक्षर वित्त (धन) के सम्बन्ध में यही संकेत करता है।

तु-तुषाराणां प्रपातेऽपि यत्नो धर्मस्तु चात्मनः।
महिमा च प्रतिष्ठा च प्रोक्ता परिश्रमस्य हि॥५॥

"तुषारापात में भी प्रयत्न करना आत्मा का धर्म है। श्रम की महिमा और प्रतिष्ठा अपार है ऐसा कहा गया है।"

मनुष्य जीवन में विपत्तियाँ, कठिनाइयाँ, विपरीत परिस्थितियाँ, हानियाँ और कष्ट की घड़ियाँ भी आती ही रहती हैं। जैसे रात और दिन समय के दो पहलू हैं वैसे ही सम्पदा और विपदा, सुख और दुःख भी जीवन रथ के दो पहिये हैं। दोनों के लिये ही मनुष्य को धैर्य पूर्वक तैयार रहना चाहिये। न विपत्ति में छाती पीटे और न सम्पत्ति में इतरा कर तिरछा चले।

कठिन समय में मनुष्य के चार साथी हैं- (१) विवेक, (२) धैर्य, (३) साहस, (४) प्रयत्न। इन चारों को मजबूती से पकड़े रहने पर बुरे दिन धीरे-धीरे निकल जाते हैं और जाते समय अनेक अनुभवों, गुणों, योग्यताओं तथा

शक्तियों को उपहार में दे जाते हैं । चाकू पत्थर पर घिसे जाने से तेज होता है, सोना अग्नि में तपकर खरा सिद्ध होता है, मनुष्य कठिनाइयों में पड़कर इतनी शिक्षा प्राप्त करता है जितनी कि दस गुरु मिलकर भी नहीं सिखा सकते हैं । इसलिये कष्ट से डरना नहीं चाहिये वरन् उपर्युक्त चार साधनों द्वारा संघर्ष करके उसे परास्त करना चाहिये ।

परिश्रम, प्रयत्न, कर्तव्य ये मनुष्य के गौरव और वैभव को बढ़ाने वाले हैं । आलसी, भाग्यवादी, कर्महीन संघर्ष से डरने वाले, अव्यावहारिक मनुष्य प्रायः सदा ही असफल होते रहते हैं । जो कठिनाइयों पर विजयी होना और आनन्दमय जीवन का रसास्वादन करना चाहते हैं, उन्हें गायत्री मन्त्र का 'तु' अक्षर उपदेश करता है कि प्रयत्न करो, परिश्रम करो, कर्त्तव्य पथ पर बहादुरी से डटे रहो, क्योंकि पुरुषार्थी की महिमा अपार है । 'पुरुष' कहाने का अधिकारी वही है जो पुरुषार्थी है ।

व-वद नारीं विना कोऽन्यो निर्माता मनुसन्ततेः ।
महत्त्वं रचनाशक्तेः स्वस्या नार्या हि ज्ञायताम् ॥ ६ ॥

"नारी के बिना मनुष्य को बनाने वाला दूसरा और कौन है अर्थात् मनुष्य की निर्मात्री नारी ही है । नारी को अपनी रचना शक्ति का महत्त्व समझना चाहिये ।"

जन-समाज दो भागों में बँटा हुआ है (१) नर (२) नारी । नर की उन्नति, सुविधा एवं सुरक्षा के लिये काफी प्रयत्न किया जाता है, परन्तु नारी हर क्षेत्र में पिछड़ी हुई है । फलस्वरूप हमारा आधा संसार, आधा परिवार, आधा जीवन पिछड़ा हुआ रह जाता है । जिस रथ का एक पहिया बड़ा और एक छोटा हो, जिस हल में एक बैल बड़ा और दूसरा बहुत छोटा जुता हो, उसके द्वारा संतोषजनक कार्य नहीं हो सकता । हमारा देश, हमारा समाज, समुदाय तब तक सच्चे अर्थों में विकसित नहीं कहा जा सकता, जब तक कि नारी को भी नर के समान ही अपनी क्रियाशीलता एवं प्रतिभा प्रकट करने का अवसर प्राप्त न हो ।

नारी से ही नर उत्पन्न होता है । बालक की आदि गुरु उसकी माता ही होती है । पिता के वीर्य की एक बूँद निमित्त ही होती है । बाकी बालक के सब अंग-प्रत्यंग माता के रक्त से ही बनते हैं । उस रक्त में जैसी स्वस्थता, प्रतिभा, विचारधारा होगी उसी के अनुसार बालक का शरीर, मस्तिष्क और स्वभाव बनेगा । नारियाँ यदि अस्वस्थ, अशिक्षित, अविकसित, कूप-मण्डूक और पिछड़ी हुई रहेंगी, तो उनके द्वारा उत्पन्न हुए बालक भी इन्हीं दोषों से युक्त होंगे । ऊसर खेत में अच्छी फसल पैदा नहीं हो सकती । अच्छे फलों का बाग लगाना है तो अच्छी भूमि की आवश्यकता होगी ।

गायत्री का 'व' अक्षर कहता है कि यदि मनुष्य जाति अपनी उन्नति चाहती है तो उसे पहले नारी को शारीरिक, बौद्धिक, सामाजिक, आर्थिक क्षेत्रों में प्रतिभावान् सुविकसित बनाना चाहिये । तभी नर समुदाय में सबलता, सूक्ष्मता, समृद्धि, सद्बुद्धि, सद्गुण और महानता के संस्कारों का विकास हो सकता है । नारी को पिछड़ी हुई रखना अपने पैरों में आप कुल्हाड़ी मारना है ।

रे-रेवेव निर्मला नारी पूजनीया सतां सदा ।
यतो हि सैव लोकेऽस्मिन् साक्षाल्लक्ष्मीर्मता बुधैः ॥ ७ ॥

"सज्जन पुरुष को हमेशा नर्मदा नदी के समान निर्मल नारी की पूजा करनी चाहिये; क्योंकि विद्वानों ने उसी को इस संसार में साक्षात् लक्ष्मी माना है ।"

स्त्री लक्ष्मी का अवतार है । जहाँ नारी सुलक्षिणी है, बुद्धिमती है और सहयोगिनी है, वहाँ गरीबी होते हुए भी अमीरी का आनन्द बरसता रहता है । धन-दौलत निर्जीव लक्ष्मी है, किन्तु स्त्री लक्ष्मीजी की सजीव प्रतिमा है, उसका यथोचित आदर, सत्कार और परितोषण होना चाहिये ।

जैसे नर्मदा नदी का जल सदा निर्मल रहता है, उसी प्रकार ईश्वर ने नारी को निर्मल अन्तःकरण दिया है । परिस्थिति दोष के कारण अथवा दुष्ट संगति से कभी-कभी उसमें विकार पैदा हो जाते हैं, पर इन कारणों को बदल दिया जाए, तो नारी हृदय पुनः अपनी शाश्वत निर्मलता पर लौट आता है । स्फटिक मणि को रंगीन मकान में रखा

जाए या उसके निकट कोई रंगीन पदार्थ रख दिया जाए, तो वह मणि भी रंगीन छाया के कारण रंगीन दिखायी पड़ने लगती है । परन्तु पीछे जब उन कारणों को हटा दिया जाए, तो वह शुद्ध, निर्मल, शुभ्र मणि ही दिखाई पड़ती है । इसी प्रकार नारी जब बुरी परिस्थितियों में फँसी हो, तब बुरी दिखाई देती है । उस परिस्थिति का अन्त होते ही वह निर्मल एवं निर्दोष हो जाती है ।

वैधव्य, किसी की मृत्यु, घाटा आदि दुर्घटनायें घटित होने पर उसे नव आगन्तुक वधू के भाग्य का दोष बताना नितांत अनुचित है । ऐसी घटनायें होतव्यता के अनुसार होती हैं । नारी, तो लक्ष्मी का अवतार होने से सदा ही कल्याणकारिणी और मंगलमयी है । गायत्री का अक्षर 'रे' नारी सम्मान की अभिवृद्धि चाहता है, ताकि लोगों को मंगलमय वरदान प्राप्त हो ।

णि- न्यस्यन्ति ये नराः पादान् प्रकृत्याज्ञानुसारतः ।
स्वस्थाः सन्तस्तु ते नूनं रोगमुक्ता भवन्ति हि ॥८ ॥

"जो मनुष्य प्रकृति की आज्ञानुसार पैरों को रखते हैं अर्थात् प्रकृति की आज्ञानुसार चलते हैं, वे मनुष्य निश्चय ही रोगों से मुक्त होते हुए स्वस्थ हो जाते हैं।

स्वास्थ्य को ठीक रखने और बढ़ाने का राजमार्ग प्रकृति के आदेशानुसार चलना, प्राकृतिक आहार-विहार अपनाना, प्राकृतिक जीवन व्यतीत करना है । अप्राकृतिक, अस्वाभाविक, बनावटी, आडम्बर और विलासिता से भरा हुआ जीवन बिताने से लोग बीमार होते हैं और अल्पायु में ही काल के ग्रास बन जाते हैं ।

(१) भूख लगने पर खूब चबाकर प्रसन्न चित्त से, थोड़ा पेट खाली रखकर भोजन करना (२) फल, शाक, दूध, दही, छिलके समेत अन्न और दालें जैसे ताजे सात्त्विक आहार लेना ।(३) नशीली चीजें, मिर्च-मसाले, चाट, पकवान, मिठाइयाँ, मांस आदि अभक्ष्यों से बचना । (४) सामर्थ्य के अनुकूल श्रम एवं व्यायाम करना । (५) शरीर, वस्त्र, मकान और प्रयोजनीय सामान की भली प्रकार सफाई रखना । (६) रात को जल्दी सोना और प्रातः जल्दी उठना । (७) मनोरंजन, देशाटन, निर्दोष विनोद के लिये पर्याप्त अवसर प्राप्त करते रहना ।(८) कामुकता, चटोरेपन, अन्याय, बेईमानी, ईर्ष्या, द्वेष, चिन्ता, क्रोध, पाप आदि के कुविचारों से मन को हटाकर सदा प्रसन्नता और सात्त्विकता के सद्विचारों में रमण करना । (९) स्वच्छ जलवायु का सेवन (१०) उपवास, एनीमा, फलाहार, जल, मिट्टी आदि प्राकृतिक उपचारों से रोग-मुक्ति का उपाय करना।

ये दस नियम ऐसे हैं जिन्हें अपनाकर प्राकृतिक जीवन बिताने से खोये हुए स्वास्थ्य को पुनः प्राप्त करना और प्राप्त स्वास्थ्य को सुरक्षित एवं उन्नत बनाना बिल्कुल सरल है । गायत्री का 'णि' अक्षर यही उपदेश करता है ।

य-यथेच्छति नरस्त्वन्यैः सदान्येभ्यस्तथाचरेत् ।
नम्रः शिष्टः कृतज्ञश्च सत्यसाहाय्यवान् भवेत ॥९ ॥

"मनुष्य दूसरे के साथ उस प्रकार का आचरण करे, जैसा वह दूसरों के द्वारा चाहता है और उसे नम्र, शिष्ट, कृतज्ञ और सच्चाई के साथ सहयोग की भावना वाला होना चाहिये ।"

दूसरों के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिये, उसकी कसौटी यह है कि "हम दूसरों से जैसा व्यवहार अपने लिये चाहते हैं, वैसा ही आचरण स्वयं भी दूसरों के साथ करें ।" दुनिया कुएँ की आवाज की तरह है । कुएँ में मुँह करके जैसी वाणी हम बोलेंगे, बदले में वैसी ही प्रतिध्वनि दूसरी ओर से आयेगी ।

हर एक मनुष्य चाहता है कि दूसरे आदमी उससे नम्र बोलें, सभ्य व्यवहार करें, ईमानदारी से बरतें, कोई भूल हो जाये तो उसे सहन कर लें, मार्ग में कोई रोड़ा न अटकाएँ, उसकी बहिन-बेटियों पर कुदृष्टि न डालें तथा समय-समय पर उदारता एवं सहयोग की भावना का परिचय दें । जब हम दूसरों से ऐसा व्यवहार चाहते हैं तो हमारे लिये भी यह उचित है कि वैसा ही व्यवहार दूसरों से करें । कारण यह है कि सदा ही क्रिया से प्रतिक्रिया उत्पन्न होती है । यदि हम बुराई करेंगे, तो दूसरों के मन पर उसकी छाप पड़ेगी, प्रतिक्रिया होगी, जो अपने लिये ही नहीं, अन्यों के लिये भी अहितकर होती है । यदि लोग अपने विचार और कार्यों में वैसे ही तत्त्व भर लें, जैसे कि दूसरों में होने की आशा करते हैं तो संसार में सुख-शान्ति की स्थापना हो सकती है ।

गायत्री का अक्षर "य" शास्त्रकारों की **"आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्"** उक्ति का उद्घोष करता है। इसे क्रियात्मक रूप में लाना, गायत्री शिक्षा की ओर एक महत्त्वपूर्ण कदम बढ़ाना है।

भ-भवोद्विग्नमना नैव हृदुद्वेगं परित्यज।
कुरु सर्वास्ववस्थासु शांतं संतुलितं मनः ॥१०॥

"मानसिक उत्तेजना को छोड़ दो। सभी अवस्थाओं में मन को शान्त और सन्तुलित रखो।"

शरीर में उष्णता की मात्रा अधिक बढ़ जाना 'ज्वर' कहलाता है और ज्वर अनेक दुष्परिणामों को पैदा कर सकता है वैसे ही उद्वेग , आवेश, उत्तेजना, मद, आतुरता आदि लक्षण मानसिक ज्वर के हैं। आवेश का अन्धड़-तूफान जिस समय मन में आता है उस समय ज्ञान, विवेक सब का लोप हो जाता है और उस सन्निपात से ग्रस्त व्यक्ति अंड-बंड बातें बकता है, न करने लायक अस्त-व्यस्त क्रियायें करता है। यह स्थिति मानव जीवन में सर्वथा अवांछनीय है।

विपत्ति पड़ने पर लोग चिन्ता, शोक, निराशा, भय, घबराहट, क्रोध, कायरता आदि विषादात्मक आवेश से ग्रस्त हो जाते हैं और सम्पत्ति बढ़ने पर अहंकार, मद, मत्सर, अति हर्ष, अमर्यादा, नास्तिकता, अतिभोग, ईर्ष्या, द्वेष आदि विध्वंसक उत्तेजना में फँस जाते हैं। कई बार लोभ और भोग का आकर्षण उन्हें इतना लुभा लेता है कि वे आँखें रहते हुए भी अन्धे हो जाते हैं। इन तीनों स्थितियों में मनुष्य का होश-हवास दुरुस्त नहीं रहता। देखने में वह स्वस्थ और भला-चंगा दीखता है, पर वस्तुतः उसकी आन्तरिक स्थिति पागलों, बालकों, रोगियों तथा उन्मत्तों जैसी हो जाती है। ऐसी स्थिति मनुष्य के लिये विपत्ति, त्रास, अनिष्ट और अनर्थ के अतिरिक्त और कुछ उत्पन्न नहीं कर सकती। इसलिये गायत्री के 'भ' शब्द का सन्देश है कि इन आवेशों और उत्तेजनाओं से बचो। दूरदर्शिता, विवेक, शान्ति और स्थिरता से काम लो। बदली की छाया की तरह रोज घटित होती रहने वाली रंग-बिरंगी घटनाओं में अपनी आंतरिक शांति को नष्ट न होने दो। मस्तिष्क को स्वस्थ रखो, चित्त को शान्त रहने दो, आवेश की उत्तेजना से नहीं, विवेक और दूरदर्शिता के आधार पर अपनी विचारधारा और कार्य प्रणाली को चलाओ।

गो-गोप्या स्वीया मनोवृत्तिर्नासहिष्णुर्नरो भवेत्।
स्थितिमन्यस्य संवीक्ष्य तदनुरूपतां चरेत्॥११॥

"अपने मनोभावों को नहीं छिपाना चाहिये। मनुष्य को असहिष्णु नहीं होना चाहिये। दूसरे की स्थिति को देखकर उसके अनुसार आचरण करें।"

अपने मनोभाव और मनोवृत्ति को छिपाना, छल, कपट और पाप है। जैसे भीतर है, वैसे ही बाहर प्रकट कर दिया जाए, तो वह पाप निवृत्ति का सबसे बड़ा राजमार्ग है। स्पष्ट कहने वाले, खरी कहने वाले, जैसा पेट में है वैसा मुँह से कहने वाले, लोग चाहे किसी को कितने ही बुरे क्यों न लगें, पर वे ईश्वर के आगे, आत्मा के आगे अपराधी नहीं ठहरते। जो आत्मा पर असत्य का आवरण चढ़ाते रहते हैं, वे एक प्रकार के आत्म हत्यारे हैं। कोई व्यक्ति यदि अधिक रहस्यवादी हो, अधिक आपराधिक कार्य करता हो, तो भी वह अपने कुछ ऐसे आत्मीय जन, विश्वासी जीव अवश्य रखना चाहता है, जिनके आगे अपने सब रहस्य प्रकट करके मन हल्का कर लिया करे। ऐसे आत्मीय मित्र और गुरुजन हर मनुष्य को नियुक्त कर लेने चाहिये।

प्रत्येक मनुष्य के दृष्टिकोण, विचार, अनुभव, अभ्यास, ज्ञान, स्वार्थ, रुचि एवं संस्कार भिन्न-भिन्न होते हैं। इसलिये सबका सोचना एक प्रकार का नहीं हो सकता। इस तथ्य को समझते हुए दूसरों के प्रति सहिष्णुता होनी चाहिये। अपने से किसी भी अंश में मतभेद रखने वाले को मूर्ख, अज्ञानी, दुराचारी या विरोधी मान लेना उचित नहीं। ऐसी असहिष्णुता झगड़ों की जड़ है। एक-दूसरे के दृष्टिकोण के अन्तर को समझते हुए यथासम्भव समझौते का मार्ग निकालना चाहिये। फिर भी जो मतभेद रह जाए उसे पीछे धीरे-धीरे सुलझाते रहने के लिये छोड़ देना चाहिये।

संसार में सभी प्रकृति के मनुष्य हैं। मूर्ख, विद्वान्, रोगी, स्वस्थ, पापी, पुण्यात्मा, पाखण्डी, कायर, वीर, कटुवादी, नम्र, चोर, ईमानदार, निन्दनीय, आदरास्पद, स्वधर्मी, विधर्मी, दया-पात्र, दण्डनीय, शुष्क, सरस, भोगी, त्यागी आदि

परस्पर विरोधी स्थितियों के मनुष्य भरे पड़े हैं । उनकी स्थिति के आधार पर ही उनके लिये शक्य सलाह दें । सबसे एक समान व्यवहार नहीं हो सकता और न सब एक मार्ग पर चल सकते हैं । यह सब बातें 'गो' अक्षर हमें सिखाता है ।

दे-देयानि स्ववशे पुंसा स्वेन्द्रियाण्यखिलानि वै ।
असंयतानि खादन्तीन्द्रियाण्येतानि स्वामिनम् ॥१२ ।

'मनुष्य को अपनी सम्पूर्ण इन्द्रियाँ अपने वश में करनी चाहिये । ये असंयत इन्द्रियाँ स्वामी को खा जाती हैं ।"

इन्द्रियाँ आत्मा के औजार हैं, घोड़े हैं, सेवक हैं । परमात्मा ने इन्हें इसलिये प्रदान किया है कि इनकी सहायता से आत्मा की आवश्यकता पूरी हो और सुख मिले । सभी इन्द्रियाँ बड़ी उपयोगी हैं । सभी का काम जीव को उत्कर्ष एवं आनन्द प्रदान करना है । यदि उनका सदुपयोग हो, तो क्षण-क्षण पर मानव-जीवन का मधुर रस चखता हुआ प्राणी अपने भाग्य को सराहता रहेगा ।

किसी इन्द्रिय का भोग पाप नहीं है । सच तो यह है कि अन्तःकरण को, विविध क्षुधाओं को, तृष्णाओं को तृप्त करने की इन्द्रियाँ एक माध्यम हैं । जैसे पेट की भूख-प्यास को न बुझाने से शरीर का सन्तुलन बिगड़ जाता है, वैसे ही सूक्ष्म शरीर की क्षुधायें उचित रीति से तृप्त न की जाती रहें, तो आंतरिक क्षेत्र का सन्तुलन बिगड़ जाता है और अनेक मानसिक रोग उठ खड़े होते हैं ।

इन्द्रिय भोगों की जगह-जगह निन्दा की जाती है और वासनाओं को दमन करने का उपदेश दिया जाता है । उसका वास्तविक तात्पर्य यह है कि अनियन्त्रित इन्द्रियाँ स्वाभाविक एवं आवश्यक मर्यादा का उल्लंघन करके इतनी स्वेच्छाचारी एवं चटोरी हो जाती हैं कि वे स्वास्थ्य और धर्म के लिये संकट उत्पन्न करके भी मनमानी करती हैं । आजकल अधिकांश मनुष्य इसी प्रकार के इन्द्रिय-गुलाम हैं । अपनी वासना पर काबू नहीं रख सकते । बेकाबू हुई वासना अपने स्वामी को खा जाती है ।

गायत्री का 'दे' अक्षर आत्म-नियन्त्रण का उपदेश देता है । इन्द्रियों पर हमारा काबू हो, वे अपनी मनमानी करके हमें जब चाहे जिधर को घसीट न सकें, बल्कि हम जब आवश्यकता अनुभव करें , तब उचित आंतरिक भूख बुझाने के लिये उनका उपयोग कर सकें । यही निग्रह है । निगृहीत इन्द्रियों से बढ़कर मनुष्य का सच्चा मित्र तथा अनियन्त्रित इन्द्रियों से बढ़कर बड़ा शत्रु और कोई नहीं है ।

व-वस नित्यं पवित्रः सन् बाह्याभ्यन्तरतस्तथा ।
यतः पवित्रतायां हि राजतेऽतिप्रसन्नता ॥ १३ ॥

"मनुष्य को बाहर और भीतर सब तरह से पवित्र होकर रहना चाहिये; क्योंकि पवित्रता में ही प्रसन्नता रहती है ।"

पवित्रता- अहा ! कितना शीतल, शान्तिदायक, चित्त को प्रसन्न और हल्का करने वाला शब्द है । कूड़ा, करकट, मैल, विकार, पाप, गन्दगी, दुर्गन्ध, अव्यवस्था, घिचपिच को झाड़-बुहार कर स्वच्छता, सफाई, पवित्रता स्थापित कर ली जाती है, तो पहली और पीछे की स्थिति में कितना भारी अन्तर हो जाता है ।

मलिनता, अन्ध तामसिकता की प्रतीक है । आलस्य और दारिद्र्य, पाप और पतन जहाँ रहते हैं, वहाँ मलिनता एवं गन्दगी का निवास होता है । जो इस प्रकृति के हैं उनके वस्त्र, घर, सामान, शरीर, मन सब में मन्दगी और अस्तव्यस्तता भरी रहती है । इसके विपरीत जहाँ चैतन्य, जागरूकता, सुरुचि, सात्त्विकता होगी, वहाँ सबसे पहले स्वच्छता की ओर ध्यान जाएगा । सफाई, सादगी, सजावट, व्यवस्था का नाम ही पवित्रता है ।

मलिनता से घृणा होनी चाहिये, पर उसे हटाने या उठाने में रुचि होनी चाहिये । जो गन्दगी को छूने या उसे उठाने, हटाने से हिचकिचाते हैं, वे सफाई नहीं रख सकते । मन में, शरीर में, वस्त्रों में , समाज में हर घड़ी गन्दगी पैदा होती है । निरन्तर टूट-फूट का जीर्णोद्धार न किया जाए, तो गन्दगी बढ़ती जाएगी और सफाई चाहने की इच्छा केवल एक कल्पना मात्र बनी रह जाएगी ।

गायत्री का 'व' अक्षर स्वच्छता का सन्देश देता है। स्वच्छ शरीर, स्वच्छ वस्त्र, स्वच्छ निवास, स्वच्छ सामान, स्वच्छ जीविका, स्वच्छ विचार, स्वच्छ व्यवहार- जिसमें इस प्रकार की स्वच्छतायें निवास करती हैं, वह पवित्रात्मा मनुष्य निष्पाप जीवन व्यतीत करता हुआ पुण्य-गति को प्राप्त करता है।

स्य-स्यन्दनं परमार्थस्य परार्थो हि बुधैर्मतः।
योऽन्यान् सुखयते विद्वान् तस्य दुःखं विनश्यति ॥१४॥

"दूसरों का प्रयोजन सिद्ध करना परमार्थ का रथ है, ऐसा बुद्धिमानों ने कहा है। जो विचारवान् दूसरे लोगों को सुख देता है, उसका दुःख नष्ट हो जाता है।"

लोक व्यवहार के तीन मार्ग हैं- (१) अर्थ- जिसमें दोनों पक्ष समान रूप से आदान-प्रदान करते हैं, (२) स्वार्थ- दूसरों को हानि पहुँचा कर अपना लाभ करना, (३) परमार्थ- अपनी हानि करके भी दूसरों को लाभ पहुंचाना। स्वार्थ में चोरी, ठगी, अपहरण, शोषण, बेईमानी आदि आते हैं। परमार्थ में दान, सेवा, सहायता, शिक्षा आदि कार्यों को कहा जाता है।

अर्थ (जीविका) हमारा नित्यकर्म है। उसके बिना जीवन यात्रा भी नहीं चल सकती। आहार, निद्रा, भोजन, मल-त्याग आदि के समान स्वाभाविक होने के कारण उसका विधि-निषेध कुछ नहीं है। वह तो हर एक को करना ही होता है। स्वार्थ त्याज्य है, निन्दनीय है, पाप मूलक है, उससे यथासंभव बचते ही रहना चाहिये। परमार्थ धर्म कार्य है, इससे त्याग का, उदारता का अभ्यास बढ़ता है, आत्म-कल्याण का धर्म-मार्ग प्रशस्त होता है तथा उससे दूसरों का लाभ होने से वे प्रसन्न होकर बदले में प्रत्युपकार करते हैं, प्रशंसा और आदर देते हैं और कृतज्ञ रहते हैं।

गायत्री का 'स्य' शब्द परमार्थ के लिये प्रेरणा देता है। हर मनुष्य का कर्तव्य है कि अर्थ उपार्जन करता हुआ स्वार्थ से बचे और परमार्थ के लिये यथा सम्भव प्रयत्नशील रहे। अपना पेट तो पशु भी भर लेते हैं, प्रशंसनीय वह है जिसके द्वारा दूसरे भी लाभ उठायें।

धी-धीरस्तुष्टो भवेन्नैव त्वेकस्यां हि समुन्नतौ।
क्रियतामुन्नतिस्तेन सर्वास्वाशासु जीवने ॥१५॥

"धीर पुरुष को एक ही प्रकार की उन्नति से सन्तुष्ट नहीं रहना चाहिये। मनुष्य को जीवन की सभी दिशाओं में उन्नति करनी चाहिये।"

जैसे शरीर के कई अंग हैं और उन सभी का पुष्ट होना आवश्यक होता है, वैसे ही जीवन की अनेक दिशायें हैं और उन सभी का विकास होना सर्वतोमुखी उन्नति का चिह्न है। यदि पेट बहुत बढ़ जाए और हाथ-पाँव पतले हो जाएँ, तो इस विषमता से प्रसन्नता न होकर चिन्ता ही बढ़ेगी। इसी प्रकार यदि कोई आदमी केवल धनी, केवल विद्वान् या केवल पहलवान बन जाए तो वह उन्नति पर्याप्त न होगी। वह पहलवान किस काम का जो दाने-दाने को मोहताज हो। वह विद्वान् किस काम का जो रोगों से ग्रस्त हो। वह धनी किस काम का, जिसके पास न विद्या है न तनदुरुस्ती।

केवल एक ही दिशा में उन्नति के लिये अत्यधिक प्रयत्न करना और अन्य दिशाओं की उपेक्षा करना, उसकी ओर से उदासीन रहना उचित नहीं। जैसे पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ईशान, वायव्य, नैर्ऋत्य, आग्नेय आठ दिशायें हैं, वैसे ही जीवन की भी आठ दिशायें हैं, आठ बल हैं। (१) स्वास्थ्य-बल, (२) विद्या-बल, (३) धन-बल, (४) मित्र-बल, (५) प्रतिष्ठा-बल, (६) चातुर्य-बल, (७) साहस-बल, (८) आत्म-बल। इन आठों का यथोचित मात्रा में संचय होना चाहिये। जैसे किसान खेत की सब ओर से रखवाली करता है, जैसे चतुर सेनापति युद्ध क्षेत्र के सब मोर्चों की रक्षा करता है, वैसे ही जीवन के ये आठों मोर्चे सावधानी के साथ ठीक रखे जाने चाहिये। जिधर भी भूल रह जायेगी, उधर से ही शत्रु के आक्रमण होने और परास्त होने का भय रहेगा।

गायत्री का 'धी' शब्द हमें सजग करता है कि आठों बल बढ़ाओ, आठों मोर्चों पर सजग रहो,

अष्टभुजी दुर्गा की उपासना करो, आठों दिशाओं की रखवाली करो, तभी सर्वांगीण उन्नति हो सकेगी। सर्वांगीण उन्नति ही स्वस्थ उन्नति है, अन्यथा किसी एक अंग को बढ़ा लेना और अन्यों को दुर्बल रखना कोई बुद्धिमत्ता की बात नहीं।

म-महेश्वरस्य विज्ञाय नियमान्न्यायसंयुतान्।
तस्य सत्तां च स्वीकुर्वन् कर्मणा तमुपासयेत्॥१६॥

"परमात्मा के न्यायपूर्ण नियमों को समझकर और उसकी सत्ता को स्वीकार करते हुए कम से कम उस परमात्मा की उपासना करे।"

परमात्मा के नियम न्यायपूर्ण हैं। सृष्टि में उसके प्रधान कार्य भी दो ही हैं। (१) संसार को नियमबद्ध रखना, (२) कर्मों का न्यायानुकूल फल देना। इन दोनों ईश्वरीय प्रधान कार्यों को समझकर जो अपने को नियमानुसार बनाता है, प्रकृति के कठोर नियमों को ध्यान में रखता है, सामाजिक, राजकीय, धार्मिक, लोक-हितकारी कानूनों, कायदों को मानता है, वह एक प्रकार से ईश्वर को प्रसन्न करने का प्रयत्न करता है। इसी प्रकार जो यह समझता है कि न्याय की अदालत में खड़ा होना ही पड़ेगा और बुरे-भले कर्मों के अनुसार दुःख-सुख की प्राप्ति अनिवार्यतः होगी, वह ईश्वर के समीप पहुँचता है। काम करने पर ही उसकी उजरत मिलती है। जो पसीना बहायेगा, परिश्रम करेगा, पुरुषार्थ, उद्योग और चतुरता का परिचय देगा, उसे उसके प्रयत्न के अनुसार साधन सामग्री जुटाने में सफलता मिलेगी।

परमात्मा की पूजा, उपासना की जितनी साधनायें हैं, जितने कर्मकाण्ड हैं, उनका तात्पर्य यही है कि साधक, परमात्मा के अस्तित्व पर, उसकी सर्वज्ञता और सर्वव्यापकता पर विश्वास करे। यह विश्वास जितना दृढ़ होगा, उतना ही उसे परमात्मा का नियम और न्याय स्मरण रहेगा। इन दोनों की कठोरता और निश्चितता पर विश्वास होना, सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा का सेतु है, जो समझता है कि शीघ्र या देर-सबेर में, तुरन्त या विलम्ब से कर्म का फल मिले बिना नहीं रह सकता, वह आलसी या कुकर्मी नहीं हो सकता। जो आलस्य और कुकर्म से जितना बचता है, वह ईश्वर का उतना ही बड़ा भक्त है। गायत्री का 'म' अक्षर ईश्वर उपासना के रहस्य का स्पष्टीकरण करता है और बताता है कि ईश्वरीय नियम और न्याय का ध्यान रखते हुए हम सत्पथ पर चलें।

हि-हितं मत्वा ज्ञानकेन्द्रं स्वातंत्र्येण विचारयेत्।
नान्धानुसरणं कुर्यात् कदाचित् कोऽपि कस्यचित्॥१७॥

"हितकारी ज्ञान केन्द्र को समझकर स्वतंत्रतापूर्वक विचार करे। कभी भी कोई किसी का अन्धानुसरण न करे।"

देश, काल, पात्र, अधिकार और परिस्थिति के अनुसार मानव जाति के हल और सुविधा के लिये विविध प्रकार के नियम, धर्मोपदेश, कानून और प्रथाओं का निर्माण एवं परिचालन होता है। परिस्थितियों के परिवर्तन के साथ-साथ इन प्रथाओं एवं मान्यताओं का परिवर्तन होता रहता है। आदिकाल से लेकर अब तक, अनेकों प्रकार की शासन-पद्धतियाँ, धर्म-धारणायें, रीति-रिवाज तथा परम्परायें बदल चुकी हैं। समय-समय पर जो परिवर्तन होते रहते हैं, उन सभी का उल्लेख प्राचीन ग्रन्थों में मिलता है। यही कारण है कि उनमें परस्पर विरोधी बातें दिखाई पड़ती हैं। वास्तव में विरोध कुछ नहीं है। विभिन्न समयों पर विभिन्न कारणों से जो परिवर्तन रीति-नीति में होता रहता है, वह पुस्तकों में लिखा तो है, पर वह स्पष्ट नहीं है कि ये पुस्तकें और प्रथायें किस-किस काल में रही हैं। यदि उनमें काल का उल्लेख होता, तो ग्रन्थों में परस्पर विरोध न दिखाई पड़ता और पाठक समझ जाते कि देश, काल, परिस्थिति के कारण यह अन्तर है, विरोध नहीं।

समाज के सुसंचालन के लिये प्रथायें हैं। मनुष्य जाति की सुव्यवस्था के लिये उन्हें बनाया गया है। ऐसा नहीं कि उन प्रथाओं को अपरिवर्तनशील समझ कर समाज और जाति के लिये उन्हें अमिट लकीर मान लिया जाए। संसार में आदि काल से बराबर परिवर्तन होता आ रहा है। कई रिवाज आज के लिये अनुपयुक्त हैं, तो ऐसा नहीं कि परम्परा मोह के कारण अन्धानुकरण किया ही जाए।

गायत्री का 'हि' अक्षर कहता है कि मनुष्य के द्वारा समाज के हित का ध्यान रखते हुए देश, काल और विवेक के अनुसार प्रथाओं को, परम्पराओं को बदला जा सकता है । आज हिन्दू समाज में ऐसी अगणित प्रथायें प्रचलित हैं, जिन्हें बदलने की अत्यधिक आवश्यकता है ।

धि-धिया मृत्युं स्मरन् मर्म जानीयाज्जीवनस्य च ।
तदा लक्ष्यं समालक्ष्य पादौ सन्ततमाक्षिपेत् ॥१८ ॥

"बुद्धि से मृत्यु का ध्यान रखे और जीवन के मर्म को समझे, तब अपने लक्ष्य की ओर निरन्तर अपने पैरों को चलाए, अर्थात् निरन्तर अपने लक्ष्य की ओर बढ़े ।"

जीवन और मृत्यु के रहस्य को विवेकपूर्वक गम्भीरता से समझना आवश्यक है । मृत्यु कोई डरने की बात नहीं, पर उसे ध्यान में रखना आवश्यक है । न जाने किस समय मृत्यु सामने आ खड़ी हो और कूच की तैयारी करनी पड़े । इसलिये जो समय हाथ में है, उसे अच्छे से अच्छे उपयोग में लाना चाहिये । धन, यौवन आदि अस्थिर हैं । छोटे से रोग या हानि से इनका विनाश हो सकता है, इसलिये इनका अहंकार न करके, दुरुपयोग न करके, ऐसे कार्यों में लगाना चाहिये, जिससे भावी जीवन में सुख-शान्ति की अभिवृद्धि हो ।

जीवन एक अभिनय है और मृत्यु उसका पटाक्षेप है । इस अभिनय को हमें इस प्रकार करना चाहिये, जिससे दूसरों की प्रसन्नता बढ़े और अपनी प्रशंसा हो । नाटक या खेल के समय सुखपूर्ण और दुःख भरे अनेकों अवसर आते हैं, पर अभिनयकर्त्ता समझता है कि यह केवल खेल मात्र हो रहा है, इसमें वास्तविकता कुछ नहीं है, उस खेल के समय होने वाले दुःख के अभिनय में न दुःखी होता है, न सुख के अभिनय में सुखी । वरन् अपना कौशल प्रदर्शित करने में, अपनी नाट्य सफलता में प्रसन्नता अनुभव करता है । जीवन, नाटक का भी अभिनय इसी प्रकार होना चाहिये । हर समय मनुष्य पर आये दिन आने वाली सम्पदा-विपदा का कुछ महत्त्व नहीं, उनकी ओर विशेष ध्यान न देकर अपना कर्म-कौशल दिखाने के लिये हमें प्रयत्नशील रहना चाहिये । मृत्यु जीवन का अन्तिम अतिथि है । इसके स्वागत के लिये सदा तैयार रहना चाहिये । अपनी कार्य प्रणाली ऐसी रखनी चाहिये कि किसी भी समय मृत्यु सामने आ खड़ी हो, तो तैयारी में कोई कमी अनुभव न करनी पड़े ।

गायत्री का 'धि' अक्षर जीवन और मृत्यु के सत्य को समझाता है । जीवन को इस प्रकार बनाओ, जिससे मृत्यु के समय पश्चात्ताप न हो । जो वर्तमान की अपेक्षा भविष्य को उत्तम बनाने के लिये प्रयत्नशील हैं, वे जीवन और मृत्यु का रहस्य भली प्रकार जानते हैं ।

यो-यो धर्मो जगदाधारः स्वाचरणे तमानय ।
मा विडम्बय तं सोऽस्ति ह्येको मार्गे सहायकः ॥१९ ॥

"जो धर्म संसार का आधार है, उस धर्म को अपने आचरण में लाओ । उसकी विडम्बना मत करो । वह तुम्हारे मार्ग में एक ही अद्वितीय सहायक है ।"

धर्म संसार का आधार है । उसके ऊपर विश्व का समस्त भार रखा हुआ है । यदि धर्माचरण उठ जाए और सब लोग पूर्ण रूप से अधर्मी बन जायें, तो एक क्षण के लिये भी कोई प्राणी चैन से न बैठ सकेगा । सबको अपने प्राण बचाने और दूसरे का अपहरण करने की चक्की के दुहरे पाटों के बीच पिसना पड़ेगा । आज अनेक व्यक्ति लुक-छिप कर अधर्माचरण करते हैं, पर उन्हें भी यह साहस नहीं होता कि प्रत्यक्षतः अपने को अधर्मी घोषित करें या अधर्म को उचित ठहराने की वकालत करें । बुराइयाँ भी भलाई की आड़ लेकर की जाती हैं । इससे प्रकट है कि धर्म ऐसी मजबूत चीज है कि उसी का आश्रय लेकर, आडम्बर ओढ़कर, दुष्ट दुराचारी भी अपना बेड़ा पार लगाते हैं । ऐसे मजबूत आधार को ही हमें अपना अवलम्बन बनाना चाहिये ।

कई आदमी धर्म को कर्मकाण्ड का, पूजा-पाठ का, तीर्थ-व्रत, दान आदि का विषय मानते हैं और कुछ समय इनमें लगाकर शेष समय को नैतिक-अनैतिक कैसे ही कार्य करने के लिये स्वतंत्र समझते हैं । यह भ्रान्त धारणा है । धर्म, पूजा-पाठ तक ही सीमित रहने वाली वस्तु नहीं है । वरन् उसका उपयोग तो अपनी प्रत्येक विचारधारा और क्रिया-प्रणाली में पूरी तरह होना चाहिये ।

गायत्री का 'यो' अक्षर बताता है कि धर्म की विडम्बना मत करो, उसे आडम्बर मत बनाओ, वरन् उसे अपने जीवन में घुला डालो। जो कुछ सोचो, जो कुछ करो, वह धर्मानुकूल होना चाहिये। शास्त्र की उक्ति है कि - "रक्षा किया हुआ धर्म अपनी रक्षा करता है और धर्म को जो मारता है, धर्म उसे मार डालता है।" इस तथ्य को ध्यान में रखकर हमें धर्म को ही अपनी जीवन- नीति बनाना चाहिये।

यो-योजनं व्यसनेभ्यः स्यात्तानि पुंसस्तु शत्रवः।
मिलित्वैतानि सर्वाणि समये घ्नन्ति मानवम् ॥२०॥

"व्यसनों से योजन भर दूर रहे अर्थात् व्यसनों से बचा रहे; क्योंकि वे मनुष्य के शत्रु हैं। ये सब मिलकर समय पर मनुष्य को मार देते हैं।"

व्यसन मनुष्य के प्राणघातक शत्रु हैं। मादक पदार्थ व्यसनों में प्रधान हैं। तम्बाकू, गाँजा, चरस, भाँग, अफीम, शराब आदि नशीली चीजें एक से एक बढ़कर हानिकारक हैं। इनसे क्षणिक उत्तेजना आती है। जिन लोगों की जीवनी शक्ति क्षीण एवं दुर्बल हो जाती है, वे अपने को शिथिल तथा अशक्त अनुभव करते हैं। उनका उपचार आहार-विहार इत्यादि में अनुकूल परिवर्तन करके शक्ति संचय की वृत्ति द्वारा वर्धन होना चाहिये। परन्तु भ्रान्त मनुष्य दूसरा मार्ग अपनाते हैं। वे थके घोड़े को चाबुक मार-मारकर दौड़ाने का उपक्रम करके चाबुक को शक्ति का केन्द्र मानने की भूल करते हैं। नशीली चीजें मस्तिष्क को मूर्च्छित कर देती हैं, जिससे मूर्च्छाकाल में शिथिलतावश पीड़ा नहीं होती। दूसरी ओर वे चाबुक मार-मार कर उत्तेजित करने की क्रिया करती हैं। नशीली चीजों का सेवन करने वाला ऐसा समझता है कि वे मुझे बल दे रही हैं, पर वस्तुतः उनसे बल नहीं मिलता, वरन् रही-बची हुई शक्तियाँ भड़ककर बहुत शीघ्र समाप्त हो जाती हैं और मादक द्रव्य सेवन करने वाला व्यक्ति दिन-दिन क्षीण होते-होते अकाल मृत्यु के मुख में चला जाता है। 'व्यसन मित्र के वेष में शरीर में घुसते हैं और शत्रु बनकर उसे मार डालते हैं।'

नशीले पदार्थों के अतिरिक्त और भी ऐसी आदतें हैं, जो शरीर और मन को हानि पहुँचाती हैं, पर आकर्षण और आदत के कारण मनुष्य उनका गुलाम बन जाता है। वे उससे छोड़े नहीं छूटते। सिनेमा, नाचरंग, व्यभिचार, मुर्गा-तीतर-बटेर लड़ाना आदि कितनी ही हानिकारक और निरर्थक आदतों के शिकार बनकर लोग अपना धन, समय और स्वास्थ्य निरर्थक बरबाद करते हैं।

गायत्री का 'यो' अक्षर व्यसनों को दूर करने का आदेश करता है, क्योंकि ये शरीर और मन दोनों का नाश करने वाले हैं। व्यसनी मनुष्य की वृत्तियाँ नीच मार्ग की ओर ही चलती हैं।

नः-नः शृण्वेकामिमां वार्तां "जागृतस्त्वं सदा भव"।
सप्रमादं नरं नूनं ह्याक्रामन्ति विपक्षिणः ॥२१॥

"हमारी यह एक बात सुनो कि तुम हमेशा जाग्रत् रहो; क्योंकि निश्चय ही सोते हुए मनुष्य पर दुश्मन आक्रमण करते हैं।"

असावधानी, आलस्य, बेखबरी, अदूरदर्शिता ऐसी भूलें हैं, जिन्हें अनेक आपत्तियों की जननी कह सकते हैं। बेखबर आदमी पर चारों ओर से हमले होते हैं। असावधानी में ऐसा आकर्षण है, जिससे खिंच-खिंच कर अनेक प्रकार की हानियाँ, विपत्तियाँ एकत्रित हो जाती हैं। असावधान, आलसी पुरुष एक प्रकार से अर्धमृत है। मरी हुई लाश को पड़ी देखकर जैसे चील, कौए, कुत्ते, शृगाल, गिद्ध दूर-दूर से दौड़कर वहाँ जमा हो जाते हैं, वैसे ही असावधान पुरुष के ऊपर आक्रमण करने वाले तत्त्व कहीं न कहीं से आकर अपनी घात लगाते हैं।

जो स्वास्थ्य की रक्षा के लिये जागरूक नहीं है, उसे देर-सबेर में बीमारियाँ आ दबोचेंगी। जो नित्य आते रहने वाले उतार-चढ़ावों से बेखबर है, वह किसी दिन दिवालिया बनकर रहेगा। जो काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर सरीखे मानसिक शत्रुओं की गतिविधियों की ओर से आँखें बन्द किये रहता है, वह कुविचारों और कुकर्मों के गर्त में गिरे बिना नहीं रह सकेगा। जो दुनिया के छल, फरेब, झूठ, ठगी, लूट, अन्याय, स्वार्थपरता, शैतानी आदि की ओर से सावधान नहीं रहता, उसे उल्लू बनाने वाले, ठगने वाले, सताने वाले अनेकों पैदा हो जाते हैं। जो

जागरूक नहीं, जो अपनी ओर से सुरक्षा के लिये प्रयत्नशील नहीं रहता, उसे दुनिया के शैतानी तत्त्व बुरी तरह नोंच खाते हैं।

इसलिये गायत्री का 'नः' अक्षर हमें सावधान करता है कि होशियार रहो, सावधान रहो, जागते रहो, जिससे तुम्हें शत्रुओं के आक्रमण का शिकार न बनना पड़े। विवेकपूर्वक त्याग करना और उदारता से परोपकार करना तो उचित है, पर अपनी बेवकूफी से दूसरे बदमाशों का शिकार बनना सर्वथा अवांछनीय व पापमूलक है। जहाँ अच्छाई की ओर, उन्नति की ओर बढ़ने का प्रयत्न आवश्यक है, वहाँ बुराई से सावधान रहने, बचने और उससे संघर्ष करने की भी आवश्यकता है।

प्र-प्रकृत्या तु भवोदारो नानुदारः कदाचन।
चिन्तयोदारदृष्ट्यैव तेन चित्तं विशुद्ध्यति॥२२॥

"स्वभाव से ही उदार हों, कभी भी अनुदार मत बनें, उदार दृष्टि से ही विचार करें- ऐसा करने से चित्त शुद्ध हो जाता है।"

अपनी बात, अपनी रीति, अपने रिवाज, अपनी मान्यता, अपनी अक्ल को ही सही मानना और दूसरे सब लोगों को मूर्ख, भ्रान्त, बेईमान ठहराना अनुदारता का लक्षण है। अपने लाभ के लिये चाहे सारी दुनिया का विनाश होता हो तो हुआ करे, ऐसी नीति अनुदार लोगों की होती है। वे सिर्फ अपनी सुविधा और इच्छा को सर्वोपरि रखते हैं। दूसरों की कठिनाई और असुविधा का उन्हें जरा भी ध्यान नहीं होता।

गायत्री का 'प्र' अक्षर कहता है कि दूसरों की भूलों और कमियों के प्रति हमें कठोर नहीं, उदार होना चाहिये। उनकी उचित इच्छाओं, आवश्यकताओं और माँगों के प्रति हमारी सहानुभूति होनी चाहिये। दूसरे जिस स्थिति में हैं उस स्थिति में हम होते, तो कैसी इच्छा करते ? यह सोचकर उस दृष्टि से उनके साथ व्यवहार करना चाहिये और मतभेदों को संघर्ष का कारण न बनाकर जितने अंशों में एकता मिल सके, उसे प्रेम का निमित्त बनाना चाहिये।

चो-चोदयत्येव सत्संगो धियमस्य फलं महत्।
स्वमतः सज्जनैर्विद्वान् कुर्यात् पर्यावृतं सदा॥२३॥

"सत्संग बुद्धि को प्रेरणा देता है। इस सत्संग का फल महान् है। इसलिये विद्वान् अपने आपको हमेशा सत्पुरुषों से घिरा हुआ रखे अर्थात् हमेशा सज्जनों का संग करे।"

मनुष्य का मस्तिष्क निर्मल जल के समान है। वातावरण, संस्कार और अनुकरण के साधन उसे विभिन्न दिशाओं में मोड़ते हैं। पानी का बहाव नाव को बहा ले जाता है। हवा जिधर को चलती है, पतंगे उधर ही उड़ते हैं। मनुष्य जिस वातावरण में रहता है, रमता है, उधर ही उसकी मनोवृत्तियाँ चलने लगती हैं और धीरे-धीरे वह उसी ढाँचे में ढलने लगता है। जैसे दो बालकों में से जन्म से ही एक को कसाई के यहाँ रखा जाय तथा एक को ब्राह्मण के यहाँ, तो बड़े होने पर उन दोनों के गुण, कर्म, स्वभाव में जमीन-आसमान का अन्तर होगा। यह संगति का ही प्रभाव है।

जो लोग अच्छाई की दिशा में अपनी उन्नति करना चाहते हैं, उन्हें चाहिये कि अपने को अच्छे वातावरण में रखें, अच्छे लोगों को अपना मित्र बनायें और उन्हीं से अपना व्यापार, व्यवहार तथा सम्पर्क रखें। सम्भव हो तो परामर्श, उपदेश और पथप्रदर्शन भी उन्हीं से प्राप्त करें। इस प्रकार की स्थिति में रहने से प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से वैसा ही प्रभाव अपने ऊपर पड़ता है और उसी दिशा में चलने के लिये प्रेरणा मिलती है। कुसंग में रहने से, बुरे वातावरण के सम्पर्क में आने से मलिनता बढ़ती है। इसलिये उधर से मुँह मोड़े रहना ही उचित है।

यथासाध्य अच्छे व्यक्तियों का सम्पर्क बढ़ाने के अतिरिक्त, अच्छी पुस्तकों का स्वाध्याय भी उपयोगी है। सत्संग न हो सके, तो पुस्तकें पढ़कर सत्संग का लाभ उठाया जा सकता है। एकान्त में स्वयं भी अच्छे विचारों का चिन्तन और मनन करने तथा अपने मस्तिष्क को उसी दिशा में लगाये रहने से भी आत्म-सत्संग होता है। यह सभी सत्संग आत्मोन्नति के लिये आवश्यक हैं। गायत्री का 'च' अक्षर सत्संग का महत्त्व बताता है और उसके लिये प्रयत्नशील रहने का उपदेश करता है।

द-दर्शनं ह्यात्मनः कृत्वा जानीयादात्म गौरवम्।
ज्ञात्वा तु तत्तदात्मानं पूर्णोन्नतिपथं नयेत् ॥२४॥

"आत्मा का दर्शन करके आत्मा के गौरव को पहचानो। उसको जानकर तब आत्मा को पूर्ण उन्नति के मार्ग पर ले चलो।"

मनुष्य शरीर नाशवान् और तुच्छ है। उसके हानि-लाभ भी तुच्छ और महत्त्वहीन हैं, पर उसकी आत्मा ईश्वर का अंश होने के कारण महान् है। उसकी महिमा और महत्ता इतनी बड़ी है कि किसी से भी उसकी तुलना नहीं हो सकती। मनुष्य का गौरव उसके शरीर के कारण नहीं, वरन् आत्मा की विशेषताओं के कारण है, जिसकी आत्मा जितनी अधिक बलवान् होती है, वह उतना ही बड़ा महापुरुष कहा जाता है।

जिन कार्यों से हमारी प्रतिष्ठा, साख, सम्मान, आदर, श्रद्धा बढ़ती है, वे ही आत्म-गौरव को बढ़ाने वाले हैं।प्रतिष्ठा सबसे बड़ी सम्पत्ति है, फिर आत्मा की प्रतिष्ठा का मूल्यांकन तो हो ही नहीं सकता। इतनी बड़ी अमानत को हमें सब प्रकार सुरक्षित रखना चाहिये। लोग सम्पत्ति द्वारा बनी हुई प्रतिष्ठा को गिरते या नष्ट होते देखकर तिलमिला जाते हैं और उस दु:ख से इतने दु:खी हो जाते हैं कि कोई-कोई तो आत्महत्या भी कर डालते हैं। फिर आत्म-प्रतिष्ठा, आत्म-गौरव तथा आत्म-सम्मान तो और भी ऊँची चीज है, उसे तो किसी भी मूल्य पर न गिरने देना चाहिये।

जिससे आत्म-गौरव घटता हो, आत्म-ग्लानि होती हो और आत्म-हनन करना पड़ता हो, ऐसे धन, सुख, भोग, पद को लेने की अपेक्षा भूखा और दीन रहना कहीं अच्छा है। गायत्री का 'द' अक्षर आत्म-सम्मान की रक्षा और आत्म-हनन की निवृत्ति के लिये हमें बड़े से बड़ा त्याग करने में कभी न झिझकने के लिये तैयार रहने को कहता है। जिसके पास आत्म-धन है, वही सबसे बड़ा धनी है। जिसका आत्म-गौरव सुरक्षित है, वह इन्द्र के समान बड़ा पदवीधारी है, भले ही चाँदी, ताँबे के टुकड़े उसके पास कम मात्रा में ही क्यों न हों ?

यात्- यायात्स्वोत्तरदायित्वं निर्वहन् जीवने पिता।
कुपितापि तथा पापः कुपुत्रोऽस्ति यथा मतः ॥२५॥

"पिता अपने उत्तरदायित्व को निबाहता हुआ जीवन में चले, क्योंकि कुपिता भी उसी प्रकार पापी होता है, जैसे कुपुत्र होता है।"

जिनके हाथ में प्रबन्ध, व्यवस्था, शासन, स्वामित्व, बल होते हैं, वे प्रायः उसका यथोचित उपयोग नहीं करते। ढील, शिथिलता, लापरवाही भी वैसी ही बुराई है, जैसी कि स्वार्थपरता एवं अनुचित लाभ उठाने की नीति। इसका परिणाम बुरा ही होता है। अक्सर पुत्र, शिष्य, स्त्री, प्रजाजन, सेवक आदि के बिगड़ जाने, बुरे होने, अवज्ञा करने, अनुशासनहीन होने के उदाहरण बहुत सुने जाते हैं। इन बुराइयों का बहुत कुछ उत्तरदायित्व पिता, गुरु, पति, शासक, स्वामी आदि पर भी है, क्योंकि प्रबन्ध शक्ति उनके हाथ में होती है। बुद्धिमत्ता और अनुभव अधिक होने के कारण उत्तरदायित्व उन्हीं का अधिक होता है। व्यवस्था में शिथिलता आने, बुरे मार्ग पर चलने का अवसर देने, नियंत्रण में सावधानी न रखने से भी ऐसी घटनायें प्रायः घटित होती हैं।

प्रत्येक सम्बन्ध में दो पक्ष होते हैं। दोनों पक्षों के यथोचित कर्तव्य पालन करने से ही वे सम्बन्ध स्थिर और सुदृढ़ रहते हैं, तो भी समझदार पक्ष का उत्तरदायित्व विशेष है। उसे अपने पक्ष पर अधिक मजबूती से खड़ा रहना चाहिये और छोटे पक्ष के साथ उदार बर्ताव करना चाहिये। लोग अपने-अपने अधिकार पर अधिक बल देते हैं और अपने कर्तव्य से जी चुराते हैं, यही कलह का कारण है। यदि दोनों ओर से अपने-अपने अधिकारों की उपेक्षा न की जाये, तो संघर्ष का अवसर ही न आये और सम्बन्ध बड़ी मधुरता से निभते चले जायें।

"यात्" अक्षर पिता-पुत्र में, बड़े-छोटे में, अच्छे सम्बन्ध रखने का नुस्खा यह बताता है कि दोनों ओर से अधिकार की माँग मन्द रखी जाये और कर्तव्यों का दृढ़ता से पालन हो। बड़ा पक्ष छोटे पक्ष को सँभालने के लिये अधिक सावधानी और उदारता बरते।

गायत्री-उपनिषद्

वेदों से 'ब्राह्मण' ग्रन्थों का आविर्भाव हुआ है। प्रत्येक वेद के कई-कई ब्राह्मण ग्रन्थ थे, पर अब उनमें से थोड़े ही प्राप्त होते हैं। काल की कुटिल गति ने उनमें से कितनों को लुप्त कर दिया।

ऋग्वेद के दो ब्राह्मण मिलते हैं- शांखायन और ऐतरेय। शांखायन को कौषीतकि भी कहते हैं।

यजुर्वेद के तीन ब्राह्मण प्राप्त हैं- शतपथ ब्राह्मण, काण्व ब्राह्मण, तैत्तिरीय ब्राह्मण।

सामवेद के ११ ब्राह्मण उपलब्ध हैं- आर्षेय ब्राह्मण, जैमिनी आर्षेय ब्राह्मण, संहितोपनिषद् ब्राह्मण, मन्त्र ब्राह्मण, वंश ब्राह्मण, साम विधान ब्राह्मण, षड्विंश ब्राह्मण, दैवत ब्राह्मण, ताण्ड्य ब्राह्मण, जैमिनीय ब्राह्मण, जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण।

अथर्ववेद का केवल मात्र एक ब्राह्मण मिलता है, जिसका नाम गोपथ ब्राह्मण है। गोपथ की ३१ से लेकर ३८ तक आठ कण्डिकायें गायत्री उपनिषद् कहलाती हैं। इनमें मैत्रेय और मौद्गल्य के परस्पर विवाद के उपाख्यान द्वारा गायत्री का महत्त्वपूर्ण रहस्य समझाया गया है। साधारण शब्दार्थ के अनुसार बुद्धि-प्रेरणा की प्रार्थना ही गायत्री का तात्पर्य है, परन्तु इस उपनिषद् में ब्रह्म-विद्या एवं पदार्थ विद्या से सम्बन्ध रखने वाले कई रहस्यों पर प्रकाश डाला गया है।

अथ गायत्री उपनिषद्

एतद्धस्म एतद् विद्वांसमेकादशाक्षम्।
मौद्गल्यं ग्लावो मैत्रेयोऽभ्याजगाम॥

एकादशाक्ष मौद्गल्य के समीप ग्लाव मैत्रेय आये।

स तस्मिन् ब्रह्मचर्यं वसतो विज्ञायोवाच।
किं स्विन्मर्यादा अयं तन्मौद्गल्योऽध्येति
यदस्मिन्ब्रह्मचर्ये वसतीति।

"मौद्गल्य के ब्रह्मचारी को देखकर और उसे सुनाकर ग्लाव ने उपहास लड़ाते हुए कहा- "मौद्गल्य अपने इस ब्रह्मचारी को क्या पढ़ाता है अर्थात् कुछ नहीं पढ़ाता है।"

तद्धि मौद्गल्यस्यान्तेवासी शुश्राव।
स आचार्यायाव्रज्याचचष्टे।

मौद्गल्य के ब्रह्मचारी ने इस बात को सुनकर अपने आचार्य के पास जाकर कहा-

दुरधीयानं वा अयं भवन्तमवोचद्योऽयमद्यातिथिर्भवति।

जो आज अतिथि हुए हैं, आपको उन्होंने मूर्ख कहा है।

किं सौम्य विद्वानिति।

क्या वह विद्वान् हैं ? मौद्गल्य ने पूछा।

त्रीन्वेदान् ब्रूते भो३ इति-

हाँ, वे तीनों वेदों के प्रवचनकर्त्ता हैं, शिष्य ने कहा-

तस्य सौम्य यो विस्पष्टो विजिगीषोऽन्तेवासी तन्मेह्वयेति।

हे सौम्य ! उसका जो विद्वान्, सूक्ष्मदर्शी तथा विजय चाहने वाला शिष्य हो, तुम उसे मेरे पास ले आओ।

तमाजुहाव। तमभ्युवाचासाविति भो३ इति।

तब वह उसे बुला लाया और बोला-वे ये हैं।

किं सौम्य त आचार्योऽध्येतीति।

मौद्गल्य ने उससे पूछा-हे सौम्य ! तुम्हारे आचार्य क्या पढ़ाते हैं ?

त्रीन् वेदान् ब्रूते भो३ इति ।

उसने उत्तर दिया- वे तीनों वेदों का प्रवचन करते हैं।

यन्नु खलु सौम्यास्माभिः सर्वे वेदा मुखतो गृहीताः,
कथन्त एवमाचार्यो भाषते, कथं नु......स चेत्सौम्य
दुरधीयानो भविष्यति, आचार्योवाच ब्रह्मचारी
ब्रह्मचारिणे सावित्रीं प्राह, इति वक्ष्यति ।

हे सौम्य ! यदि वे यह जानते होंगे, तो कहेंगे कि आचार्य अपने ब्रह्मचारी को जिसका उपदेश देते हैं, वह सावित्री है अर्थात् जो गायत्री का शब्दार्थ, स्थूल अर्थ है, उसे ही बता देंगे ।

तत्त्वं ब्रूयाद् दुरधीयानं तं वै भवान्मौद्गल्य-
मवोचत् , स त्वा यं प्रश्नमप्राक्षीन्न तं व्यवोचः ।
पुरा सम्वत्सरादार्तिमाकृष्यसीति ।

तब तुम कहना कि आपने तो आचार्य मौद्गल्य को मूर्ख बतलाया था । वे आपसे जो प्रश्न पूछते हैं, उसे आप नहीं बतला सके, तो एक वर्ष के भीतर ही आपको कुछ कष्ट होगा ।

शिष्टाः शिष्टेभ्य एवं भाषेरन् । यं ह्येनमहं प्रश्नं पृच्छामि न तं विवक्ष्यति, न ह्येनमध्येतीति ।

"हे सौम्य ! हमने भी सब वेदों का अध्ययन किया है, फिर तुम्हारे आचार्य मुझे मूर्ख क्यों कहते हैं ? क्या शिष्टों के लिये ऐसा कहना ठीक है ? हम उनसे जो प्रश्न पूछेंगे, वे उसे न बतला सकेंगे, वे उसे पढ़ाते भी नहीं होंगे ।"

स ह मौद्गल्यः स्वमन्तेवासिनमुवाच, परेहि सौम्य, ग्लावं
मैत्रेयमुपसीद, अधीहि भोः सावित्रीं गायत्रीम् ।
चतुर्विंशति योनिं द्वादशमिथुनां, यस्या भृग्वंगिरसश्च-
क्षुर्यस्यां सर्वमिदं श्रितं, तां भवान् प्रब्रवीत्विति । -गो० ब्रा० पू० १/३१

"तब उन मौद्गल्य ने अपने ब्रह्मचारी से कहा- हे सौम्य ! तुम जाओ, ग्लाव मैत्रेय के समक्ष उपस्थित होकर कहो कि बारह मिथुन तथा चौबीस योनि वाली भृगु और अंगिरा जिसके नेत्र हैं तथा जिसके आश्रित ये सब हैं , उस सावित्री-गायत्री को हमें पढ़ाइये ।"

इस कण्डिका में मौद्गल्य ने मैत्रेय से गायत्री का रहस्य पुछवाया है । साधारण अर्थ तो सभी जानते हैं कि इस मन्त्र में परमात्मा से यह प्रार्थना की गयी है कि हमें सद्बुद्धि की प्रेरणा दीजिये । ऐसे मन्त्र तो श्रुति-स्मृतियों में अनेकों भरे पड़े हैं, जिसमें इसी प्रकार की या इससे भी उत्तम रीति से बुद्धि-विवेक आदि के लिये प्रार्थनायें की गयी हैं । फिर गायत्री में ही ऐसी क्या विशेषता है, जिसके कारण उसे वेद-माता कहा गया और समस्त श्रुति-क्षेत्र में इतना महत्त्व दिया गया ? इसका कोई न कोई बड़ा कारण अवश्य होना चाहिये । मौद्गल्य ने उसी रहस्य एवं कारण को मैत्रेय से पुछवाया ।

स तत्राजगाम यत्रेतरो बभूव तं ह पप्रच्छ स ह न प्रतिपेदे ।

"मौद्गल्य का शिष्य मैत्रेय के पास आया । उसने उनसे पूछा, किन्तु वे उसका उत्तर न दे सके ।"

तं होवाच दुरधीयानं तं वै भवान्मौद्गल्यमवो-
चत्स त्वा यं प्रश्नमप्राक्षीन्न तं व्यवोचः पुरा
सम्वत्सरादार्तिमाकृष्यसीति ।

"उसने कहा- आपने मौद्गल्य को मूर्ख कहा था । उन्होंने जो आपसे पूछा, आप उसे नहीं बतला सके, इसलिये एक वर्ष में आपको कष्ट होगा ।"

**स ह मैत्रेयः स्वानन्तेवासिन उवाच-यथार्थं
भवन्तो यथागृहं यथामनो विप्रसृज्यन्तां दुरधीयानं
वा अहं मौद्गल्यमवोचम् , स मा यं प्रश्नमप्राक्षीन्न तं
व्यवोचं, तमुपैष्यामि, शान्तिं करिष्यामीति।**

"तब मैत्रेय ने अपने शिष्यों से कहा- अब आप लोग अपनी-अपनी इच्छानुसार अपने-अपने घरों को लौट जाइये। मैंने मौद्गल्य को मूर्ख कहा था, पर उन्होंने जो कुछ पूछा है, मैं उसे नहीं बतला सका हूँ। मैं उनके पास जाऊँगा और उन्हें शान्त करूँगा।"

स ह मैत्रेयः प्रातः समित्पाणिमौद्गल्यमुपससादासावाग्रहं भो मैत्रेयः।

"दूसरे दिन प्रातःकाल हाथ में समिधा लेकर मैत्रेय अनुग्रहशील मौद्गल्य ऋषि के पास आये और कहा- मैं, मैत्रेय आपकी सेवा में आया हूँ।"

किमर्थमिति -

"किसलिये ?" उन्होंने पूछा।

दुरधीयानं वा अहं भवन्तमवोचं त्वं मा यं प्रश्नमप्राक्षीर्न्न तं व्यवोचं, त्वामुपैष्यामि, शान्तिं करिष्यामीति।

"मैत्रेय ने कहा- मैंने आपको मूर्ख कहा था। आपने जो पूछा, मैं उसे न बता सका। अब मैं आपकी सेवा में उपस्थित होऊँगा और आपको शान्त करूँगा।"

**स होवाच-अत्र वा उपेतं च सर्वं च कृतं पापकेन त्वा
यानेन चरन्तमाहुः, अथोऽयं मम कल्याणस्तं ते
ददामि तेन याहीति।**

"मौद्गल्य ने कहा- आप यहाँ आये हैं, लेकिन लोग कहते हैं कि आप यहाँ शुद्ध भावना से नहीं आये हैं, तो भी मैं तुम्हें कल्याणकारी भाव देता हूँ, तुम इसे लेकर लौटो।"

स होवाच। एतदेवात्रात्विषं चानृशंस्यं च यथा भवानाह। उपायामित्येवं भवन्तमिति।

मैत्रेय ने कहा- आपका कहना अभयकारी एवं सदय है। आपकी सेवा में समित्पाणि होकर उपस्थित होता हूँ।

तं होपेयाय-

अब वे विधिपूर्वक उनकी सेवा में उपस्थित हुए।

तं होपेत्य पप्रच्छ-

उपस्थित होकर पूछा-

**किं स्विदाहुर्भोः सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य कवयः किमाहुः।
धियो विचक्ष्व यदि ताः प्रविश्य प्रचोदयात्सविता याभिरेतीति॥**

(१) सविता का वरेण्य किसे कहते हैं ?

(२) उस देव का भर्ग क्या है ?

(३) यदि आप जानते हों तो धी संज्ञक तत्त्वों को कहिये, जिनके द्वारा सबको प्रेरणा देता हुआ सविता विचरण करता है।

तस्मा एतत्प्रोवाच-

उन्होंने उत्तर दिया-

वेदाश्छन्दांसि सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य कवयोऽन्नमाहुः ।
कर्माणि धियस्तदु ते ब्रवीमि प्रचोदयात्सविता याभिरेतीति ॥

(१) वेद और छन्द सविता का वरेण्य हैं ।
(२) विद्वान् पुरुष अन्न को ही देव का भर्ग मानते हैं ।
(३) कर्म ही वह "धी" तत्त्व है, जिसके द्वारा सबको प्रेरणा देता हुआ सविता विचरण करता है ।

तमुपसंगृह्य पप्रच्छाधीहि भोः, कः सविता, का सावित्री ॥- गो० ब्र० पू० भाग १/३२

यह सुनकर उनने फिर पूछा- सविता क्या है और सावित्री क्या है ?

मौद्‌गल्य के अभिप्राय को मैत्रेय भली प्रकार समझ गये । उन्होंने सचाई के साथ विचार किया तो जाना कि मैं गायत्री के उस रहस्य को नहीं जानता हूँ, जिसके कारण उन्हें इतना महत्त्व प्राप्त है । उन्होंने सोचा, यह मूल कारण न मालूम हो, तो उसके बाह्य प्रतीकों को जान लेने मात्र से कुछ लाभ नहीं हो सकता । इसलिये वेदों का प्रवचन करने से तब तक क्या लाभ, जब तक कि उनका मूल कारण न मालूम हो । यह सोच कर उनने निश्चय किया कि पहले मैं गायत्री का रहस्य समझूँगा, तब अन्य कार्य करूँगा । उन्होंने अपने विद्यार्थियों की छुट्टी कर दी और स्वयं नम्र बनकर समिधा हाथ में लेकर शिष्यभाव से मौद्‌गल्य के पास पहुँचे । विद्या प्राप्त करने की- विशेष रूप से अध्यात्म-विद्या की-यही परिपाटी है कि शिक्षार्थी अपने अध्यापक के पास नम्र होकर- उनके प्रति श्रद्धाभाव मन में धारण करके-पढ़ने जाये । इस आर्ष प्रणाली को छोड़कर आज के उच्छृंखल 'स्टूडेण्ट' जिन उजड्ड भावनाओं के साथ शिक्षा प्राप्त करते हैं, वह शिक्षा गुरु का आशीर्वाद न होने से निष्फल ही जाती है ।

मैत्रेय ने पूछा- गायत्री के प्रथम पद में आये हुए शब्दों का रहस्य बताइये । (१) सविता का वरेण्य क्या है अर्थात् उस तेजस्वी परमात्मा को किससे वरेण्य किया जाता है ? ईश्वर किस उपाय से प्राप्त होता है ? (२) उस देव का भर्ग क्या है ? देव कहते हैं श्रेष्ठ को, भर्ग कहते हैं बल को । देव का भर्ग क्या है ? (३) जिसके द्वारा परमात्मा सबको प्रेरणा करता है अर्थात् वह माध्यम क्या है जिसके द्वारा ईश्वर की कृपा होती है ? इन तीनों तत्त्वों को मैत्रेय ने मौद्‌गल्य से पूछा ।

इनका संक्षिप्त उत्तर मौद्‌गल्य ने दिया है, वह बड़े ही मार्के का है । इन उत्तरों पर जितना गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाये, उतना ही उनका महत्त्व प्रकट होता है । मौद्‌गल्य कहते हैं-

(१) वेद और छन्द सविता का वरेण्य है । (२) अन्न को ही देव का भर्ग कहते हैं । (३) कर्म ही 'धी' तत्त्व है, इसी के द्वारा परमात्मा सबको प्रेरणा देता है, सबका विकास करता है । आइये तीनों प्रश्नों पर पृथक्-पृथक् विचार करें-

(१) वेद अर्थात् ज्ञान, छन्द अर्थात् अनुभव । वास्तव में आत्म- ज्ञान से परमात्मा की प्राप्ति होती है, पर वह ज्ञान केवल वाचिक न होना चाहिये । भारवाही गधे की तरह अनेक पुस्तकें पढ़ लेने से, शुक-सरिकाओं की भाँति कुछ रटे हुए शब्दों का प्रवचन कर देने से काम नहीं चल सकता । हमारा तत्त्व- ज्ञान अनुभव सिद्ध होना चाहिये । जिसके कारण तर्क, प्रमाण और उदाहरण के द्वारा सत्य मान लिया जाये, उस सत्य के प्रति मनुष्य के मन में अगाध श्रद्धा होनी चाहिये और उस श्रद्धा का जीवन में व्यावहारिक आचरण होना चाहिये । पहले पूरी तत्परता, सचाई और निष्पक्षता से यह देखना चाहिये कि कौन-कौन सिद्धान्त उचित एवं कल्याणकारी हैं । जब यह विश्वास हो जाए कि सत्य, परोपकार, संयम, ईमानदारी आदि गुण सब दृष्टियों से श्रेयस्कर हैं, तो उनके सिद्धान्त का जीवन में आचरण होना चाहिये । सद्ज्ञान का श्रद्धा-भूमि में परिपक्व होना, यही ईश्वर की प्राप्ति का प्रधान उपाय है । बिना सिद्धान्तों को जाने केवल अनुभव निर्बल है और बिना अनुभव का ज्ञान निष्फल है । जब मनुष्य का सद्ज्ञान श्रद्धा में परिणत हो जाता है, दम्भ, छल, मात्सर्य, कपट, धूर्तता एवं दुराव को छोड़कर, जब समस्त मनोभूमि में एक ही जाति की श्रद्धा स्थापित हो जाती है, तो उसी आधार पर परमात्मा की प्राप्ति होती है । वेद और छन्द के सम्मिश्रण में सविता का वर्णन किया है और ज्ञान तथा अनुभव से परमात्मा को प्राप्त किया जाता है ।

(२) इसी प्रश्न का उत्तर देते हुए मौद्‌गल्य कहते हैं, देव का भर्ग अन्न है । श्रेष्ठ का बल, उसके साधन हैं ।

श्रेष्ठता को तभी बलवान् बनाया जा सकता है, जब उसको विकसित करने के लिये अन्न हो, साधन हो। साधन-सामग्री लक्ष्मी, एक शक्ति है, जो असुर के हाथ में चली जाए, तो असुरता को बढ़ाती है और यदि देवों के हाथ में चली जाए, तो उसके द्वारा देवत्व का विस्तार होता है, देवता बलवान् होते हैं। शासन-सत्ता, क्रूर, दुष्ट लोगों के हाथ में हो तो वे उससे दुष्टता फैलाते हैं। पिछली शताब्दियों में भारत की राज-सत्ता विदेशियों के हाथ में रही है, इसके कारण उन्होंने भारत-भूमि का कितना अधःपतन किया, यह किसी से छिपा नहीं है। वही सत्ता अब जब अच्छे हाथों में आयी, तो थोड़े दिनों में रूस, अमेरिका की भाँति यहाँ भी उन्नत अवस्था प्राप्त होने की संभावना है। योगी अरविन्द ने अपनी 'गीता पुस्तक' में लिखा है- "लक्ष्मी पर श्रेष्ठ लोगों को आधिपत्य करना चाहिये। इस प्रकार संसार में सुख-शांति बढ़ेगी। यदि लक्ष्मी असुरों के पास चली गयी, तो उससे विश्व का अनिष्ट ही समझिये।' देवताओं को भोग के लिये नहीं, लोभ के लिये नहीं, संग्रह के लिये नहीं, अहंकार-प्रदर्शन के लिये नहीं, अन्याय करने के लिये नहीं, वरन् इसलिये धन और साधन-सामग्रियों की आवश्यकता है कि वे शक्तियों द्वारा देवत्व की रक्षा एवं वृद्धि कर सकें। अन्न को, इस साधन-सामग्री को लक्ष्मी का प्रतीक माना है। मौद्गल्य का उत्तर यह है कि देव का भर्ग, अन्न है, श्रेष्ठ का बल, साधन है। बिना साधन के तो वह बेचारा निर्बल ही रहेगा।

मौद्गल्य का तीसरा उत्तर यह है कि कर्म ही 'धी' तत्त्व है। इसी के द्वारा परमात्मा सबका विकास करता है। यह नितान्त सत्य है कि परमात्मा की कृपा से सबका विकास होता है। परमात्मा सबको ऊपर की ओर-उन्नति की ओर प्रेरित करता है, पर यह भी जान लेना चाहिये कि उस प्रेरणा का रूप है 'धी'। 'धी' अर्थात् वह बुद्धि जो कर्म के लिये प्रेरणा, प्रोत्साहन देती है और कर्म करने में लगा देती है। परमात्मा की जिस प्रकार की कृपा होती है, उसी प्रकार की बुद्धि प्राप्त होती है। किसी मनुष्य पर परमात्मा की कृपा है या नहीं, इसकी पहचान करनी हो तो वह इस प्रकार हो सकती है कि वह मनुष्य उत्साहपूर्वक, तन्मयतापूर्वक श्रम, जागरूकता और रुचि के साथ कार्य करता है या नहीं? जिसका स्वभाव इस रुचि का है, समझना चाहिये कि इनको विकसित करने के लिये परमात्मा ने इन्हें 'धी' तत्त्व प्रदान किया है।

कितने ही व्यक्ति आलसी, निकम्मे, हरामखोर होते हैं, निराशा जिन्हें घेरे रहती है, काम को आधे मन से, अरुचिपूर्ण बेगार भुगतने की तरह करते हैं, जरा-सा काम उन्हें पहाड़ मालूम होता है, थोड़े से श्रम में भारी थकान अनुभव करते हैं। ऐसे लोगों को 'धी' तत्त्व से रहित समझना चाहिये। यह प्रत्यक्ष है कि वे ईश्वर के कृपा पात्र नहीं हैं, कर्म प्रेरक बुद्धि के अभाव में वे दुर्भाग्यग्रस्त ही होंगे।

मौद्गल्य का उपर्युक्त कथन गम्भीर और सत्य है, इसके बारे में दो मत नहीं हो सकते। भाग्य का रोना रोने वाले, तकदीर को कोसने वाले, अपनी त्रुटि का दोष किसी दूसरे ज्ञात-अज्ञात पर थोपकर झूठा मन-संतोष भले ही कर लें, पर वस्तुस्थिति यही है कि उन्होंने ईश्वर की कृपा को प्राप्त नहीं किया। यह कृपा हर किसी के लिये सुलभ है, हर किसी के अपने हाथों में है। 'धी' तत्त्व को कर्मशीलता को अपनाकर हर कोई ईश्वरीय कृपा और उन्नति का अधिकारी बन सकता है। परमात्मा अपनी कृपा से किसी को वंचित नहीं रखता, मनुष्य ही दुर्बुद्धि के कारण उसका परित्याग कर देता है।

मन एव सविता वाक् सावित्री यत्र ह्येव मनस्तद्वाक्।
यत्र वै वाक् तन्मन इति एते द्वे योनी एकं मिथुनम्॥१॥

'मन सविता है, वाक् गायत्री। जहाँ मन है वहाँ वाक् है, जहाँ वाक् है, वहाँ मन। ये दोनों दो योनि और एक मिथुन है।"

अग्निरेव सविता पृथिवी सावित्री यत्र ह्येवाग्निस्तत्पृथिवी।
यत्र वै पृथिवी तदग्निरिति एते द्वे योनी एकं मिथुनम्॥२। - सावित्र्युपनिषद्

"अग्नि सविता है, पृथ्वी सावित्री। जहाँ अग्नि है वहाँ पृथ्वी है, जहाँ पृथ्वी है, वहाँ अग्नि है। ये दो योनि तथा एक मिथुन हैं।"

वायुरेव सविता अन्तरिक्षं सावित्री। यत्र ह्येव वायुस्तदन्तरिक्षम्, यत्र वा अन्तरिक्षं तद्वायुरिति एते द्वे योनी एकं मिथुनम् ॥३॥

"वायु सविता है अन्तरिक्ष सावित्री है। जहाँ वायु है, वहाँ अन्तरिक्ष है, जहाँ अन्तरिक्ष है, वहाँ वायु है। ये दोनों दो योनि और एक मिथुन हैं।"

आदित्य एव सविता द्यौः सावित्री यत्र ह्येवादित्यस्तद् द्यौः यत्र वै द्यौस्तदादित्य इति एते द्वे योनी एकं मिथुनम् ॥४॥

"आदित्य सविता है, द्यौ सावित्री। जहाँ आदित्य है, वहाँ द्यौ है, जहाँ द्यौ है, वहाँ आदित्य है। ये दोनों दो योनि और एक मिथुन हैं ॥४॥

चन्द्रमा एव सविता नक्षत्राणि सावित्री यत्र ह्येव चन्द्रमास्तन्नक्षत्राणि।
यत्र वै नक्षत्राणि तच्चन्द्रमा इति। एते द्वे योनी एकं मिथुनम् ॥५॥

"चन्द्रमा ही सविता है, नक्षत्र सावित्री है। जहाँ चन्द्रमा है वहाँ नक्षत्र हैं, जहाँ नक्षत्र हैं, वहाँ चन्द्रमा है। ये दोनों, दो योनि और एक मिथुन हैं ॥५॥"

अहरेव सविता रात्रिः सावित्री। यत्र ह्येवाहस्तद्रात्रिः।
यत्र वै रात्रिस्तदहरिति एते द्वे योनी एकं मिथुनम् ॥६॥

"दिन सविता है और रात्रि सावित्री है। जहाँ दिन है, वहाँ रात्रि है, जहाँ रात्रि है, वहाँ दिन है। ये दो योनि और एक मिथुन हैं ॥६॥

उष्णमेव सविता शीतं सावित्री यत्र ह्येवोष्णं तच्छीतम्।
यत्र वै शीतं तदुष्णमिति एते द्वे योनी एकं मिथुनम् ॥७॥

"उष्ण सविता है, शीत सावित्री। जहाँ उष्ण है, वहाँ शीत है, जहाँ शीत है, वहाँ उष्णता है। ये दोनों, दो योनि और एक मिथुन हैं ॥७॥"

अभ्रमेव सविता वर्षं सावित्री यत्र ह्येवाभ्रं तद्वर्षं।
यत्र वै वर्षं तदभ्रमिति एते द्वे योनी एकं मिथुनम् ॥८॥

"बादल सविता है और वर्षण सावित्री। जहाँ बादल है, वहाँ वर्षण है, जहाँ वर्षण है, वहाँ बादल हैं। ये दोनों दो योनि तथा एक मिथुन हैं ॥८॥

विद्युदेव सविता स्तनयित्नुः सावित्री। यत्र ह्येव विद्युत्तस्तनयित्नुः यत्र वै स्तनयित्नुस्तद्विद्युदिति एते द्वे योनी एकं मिथुनम् ॥९॥

"विद्युत् सविता है और उसकी तड़क सावित्री। जहाँ बिजली है वहाँ उसकी तड़क है, जहाँ तड़क है, वहाँ बिजली है। ये दोनों, दो योनि और एक मिथुन हैं ॥९॥

प्राण एव सविता अन्नं सावित्री । यत्र ह्येव प्राणस्तदन्नं यत्र वा अन्नं तत्प्राण इति। एते द्वे योनी एकं मिथुनम् ॥१०॥

"प्राण सविता है, अन्न सावित्री। जहाँ प्राण है, वहाँ अन्न है, जहाँ अन्न है, वहाँ प्राण है। ये दो योनि तथा एक मिथुन हैं ॥१०॥

वेदा एव सविता छंदांसि सावित्री, यत्र ह्येव वेदास्तच्छन्दांसि यत्र वै छन्दांसि तद्वेदा इति एते द्वे योनी एकं मिथुनम् ॥११॥

"वेद सविता है, छन्द सावित्री। जहाँ वेद हैं, वहाँ छन्द हैं, जहाँ छन्द हैं, वहाँ वेद हैं। ये दो योनि और एक मिथुन हैं ॥ ११ ॥"

यज्ञ एव सविता दक्षिणा सावित्री, यत्र ह्येव यज्ञस्तद् दक्षिणा।
यत्र वै दक्षिणास्तद्यज्ञ इति एते द्वे योनी एकं मिथुनम्॥१२॥

'यज्ञ सविता है और दक्षिणा सावित्री है। जहाँ यज्ञ है, वहाँ दक्षिणा है, जहाँ दक्षिणा है, वहाँ यज्ञ है। ये दो योनि तथा एक मिथुन हैं॥१२॥"

एतद्ध स्मैतद्विद्वांसमोपाकारिमासस्तुर्ब्रह्मचारी ते संस्थित इति।

"विद्वान् तथा परोपकारी महाराज ! आपकी सेवा में यह ब्रह्मचारी आया है।'

अथैत आसस्तुराचित इव चितो बभूव अथोत्थाय प्राव्राजीदिति।

"यह ब्रह्मचारी आपके यहाँ आकर ज्ञान से परिपूर्ण हो गया है। इसके बाद वे वहाँ से चले गये।"

एतद्वा अहं वेद नैतासु योनिष्वित एतेभ्यो वा मिथुनेभ्यः सम्भूतो ब्रह्मचारी मम पुरायुषः प्रेयादिति।

"और उन्होंने कहा कि अब मैं इसे जान गया हूँ, उन योनियों अथवा इन मिथुनों में आया हुआ मेरा कोई ब्रह्मचारी अल्पायु नहीं होगा।"

अब प्रश्न होता है कि सविता क्या है ? और सावित्री क्या है ? गायत्री का देवता सविता माना गया है। प्रत्येक मन्त्र का एक देवता होता है, जिससे पता चलता है कि इस मन्त्र का क्या विषय है ? गायत्री का देवता सविता होने से यह स्पष्ट है कि इस मन्त्र का विषय सविता है। सविता की प्रधानता होने के कारण गायत्री का दूसरा नाम सावित्री भी है।

मैत्रेय पूछते हैं- भगवान् सविता क्या है ? और वह सावित्री क्या है ? महर्षि मौद्गल्य उन्हें उत्तर देते हैं कि सविता और सावित्री का अविच्छिन्न सम्बन्ध है, जो एक है वही दूसरा है। दोनों का मिलकर एक जोड़ा बनता है, एक केन्द्र है, दूसरा उसकी शक्ति है। दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं।

शक्ति-मार्ग का महत्त्व उसकी शक्ति के विस्तार से है। यों तो प्रत्येक परमाणु अनन्त शक्ति का पुञ्ज है। एक परमाणु के विस्फोट से प्रलय उपस्थित हो जाती है, पर इस प्रकार की गतिविधि होती तभी है, जब उस शक्ति का विस्तार एवं प्रकटीकरण होता है। यदि यह प्रकटीकरण न हो, तो अनन्त शक्तिशाली पदार्थ का भी कोई अस्तित्व नहीं, उसे कोई जानता तक नहीं। सविता कहते हैं- तेजस्वी परमात्मा को और सावित्री कहते हैं- उसकी शक्ति को। सावित्री, सविता से भिन्न नहीं वरन् उसकी पूरक है उसका मिथुन अर्थात् जोड़ा है। सावित्री द्वारा ही अचिन्त्य, अज्ञेय, निराकार एवं निर्लिप्त परमात्मा इस योग्य होता है कि उससे कोई लाभ उठाया जा सके।

यह बात बहुत सूक्ष्म और गम्भीर विचार के उपरान्त समझ में आने वाली है। इसलिये उपनिषद्कार उसे उदाहरण दे-देकर सुबोध बनाते हैं और इस गूढ़ तत्त्व को इस प्रकार उपस्थित करते हैं कि हर कोई आसानी से समझ सके। वे कहते हैं-

मन सविता है वाक् सावित्री है, जहाँ मन है, वहाँ वाक् है, जहाँ वाक् है, वहाँ मन है। ये दोनों दो योनियाँ हैं, एक मिथुन है। इसी प्रकार अग्नि और पृथ्वी का, वायु और अन्तरिक्ष का, आदित्य और द्यौ का, चन्द्रमा और नक्षत्रों का, दिन और रात्रि का, उष्ण और शीत का, अग्नि और वरुण का, विद्युत् और तड़क का, प्राण और अन्न का, वेद और छन्द का, यज्ञ और दक्षिणा का मिथुन बताया गया है। यह तो थोड़े से उदाहरण मात्र हैं। यह उदाहरण बताकर उपनिषद्कार ने बताया है कि अकेली कोई वस्तु प्रकट नहीं हो सकती, प्रकाश में नहीं आ सकती, विस्तार नहीं कर सकती। अव्यक्त पदार्थ तभी व्यक्त होता है, जब उसकी शक्ति का प्रकटीकरण होता है। केवल परमात्मा, बुद्धि की मर्यादा के बाहर है, उसे न तो हम सोच सकते हैं और न उसके समीप तक पहुँचकर कोई लाभ उठा सकते हैं। यह अव्यक्त परमात्मा सविता, अपनी शक्ति, सावित्री द्वारा सर्व साधारण पर प्रकट होता है और उस शक्ति की उपासना द्वारा ही उसे प्राप्त किया जा सकता है।

लक्ष्मीनारायण, सीताराम, राधाकृष्ण, उमाशंकर, सविता-सावित्री, प्रकृति-परमेश्वर के मिथुन, यही बताते हैं कि यह एक दूसरे के पूरक हैं, प्रकट होने के कारण हैं। जीव भी माया के कारण अव्यक्त से व्यक्त होता है। यह मिथुन हेय या त्याज्य नहीं है वरन् क्रियाशीलता के विस्तार के लिये है। मनुष्य का विकास भी एकांगी नहीं हो सकता, उसे अपनी शक्तियों का विस्तार करना पड़ता है। जो अपनी शक्तियों को बढ़ाता है, वही उन्नति की ओर अग्रसर होता है।

शक्ति और शक्तिमान् का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। जैसे सविता अपनी सावित्री से ओत-प्रोत है, उसी प्रकार हमें भी अपने आपको बहुमुखी शक्तियों से परिपूर्ण बनाना चाहिये। अपने साथ अनेक व्यक्तियों का सहयोग संगठित करना चाहिये। जिसके मिथुन जितने अधिक हैं, वह उतना ही सुखी है।

इस शक्ति और शक्तिमान् के रहस्य को जानकर मैत्रेय सन्तुष्ट हुए। उन्होंने कहा- मैं आपका शिष्य, अब ज्ञान की वास्तविक जानकारी से परिपूर्ण हो गया हूँ। अब मैं जान गया कि मेरा जो शिष्य इस योनि और मिथुन के रहस्य को जान लेगा वह अल्पायु न होगा। वह शक्ति को अपना अविच्छिन्न अंग मानकर उसका दुरुपयोग न करेगा; वरन् सदुपयोग द्वारा सब प्रकार का लाभ उठायेगा। इस प्रकार शक्ति का रहस्य समझकर उसका सदुपयोग करने वाले अल्पायु कदापि नहीं हो सकते।

ब्रह्म हेदं श्रियं प्रतिष्ठामायतनमैक्षत तत्तपस्व यदि तद्व्रते ध्रियेत तत् सत्ये प्रत्यतिष्ठत्।

"ब्रह्म ने श्री, प्रतिष्ठा आयतन को देखा और कहा कि - तप करो। यदि तप के व्रत को धारण किया जाए, तो सत्य में प्रतिष्ठा होती है।"

स: सविता सावित्र्या ब्राह्मणं सृष्ट्वा तत्सावित्रीं पर्य्यदधात्।

उस सविता ने सावित्री से ब्राह्मण की सृष्टि की तथा सावित्री को उससे घेर लिया।

तत्सवितुर्वरेण्यं इति सावित्र्या: प्रथम: पाद:।

'तत्सवितुर्वरेण्यं' यह सावित्री का प्रथम पाद है।

पृथिव्यर्च समदधात्। ऋचा अग्निम्। अग्निना श्रियम्। श्रिया स्त्रियम्। स्त्रिया मिथुनम्। मिथुनेन प्रजाम्। प्रजया कर्म। कर्मणा तप:। तपसा सत्यम्। सत्येन ब्रह्म। ब्रह्मणा ब्राह्मणम्। ब्राह्मणेन व्रतम्। व्रतेन वै ब्राह्मण: संशितो भवति। अशून्यो भवति, अविच्छिन्नो भवति।

पृथ्वी से ऋक् को जोड़ा युक्त किया। ऋक् से अग्नि को, अग्नि से श्री को, श्री से स्त्री को, स्त्री से मिथुन को, मिथुन से प्रजा को, प्रजा से कर्म को, कर्म से तप को, तप से सत्य को, सत्य से ब्रह्म को, ब्रह्म से ब्राह्मण को, ब्राह्मण से व्रत को। ब्राह्मण व्रत से ही तीक्ष्ण होता है, पूर्ण होता है और अविच्छिन्न होता है।

अविच्छिन्नोऽस्य तन्तुरविच्छिन्नं जीवनं भवतीति, य एवं वेद यश्चैवं विद्वानेवमेतं सावित्र्या: प्रथमं पादं व्याचष्टे।

"जो इस प्रकार से इसे जानता है और जानकर जो विद्वान् इसकी इस प्रकार व्याख्या करता है वह, उसका वंश तथा उसका जीवन अविच्छिन्न होता है।"

ब्रह्म जब तक अपने आप में केन्द्रित था, तब तक कोई पदार्थ न था। जब उसने **"एकोऽहं बहुस्याम"** की इच्छा की, एक से बहुत बनने का उपक्रम किया तो उस इच्छा शक्ति के कारण सृष्टि उत्पन्न हुई। जब ब्रह्मा ने उस सृष्टि का साक्षात्कार किया, उसमें तीन वस्तुयें प्रधान दिखाई दीं- (१) श्री, (२) प्रतिष्ठा, (३) आयतन अर्थात् ज्ञान। इन विलक्षण सुख सामग्रियों को किस प्रकार प्राप्त किया जा सकता है ? इस रहस्य का उद्घाटन करते हुए ब्रह्म ने कहा- तप करो, अर्थात् तन्मयतापूर्वक श्रम करो। यह किस प्रकार संभव है ? तप से अभीष्ट वस्तुयें किस प्रकार प्राप्त हो सकती हैं ? उसका भी ब्रह्म ने बड़े सुन्दर ढंग से स्पष्टीकरण कर दिया। यदि तप का व्रत धारण किया जाय, तप को- रुचिपूर्वक श्रमशीलता को अपना स्वभाव बना लिया जाए, तो मनुष्य अवश्य ही सत्य में प्रतिष्ठित हो जाता है और अवश्य ही सही मार्ग मिल जाता है। उस मार्ग पर चलता हुआ प्राणी अभीष्ट को प्राप्त कर लेता है।

अब इस श्री, प्रतिष्ठा और ज्ञान का अधिकारी कौन नियुक्त किया जाय ? इस विलक्षण सुख-साधना का अधिकारी हर कोई नहीं हो सकता । सविता ने- परमात्मा ने अपनी सत् शक्ति से ब्राह्मण को बनाया और उसको सावित्री से घेर दिया । जिसमें सत् तत्त्व विशेष है, जो ब्रह्म परायण है, वह व्यक्ति ब्राह्मण है । ऐसे व्यक्ति ईश्वरीय दिव्य भावों से, दिव्य शक्ति से घिरे रहते हैं, उन्हें श्री, प्रतिष्ठा और ज्ञान की प्राप्ति होती है, वे ही उनका सदुपयोग करके लाभान्वित होते हैं । अन्यों को इन तीनों का अधिकार नहीं है । यदि बलात्, अनधिकृत रूप से कोई इन्हें प्राप्त कर लेता है, तो उसके लिये ये वस्तुयें विपत्ति रूप बन जाती हैं ।

आसुरी भावनाओं से आच्छादित मनुष्य तपस्वी नहीं होते, जो उचित मार्ग से तप द्वारा ईमानदारी से इन वस्तुओं को प्राप्त करें । वे अवैधानिक रूप से, अनुचित मार्ग से, चालाकी से इन्हें प्राप्त करते हैं । ऐसी दशा में वह श्री, प्रतिष्ठा और ज्ञान उनके खुद के लिये तथा अन्य लोगों के लिये विपत्ति का कारण बनते हैं । आज हम देखते हैं कि धनी लोग, धन संग्रह के लिये कैसे-कैसे अनुचित तरीके अपनाते हैं और फिर उस संचित धन को कैसे अनुचित मार्ग में खर्च करते हैं । अपनी प्रतिष्ठा का दुरुपयोग करने वाले नेता, महात्मा, साधु-संन्यासी आदि की संख्या कम नहीं है । लोग औंधे-सीधे मार्ग से, नामवरी और वाहवाही लूटने के लिये प्रयत्न करते हैं । ज्ञान का दुरुपयोग करने वालों की भी कमी नहीं है । अश्लील, कुरुचिपूर्ण पुस्तकें लिखने वाले लेखक, चित्रकार कम नहीं हैं । झूठी विज्ञापनबाजी करके अपनी ज्ञान शक्ति का दुरुपयोग करने वालों की संख्या पर्याप्त है । ऐसे असत् प्रकृति के लोगों को जब यह तीन शक्तियाँ मिल जाती हैं, तो वे उनका दुरुपयोग करते हैं । दुरुपयोग का निश्चित परिणाम उनका छिन जाना है । प्रकृति का नियम है कि वह अयोग्य हाथों में किसी वस्तु को अधिक समय नहीं रहने देती ।

जो ब्राह्मण हैं, ब्रह्म प्रकृति के हैं, ब्रह्म ने उन्हें उपर्युक्त तीन लाभों का स्थायी अधिकारी बताया है । यही ईश्वरीय नियम है । जिन्हें स्थायी रूप से श्री, प्रतिष्ठा और ज्ञान का अधिकारी बनना हो, सदा के लिये इनका रसास्वादन करना हो, उन्हें ब्राह्मण बनना चाहिये । अपने गुण, कर्म, स्वभाव में ब्राह्मी भावों की प्रधानता रखनी चाहिये । तभी ये तीन तत्त्व स्थायी रूप से उसके पास ठहरेंगे । सविता ने- परमात्मा ने अपनी सावित्री से सत्-शक्ति से, ब्राह्मण को वर दिया है । हमें तप द्वारा, योग द्वारा, यज्ञ द्वारा, प्रेम द्वारा, न्याय द्वारा ब्राह्मण बनने का प्रयत्न करना चाहिये, जिससे संसार के इन तीन दिव्य सुखों के अधिकारी बन सकें ।

ब्राह्मण के पास-सन्मार्गगामी के पास, वैभव किस प्रकार पहुँचता और ठहरता है, इसका विवेचन करते हुए उपनिषद्कार ने परस्पर सम्बन्धों को गिनाया है कि वह परस्पर सम्बन्ध की शृंखला किस प्रकार सम्पन्नता को प्राप्त कराने में समर्थ होती है ?

गायत्री के प्रथम पाद "तत्सवितुवरेण्यं" का भूः प्रतिनिधि कहा गया है । तीन व्याहृतियों से- भूः भुवः स्वः से गायत्री के तीन पद आविर्भूत हुए हैं । भूः कहते हैं- पृथ्वी लोक को । पृथ्वी को पृथ्वी के निवासियों से, ऋक् को ज्ञान से सम्बद्ध किया, ज्ञान से अग्नि अर्थात् क्रिया को सम्बद्ध किया, अग्नि से श्री को अर्थात् क्रिया से वैभव को जोड़ दिया । वैभव को स्त्री से अर्थात् तृप्ति से जोड़ा । तृप्ति से मिथुन अर्थात् जोड़ा बना, मैत्री हुई, मैत्री से प्रजा अर्थात् बहुजन सम्बन्ध स्थापित हुआ, बहुजन सहयोग से कर्म हुए, सत्कर्मों से तप के लिये साहस बढ़ा । तप से सत्य मार्ग मिला, सत्य मार्ग से ब्रह्म प्राप्ति हुई, ब्रह्म प्राप्ति करने वाला ब्राह्मण कहलाया । ब्राह्मण ने व्रत को अपनाया, आदर्शवादी आचरण की प्रतिज्ञा की । इस प्रकार जिसका जीवन आदर्शवादी आचरण की प्रतिज्ञा से ओत-प्रोत है, वह ब्राह्मण सुतीक्ष्ण, परिपूर्ण और अखण्डित होता है । उसकी तीक्ष्णता में, क्रियाशीलता में, पूर्णता में कुछ भी कमी नहीं होती, उसे कोई खण्डित नहीं कर सकता ।

जो इस प्रकार का ज्ञान रखता है, जो इस प्रकार गायत्री की व्याख्या करता है, उसका जीवन और वंश अविच्छिन्न रहता है । गायत्री के प्रथम पाद का शब्दार्थ तो बहुत साधारण है । उसे समझने मात्र से उतना लाभ नहीं मिल सकता, जितना कि मिलना चाहिये । ब्रह्म ने श्री, प्रतिष्ठा और ज्ञान रूपी तीनों रत्नों का जिसे अधिकारी बनाया है उसे गायत्री से घेर दिया है । इसका तात्पर्य यह है कि गायत्री की मर्यादा के भीतर जिन्होंने ब्राह्मणत्व

प्राप्त किया है - वे ही भौतिक और आत्मिक आनन्दों को प्राप्त करेंगे। जिनकी जठराग्नि तीव्र है, उनके लिये साधारण श्रेणी के पदार्थ भी रुचिकर और पुष्टिकर होते हैं और जिनकी जठराग्नि मन्द है, उनके लिए बढ़िया मोहन-भोग भी रोग उत्पन्न करते हैं। गायत्री से आच्छादित ब्रह्मकर्मा मनुष्य की आत्मिक जठराग्नि ऐसी तीव्र होती है कि वह थोड़ी मात्रा में प्राप्त हुए पदार्थों से भी पर्याप्त रसास्वादन कर सकता है।

जो यह जानता है कि गायत्री के प्रथम पाद का वास्तविक उद्देश्य मानव जीवन को आदर्शवाद की प्रतिज्ञा से ओत-प्रोत बनाना है, वही उनका वास्तविक तात्पर्य जानता है। जो इस ज्ञान को व्यवहार में लाता है, अर्थात् अपने को वैसा ही बनाता है, उसका जीवन अविच्छिन्न होता है, अर्थात् जीवन भर पथ भ्रष्ट नहीं होता और उसका वंश भी नष्ट नहीं होता। पीछे भी जन्म-जन्मान्तरों तक वह भावना नष्ट नहीं होती, इस अविच्छिन्नता के कारण उसे श्री, प्रतिष्ठा और ज्ञान का भी अभाव नहीं होता।

भर्गो देवस्य धीमहि इति सावित्र्या द्वितीयः पादः।

भर्गो देवस्य धीमहि- यह सावित्री का दूसरा पाद है।

अन्तरिक्षेण यजुः समदधात्, यजुषा वायुम्, वायुना अभ्रम्। अभ्रेण वर्षम्, वर्षेणौषधि-वनस्पतीन्, ओषधि-वनस्पतिभिः पशून्, पशुभिः कर्म, कर्मणा तपः, तपसा सत्यम्, सत्येन ब्रह्म, ब्रह्मणा ब्राह्मणम्, ब्राह्मणेन व्रतं, व्रतेन वै ब्राह्मणः संशितो भवति अशून्यो भवत्यविच्छिन्नो भवति।

"अन्तरिक्ष से यजुष् को युक्त करता है, यजुर्वेद से वायु को, वायु से मेघ को, मेघ से वर्षा को, वर्षा से ओषधि-वनस्पतियों को, ओषधि वनस्पतियों से पशुओं को, पशुओं से कर्म को, कर्म से तप को, तप से सत्य को, सत्य से ब्रह्म को, ब्रह्म से ब्राह्मण को, ब्राह्मण से व्रत को तथा व्रत से ब्राह्मण तीक्ष्ण, पूर्ण और अविच्छिन्न होता है।"

अविच्छिन्नोऽस्य तन्तुरविच्छिन्नं जीवनं भवति, य एवं वेद यश्चैवं विद्वानेवमेतं सावित्र्या द्वितीयं पादं व्याचष्टे।

"जो विद्वान् इस प्रकार जानकर सावित्री के द्वितीय पाद की व्याख्या करते हैं, उनका वंश तथा जीवन अविच्छिन्न होता है।"

पिछली कण्डिका में भूः से ऋक् को सम्बन्धित करके प्रथम पाद का रहस्य समझाया था। इस कण्डिका में गायत्री के दूसरे पद का विवेचन करते हैं। भुवः से (अन्तरिक्ष से) यजुः का सम्बन्ध किया है। यजुः कहते हैं यज्ञ को। यज्ञ कहते हैं, परमार्थ को। पहली कण्डिका में ज्ञान द्वारा आदर्श जीवन की प्राप्ति का उपाय बतलाया था। यहाँ यज्ञ द्वारा व्रतमय जीवन होने की श्रृंखला का वर्णन करते हैं।

भुवः से अन्तरिक्ष में यजुः को संयुक्त किया, यजुः से वायु को, वायु से मेघ को, मेघ से वर्षा को, वर्षा से ओषधि और वनस्पतियों को, वनस्पतियों से पशुओं को सम्बद्ध किया। गीता में भी यज्ञ विधान का ऐसा ही वर्णन है। यज्ञ से वायु शुद्ध होगी, वायु के सम्पर्क से गुणदायक जल बरसता है। उससे वृक्ष, वनस्पतियाँ और पशु श्रेष्ठ तत्त्वों वाले होते हैं, उनका उपयोग करने से मनुष्य का मन श्रेष्ठ बनता है और श्रेष्ठ मन से श्रेष्ठ कर्म होते हैं।

कर्म से मन को, मन से सत्य को, सत्य से ब्रह्म को, ब्रह्म से ब्राह्मण को और ब्राह्मण को व्रत से सम्बद्ध किया। अन्ततः यही क्रम आ गया। व्रत धारण करने से ब्राह्मण सुतीक्ष्ण, परिपूर्ण एवं अविच्छिन्न वंश वाला होता है।

जो ज्ञान से प्राप्त होता है, वही प्रकारान्तर से यज्ञ द्वारा, श्रेष्ठ कर्मों द्वारा भी प्राप्त हो सकता है। उच्च अन्तःकरण से निकली हुई सद्भावनायें समस्त आकाश को, वातावरण को सत्मय बना देती हैं और उस वातावरण में पलने वाले सभी पदार्थ सत् से परिपूर्ण होते हैं। जिस वातावरण के कारण मनुष्य व्रत परायण, व्रतवान् होकर अविच्छिन्न जीवन वाला हो जाता है, वही इस दूसरी कण्डिका का तात्पर्य है।

धियो यो नः प्रचोदयादिति सावित्र्यास्तृतीयः पादः।

धियो योनः प्रचोदयात्- यह सावित्री का तीसरा पाद है।

दिवा साम समदधात् साम्नाऽऽदित्यम् , आदित्येन रश्मीन् रश्मिभिर्वर्षम् , वर्षेणौषधिवनस्पतीन् , ओषधि- वनस्पतिभिः पशून् , पशुभिः कर्म, कर्मणा तपः, तपसा सत्यम् सत्येन ब्रह्म, ब्रह्मणा ब्राह्मणम् , ब्राह्मणेन व्रतम्, व्रतेन वै ब्राह्मणः संशितो भवत्यशून्यो भवत्यविच्छिन्नो भवति। अविच्छिन्नोऽस्य तन्तुरविच्छिन्नं जीवनं भवति य एवं वेद , यश्चैवं विद्वानेवमेतं सावित्र्यास्तृतीयं पादं व्याचष्टे।

द्युलोक से साम को उत्पन्न करता है, साम से आदित्य को, आदित्य से रश्मियों को, रश्मियों से वर्षा को, वर्षा से ओषधि-वनस्पतियों को, ओषधि-वनस्पतियों से पशुओं को, पशुओं से कर्म को, कर्म से तप को, तप से सत्य को, सत्य से ब्रह्म को, ब्रह्म से ब्राह्मण को, ब्राह्मण से व्रत को । व्रत से ब्राह्मण तीक्ष्ण, पूर्ण और अविच्छिन्न वंश होता है । जो विद्वान् यह जानकर सावित्री के तृतीय पाद की व्याख्या करते हैं, वे अपने वंश एवं जीवन को अविच्छिन्न बनाते हैं ।

गायत्री का तीसरा पद 'स्वः' से आविर्भूत हुआ । 'स्वः' कहते हैं द्युलोक को । द्युलोक सामवेद से संयुक्त किया गया है । साम से आदित्य, आदित्य से रश्मियाँ, रश्मियों से वर्षा, वर्षा से ओषधि-वनस्पति, उनसे पशुओं का सम्बन्ध है । इनका प्रयोग करने से पूर्व कण्डिकाओं में वर्णित प्रकार से मनुष्य ब्रह्मचारी, व्रतधारी बनकर अविच्छिन्न जीवन और वंश वाला बन जाता है ।

गायत्री के तीन पादों में वह विज्ञान सन्निहित है, जिसके द्वारा मनुष्य को श्री, प्रतिष्ठा और ज्ञान की उपलब्धि होती है । तीन पाद वेदों से बने हैं । प्रत्येक पाद एक-एक लोकों का प्रतीक है । इन तीन लोकों से यह तीनों वेदों के मन्त्र आवश्यक सामग्री को खींचकर लाते हैं और गायत्री साधक को सब प्रकार से सुखी बना लेते हैं । इसके व्यक्तिगत लाभ ही नहीं, वरन् सामूहिक लाभ भी हैं । जैसे यज्ञ करने से वायु की शुद्धि, उत्तम वर्षा और उससे गुणकारी वनस्पति तथा दूध की उत्पत्ति होती है । वैसे ही गायत्री द्वारा भी वह प्रक्रिया होती है ।

ये सम्बद्ध शृंखलायें, अपने में एक बड़ा भारी पदार्थ-विज्ञान सम्बन्धी रहस्य छिपाये बैठी हैं । एक पदार्थ से दूसरे का सम्बन्ध किस प्रकार का है इसकी थोड़ी-सी विवेचना हमने आध्यात्मिक शैली से की है, परन्तु इसमें और भी विशद रहस्य मौजूद हैं, जिसके कारण गायत्री का साधक उन तीनों लाभों से- श्री, प्रतिष्ठा एवं ज्ञान से पर्याप्त मात्रा में लाभान्वित होता है और अन्त में ईश्वर की प्राप्ति करके अविच्छिन्न जीवन को प्राप्त करता है अर्थात् अमर हो जाता है, उसे जरा, मृत्यु के बन्धन में नहीं बँधना पड़ता । ऐसा है- इस त्रिपदा गायत्री का रहस्य !

तेन ह वा एवं विदुषा ब्राह्मणेन ब्रह्माभिपन्नं ग्रसितं परामृष्टम्।

सावित्री के तीन पाद जानने वाला ब्राह्मण, ब्रह्म प्राप्त (APPROCHED), ग्रसित (DIGESTED) और परामृष्ट (REALISWS) होता है ।

ब्रह्मणा आकाशमभिपन्नं, ग्रसितं परामृष्टम् , आकाशेन वायुरभिपन्नो ग्रसितः परामृष्टो, वायुना ज्योतिरभिपन्नं ग्रसितं परामृष्टम्। ज्योतिषापोऽभिपन्ना ग्रसिताः परामृष्टाः। अद्भिर्भूमिरभिपन्ना ग्रसिता परामृष्टा, भूम्यान्नमभिपन्नं ग्रसितं परामृष्टम्। अन्नेन प्राणोऽभिपन्नो ग्रसितः परामृष्टः। प्राणेन मनोऽभिपन्नं ग्रसितं परामृष्टम्। मनसा वागभिपन्ना ग्रसिता परामृष्टा। वाचा वेदा अभिपन्ना ग्रसिताः परामृष्टाः। वेदैर्यज्ञोऽभिपन्नो ग्रसितः परामृष्टः। तानि ह वा एतानि द्वादश महाभूतान्येवं विधि प्रतिष्ठितानि तेषां यज्ञ एव परार्ध्यः।

"ब्रह्म से आकाश प्राप्त, ग्रसित एवं परामृष्ट है । आकाश से वायु प्राप्त, ग्रसित तथा परामृष्ट है । वायु से ज्योति अभिपन्न, ग्रसित और परामृष्ट है । ज्योति से जल प्राप्त, ग्रसित और परामृष्ट है । जल से पृथ्वी प्राप्त, ग्रसित और परामृष्ट है । भूमि से अन्न अभिपन्न, ग्रसित और परामृष्ट है । अन्न से प्राण अभिपन्न, ग्रसित तथा परामृष्ट

है । प्राण से मन अभिपन्न, ग्रसित तथा परामृष्ट है । मन से वाक् अभिपन्न, ग्रसित तथा परामृष्ट है । वाक् से वेद अभिपन्न, ग्रसित एवं परामृष्ट है । वेद से यज्ञ प्राप्त, ग्रसित एवं परामृष्ट है । इस प्रकार का ज्ञान रखने वालों में ये बारह महाभूत प्रतिष्ठित रहते हैं । इसमें यज्ञ ही सर्वश्रेष्ठ है ।"

पिछली तीन कण्डिकाओं में वर्णित गायत्री के तीन पादों के रहस्यों को जो भली प्रकार जानता है, उस ब्राह्मण से ब्रह्म प्राप्त, ग्रसित और परामृष्ट होता है अर्थात् वह ब्राह्मण ब्रह्म को प्राप्त करता है, प्राप्त करके उसे अपने में पचाता है और उससे परामृष्ट- आच्छादित होता है । उसके भीतर- बाहर सब ओर ब्रह्म की सत्ता काम करती है ।

अब १२ ऐसी कड़ियाँ बतायी जाती हैं, जिन पर विचार करने से यह प्रकट हो जाता है कि पञ्चभूत, अन्तःकरण चतुष्टय, वेद और यज्ञ सब का मूल केवल ब्रह्म है । ब्रह्म से ही एक कड़ी के बाद दूसरी कड़ी की तरह यह सब जुड़े हुए हैं, उसी से ओत-प्रोत हैं ।

बताया गया है कि ब्रह्म से आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथ्वी, पृथ्वी से अन्न, अन्न से प्राण, प्राण से मन, मन से वाक्, वाक् से वेद और वेद से यज्ञ प्राप्त होता है, ग्रसित किया जाता है, आच्छादित होता है ।

ब्रह्म, प्रत्यक्ष रूप से आँखों से दिखाई नहीं पड़ता । स्वल्प ज्ञान वाले मनुष्य समझते हैं कि पञ्चभूतों का यह पुतला ही सब कुछ करता है । उन्हें यह बताया गया है कि पञ्चभूत और तुम्हारे अन्दर काम करने वाली मन, बुद्धि आदि की चैतन्यता ब्रह्म से पृथक् नहीं है वरन् उसी से आच्छादित है । यदि ब्रह्म का आच्छादन इन पर न हो, तो इनकी क्रियाशीलता समाप्त हो जाए और कोई तत्त्व कुछ भी काम करने में समर्थ न हो सके ।

जो प्रकृति में, पञ्चभूतों में, शरीर में ब्रह्म को, परमात्मा को समाया हुआ देखता है, वह ब्राह्मण कहलाता है । वह वेद और यज्ञ से घिरा होता है अर्थात् सद्ज्ञान और सत्कर्म उसके कण-कण में व्याप्त होते हैं । इन सब ज्ञानों में यज्ञ ही, सत्कर्म ही सर्वोत्तम है, क्योंकि इस ज्ञान का तात्पर्य ही यह है कि मनुष्य सत्कर्म में लगे । जिसे यह सब रहस्य मालूम है, उसमें सब भूत प्रतिष्ठित रहते हैं अर्थात् समस्त सृष्टि-विस्तार को वह अपने भीतर ही समझता है ।

तं ह स्मैतमेवं विद्वांसो मन्यन्ते विद्मैनमिति याथातथ्यमविद्वांसः ।

जो विद्वान् यह समझ लेते हैं कि हम इस यज्ञ के जानकार हो गये हैं, वे ही इसे नहीं जानते ।

अयं यज्ञो वेदेषु प्रतिष्ठितः । वेदा वाचि प्रतिष्ठिताः ।
वाङ् मनसि प्रतिष्ठिता । मनः प्राणे प्रतिष्ठितम् ।
प्राणोऽन्ने प्रतिष्ठितः । अन्नं भूमौ प्रतिष्ठितम् ।
भूमिरप्सु प्रतिष्ठिता । आपो ज्योतिषि प्रतिष्ठिता ।
ज्योतिर्वायौ प्रतिष्ठितम् । वायुराकाशे प्रतिष्ठितः ।
आकाशं ब्रह्मणि प्रतिष्ठितम् । ब्रह्म ब्राह्मणे ब्रह्मविदि प्रतिष्ठितम् ।

यो ह वा एवं-वित् स ब्रह्मवित्पुण्यां च कीर्तिं लभते सुरभींश्च गन्धान् । सोऽपहतपाप्मानन्तां श्रियमश्नुते य एवं वेद , यश्चैवं विद्वानेवमेतां वेदानां मातरं सावित्री- सम्पदमुपनिषदमुपास्त इति ब्राह्मणम् ॥

- गो० १/३८

यह यज्ञ वेद से प्रतिष्ठित है । वेद वाक् में प्रतिष्ठित हैं । वाक् मन में प्रतिष्ठित है । मन प्राण में प्रतिष्ठित है । प्राण अन्न में प्रतिष्ठित है । अन्न भूमि में प्रतिष्ठित है । भूमि जल में प्रतिष्ठित है । जल तेज पर प्रतिष्ठित है । आकाश ब्रह्म पर प्रतिष्ठित है । ब्रह्म ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण पर प्रतिष्ठित है । इस प्रकार जानने वाला ब्रह्मज्ञानी पुण्य एवं कीर्ति को प्राप्त करता है तथा सुरभित गन्धों को पाता है ।वह व्यक्ति पापहीन होकर अनन्त ऐश्वर्य को प्राप्त होता है ।

पिछली कण्डिका में यज्ञ को सर्वोत्तम बताया है, परन्तु यह ध्यान रखना चाहिये कि जो यह कहते हैं कि हम यज्ञ को जानते हैं, वे उसे नहीं जानते । कारणं यह है कि दूसरे आदमी किसी कार्य के बाह्यरूप को देखकर ही उनके भले-बुरे होने का अनुमान लगाते हैं, परन्तु यथार्थ में काम के बाहरी रूप से यज्ञ का कोई सम्बन्ध नहीं, वह तो आन्तरिक भावना पर निर्भर होता है । यह हो सकता है कि कोई व्यक्ति बड़े-बड़े दान, पुण्य, होम, अग्नि होत्र, ब्रह्म-भोज, तीर्थयात्रा आदि करता हो, पर उसमें उसका उद्‌देश्य यश लूटना या कोई और लाभ उठाना हो । इसी प्रकार डाक्टर के आपरेशन करने के समान ऐसे कार्य भी हो सकते हैं, जो देखने में पाप प्रतीत होते हैं, परन्तु कर्त्ता की सद्‌भावना के कारण वे श्रेष्ठ कर्म हों । इसलिये कौन आदमी यज्ञ कर रहा है या नहीं, इसका निर्णय उन व्यक्तियों की अंतरात्मा ही कर सकती है । बाहर के आदमी के लिये बहुत अंशों में उसका जानना सम्भव होने पर भी पूर्ण रूप से शक्य नहीं है ।

पिछली कण्डिका में जिन बारह कड़ियों को एक ओर से गिनाया था, इस कण्डिका में उन्हें दूसरी ओर से गिनाया गया है अर्थात् क्रम उल्टा कर दिया-

यह यज्ञ वेदों में, वाक् मन में, मन प्राण में, प्राण अन्न में, अन्न भूमि में, भूमि जल में, जल तेज में, तेज वायु में, वायु आकाश में, आकाश ब्रह्म में और ब्रह्म ब्राह्मण में प्रतिष्ठित है । इस प्रकार इस शृंखला का एक सिरा ब्राह्मण है, तो दूसरा यज्ञ । एक सिरा यज्ञ है, तो दूसरा ब्राह्मण । दूसरी तरह से इसी को यों कह लीजिये कि जो सद्ज्ञान और सत्कर्म से ओत-प्रोत है, वही ब्राह्मण है ।

जो इस प्रकार से जानता है, जो ब्रह्मज्ञानी है, वह सुगन्ध की तरह उड़ने वाली पुण्यमयी कीर्ति को प्राप्त करता है । वह निष्पाप हो जाने से अनन्त ऐश्वर्यों को भोगता है । वह ज्ञान का उपासक बनकर, इस वेदमाता गायत्री के उपनिषद् का उपासक बनता है अर्थात् इस उपनिषद् में वर्णित महान् ब्रह्मज्ञान को अपने अन्तःकरण में धारण करके उससे अपना जीवन ओत-प्रोत बनाता है । ऐसा व्यक्ति ही ब्राह्मण है, ऐसा शास्त्रों का अभिवचन है ।

गायत्री रामायण

यह प्रसिद्ध है कि वाल्मीकि रामायण की रचना का मूल आधार गायत्री मन्त्र है । गायत्री मन्त्र की व्याख्या के रूप में इस महान् ग्रन्थ की रचना हुई है ।

वाल्मीकि रामायण में २४ हजार श्लोक हैं । एक-एक अक्षर की व्याख्या स्वरूप एक-एक हजार श्लोक रचे हैं अथवा यों कहा जा सकता है कि एक-एक हजार श्लोकों के ऊपर गायत्री के एक-एक अक्षर का सम्पुट दिया गया है ।

आजकल वाल्मीकि रामायण के जो संस्करण मिलत हैं, उनमें श्लोकों की संख्या समान नहीं है और उनमें काफी अन्तर पाया जाता है । इससे प्रतीत होता है कि बीच के अन्धकार युग में, यवन काल में कितने ही श्लोक नष्ट-भ्रष्ट हो गये होंगे । अन्य ग्रन्थों की भाँति साम्प्रदायिक उतार-चढ़ाव के जोश में सम्भव है, वाल्मीकि रामायण में भी कुछ श्लोक जोड़े गये हों या निकाले गये हों । रामचन्द्रजी द्वारा मांस का प्रयोग होना ऐसी ही निषिद्ध बात है, जो किसी ने पीछे से जोड़ दी मालूम होती है, अन्यथा विश्वास नहीं होता कि भगवान् रामचन्द्र जब कि वनवास में यती बनकर रह रहे थे, लक्ष्मण से मांस पकवाते और फिर सीता-लक्ष्मण समेत उसे खाते ।

इस प्रकार की गड़बड़ी में श्लोक संख्या का क्रम भी बिगड़ गया है । प्रति एक हजार श्लोकों के बाद गायत्री के एक अक्षर का सम्पुट देकर महर्षि वाल्मीकि ने अपने ग्रन्थ में मिलावट रोकना चाहा था, पर न हो सका । आज हमें अव्यवस्थित क्रमों वाली पुस्तकें ही प्राप्त होती हैं । हिसाब लगाकर देखा गया, तो कहीं-कहीं तो केवल ४-६ श्लोकों का ही आगा-पीछा है, पर कहीं यह अन्तर सैकड़ों तक पहुँचा है ।

इतना होने पर भी प्रति सहस्र पर गायत्री का एक अक्षर होने के इस क्रम को आकस्मिक नहीं कहा जा सकता, क्योंकि अन्य किसी मन्त्र का ऐसा सम्पुट प्राप्त नहीं होता । अनजान में ऐसा सम्पुट नहीं लग सकता । महर्षि वाल्मीकि ने इसे बहुत समझकर लगाया है ।

इस गायत्री सम्पुट के न जाने कितने रहस्य और कारण होंगे। उन सबका जानना तो आज कठिन है, परन्तु उन सम्पुट वाले श्लोकों पर दृष्टिपात किया जाए, तो वे बड़े महत्त्वपूर्ण प्रतीत होते हैं। वैसे उनमें अधिकांश श्लोक घटनात्मक हैं। किसी घटना या वार्तालाप का ही परिचय मिलता दीखता है, तो भी गम्भीर दृष्टि डाली जाए, तो प्रतीत होता है कि उसमें संकेत रूप से एक बड़ी महत्त्वपूर्ण शिक्षा भरी हुई है।जिस शिक्षा पर ठीक प्रकार से अमल किया जाए, तो मनुष्य का जीवन असाधारण विशेषताओं से परिपूर्ण हो सकता है।

इन २४ अक्षरों के आरम्भ वाले २४ श्लोकों को 'गायत्री रामायण' कहा जाता है। इन श्लोकों के गर्भ में संकेत रूप में छिपे हुए मर्मों को समझकर, उन्हें हृदयंगम करने वाला मनुष्य, सम्पूर्ण वाल्मीकि रामायण के लाभ प्राप्त कर सकता है। आगे उन गायत्री के २४ अक्षरों से आरंभ होने वाले श्लोकों की विवेचना करते हैं।

१-तपः स्वाध्याय निरतं तपस्वी वाग्विदां वरम्।
नारदं परिपप्रच्छ वाल्मीकिर्मुनिपुंगवम्।। - वा० रा० बालकाण्ड १/१

अर्थ- तप और स्वाध्याय करने वाले सर्व प्रधान और मुनियों में श्रेष्ठ नारदजी से तपस्वी वाल्मीकि ने पूछा-

इस श्लोक में दो पहेलियों पर प्रकाश डाला गया है। नारदजी को दो पदवी दी हैं और उन पदवियों का कारण भी बताया है। नारद जी को सर्वप्रधान विद्वान् और मुनियों में श्रेष्ठ कहा है। सर्वप्रधान विद्वान् उन्हें क्यों कहा गया है? क्या नारद जी ने व्यास की तरह अठारह पुराण लिखे थे या उन्होंने कोई और ऐसी विशेषता दिखाई थी, जो अन्य विद्वानों में नहीं होती? यदि ऐसा नहीं है, तो उन्हें सर्वश्रेष्ठ विद्वान् क्यों कहा गया? या फिर वाल्मीकि जी झूठे थे, जिन्होंने नारदजी की अत्युक्तिपूर्ण प्रशंसा की?

इसी श्लोक में वह कारण भी स्पष्ट कर दिया है, जिसके कारण उन्हें सर्वश्रेष्ठ विद्वान् बताया गया है। वह कारण है- शास्त्र का चिंतन। पोथी पढ़ने वाले 'पड्ढू' तो एक से एक बढ़िया पड़े हैं, जिनकी जिन्दगियाँ पोथी पढ़ने में बीत गयीं। हजारों-लाखों पुस्तकें जिनने पढ़ डालीं, क्या ऐसे लोगों को सर्वश्रेष्ठ विद्वान् कह दिया जाए? नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। पोथी पढ़ने का व्यसन, किसी की जानकारी को तो बढ़ा सकता है, पर उससे कोई आत्मिक लाभ नहीं हो सकता। व्यक्ति भले ही शास्त्र को थोड़ा पढ़ता हो, पर उसका चिन्तन करता रहे। शास्त्र के अर्थ पर, आदेश पर, मर्म पर, महत्त्व पर गम्भीरता से मनन करना, अपनी आत्मा का अध्ययन करना, आत्म-मन्थन से जो नवनीत निकलता हो, उसे पचाकर आत्मसात् कर लेना यही स्वाध्याय का तथ्य है। जो इस प्रकार शास्त्र-सेवन करता है, वही विद्वानों में सर्वश्रेष्ठ है। इसलिये नारदजी को विद्वानों में सर्वश्रेष्ठ कहा।

दूसरी पदवी उन्हें मुनियों में श्रेष्ठ की दी गयी, ऐसा क्यों हुआ? इसका उत्तर भी साथ ही मौजूद है, वह है 'तप'। मनन करने वालों को मुनि कहते हैं। ऐसे अनेक हैं, जो सत्तत्त्व का मनन करते हैं, पर इतने मात्र से काम नहीं चलता। जिसमें आदर्श के लिये घोर प्रयत्न करने की लगन है और उस प्रयत्न के लिये बड़े से बड़ा कष्ट सहने का साहस है, वही तपस्वी, मुनियों में श्रेष्ठ है। नारद जी घड़ी भर चैन किये बिना अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये यहाँ-वहाँ भ्रमण करते फिरते थे, लोक सेवा के लिये उन्होंने सारा जीवन ही उत्सर्ग कर रखा था।

इस श्लोक में नारदजी को माध्यम बनाकर तप और स्वाध्याय की सर्वश्रेष्ठता वर्णन की है। गायत्री रामायण का पहला श्लोक हमें तपस्वी और स्वाध्यायशील होने का सदुपदेश देता है।

२- स हत्वा राक्षसान् सर्वान् यज्ञघ्नान् रघुनन्दनः।
ऋषिभिः पूजितस्तत्र यथेन्द्रो विजये पुरा।। - वा० रा० बालकाण्ड ३०/२४

अर्थ- "यज्ञ नष्ट करने वाले समस्त राक्षसों को रामचन्द्र जी ने मारा। ऋषियों ने उनकी इसी प्रकार पूजा की, जिस प्रकार पहले असुर-विजय करने पर इन्द्र की हुई थी।"

इस दूसरे श्लोक में तीन तथ्य हैं (१) यज्ञ नष्ट करने वालों को राक्षस मानना (२) राक्षसों को मारना (३) राक्षसों को मारने के लिये विवेकशीलों द्वारा प्रोत्साहित किया जाना।

भले कामों में जो लोग बाधा अटकाते हैं, जनता की सुख-शान्ति में विघ्न उपस्थित करते हैं, पुण्य की प्रथा को रोक पाप की प्रणाली चलाते हैं- ऐसे लोक-कण्टक मनुष्य राक्षस हैं, जनता के शत्रु हैं ऐसे लोगों के प्रति घृणा

के भाव जाग्रत् रखना आवश्यक है , अन्यथा वे हमारी उपेक्षा, लापरवाही तथा आँख चुराने की मनोवृत्ति देखकर निर्भय हो जायेंगे और दूने उत्साह से अपना काम करेंगे । इसलिये समाज-विरोधी, देश-द्रोही, लोक-कण्टक लोगों पर हमारी तीव्र दृष्टि रहनी आवश्यक है । उनकी करतूतों से सावधान रहें, दूसरों को सावधान रखें और उनके विपक्ष में घृणा का वातावरण तैयार करते रहें, जिससे वे राक्षसी-वृत्तियों में निर्भय होकर बढ़ने से ठिठकें ।

ऐसे लोगों के लिये दूसरा उपाय है- उनका दमन । जहाँ व्यक्तिगत रूप से निपट लेने की अनिवार्य आवश्यकता है, वहाँ तो दूसरी बात है, पर अन्य असाधारण अवसरों पर राज्य द्वारा ऐसे लोगों को दण्ड दिलवाना चाहिये । विदेशी शासन चले जाने पर, अब सरकार ही जनता का प्रतिनिधित्व करती है । इसलिये दण्ड देने का कार्य जनता की सामूहिक दण्ड-शक्ति-सरकार द्वारा उन्हें कुचलवाना चाहिये । ऋषियों ने राक्षसों को स्वयं नहीं मारा था । विश्वामित्र जी, राम और लक्ष्मण राज-पुत्रों को लाये थे और उन्हें धनुष विद्या सिखाकर राक्षसों को मरवाया था । चाहते तो विश्वामित्र भी राक्षसों को मार सकते थे, पर प्रजा द्वारा, प्रजा को दण्ड दिया जाना उचित न समझकर उन्होंने इसके लिये राज्याश्रय को प्राप्त किया । हमें भी दुष्टों के दमन के लिये अपनी राज्य-शक्ति का ही प्रयोग करना चाहिये ।

तीसरी बात यह है- ऋषियों द्वारा राजशक्ति की पूजा । दुष्टों से लड़ने वाली शक्तियों के साथ हमारी पूरी-पूरी सहानुभूति होनी चाहिये । यह हो सकता है कि हमें किसी से , किसी कारणवश विरोध हो, कोई असन्तोष या द्वेष हो, पर जब राक्षसत्व के दमन का अवसर आए, तो उस विरोधी का भी पूरा-पूरा समर्थन और सहयोग करके असुरत्व को परास्त करना चाहिये । सैद्धान्तिक या व्यक्तिगत विरोध का ऐसे अवसरों पर जरा भी ध्यान नहीं करना चाहिये । वीर-पूजा की प्रथा प्राचीन है । इन्द्र आदि की भी पूजा उनके असुर-विजय के कारण होती है । विघ्नों से, कण्टकों से और असुरता के साथ जो लड़ते हैं, वे हमारी प्रशंसा, प्रोत्साहन एवं सहयोग के अधिकारी हैं ।

३- विश्वामित्रः सरामस्तु श्रुत्वा जनक-भाषितम् ।
वत्स राम धनुः पश्य इति राघवमब्रवीत् ॥ - वा० रा० बालकाण्ड ६७/१२

अर्थ- "राम के साथ विश्वामित्र ने जनक की बातें सुनीं और रामचन्द्र से कहा-वत्स ! धनुष को देखो ।"

"इस कठिन काम को अनेक लोग पूरा नहीं कर सके, इसलिये यह मुझसे भी पूरा नहीं होगा ।" इस प्रकार के अपडर से अनेकों सुयोग्य व्यक्ति अपनी प्रतिभा को कुण्ठित कर लेते हैं और हीनता की ग्रन्थि से ग्रथित हो जाते हैं, ऐसा होना उचित नहीं । कई बार ऐसा देखा गया है कि जो काम बड़े लोगों के लिये कठिन था, वह छोटों ने पूरा कर दिखाया । जनक का धनुष "भूप सहस दस एकहि बारा । लगे उठावन टरहि न टारा ॥" के अनुसार बड़ा भारी कार्य बना हुआ था । विश्वामित्र जानते थे कि वह झिझक राम को भी आ सकती है और उससे डर जायें, तो आधा काम विफल हो सकता है । इसलिये उन्होंने उत्साह प्रदान करते हुए कहा- वत्स राम ! इस धनुष को देखो ।

जो कठिनाइयाँ हमारे सामने आती हैं, उनकी कल्पना बड़ी डरावनी होती है । ऐसा मालूम देता है कि वह विपत्ति न जाने हमारा क्या कर डालेगी, परन्तु जब मनुष्य साहस बाँध कर उसका मुकाबला करने खड़ा हो जाता है, तो विघ्न ऐसे सरल हो जाते हैं जैसे कि राम के लिये धनुष सरल हो गया था । उर्दू की कहावत है, "हिम्मते मरदां मददे खुदा" जो साहस वाले मर्द होते हैं, उनकी ईश्वर सहायता करता है । कठिनाइयों को देखकर हमें झिझकना, डरना या घबराना नहीं चाहिये वरन् दृढ़तापूर्वक उनको हल करने के लिए अग्रसर होना चाहिये । यही इस श्लोक का तात्पर्य है ।

४- तुष्टावास्य तदा वंशं प्रविश्य स विशांपतेः ।
शयनीयं नरेन्द्रस्य तदासाद्य व्यतिष्ठत ॥ -वा० रा० अयोध्याकाण्ड १५/१९-२०

अर्थ- "राजा के शयनागार तक वे (सुमन्त) चले गये ।वहाँ उनके वंश की प्रशसा की ।"

प्रशंसा एक ऐसा उपाय है, जिसके द्वारा उस स्थान तक आसानी से पहुँचा जा सकता है, जहाँ पहुँचना

साधारणतः कठिन होता है। राजा के शयनागार में हर किसी का प्रवेश नहीं होता, पर सुमन्त वहाँ भी पहुँच गये। उन्होंने उनके वंश की-अहंभाव के विचार की प्रशंसा की।

अहंपोषण और काम-सेवन संसार के यह दो प्रमुख विलास हैं। मन:क्षेत्र का सबसे प्रिय विलास प्रशंसा है। अपनी प्रशंसा सुन कर सब कोई मोहित हो जाते हैं। सर्प और मृग संगीत की ध्वनि पर मुग्ध हो जाते हैं, मनुष्य के लिये सबसे मधुर संगीत उसकी आत्म प्रशंसा है।

इस श्लोक में प्रशंसा के महत्त्व का वर्णन है। यह एक शस्त्र है, जिसके उपयोग द्वारा बुरे और भले दोनों प्रकार के परिणाम निकल सकते हैं। खुशामदी, चालाक, धूर्त, ठग लोग अनुचित प्रशंसा करके दूसरों के गर्व को फुलाते हैं, अपना उल्लू सीधा करते हैं। अनुचित प्रशंसा से फूलने वाले की आदत बिगड़ती है। उसे ऐसा भ्रम होता है, मानो मैं वैसा ही हूँ। अपनी त्रुटियाँ दिखाई नहीं पड़तीं और अच्छाइयाँ अनुचित रूप से बढ़ी-चढ़ी दिखाई देती हैं, इससे उसका मस्तिष्क अज्ञानग्रस्त एवं भ्रान्त हो जाता है। फलस्वरूप उसके कार्य भी बेढंगे होते हैं। राजाओं, ताल्लुकेदारों, अमीरों, अफसरों आदि में इस प्रकार के खुशामद से उत्पन्न होने वाले अनेक विकार पाये जाते हैं। परन्तु यदि प्रशंसा का सदुपयोग किया जाए, उचित रीति से, किसी का उत्साह-वर्द्धन किया जाए, उसके वास्तविक गुणों को अच्छे रूप में सामने रखकर, उन्हें और अधिक बढ़ाने की शुभकामना की जाए, तो इससे उसका उत्साह और आत्मबल बढ़ता है, प्रशंसा की रक्षा के लिये वह बुराई से बचता है। सफेद कपड़े वाला मनुष्य बहुत सँभल कर बैठता-उठता है, कपड़े मैले न हो जाएँ इसका बहुत ध्यान रखता है, पर जो मैले कपड़े पहने है, उसे इस प्रकार का कोई संकोच नहीं होता। प्रशंसा स्वच्छ चादर है और निन्दा चिथड़ा। हमें अपने हर परिचित को सफेद कपड़े पहनाने चाहिये, जिससे वह लोक-जीवन में सावधानी और सुरुचि सीखे।

५- वनवासं हि संख्याय वासांस्याभरणानि च।
भर्तारमनुगच्छन्त्यै सीतायै श्वसुरो ददौ॥ - वा० रा० अयोध्याकाण्ड ४०/१४

अर्थ- "वनवास के दिनों को गिनकर, पति के साथ जाने वाली सीता को, श्वसुर ने वस्त्र-आभूषण दिये।"

भविष्य में आने वाली कठिनाइयों को ध्यान में रखकर, उनके लिये समुचित तैयारी करना- यह इस श्लोक का रहस्य है। पूर्व कर्मों के फलस्वरूप आज हमें अच्छी परिस्थिति प्राप्त है, पर यदि अब कोई अच्छी तैयारी न की गयी, तो भविष्य अन्धकारमय है। बुद्धिमान् मनुष्य भविष्य की चिन्ता करते हैं, आगामी जीवन सुख-शान्ति एवं आनन्द-उल्लास के साथ बीते, इसके लिये वे शुभ कर्म करके अधिकाधिक पुण्य-संचय करते हैं। ऐसा ही हमें भी करना चाहिये।

६-राजा सत्यं च धर्मश्च राजा कुलवतां कुलम्।
राजा माता-पिता चैव राजा हितकरो नृणाम्। - वा० रा० अयोध्याकाण्ड ६७/३४

अर्थ- "राजा सत्य है, धर्म है, कुलवानों का कुल है, माता-पिता के तुल्य है और मनुष्यों का हितकारी है।"

राजा के द्वारा, प्रजा के हित के लिये सत्य के आधार पर चलने वाले राज्य को सुराज्य और इसके भिन्न प्रकार के राज्य को कुराज्य कहते हैं। इस श्लोक में सुराज्य की प्रशंसा की गयी है, उसकी श्रेष्ठता बताकर सुराज्य द्वारा निर्धारित नियमों का पालन करने का प्रोत्साहन है। प्रत्येक सभ्य नागरिक का कर्तव्य यह है कि समाज हित के राज्य-नियमों का ईश्वर की- धर्म की आज्ञाओं के समान आदर करे और उनका पालन करे। राज्य-भक्ति का तात्पर्य है- देश- भक्ति, समाज- भक्ति। इस देश-भक्ति एवं समाज-भक्ति के लिये यह श्लोक प्रेरणा देता है।

७-निरीक्ष्य स मुहूर्तं तु ददर्श भरतो गुरुम्।
उटजे राममासीनं जटामण्डलधारिणम्॥ - वा० रा० अयोध्याकाण्ड ९९/२५

अर्थ- "भरत ने उसी क्षण, जटाधारी राम को उस कुटीर में बैठा देखा।"

ईश्वर का ऐश्वर्य, बड़े वैभवशाली भवनों, खजानों और भण्डारों में मौजूद है, वैभव वाला ईश्वर, प्रत्येक

वैभववान् पदार्थ में हमें झिलमिलाता हुआ दिखाई पड़ता है। परन्तु यदि ईश्वर के सतोगुणी स्वरूप का-ब्रह्म का-जटाधारी त्याग-मूर्ति राम का दर्शन करना हो, तो वह कुटीर में ही मिलेगा।

महात्मा गाँधी दरिद्र जनता को दरिद्र नारायण कहा करते थे। उन्हें ईश्वर की सर्वोत्तम झाँकी दरिद्रों में होती थी और दीनों के झोपड़े, उन्हें ईश्वर के सर्वश्रेष्ठ मन्दिर दृष्टिगोचर होते थे। कुटिया सादगी, अपरिग्रह एवं त्यागवृत्ति का प्रतिनिधित्व करती है। जहाँ यह गुण है, वहाँ जटाधारी राम, सत् शक्तियों से आच्छादित ब्रह्म के दर्शन हो सकते हैं। यह दर्शन उन्हें होंगे, जो भरत के समान, निर्मल एवं सरल अन्तःकरण वाले हैं। इस श्लोक में ईश्वर की श्रेष्ठ झाँकी किस प्रकार हो सकती है, इस गुत्थी को सुलझाते हुए कुटिया, जटाधारी राम और भरत इन तीन तत्त्वों का उल्लेख किया है। विवेकवान् व्यक्ति अपने दृष्टिकोण को भरत-सा, अपने अन्तःकरण को सरलतामयी कुटिया-सा बना ले, तब उसे जटाधारी राम के दर्शन होंगे। मुकुटधारी राम तो अन्यत्र भी देखे जा सकते हैं, उनकी झाँकी तो अयोध्या के महलों में भी होती थी, पर जटाधारी राम का घर तो कुटिया ही है।

८-यदि बुद्धिः कृता द्रष्टुमगस्त्यं तं महामुनिम्।
अद्यैव गमने बुद्धिं रोचयस्व महामते॥ - वा० रा० अरण्यकाण्ड ११/४३

अर्थ- "हे महामति ! यदि तुमको अगस्त्य के दर्शन की इच्छा है, तो आज ही जाने की सोचो।"

अगस्त्य कहते हैं कल्याण को। जो महामति, कल्याण के दर्शन करना चाहता है, आत्म-साक्षात्कार करना चाहता है, अर्थात् किसी भी प्रकार की भौतिक-मानसिक सफलता चाहता है, तो उसे चाहिये कि उद्देश्य की पूर्ति के लिये आज से ही प्रयत्न प्रारम्भ करे। कल के लिये टालते रहने से कोई बात पूर्ण नहीं हो सकती, क्योंकि कल कभी आता नहीं।

वर्तमान सबसे मूल्यवान् समय है। जो बीत चुका वह वापस नहीं आ सकता, उसके लिये चिन्ता- शोक करने से कुछ लाभ नहीं। जीवन की बहुमूल्य पूँजी वे घड़ियाँ हैं, जिन्हें वर्तमान कहते हैं। समय का सदुपयोग यही है कि वर्तमान की एक-एक घड़ी का उत्तम से उत्तम उपयोग किया जाए। जो करना अभीष्ट है, उसके लिये विलम्ब न लगा कर, समय को बर्बाद न करके, वर्तमान में ही उसके लिये प्रयत्न आरम्भ कर देना चाहिये, यही इस श्लोक का आशय है।

९- भरतस्यार्यपुत्रस्य श्वश्रूणां मम च प्रभो।
मृगरूपमिदं दिव्यं विस्मयं जनयिष्यति॥ - वा० रा० अरण्यकाण्ड ४३/१८

अर्थ- "भरत को, आपको और मेरी सासों को यह दिव्य मृगरूपी खिलौना विस्मित करेगा, यदि वह जीवित न पकड़ा जा सके, तो भी इसका चर्म बड़ा ही सुन्दर होगा।"

सब लोगों को प्रसन्नता देने वाले सुन्दर पदार्थ यदि पूर्ण मात्रा में प्राप्त न हो सकें, तो उनको कम मात्रा में ही प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिये। सद्गुण अपने में जितनी अधिक मात्रा में हों उतने अच्छे। पूर्ण हों तो सबसे अच्छे, पर यदि पूर्णता प्राप्त न हो सके तो भी, जितनी कुछ न्यूनाधिक मात्रा में उनका प्राप्त होना सम्भव हो, उसके लिये भी प्रयत्न करना चाहिये। यदि पूर्ण सत्यवादी, पूर्ण निष्पाप, पूर्ण सदाचारी न बन सके, तो हिम्मत हार बैठने की अपेक्षा यही अच्छा है कि जितनी भी, थोड़ी-बहुत सफलता प्राप्त की जा सके, उसके लिये प्रयत्न बराबर जारी रखा जाए।

शिल्प, संगीत, कला-कौशल, व्यायाम, भाषण, वक्तृता, अन्य भाषाओं का ज्ञान आदि जितने कुछ अंशों में प्राप्त हो सके, उसके लिये प्रयत्नशील रहना चाहिये। 'पूरा या कुछ नहीं' की दुराग्रह भरी नीति के स्थान पर 'जितना मिले उसे लो और अधिक के लिये कोशिश करो' की नीति अपनाने की शिक्षा इस श्लोक में है। **'सर्वनाशे समुत्पन्ने अर्धं त्यजति पण्डितः'** का भावार्थ यही है।

१०-गच्छ शीघ्रमितो वीर सुग्रीवं तं महाबलम्।
वयस्यं तं कुरु क्षिप्रमितो गत्वाऽद्य राघव॥ - वा० रा० अरण्यकाण्ड ७२/१७

अर्थ- " हे राघव ! तुम यहाँ से शीघ्र महाबली सुग्रीव के पास जाओ और आज ही उसे अपना मित्र बनाओ ।"

बलवान् को अपना मित्र बनाने में देर न करने की शिक्षा यहाँ दी गयी है । लोक-व्यवहार के लिये बल का, बलवान् का सहारा एक बड़ी चीज है, उससे बड़ी-बड़ी कठिनाइयों का हल होता है और उन्नति के अनेक द्वार खुल जाते हैं । संगति की महिमा प्रसिद्ध है, जो अपने से बलवान् है उसकी समीपता से (मैत्री से) अपनी बल-वृद्धि होना स्वाभाविक है । आध्यात्मिक क्षेत्र में भी यही बात है, जीवात्मा अपने से बलवान् दैवी शक्तियों से मैत्री स्थापित करके दैवी लाभों को प्राप्त करता है । जिसे जिस क्षेत्र में लाभान्वित होना हो, उसे उसी क्षेत्र में अपने से बलवान् शक्तियों के साथ शीघ्र ही मैत्री स्थापित करनी चाहिये ।

११- देशकालौ भजस्वाद्य क्षममाणः प्रियाप्रिये ।

सुख-दुःखसहः काले सुग्रीववशगो भव ।। - वा० रा० किष्किन्धाकाण्ड २२/२०

अर्थ- "देश काल को समझो । प्रिय-अप्रिय को तथा सुख-दु:ख को सहकर सुग्रीव के अधीन रहो ।"

मनुष्य जैसी स्थिति चाहता है, जैसी कामनायें और इच्छायें करता है, वैसी उसे प्राप्त हो जाएँ, यह आवश्यक नहीं । देश-काल की विचित्रता के कारण, प्रारब्ध के कारण कभी-कभी मनुष्य को ऐसी परिस्थितियों में रहना पड़ता है, जो असुविधाजनक एवं कष्टकारक होती हैं । ऐसी स्थिति को धैर्यपूर्वक सहन करते हुए, उससे मुक्त होने का प्रयत्न करना चाहिये । प्रिय-अप्रिय में, सुख-दुःख में मनुष्य को विचलित नहीं होना चाहिये , वरन् मन को एकरस कर अपनी मानसिक स्वस्थता का परिचय देना चाहिये ।

१२- वन्दितव्यास्ततः सिद्धास्तपसा वीतकल्मषाः ।

प्रष्टव्या चापि सीतायाः प्रवृत्तिर्विनयान्वितैः ।।- वा०रा० किष्किन्धाकाण्ड ४३/३२, ३३

"अर्थ- निष्पाप, सिद्ध, तपस्वियों को प्रणाम करना और उनसे विनयपूर्वक सीता का पता पूछना ।"

आत्म-ज्ञान की शिक्षा हर किसी से ग्रहण नहीं करनी चाहिये । गुरु चाहे जिसे नहीं बनाना चाहिये, वरन् पहले यह देख लेना चाहिये कि आत्म-ज्ञान का शिक्षक तीन गुणों से सम्पन्न है या नहीं ? (१) निष्पाप, (२) अनुभवी एवं सफलता प्राप्त, (३) तपस्वी । जिसमें यह तीन गुण हों, वे आध्यात्मिक शिक्षा देने के अधिकारी हो सकते हैं । पापात्मा, अनुभवहीन तथा भोग-परायण व्यक्ति चाहे कितने ही चतुर वक्ता एवं पण्डित क्यों न हों, उनके द्वारा शिक्षा ग्रहण करने में पथ-भ्रष्ट किये जाने का, ठगे जाने का खतरा रहता है ।

विश्वसनीय पथ-प्रदर्शक प्राप्त होने पर, उन्हें प्रणाम करके विनयपूर्वक प्रश्न करना चाहिये । इस प्रकार उचित जिज्ञासा के साथ शिष्टाचार और शिष्य भाव से पूछे जाने पर अधिकारी गुरु उचित पथ-प्रदर्शन करते हैं । इस श्लोक में आत्म-ज्ञानी गुरु के लक्षण और शिष्य की पूछने की शैली का आधार बताया गया है ।

१३- स निर्जित्य पुरीं लंकां श्रेष्ठां तां कामरूपिणीम् ।

विक्रमेण महातेजा हनूमान् कपिसत्तमः ।। - वा० रा० सुन्दरकाण्ड ४/१

अर्थ- "कपिश्रेष्ठ महातेजस्वी हनुमान् ने पराक्रम से कामरूपिणी लंका को जीता ।"

कामवासना रूपी लंका देखने में बड़ी लुभावनी स्वर्ण-कान्त, नयनाभिराम मालूम देती है । उसे जीतना कठिन प्रतीत होता है । इस कामवासनारूपी स्वर्ण लंका में असुर कुल आनन्दपूर्वक निवास करता है । सब असुर, आन्तरिक शत्रु, तब तक सुरक्षित हैं जब तक उनकी कामवासना रूपी लंका का दुर्ग सुरक्षित है । इस रहस्य को समझते हुए हनुमान् जी ने इस असुरपुरी को जीतना आवश्यक समझा और अपने पराक्रम से, ब्रह्मचर्य से, शील, सदाचार एवं संयम से उस कामवासना रूपी लंका को जीता । असुरता को परास्त करना है, तो कामवासना को जीतना आवश्यक है । यह विजय ब्रह्मचर्य द्वारा ही संभव है । हनुमान् जी की भाँति हम सबको वासना रूपिणी लंका जीतने का प्रयत्न करना चाहिये ।

१४- धन्या देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः ।

मम पश्यन्ति ये वीरं रामं राजीवलोचनम् ।। - वा० रा० सुन्दरकाण्ड २६/३९

अर्थ- "देवता, गन्धर्व, सिद्ध तथा ऋषिगण धन्य हैं, जो मेरे राजीव-लोचन, वीर राम को देखते हैं ।"

वे लोग धन्य हैं, जो परमात्मा को देखते हैं, परमात्मा सबके निकट हैं, सबके भीतर हैं, चारों ओर हैं, उससे एक इञ्च भूमि भी खाली नहीं है, फिर भी मायाग्रस्त लोग उसे देख नहीं पाते, समझते हैं कि न जाने परमात्मा मुझसे कितनी दूर है, न जाने उसे प्राप्त करना, उसके दर्शन करना कितना कठिन है ? वे अपनी अन्धी आँखों से ईश्वर को नहीं देखते और बुराइयों में डूबे रहते हैं ।

जिनके दिव्य नेत्र खुल गये हैं, उनको अपने भीतर बाहर चारों ओर जर्रे-जर्रे में परमात्मा के दर्शन होते रहते हैं । इस दिव्य झाँकी से उनका अन्तःकरण तृप्त हो जाता है और सात्त्विक कर्म, स्वभावों की कस्तूरी जैसी महक उनके भीतर उठती रहती है । दिव्यदर्शी व्यक्तियों को देव, गन्धर्व, सिद्ध, ऋषि की पदवी देते हुए इस श्लोक में उनकी सराहना की है और उन्हें धन्य कहा है ।

१५- मंगलाभिमुखी तस्य सा तदासीन्महाकपेः ।
उपतस्थे विशालाक्षी प्रयता हव्यवाहनम् ।। - वा० रा० सुन्दरकाण्ड ५३/२६,२७

अर्थ- "वे उस समय कपि का मंगल करती थीं, इसलिये विशालाक्षी सीता ने अग्नि की स्तुति की ।"

मंगलकामना के लिये अग्निपूजा की वैदिक रीति प्रसिद्ध है । अग्निहोत्र, होम, यज्ञ के साथ जो शुभ कर्म किये जाते हैं, वे सदा सत्परिणाम उपस्थित करते हैं । यज्ञों की महिमा असाधारण है । उनके द्वारा रोगमुक्ति, वर्षा, पुत्र-प्राप्ति तथा विविध कामनाओं की पूर्ति से लेकर आत्मशुद्धि तक होती है । दूसरों के मंगल-अमंगल का विधान भी अग्नि-पूजा द्वारा होना शक्य है ।

अग्नि जीवन-शक्ति को भी कहते हैं । जीवन-शक्ति की वृद्धि से मंगल का होना तो प्रत्यक्ष ही है । जिसमें पर्याप्त मात्रा में उष्णता है, तेजस्विता है उसका हर प्रकार से मंगल ही होगा । क्रियाशक्ति की मात्रा में वृद्धि होने से उनके कार्य सहज ही सफल और सुलभ हो जाते हैं ।

१६- हितं महार्थं मृदु हेतुसंहितं व्यतीतकालायतिसंप्रतिक्षमम् ।
निशम्य तद्वाक्यमुपस्थितज्वरः प्रसंगवानुत्तरमेतदब्रवीत् ।।- वा० रा० युद्धकाण्ड १०/२७

अर्थ- "तीनों कालों में हितकारी, सप्रमाण, कोमल और अर्थयुक्त विभीषण के वचन सुनकर रावण को बड़ा क्रोध आया और उसने कहा ।"

इन व्यक्तियों को इस बात से प्रयोजन नहीं रहता कि क्या उचित है, क्या अनुचित ? क्या कल्याणकर है, क्या अकल्याणकर ? उन्हें तो अपना अहंकार, अपना स्वार्थ सर्वोपरि प्रतीत होता है । उनकी जो अपनी सनक होती है, उसके अतिरिक्त और किसी बात को वे सुनना नहीं चाहते । रावण पर विभीषण के हितकारी, सप्रमाण, कोमल और अर्थयुक्त वचनों का भी कुछ अच्छा प्रभाव नहीं हुआ, वरन् उलटा कुपित होकर प्रत्युत्तर देने लगा ।

"अन्धे के आगे रोवे अपने नयना खोवे" की लोकोक्ति को इस श्लोक में नीति वचन के रूप में समझाया है । जो लोग मदोन्मत्त हो रहे हैं, वे दूसरों की उचित बात को भी नहीं समझते । उनको समझाने का रास्ता दूसरा है ।

१७- धर्मात्मा राक्षसश्रेष्ठः संप्राप्तोऽयं विभीषणः ।
लंकैश्वर्यमिदं श्रीमान्ध्रुवं प्राप्नोत्यकंटकम् ।। - वा० रा० युद्धकाण्ड ४१/६८

अर्थ- "राक्षस-श्रेष्ठ, धर्मात्मा विभीषण आ रहे हैं, वे ही लंका के शत्रुहीन राज्य का उपयोग करेंगे ।"

शासक चाहे परिवार का हो, वैभवयुक्त हो, राज्य का हो, आमतौर से उसके विरोधी बहुत रहते हैं । परन्तु वे लोग इसके अपवाद रहते हैं, जो धर्मात्मा हैं, जिनका दृष्टिकोण निष्पक्ष है, जो न्याय को, उदारता को सर्वोपरि स्थान देते हैं, ऐसे मनुष्य उत्तरदायित्व, नेतृत्व, शासन और न्याय की बागडोर अपने हाथ में रखते हुए भी किसी के शत्रु नहीं बनते । विभीषण की भाँति न्यायपूर्ण दृष्टि रखकर हम सर्वप्रिय रह सकते हैं और उनके हृदयों पर शासन कर सकते हैं ।

१८- यो वज्रपाताशनिसंनिपातान्न चुक्षुभे नापि चचाल राजा।
स रामबाणाभिहतो भृशार्तश्चचाल चापं च मुमोच वीरः ॥ - वा० रा० युद्धकाण्ड ५९/१३९

अर्थ- "जो रावण वज्रपात तथा अग्नि के प्रहार से विचलित नहीं हुआ था, वह राम के बाणों से आहत होकर बहुत दुःखी हुआ और उसने बाण चलाये।"

जो लोग बड़े साहसी, लड़ाकू और योद्धा होते हैं, सांसारिक कठिनाइयों की कुछ परवाह नहीं करते। कठिन प्रहार सहन करके भी अपना पराक्रम प्रदर्शित करते हैं। उन वीर प्रकृति के लोगों को भी राम के बाणों से, अन्तरात्मा के शाप से व्यथित होना पड़ता है। कुचली हुई आत्मा जब क्रन्दन करती है, जीवन धन को बुरी तरह बर्बाद करने के लिये कुबुद्धि को शाप देती है, तो अन्तस्तल में हाहाकार मच जाता है। उस आत्म- प्रताड़ना से बड़े-बड़े पाषाण हृदय भी विचलित हो जाते हैं।

अपने बाहुबल से लोग कमजोरों को सताते हैं और उनको लूट कर, परास्त कर अपनी विजयश्री पर अभिमान करते हैं, छोटे-मोटे पराक्रमों पर उन्हें बड़ा ही अभिमान रहता है। पर जब पाप के दण्ड स्वरूप कोई दैवी प्रहार उन पर होता है, तो उनके होश गुम हो जाते हैं। अहंकारियों को याद रखना चाहिये कि उनसे भी बलवान् कोई सत्ता मौजूद है और उसके एक प्रहार में सारी अकड़ ढीली हो सकती है। कमजोर को सताया जा सकता है, पर कमजोर की हाय का मुकाबला करना कठिन है, वह बड़े-बड़ों की ऐंठ को सीधा कर देती है। इसलिये हमें ईश्वरीय कोप का और दैवी दण्ड का ध्यान रखते हुए, अपने आचरण को ठीक रखना चाहिये।

१९-यस्य विक्रममासाद्य राक्षसा निधनं गताः।
तं मन्ये राघवं वीरं नारायणमनामयम् ॥ - वा० रा० युद्धकाण्ड ७२/११

अर्थ- "जिसके पराक्रम से राक्षसों की मृत्यु हुई, उस अनामय वीर राम को धन्य है।"

उस वीर पुरुष का पराक्रम धन्य है, जो स्वयं निष्पाप रहता है और कषाय-कल्मषों को मार भगाता है। स्वार्थ के लिये बहुत लोग पराक्रम दिखाते हैं, पराक्रम करने के लोभ से अहंकारग्रस्त हो जाते हैं। ऐसा तो साधारण व्यक्तियों में भी देखा जाता है, पर धन्य वे हैं, जो अपने पराक्रम का उपयोग केवल असुरत्व विनाश के लिये करते हैं और उस पराक्रम का तनिक भी दुरुपयोग न करके अपने को जरा भी पाप-पंक में गिरने नहीं देते। पराक्रम और वीरता की यही श्रेष्ठता है।

२०- न ते ददृशिरे रामं दहन्तमपिवाहिनीम्।
मोहिताः परमास्त्रेण गान्धर्वेण महात्मना ॥ - वा० रा० युद्धकाण्ड ९३/२६

अर्थ-"महात्मा राम ने दिव्य गन्धर्वास्त्र के द्वारा राक्षसों को मोहित कर दिया था, इसी से वे सेना को नष्ट करने वाले राम को नहीं देख सकते थे।"

अज्ञानियों की बुद्धि ऐसी भ्रम विमोहिता होती है कि उन्हें यह सूझ नहीं पड़ता कि उनकी सेना का संहार कौन कर रहा है ? उन्हें कष्ट कौन दे रहा है ? उन्हें इसका कारण ज्ञात ही नहीं होता। समझते हैं कि हमारे शत्रु हमें हानि पहुँचा रहे हैं, पर असल बात यह है कि अपनी असत् प्रणाली ही फलित होकर विपत्ति का कारण बन जाती है। ईश्वरीय प्रक्रिया के द्वारा वे पाप ही कष्ट बन जाते हैं। अज्ञानी लोग कष्टों का कारण सांसारिक परिस्थितियों को समझते हैं, पर वस्तुतः स्थिति यह है कि उनका पाप ही उनका सबसे बड़ा शत्रु होता है। अदृश्य ईश्वर उन पापों को ही गन्धर्व बाण की तरह उन पर फेंकता है और उससे वे आहत होते हैं।

२१-प्रणम्य दैवतेभ्यश्च ब्राह्मणेभ्यश्च मैथिली।
बद्धांजलिपुटा चेदमुवाचाग्निसमीपतः ॥ - वा० रा० युद्धकाण्ड ११६/२४

अर्थ- "देवता और ब्राह्मणों को प्रणाम करके सीता ने हाथ जोड़ कर अग्नि के समीप जाकर कहा।"

सच्ची आत्मायें किसी बात को प्रकट करने से पूर्व देव और ब्राह्मणों का श्रद्धापूर्वक ध्यान रखती हैं, अर्थात् वे यह सोचती हैं कि इस कथन के सम्बन्ध में श्रेष्ठ लोग क्या कहेंगे ? चाहे दुनिया भर के मूर्ख लोग किसी बात

को पसन्द करें, पर यदि थोड़े से देव और ब्राह्मण अर्थात् श्रेष्ठ पुरुष उसे त्याज्य ठहराते हैं, तो वह कार्य सच्ची आत्माओं के लिये त्याज्य ही होगा ।

दूसरे सतोगुणी अन्तःकरण वाले व्यक्ति चाहे वैभव में कितने ही बड़े क्यों न हो जायें, ब्रह्म-कर्मा उच्च चरित्र वाले व्यक्तियों के लिये वे सदा ही झुकते हैं ।

सीता ने अग्नि के समीप जाकर कहा । हमें जो कुछ कहना हो, तो अन्तःकरण में निवास करने वाली ज्योति के समक्ष उपस्थित होकर कहना चाहिये । छल, कपट, असत्य की वाणी उन्हीं के मुख से निकलती है, जो ईश्वर से दूर रहते हैं । अग्नि के समीप जाकर, अन्तःज्योति के समक्ष उपस्थित होकर यदि हम अपना मुख खोलें, वाणी से उच्चारण करें, तो सदा सत्य ही मुख से निकलेगा ।

२२- चालनात्पर्वतस्यैव गणा देवस्य कम्पिताः ।
चचाल पार्वती चापि तदाश्लिष्टा महेश्वरम् ।। - वा० रा० उत्तरकाण्ड १६/२६

"अर्थ- पर्वत के काँपने से शिवगण भी काँप गये और पार्वती भी महादेव से लिपट गयीं ।"

आधार के विचलित हो जाने से ऊपर स्थित अन्य सब वस्तुयें भी विचलित हो जाती हैं । चाहे वे कितनी ही बड़ी क्यों न हों । भूकम्प आता है, तो पृथ्वी पर रखी हुई सब वस्तुयें डाँवाडोल हो जाती हैं ।

मनुष्य अपने दृष्टिकोण को जैसा निर्धारित कर लेता है उसी के अनुसार उसे संसार की वस्तुयें, क्रियायें, घटनायें तथा परिस्थितियाँ भली या बुरी लगती हैं, पर यदि पूर्व दृष्टिकोण बदल जाए और उसके स्थान पर नये प्रकार से सोचने की प्रणाली प्राप्त हो जाए, तो पहली रुचि बदल जाने के कारण सब कुछ बदला मालूम देता है । आज कोई व्यक्ति एक दृष्टि को अपनाने के कारण घोर लोभी और कंजूस है, यदि उसे कल ही कोई नयी दृष्टि मिल जाए, तो वह उच्चकोटि का त्यागी हो सकता है । इसी प्रकार उल्टा परिवर्तन हो जाए— तो त्यागी से लोभी भी बना जा सकता है । तात्पर्य यह है कि जीवन-परिवर्तन का मुख्य कारण वह आधार है, जिस पर खड़े होकर मनुष्य सोचता-विचारता है और अपने स्वार्थ का निर्णय करता है ।

संसार में जितने भी व्यक्तिगत या सामूहिक परिवर्तन होते हैं, उनका मूल कारण दृष्टिकोण का, आधार का परिवर्तन है । हम अपने को, अपने समाज को, जिस दिशा में परिवर्तित करना चाहते हैं, वैसा ही उसकी दृष्टि का, उसकी विचार-प्रणाली का, आधारशिला का परिवर्तन करना अनिवार्य है । पर्वत काँपने से शिव-पार्वती काँपे थे, अन्तः दृष्टि के काँपने से बाह्य जीवन का सारा महल काँप जाता है ।

२३- दाराः पुत्राः पुरं राष्ट्रं भोगाच्छादनभोजनम् ।
सर्वमेवाविभक्तं नौ भविष्यति हरीश्वर ।। - वा० रा० उत्तरकाण्ड ३४/४१

अर्थ- "वानरराज ! स्त्री, पुत्र, नगर, राष्ट्र, भोग, वस्त्र, भोजन यह हमारी अविभक्त सम्पत्ति होगी ।"

सम्पत्ति को, राष्ट्र को, समाज को, खाद्य-सामग्री को अविभक्त बताकर इस श्लोक में वर्तमान समाजवाद के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है । ईश्वर प्रदत्त जितनी भी सामग्री इस संसार में है, उस पर मानव प्राणियों का समान रूप से अधिकार है । आवश्यकतानुकूल सभी को इन वस्तुओं के उपभोग का अधिकार होना चाहिये । इन्हीं सिद्धान्तों पर समाजवाद की सारी आधारशिला खड़ी की गयी है । सम्पत्ति को बाँटकर अपने व्यक्तिगत कब्जे में कर लेने का इस श्लोक में विरोध है और समाज तथा व्यक्ति दोनों के सम्मिलित होने का समर्थन है । यह श्लोक समाजवाद के सिद्धान्त का सूत्ररूप है ।

२४-यामेव रात्रिं शत्रुघ्नः पर्णशालां समाविशत् ।
तामेव रात्रिं सीतापि प्रासूत दारकद्वयम् ।। - वा० रा० उत्तरकाण्ड ६६/१

अर्थ- "जिस रात्रि में शत्रुघ्न वाल्मीकि आश्रम की पर्णशाला में गये, उसी रात्रि में सीता ने दो पुत्रों को उत्पन्न किया ।"

जिस दिन शत्रु का नाश करने वाला प्रेम-लोभ के महलों को छोड़कर ऋषि भावना की प्रतीक त्यागरूपी पर्णशाला में पहुँचता है, उसी में आत्मा रूपी सीता, दो पुत्र उत्पन्न करती है । (१) लव अर्थात् ज्ञान, (२) कुश अर्थात् कर्म ।

निःस्वार्थ- निर्मल प्रेम जब संसार भर में शत्रुता का भाव हटा देता है, सबको अपना समझकर सबके लिये सद्‌भाव धारण कर लेता है, तो उसका स्वाभाविक फलितार्थ यह होता है कि वह व्यक्ति भोग और संग्रह की वासनायें त्याग कर संयम और त्याग की नीति अपना लेता है । यही शत्रुघ्न का वाल्मीकि जी की पर्णशाला में पहुँचना है ।

ऐसी स्थिति प्राप्त होने पर आत्मा में सद्ज्ञान का प्रकाश होता है और वह सत्कार्य में प्रवृत्त रहती है । यही सीता का दो पुत्र प्रसव करना है । यही आत्मोन्नति की दो परम सिद्धावस्थाएँ हैं ।

गायत्री रामायण के पिछले २४ श्लोकों में धर्म, नीति, समाज , स्वास्थ्य, अध्यात्म आदि के रहस्यों का उद्‌घाटन किया गया है, रास्ता दिखाया गया है । इस अन्तिम श्लोक में यह बता दिया गया है कि उन पर आचरण करने से अन्तिम स्थिति में क्या परिणाम उपस्थित होता है ? अन्त में सीता के दो पुत्र उत्पन्न होते हैं, आत्मा की गोदी, सद्ज्ञान और सत्कर्म रूपी दो पुत्रों से भर जाती है । इन पुत्रों को पाकर सीता सब कष्टों को भूल गयी थी । आत्मा तपश्चर्या के सारे काय-क्लेशों को विस्मरण करके इन दो दिव्य-पुत्रों के आनन्द से आच्छादित हो जाती है, फिर उन पुत्रों के आनन्द का ठिकाना नहीं रहता । सद्ज्ञान और सत्कर्म जिसे प्राप्त होते हैं उसके दोनों हाथों में लड्डू हैं । उसके आनन्द की सीमा कौन निर्धारित कर सकता है । यह परमानन्द ही गायत्री की सिद्धि है ।

इन २४ श्लोकों में महर्षि वाल्मीकि ने अपने अनुभव और ज्ञान का निचोड़ भर दिया है । उपर्युक्त पंक्तियों में उस रहस्य की ओर अंगुलि-निर्देश मात्र हुआ है । विज्ञ विचारक इन २४ सूत्रों में छिपे रहस्यों पर स्वतंत्र चिन्तन करेंगे, तो उन्हें बड़े-बड़े अद्‌भुत ज्ञान-रत्न इनमें छिपे हुए मिलेंगे ।

गायत्री हृदयम्

इस 'गायत्री हृदय' को कई ग्रन्थों में गायत्री उपनिषद् भी बताया गया है । उपनिषदों में ब्रह्मज्ञान की - तत्त्वज्ञान की चर्चा होती है । आत्म-विवेचना और आत्म-तत्त्व की प्राप्ति का उसमें विवेचन किया जाता है । इसमें भी वे ही सब विषय हैं, इसलिये इसको उपनिषद् ठीक ही कहा गया है ।

परन्तु 'गोपथ-ब्राह्मण' की कुछ कण्डिकाओं को लेकर भी एक उपनिषद् प्रचलित है । इस प्रकार एक ही नाम की दो पुस्तकें हो जाने से भ्रम में पड़ने की बहुत सम्भावना थी । इस असुविधा को ध्यान में रखते हुए इस उपनिषद् को कई प्राचीन ग्रन्थों ने 'गायत्री-हृदयम्' नाम दिया है ।

हमने भी इसका अनुसरण किया है । इसे हम, 'गायत्री-हृदयम्' और गोपथ ब्राह्मण में वर्णित कण्डिकाओं का 'गायत्री-उपनिषद्' नाम से उल्लेख करेंगे । फिर भी यह 'गायत्री-हृदयम्' उपनिषद् ही है । इसमें बड़े महत्त्वपूर्ण तत्त्वों की चर्चा की गयी है-

ॐ नमस्कृत्य भगवान् याज्ञवल्क्यः स्वयंभुवं परिपृच्छति। त्वं नो ब्रूहि ब्रह्मन् गायत्र्युत्पत्तिं-तुरीयां श्रोतुमिच्छामि। ब्रह्मज्ञानोत्पत्तिं प्रकृतिं परिपृच्छामि ।।१ ।।

याज्ञवल्क्यजी ब्रह्माजी से पूछते हैं कि गायत्री की उत्पत्ति कैसे हुई यह सुनाइये ? यह सुनने की इच्छा उन्हें इसलिये हुई कि उस उत्पत्ति विज्ञान को जान लेने से ब्रह्म-ज्ञान की भी उत्पत्ति होती है । इसका स्पष्ट तात्पर्य यह हुआ कि गायत्री की उत्पत्ति का जो कारण है, वही कारण ब्रह्म-ज्ञान की उत्पत्ति का है । एक ही वस्तु के यह दो नाम हैं । इन दोनों में से एक को जान लेने से दूसरे की जानकारी स्वयमेव हो जाती है ।

श्री भगवानुवाच -

प्रणवेन व्याहृतयः प्रवर्तन्ते तमसस्तु परं ज्योतिः । कः पुरुषः ? स्वयम्भूर्विष्णुरिति । अथ ताःस्वांगुल्या मथ्नाति । मथ्यमानात् फेनो भवति । फेनाद् बुद्‌बुदो भवति । बुद्‌बुदादण्डं भवति । अण्डात् आत्मा भवति । आत्मन आकाशो भवति । आकाशाद्वायुर्भवति । वायोरग्निर्भवति ।

अग्नेरोङ्कारो भवति। ओंकाराद् व्याहतिर्भवति। व्याहत्या गायत्री भवति। गायत्र्याः सावित्री भवति। सावित्र्याः सरस्वती भवति। सरस्वत्या वेदाः भवन्ति। वेदेभ्यो ब्रह्मा भवति। ब्रह्मणो लोका भवन्ति। तस्माल्लोकाः प्रवर्तन्ते। चत्वारो वेदाः सांगाः सोपनिषदः सेतिहासास्ते सर्वे गायत्र्याः प्रवर्तन्ते। यथाग्निर्देवानां, ब्राह्मणो मनुष्याणां, मेरुः शिखरिणां, गंगा नदीनां, वसन्त ऋतूणां, ब्रह्मा प्रजापतीनां, एवमसौ मुख्यः। गायत्र्या गायत्रीछन्दो भवति ॥२॥

भगवान् बताते हैं कि ॐकार और भूर्भुवः स्वः के साथ उस परम ज्योति का सम्बन्ध है, जो प्रकृति के सत् और रजोगुण का स्पर्श तो करती है, परन्तु तमोगुण से सर्वथा दूर है। प्रथम सतोगुण है, उसकी उपासना करने वालों में सतोगुणी प्रवृत्तियाँ बढ़ती हैं, साथ ही रजोगुणी वैभव भी मिलते हैं। जिनके हृदय में आत्म-ज्ञान, संयम, आदर्श, धर्म, सुकर्म, सेवा, उदारता, प्रेम एवं आत्मीयता के सात्त्विक भाव प्रस्तुत होते हैं, उनके बाह्य जीवन में यज्ञ, ऐश्वर्य, सुख, वैभव, प्रतिष्ठा, स्वस्थता आदि राजस समृद्धियों का होना स्वाभाविक है। प्रणव और व्याहतियों का जोड़ा ऐसा ही है, जैसा आत्म-ज्ञान और सुख-शान्ति का जोड़ा। जहाँ यह दो बातें हैं, वहाँ दुःख, दारिद्र्य, क्लेश, असन्तोष, दीनता, क्रूरता, पाप, पतन का तम नहीं ठहर सकता। जहाँ प्रकाश की परम ज्योति मौजूद है, वहाँ बेचारा तम-अन्धकार अपना किस प्रकार अस्तित्व रख सकेगा ?

जिस ज्योतिर्मय पुरुष का-अखण्ड-ज्योति का ऊपर वर्णन है, वह कौन है ? वह अजन्मा परमात्मा है। परमात्मा प्रकाश स्वरूप है, जहाँ परमात्मा का निवास होगा वहाँ अज्ञान का, पाप का अन्धकार रह नहीं सकता। परमात्मा के भक्त का अन्तःकरण सदा ज्ञान-ज्योति से प्रकाशवान् रहता है।

सृष्टि का निर्माण किस प्रकार हुआ ? अब इस प्रश्न पर विचार किया जाता है। उस ज्योति पुरुष परमात्मा ने सबसे प्रथम जल की रचना की। उस जल का उँगलियों से मन्थन किया, जिससे फेन उत्पन्न हुआ, फेन से बबूले हुए, बबूलों से अण्ड, अण्ड से आत्मा, आत्मा से आकाश और आकाश से वायु उत्पन्न हुई। वायु के चलने से परमाणुओं में संघर्ष हुआ, जिसकी गर्मी से अग्नि पैदा हुई। अग्नि से ओंकार अर्थात् शब्द उत्पन्न हुआ। शब्द को आकाश भी कह सकते हैं। इस प्रकार ईश्वर की इच्छा से एक-एक करके पाँचों तत्त्व बने। जिस प्रकार स्थूल सृष्टि के पाँच तत्त्व हुए, उसी प्रकार सूक्ष्म चैतन्य के भी पाँच कोष बने।

जल कहते हैं रस को। रस का गुण है स्वाद, अनुभूति। सबसे पहले प्राणी का वह भाग बढ़ा, जिससे वह रसास्वादन करता है, जिससे अनुभूति होती है, रस आता है। यदि विविध प्रकार के स्थूल और सूक्ष्म प्रकार के स्वादों का अनुभव करने की शक्ति न होती, तो उसकी चैतन्यता का विकास होना असम्भव था। सबसे प्रथम प्राणी-जल-परिधान- इस आवरण का बनाया गया, इसे ही आनन्दमय कोष कहते हैं।

इसका मन्थन किया गया। मन्थन से फेन उत्पन्न हुआ। फेन से बुद्‌बुदे पैदा हुए और बुद्‌बुदों से पार्थिव परमाणु बने अर्थात् इसकी अनुभूति से अपनी अभीष्ट वस्तु की खोज की, मन्थन हुआ, प्राप्त पदार्थ की इच्छा हुई, यह फेन कहलाया। इच्छा ने पदार्थों की कल्पना की, जिन्हें बुद्‌बुदा कहा गया। इस खोज और कल्पना के साथ जिस पार्थिव आवरण की रचना हुई, उसे चैतन्य सृष्टि में विज्ञानमय कोष कहा जाता है।

आकाश से वायु हुई। वायु का अर्थ है- गति। विज्ञानमय कोष की सूक्ष्मता को अधिक स्थूल और सफल बनाने के लिये गति की आवश्यकता होती है, यह गतिमय है। परमाणु से वायु बनी। विज्ञानमय कोष से मनोमय कोष बना।

वायु के संघर्ष से अग्नि उत्पन्न हुई, मन की घुड़दौड़ मची। सूक्ष्म को स्थूल में लाने के लिये, अप्रत्यक्ष को प्रत्यक्ष में अनुभव करने के लिये ऐसी साधन सामग्रियों की, इन्द्रियों की आवश्यकता हुई, जिनके द्वारा प्रकृति के स्थूल परमाणुओं के साथ अपना सम्बन्ध स्थापित किया जा सके। इस आवश्यकता ने आविष्कार उत्पन्न कर दिया। एक उष्णता गुण वाला विकासोन्मुख क्रियाशील शरीर पैदा हुआ, जिसे सूक्ष्म शरीर या प्राणमय कोष कहते हैं। मन, बुद्धि, अहंकार के साथ-साथ दसों इन्द्रियाँ इस अग्नि गुण वाले प्राणमय कोष में विनिर्मित हुईं।

अग्नि से ओंकार 'शब्द' आकाश हुआ। यह ईश्वर का प्रत्यक्ष निवास स्थान ब्रह्माण्ड का बीज रूप पिण्ड

कहलाया । इसे ही स्थूल शरीर कहते हैं । यह अन्नमय कोष ध्यानावस्थित अवस्था में प्रकृति के अन्तराल में प्रतिक्षण होने वाले 'ॐ' ध्वनि के शब्द गुञ्जन को सुनता है, 'ॐ' इस पर प्रकट होता है । इसलिये इस शरीर को अन्नमय कोष (ओंकार) भी कहा है ।

पञ्च-तत्त्व पञ्च-कोष बन जाने पर उसकी मर्यादा नियत की गयी । यह पञ्च-तत्त्व कहाँ तक काम करेंगे, यह पञ्च-कोष वाला शरीर, कितने क्षेत्र में अपनी गति-विधि जारी रखेगा, इस सीमा का निर्धारण भू: लोक, भुव: लोक, स्व: लोक है । शरीर भू: लोक है, मस्तिष्क भुव: लोक है, अन्त:करण स्व: लोक है । आकाश, पाताल और पृथ्वी यह तीन स्थूल लोक कहे जाते हैं । साथ ही चैतन्य प्राणी के लिये तीन व्याहतियाँ उन अपनत्व में भी निवास करती हैं । शरीर, मस्तिष्क और अन्त:करण व्याहतिमय हैं ।

व्याहति से गायत्री उत्पन्न हुई । तीन लोकों में काम करने वाली त्रिविध शक्तियाँ उत्पन्न हुईं । गायत्री कारण शक्ति, सावित्री सूक्ष्म शक्ति, सरस्वती स्थूल शक्ति । यह एक ही ईश्वरीय शक्ति जब भिन्न-भिन्न स्थितियों में होती है, तब भिन्न-भिन्न नामों से पुकारी जाती है । ज्ञान की स्थूल शक्ति का नाम वेद है । यह वेद-शक्ति ब्रह्मा के रूप में अवतीर्ण हुई । ब्रह्मा ने उस शक्ति को व्यवस्थित रूप देकर सर्वसाधारण के लिए उपयोगी, सुसम्पादित बनाकर चार भागों में विभक्त कर दिया ।

उस ब्रह्मा ने वेदों के साथ लोक भी बनाये अर्थात् लोकों को वेद ज्ञान से सुसज्जित कर दिया । धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के चतुष्टय को भी ज्ञानमय बताया है । वेद के तथ्य का विस्तार उपनिषदों और इतिहास में भी है । यह सब भी गायत्रीमय है ।

प्रत्येक जाति में, श्रेणी में जो विशेषता होती है, वह प्रशंसनीय होती है । उसी का वैभव होता है, उसी की महत्ता से उस वर्ग का गौरव होता है । देवताओं में अग्नि, मनुष्यों में ब्राह्मण, पर्वतों में सुमेरु, नदियों में गंगा, ऋतुओं में वसन्त, प्रजापतियों में ब्रह्मा श्रेष्ठ हैं, विशेष हैं, असाधरण हैं, महत्त्वपूर्ण हैं । इसी प्रकार सम्पूर्ण छन्दों में, सम्पूर्ण ज्ञानों में, सम्पूर्ण शक्तियों में गायत्री श्रेष्ठ है- विशेष है ।

किं भू: ? किं भुव: ? किं स्व: ? किं मह: ? किं जन: ? किं तप: ? किं सत्यं ? किं तत् ? किं सवितु: ? किं वरेण्यं ? किं भर्ग: ? किं देवस्य ? किं धीमहि ? किं धिय: ? किं य: ? किं न: ? किं प्रचोदयात् ?३ ॥

भूरिति भूर्लोको, भुव इत्यन्तरिक्षलोक:, स्वरिति स्वर्लोको, महरिति महर्लोको, जन इति जनो लोक:, तप इति तपो लोक: , सत्यमिति सत्यलोक:, भूर्भुव: स्वरिति त्रैलोक्यम् तदिति तेजो यत्तेजसोऽग्निर्देवता सवितुरित्यादित्यस्य वरेण्यमित्यन्नम् अन्नमेव प्रजापति: । भर्ग इत्याप:, आपो वै भर्ग: । यदापस्तत् सर्वा देवता: । देवस्य सवितुर्देवो वा य: पुरुष: स विष्णु: । धीमहीत्यैश्वर्यं, यदैश्वर्यं स प्राण इत्यध्यात्मं, तदध्यात्मम् । तत् परमं पदं, तन्महेश्वर:, धिय इति महीति । पृथिवी मही । यो न: प्रचोदयादिति काम: । काम इमान् लोकान् प्रच्यावयते । यो नृशंस: । योऽनृशंसोऽस्या: स परो धर्म इत्येषा वै गायत्री ॥४ ॥

गायत्री का प्रत्येक शब्द क्या है ? इसे भलीभाँति समझने की आवश्यकता है । एक सपाटे में सबका विहंगावलोकन कर जाने से काम न चलेगा वरन् एक-एक शब्द पर गम्भीर दृष्टि डालकर उसके गर्भ में छिपे हुए अर्थ, रहस्य और सन्देश पर विचार करना होगा । यह बताने के लिये उपर्युक्त पंक्तियों में हर शब्द के लिये अलग-अलग प्रश्न करके यह प्रयत्न किया गया है कि हर पद के सम्बन्ध में अलग-अलग विचार किया जाये ।

गायत्री की सात व्याहतियों को और उसके अन्य शब्दों को स्पष्ट किया गया है । उनका क्या तात्पर्य है ? यह इस प्रकार समझना चाहिये । भू:- पृथ्वी लोक । भुव:- आकाश लोक । स्व:- स्वर्ग लोक । मह:- महलोक । जन:- जन लोक । तप:- तप लोक । सत्यं- सत्य लोक । तत्- अर्थात् तेज, तेज का तात्पर्य है अग्नि । सविता- अर्थात् सूर्य । वरेण्यं- अर्थात् अन्न, अन्न का तात्पर्य है- प्रजापालिनी शक्ति । भर्ग- अर्थात् आप:, आप: का तात्पर्य

है देव- शक्तियों का समूह । देवस्य- अर्थात् सविता देव, सविता देव पुरुष । इसका तात्पर्य है- विष्णु । धीमहि- अर्थात् ऐश्वर्य का ध्यान करते हैं । ऐश्वर्य का अर्थ है, प्राण, अध्यात्म, परम पद, महेश्वर । योन: प्रचोदयात्- अर्थात् काम, काम वह जिसके कारण लोक का संचालन होता है ।असत् अर्थात् बुरे कर्मों का संहार करने वाली कामना । नृशंस अर्थात् गर्हित है । जो कामनायें सत्कर्मों की प्रेरणा करती हैं, वह अनृशंस अर्थात् ग्राह्य हैं । इस प्रणाली का परिचालन करना गायत्री का विशेष धर्म है, यह गायत्री का स्वरूप है ।

भू:, भुव:, स्व:, मह:, जन:, तप: , सत्यम्- यह सात लोक हैं । सातों लोकों को बार-बार स्मरण करना इसलिये आवश्यक है कि मनुष्य अपनी समस्याओं, कठिनाइयों, स्वार्थों और लाभों की ओर देखते रहने की संकुचितता से ऊँचा उठकर विश्व ब्रह्माण्ड की ओर देखे, उसकी समस्याओं को अपनी समस्या समझते हुए, विश्व-मानव का एक घटक अपने को समझते हुए सोचे और उसी दृष्टि से काम करे ।

तत्, सविता, वरेण्यं, भर्ग, देव- इन पाँच शब्दों द्वारा तेज, उष्णता, अन्न, दिव्यता और परमात्मा- इन पाँच महान् आवश्यकताओं की ओर ध्यान केन्द्रित किया गया है । यह पाँचों पदार्थ जीवन की अनिवार्य आवश्यकताएँ हैं, इन्हें अधिकाधिक मात्रा में संचित करना आवश्यक है । तेजस्विता, प्रतिभा, शालीनता, पुरुषार्थ, पराक्रम-यह तत् शब्द के अंतर्गत हैं । उष्णता, स्फूर्ति, पाचन-शक्ति, नीरोगिता, सुदृढ़ता- यह सब सविता से सम्बन्धित हैं । अन्न, वस्त्र, दुधारू पशु, गृहिणी, सन्तति एवं अन्य समस्त जीवनोपयोगी वस्तुयें वरेण्यं शब्द के अंतर्गत हैं । दिव्यता अनेक सद्‌गुण, योग्यतायें, शक्तियाँ, सामर्थ्य भर्ग शब्द से सम्बन्धित हैं । गायत्री को पहचानने वाला इन पाँचों की आवश्यकता का अनुभव करता है और अपने पुरुषार्थ एवं दैवी सहायता से उन्हें प्राप्त करता है ।

'धीमहि' कहते हैं- ध्यान को । किसका ध्यान ? उस मंगलमय परमात्मा का ध्यान, जिसको हृदय में धारण कर लेने से- उसके नियमों पर चलने से सब प्रकार की सुख-शान्ति मिलती है । ऐश्वर्य, प्राण-शक्ति, आत्म-दर्शन तथा परम पद की प्राप्ति होती है । ईश्वर की यह धारणा ऐसी निश्चित होनी चाहिये जैसे कि पृथ्वी की धारणा होती है ।

'योन: प्रचोदयात्' में कामनाओं की ओर संकेत किया गया है । मनुष्य कामनाओं से बना हुआ है, बिना कामना के वह रह नहीं सकता । काम उसका स्वभाव है, क्योंकि कामना के कारण-इच्छा के कारण यह संसार चल रहा है, पर हमारी कामना नृशंस नहीं होनी चाहिये । स्वार्थ, लोलुपता, निर्दयता, भोग आदि की नृशंसता से बचते हुए ऐसे काम का सेवन करें, ऐसी कामनायें करें जो धर्ममूलक हों, सबके लिये श्रेयस्कर हों, यही गायत्री का स्वरूप है । इस लक्षण को स्थित करना, इस मार्ग पर चलना यही गायत्री की असाधारण उपासना है ।

किं गोत्रा ? कत्यक्षरा ? कति पादा ? कति कुक्षि: ? कति शीर्षा ?५ । ।

सांख्यायनगोत्रा, चतुर्विंशत्यक्षरा वै गायत्री, त्रिपदा, षट्कुक्षि:, पञ्च शीर्षा ॥६ ॥

केऽस्यास्त्रय: पादा भवन्ति ? का अस्या षट् कुक्षय: ? कानि च पञ्च शीर्षाणि ॥७ ॥

ऋग्वेदोऽस्या: प्रथम: पादो भवति, यजुर्वेदो द्वितीय:, सामवेदस्तृतीय: । पूर्वा दिक् प्रथमा कुक्षिर्भवति । दक्षिणा द्वितीया, पश्चिमा तृतीया, उत्तरा चतुर्थी, ऊर्ध्वा पञ्चमी, अधोऽस्या: षष्ठी । व्याकरणमस्या: प्रथमं शीर्षं भवति, शिक्षा द्वितीयं, कल्पस्तृतीयं, निरुक्तं चतुर्थं, ज्योतिषामयनमिति पञ्चमम् ॥८ ॥

किं लक्षणम् ? किं विचेष्टितं ? किमुदाहृतम् ? ॥९ ॥

लक्षणं मीमांसा, अथर्ववेदो विचेष्टितं, छन्दो विचितिरुदाहृतम् ॥१० ॥

को वर्ण: ? क: स्वर: ? श्वेतो वर्ण: षट् स्वरा: ॥११ ॥

अब प्रश्न यह उठता है कि गायत्री का गोत्र क्या होता है ? कितने अक्षर हैं ? कितने पाद हैं ? कितने कुक्षि हैं ? कितने शीर्ष हैं ? इनका उत्तर यह है कि गायत्री का सांख्यायन गोत्र है । आत्म-कल्याण के दो मार्ग हैं- एक योग, दूसरा सांख्य । गीता में इन दोनों को एक बताया है- **"सांख्ययोगौ पृथग्बाला: प्रवदन्ति न पण्डिता:"** ।

योग कहते हैं अनासक्ति को, संसार के पदार्थों को त्याग कर- उनसे विमुख होकर आत्मा को प्राप्त करना यह योग मार्ग है । दूसरा मार्ग है, संसार के पदार्थों को उत्साहपूर्वक एकत्रित करना और उदारतापूर्वक उनका सन्मार्ग में व्यय करना । यह दूसरा मार्ग ही सांख्य मार्ग है । गायत्री को सांख्यायन अर्थात् सांख्य का घर कहा है । वह सांख्य, प्रधानता के साथ जीवन व्यतीत करने का संकेत करती है । यही गायत्री का गोत्र है ।

गायत्री में चौबीस अक्षर हैं, तीन पाद हैं, छः कुक्षि हैं, पाँच शीर्ष हैं । अब प्रश्न उपस्थित होता है कि यह तीन पाद क्या हैं ? छः कुक्षियाँ क्या हैं ? पाँच शीर्ष क्या हैं ? बताते हैं कि ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद- यह तीन वेद उसके पाद हैं । इनके ऊपर गायत्री खड़ी होती है । ये वेद उसकी आधारशिला हैं, चौथा अथर्ववेद तो इस वेदत्रयी की व्याख्या मात्र है । छः कुक्षियाँ छः दिशायें हैं , पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ऊर्ध्व, अधः- इन छहों दिशाओं में अर्थात् सर्वत्र गायत्री- शक्ति व्याप्त है । वेद के षट् अंगों को शीर्ष कहा गया है । गायत्री का शरीर छन्द है, शेष पाँच वेदांग उसके शीर्ष हैं । गायत्री छन्द के अन्य पाँच वेदांग- व्याकरण, शिक्षा, कल्प, निरुक्त, ज्योतिष् सिर हैं- मस्तिष्क हैं । इन वेदांगों के अन्तर्गत जो महान् भावनायें सन्निहित हैं, उन्हें ही गायत्री का सिर अर्थात् मस्तिष्क समझना चाहिये । गायत्री शक्ति में वही भावना विद्यमान् है, जो वेदांगों में है ।

अब जानना है कि गायत्री का लक्षण क्या है ? चेष्टा क्या है ? उदाहरण क्या है ? बताते हैं कि मीमांसा लक्षण है, अथर्ववेद चेष्टा है और छन्द प्रतीक हैं । मीमांसा का अर्थ है - विचार । गायत्री का लक्षण विचार है, इस महाशक्ति का आविर्भाव हुआ है या नहीं, यह परीक्षा किसी मनुष्य के विचारों को देखकर की जा सकती है । जिसके अन्तःकरण में गायत्री अवतीर्ण होगी, उसके विचारों में परिवर्तन दिखाई पड़ेगा । उसके विचार, विवेचना, निर्णय ऐसे होंगे , जो एक आत्म-शक्ति सम्पन्न व्यक्ति के गौरव के अनुकूल हों । वह गायत्री का लक्षण है, लक्षण को देखकर ही किसी वस्तु का अस्तित्व पहचाना जाता है । गायत्री की उपस्थिति का लक्षण साधक की उच्च विचार-धारा को ही समझना चाहिये ।

गायत्री की चेष्टा अथर्ववेद बताता है । अथर्ववेद में व्यावहारिक ज्ञान है । शिल्प-कला, रसायन, विज्ञान, चिकित्सा, काम-शास्त्र आदि व्यावहारिक जीवन में प्रयुक्त होने वाली विद्याओं का वेद में वर्णन है । जहाँ गायत्री की स्थिति होगी, वहाँ अथर्व से सम्बन्ध रखने वाली चेष्टायें देखी जायेंगी । उद्योग, प्रयोग, उत्पादन, निर्माण, कला-कौशल, व्यवस्था, परिवर्तन, ग्रहण, विसर्जन आदि चेष्टायें प्रयत्न रूप में परिलक्षित होंगी । अभीष्ट की प्राप्ति के लिये जहाँ प्रचण्ड प्रयत्न हो रहा हो, समझना चाहिये कि गायत्री-शक्ति की चेष्टा है ।

गायत्री का उदाहरण है- छन्द । छन्द का अर्थ है- पदार्थ । लक्षण और चेष्टाओं के द्वारा विचार और कर्मों द्वारा निःसंदेह अभीष्ट पदार्थ प्राप्त होते हैं । उदाहरण कहते हैं- नमूने को । गायत्री की स्थिति कैसी होती है ? इसका उदाहरण उत्तमोत्तम पदार्थों और परिस्थितियों को दिखाकर बताया गया है कि जहाँ जाने या अनजाने में गायत्री की कृपा होगी, वहाँ का बाह्य वातावरण श्रेष्ठता से परिपूर्ण होगा ।

अब मालूम करना है कि गायत्री का वर्ण क्या है ? स्वर क्या है ? वर्ण श्वेत है । श्वेत-सतोगुण का, शुभ्रता का, उज्ज्वलता का, पवित्रता का प्रतीक है । स्वर छः हैं- ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत, उदात्त, अनुदात्त, स्वरित । प्रत्येक स्वर का अपना-अपना विज्ञान एवं अपना महत्त्व है । शब्द की शक्ति अनन्त है, शब्दों द्वारा कम्पन होते हैं, उनके कारण सृष्टि में विविध प्रकार के वातावरण बनते हैं । यह छः स्वर ही ध्यान के छः भेद हैं, इन्हीं के द्वारा पंच-तत्त्वों और सूक्ष्म २४ तत्त्वों में गति संचार होता है । इसे गायत्री महाविज्ञान के तृतीय खण्ड में सविस्तार लिखा जायेगा । यहाँ तो इतना ही जान लेना चाहिये कि संसार की सम्पूर्ण गतिविधियों को प्रेरणा देने वाले सभी स्वर गायत्री में मौजूद हैं । जो उनका रहस्य जानता है, वह चाहे जिस राग की स्वर-लहरी बजा सकता है और मनचाहे परिणाम उपस्थित कर सकता है ।

पूर्वा भवति गायत्री, मध्यमा सावित्री, पश्चिमा सन्ध्या सरस्वती ।
रक्ता गायत्री, श्वेता सावित्री, कृष्णा सरस्वती ॥१२॥

प्रणवे नित्ययुक्ता स्याद् व्याहृतिषु च सप्तसु। सर्वेषामेव पापानां संकरे समुपस्थिते। शतसाहस्त्रमभ्यस्ता गायत्री पावनं महत् ॥१३ ॥

उषः काले रक्ता, मध्याह्ने श्वेताऽपराह्ने कृष्णा। पूर्व सन्धि ब्राह्मी, मध्य सन्धि माहेश्वरी, परा सन्धि वैष्णवी। हंसवाहिनी ब्राह्मी, वृषवाहिनी माहेश्वरी, गरुडवाहिनी वैष्णवी ॥१४ ॥

पूर्वाह्नकाले सन्ध्या गायत्री, कुमारी रक्तांगी रक्तवासास्त्रिनेत्रा पाशांकुशाक्षमाला कमंडलुकरा हंसारूढा ऋग्वेदसहिता, ब्रह्मदैवत्या भूर्लोक व्यवस्थितादित्यपथगामिनी ॥१५ ॥

मध्याह्नकाले सन्ध्या सावित्री युवती श्वेतांगी श्वेतवासास्त्रिनेत्रा पाशांकुशत्रिशूलडमरुहस्ता वृषभारूढा यजुर्वेदसहिता, रुद्रदैवत्या भुवर्लोक व्यवस्थितादित्यपथगामिनी ॥१६ ॥

सायाह्नकाले सन्ध्या सरस्वती वृद्धा कृष्णांगी, कृष्णवासास्त्रिनेत्रा शंख- गदा- चक्र- पद्महस्ता- गरुडारूढा सामवेद- सहिता विष्णु- दैवत्या स्वर्लोक व्यवस्थितादित्यपथगामिनी ॥१७ ॥

गायत्री को तीन नामों से पुकारा जाता है। आरम्भिक अवस्था में गायत्री, मध्य अवस्था में सावित्री और अन्त अवस्था में सरस्वती। प्रारम्भ, तरुणाई और परिपक्वता, इन तीन भेदों के कारण एक ही शक्ति के तीन नाम रखे गये हैं। गायत्री की आभा अरुण है, सावित्री की श्वेत और सरस्वती की कृष्ण वर्ण-धुँधली है। जैसे सूर्य श्वेत वर्ण है पर प्रातःकाल में उसकी आभा लाल, मध्याह्न की शुभ्र और सन्ध्या में धुँधली हो जाती है। उसी प्रकार साधना काल में साधक को अपनी स्थिति के अनुसार यह तीनों वर्ण ध्यानावस्था में परिलक्षित होते हैं। गायत्री सदा प्रणव युक्त है। उसका उच्चारण सदा ॐकार समेत होता है। यद्यपि साधारण साधना में और विवेचना में तीन ही व्याहृतियों का प्रयोग होता है, पर ब्रह्म विवेचना के लिए- उपनिषद् विज्ञान के लिये सात व्याहृतियों का प्रयोग होता है। यदि सब पापों का समूह इकट्ठा हो जाए, तो भी उनका नाश शत-सहस्त्र गायत्री का अभ्यास करने से हो जाता है। यों मोटे अर्थ में शत सहस्त्र, एक लाख को और अभ्यास, जप को कहते हैं; परन्तु इस सूत्र का सूक्ष्म रहस्य इस प्रकार है- शत कहते हैं - निश्चित भाव से, सहस्त्रार कहते हैं- सहस्त्रार में- ब्रह्मरन्ध्र में गायत्री की धारणा का अभ्यास करने से पाप दूर होते हैं। निश्चित विधि से षट् चक्रों का वेधन कर ब्रह्मरन्ध्र तक गायत्री को पहुँचाने की विधि "गायत्री महाविज्ञान" के प्रथम भाग में वर्णित है। उस साधना से साधक अग्नि में तपे हुए स्वर्ण की भाँति निष्पाप हो जाता है। "शत सहस्त्र अभ्यास" पद में उसी साधना की ओर संकेत है।

पूर्व सन्ध्या को- प्रातःकाल की सन्ध्या को ब्राह्मी कहते हैं। यह हंसवाहिनी, कुमारी, रक्त अंगवाली, रक्त वस्त्र वाली, तीन नेत्र वाली, पाश, अंकुश, जप माला और कमण्डलु धारण करने वाली, ऋग्वेद सहित, ब्रह्म दैवत्या, भूः लोक में रहने वाली और सूर्य पथ से गमन करने वाली है।

आइए, उपर्युक्त आलंकारिक वर्णन के गूढ़ रहस्य पर विचार करें। प्रातःकाल का समय ब्रह्म-मुहूर्त का कहलाता है। उस समय ब्रह्म-तत्त्व की विशेषता रहने के कारण गायत्री को ब्राह्मी कहते हैं। हंस कहते हैं प्राण को। हंसारूढ़ अर्थात् प्राण पर छायी हुई। ब्राह्मी गायत्री प्राण पर अपना विशेष प्रभाव प्रकट करती है। कुमारी का अर्थ है- बाल्य-वृत्तियों से-चंचलता से युक्त। रक्त, गतिशीलता का-विकास विद्युत् का प्रतीक है। प्रातःकालीन गायत्री में गतिशीलता का- विकास विद्युत् के संचार का गुण है, यही उसका रक्तांगी और रक्तवस्त्रा होना है। त्रिनयनी-तीन दृष्टियों वाली, तीनों लोकों को दृष्टि में रखने वाली, शरीर, मस्तिष्क और अन्तःकरण को देखने वाली है। तीनों ओर दृष्टि रखती है, इसलिये उसे त्रिनयनी कहते हैं। पाश- अर्थात् बन्धन, अंकुश- अर्थात् नियन्त्रण, अक्षमाला- शब्द मातृकाएँ, कमण्डलु- अर्थात् धारणा, ऋग्वेद- अर्थात् ज्ञान, ब्रह्मदैवत्या- अर्थात् ब्रह्म की देव शक्ति। इन सब लक्षणों, गुणों और साधनों से सम्पन्न होने के कारण प्रातःकाल की गायत्री अपने साधक पर इन सब उपचारों का प्रयोग करती है। वह इन सब साधनों से ब्राह्मी गायत्री द्वारा तपाया जाता है और ब्रह्मभूत बनाया जाता है। ब्रह्म गायत्री भूर्लोक निवासिनी है। उसका इस भूर्लोक के प्राणियों द्वारा विशेष उपयोग होता है। भूः

लोक शरीर को भी कहते हैं, ब्राह्मी शरीर को स्वस्थ रखती है । वह सूर्य गामिनी है । जिस प्रकार सूर्य की तेजस्वी किरणें मनुष्य को विशेष रूप से प्रभावित करती हैं, वैसे ही गायत्री की शक्तियाँ भी काम करती हैं । सूर्य की किरणों और प्रात: गायत्री की शक्तियों की कार्य-विधि में बहुत कुछ समता है ।

अब मध्याह्न गायत्री के लक्षण देखिये । वह सावित्री नाम वाली युवती, श्वेतांगी, श्वेत वस्त्रा, त्रिनयना, पाश, अंकुश, त्रिशूल, डमरू लिये हुए है । वृषभ पर आरूढ़ है । यजुर्वेद सहित, रुद्र दैवत्या, भुव: लोक अवस्थित, सूर्य पथगामिनी है । इनमें से कुछ बातें तो ब्राह्मी के समान हैं- त्रिनयना, पाश, अंकुश, सूर्य पथगामिनी, इन चारों बातों की विवेचना पहले की जा चुकी है । अब शेष लक्षणों पर प्रकाश डालते हैं- युवती अर्थात् प्रौढ़, विकसित, परिपुष्ट, स्थिर, सुदृढ़ । श्वेत वर्ण अर्थात् प्रकाशवती, विस्तृत फैली हुई आलोकमय । परिपुष्ट होकर अपनी पूर्णावस्था के तेज से झिलमिलाती हुई गायत्री को श्वेत वर्ण, श्वेतवस्त्रा कहा है । सविता सूर्य के समान तेजस्वी होने से उनका सावित्री नाम है । त्रिशूल कहते हैं तीन दु:खों को- अज्ञान, अभाव और अशक्ति इन तीनों को वह अपने हाथ में, अपनी मुट्ठी में लिये हुए है- अर्थात् यह तीनों शूल उसके नियंत्रण में हैं । डमरू- ध्वनि का - वाणी का प्रतीक है । वृषभ धर्म का प्रतीक है । तरुण सावित्री धर्म पर आरूढ़ है । यजुर्वेद कर्मकाण्ड का प्रतीक है । वह कर्म की प्रेरणा करता है । रुद्र दैवत्या- अर्थात् भयंकर, उग्र, दिव्य शक्तियों वाली । भुव: लोक में निवास करने वाली, भुव: कहते हैं मानस लोक को । मस्तिष्क, विचार, तर्क, बुद्धि, सूझबूझ को परिमार्जित बनाने वाली है ।

अब सन्ध्याकाल की गायत्री के लक्षण देखिये । वह सावित्री के नाम वाली वृद्धा, कृष्णांगी, कृष्णवस्त्रा, तीन नेत्र वाली, शंख, चक्र, गदा, पद्म हाथ में लिये हुए, गरुड़ पर आरूढ़-सामवेद सहित, विष्णु दैवत्या, स्व:लोकनिवासिनी, सूर्यपथगामिनी है । सूर्य पथगामिनी और त्रिनयनी का वर्णन पहले हो चुका है । इसलिये इन दो लक्षणों को छोड़कर अन्य लक्षणों पर विचार करेंगे । स + रस् + वती = सरस्वती । सरसता वाली, संगीत, कला, कवित्व तथा अन्य स्थूल सूक्ष्म रसों की निर्झरिणी होने के कारण परिपक्व- सन्ध्याकालीन गायत्री को सरस्वती कहा है । वृद्धा का अर्थ है - परिपक्व, पूर्ण विकसित, विकास की अंतिम मर्यादा तक पहुँची हुई है । कृष्ण वर्ण- धुँधलापन-मिश्रण का द्योतक है । ब्रह्म और प्रकृति के उभय रूपों का मिश्रण काला होता है । पारा श्वेत है, गन्धक पीली है, इसी प्रकार ब्रह्म शुभ्र है, प्रकृति पीत है, दोनों के मिश्रण से काला रंग बनता है । भगवान् राम और कृष्ण के काला होने का यही कारण था । सन्ध्याकालीन गायत्री में ब्रह्म और प्रकृति का सम्मिश्रण होने से वह कृष्ण वर्ण वाली, कृष्ण वस्त्र वाली कहलाती है । सरस्वती के हाथ में चार पदार्थ हैं । शंख अर्थात् वाणी, चक्र अर्थात् तेज, गदा- अर्थात् विनाश, पद्म अर्थात् वैभव । इन चारों शक्तियों पर सरस्वती का आधिपत्य है । गरुड़ कहते हैं- क्रिया को, गतिशीलता को । सरस्वती का क्षेत्र विचार तक ही सीमित नहीं है वरन् वह क्रियाशील भी है । सामवेद, संगीत का- बाह्य गायन का प्रतीक है । विष्णु की सेविका दिव्य शक्तियों का प्रतिनिधित्व करने के कारण वह विष्णु दैवत्या कहलाती है । स्व:लोक कहते हैं- हृदय को- अन्त:करण को । सरस्वती वीणा के तारों को झंकृत करती है- अन्त:करण में विवेक जाग्रत् करती है ।

ऊपर ब्राह्मी , सावित्री और सरस्वती का विवेचन किया गया है । अविकसित, विकसित और परिपुष्ट इन भेदों से तीन रूप कहे गये हैं । इनको प्रात:, मध्याह्न , सन्ध्या इन तीन कालों में भी विभक्त कर दिया गया है । इन तीन भेदों में से साधक को अपने लिये जिस शक्ति की उपयोगिता दृष्टिगोचर होती हो, उसे साधना के लिये चुन लेना चाहिये ।

कान्यक्षर दैवतानि भवन्ति ? ॥१८॥

प्रथममाग्नेयं , द्वितीयं प्राजापत्यं तृतीयं सौम्यं, चतुर्थमैशानं, पञ्चमादित्यं, षष्ठं बार्हस्पत्यं, सप्तमं भगदैवत्यम्, अष्टमं पितृदैवत्यं नवममर्यमणं, दशमं सावित्रं, एकादशं त्वाष्ट्रं, द्वादशं पौष्णं, त्रयोदशमैन्द्राग्नं , चतुर्दशं वायव्यं, पञ्चदशं वामदेव्यं, षोडशं मैत्रावरुणं, सप्तदशं वाभ्रव्यं, अष्टादशं वैश्वदेव्यम्, एकोनविंशतिकं वैष्णव्यं, विंशतिकं वासवम्, एकविंशतिकं

तौषितं, द्वाविंशतिकं कौबेरं, त्रयोविंशतिकं आश्विनं, चतुर्विंशतिकं ब्राह्मं इत्यक्षरदैवतानि भवन्ति ॥१९ ॥

गायत्री के चौबीस अक्षरों के देवता कौन-कौन हैं ? इसका उत्तर देते हुए बताते हैं कि 'तत्' का देवता अग्नि, 'स' का प्रजापति, 'वि' का सोम, -'तु:' का ईशान, 'य' का आदित्य, 'रे' का बृहस्पति, 'णि' का भग, 'यम्' का पितृ, 'भ' का अर्यमा, 'गो' का सविता, 'दे' का त्वष्टा, 'व' का पूषा, 'स्य' का इन्द्र और अग्नि, 'धी' का वायु, 'म' का वामदेव, 'हि' का मित्र और वरुण, 'धि' का वभ्रु, 'यो' का विश्वदेव, 'यो' का विष्णु, 'न:' का वसु, 'प्र' का तुषित, 'चो' का कुबेर, 'द' का अश्विनी कुमार और 'यात्' का ब्रह्मा देवता है ।

ये देवता प्रत्येक अक्षर की शक्तियाँ हैं । इन शक्तियों का गायत्री के चौबीस अक्षर प्रतिनिधित्व करते हैं । इस महामन्त्र के साथ उन शक्तियों का साधना में आविर्भाव होता है ।

द्यौ मूर्ध्निसंगतास्ते, ललाटे रुद्रः, भ्रुवोर्मेघः चक्षुषोश्चन्द्रादित्यौ, कर्णयोः शुक्रबृहस्पती नासिके वायुदैवत्ये दन्तौष्ठावुभयसन्ध्ये, मुखमग्निः, जिह्वा सरस्वती, ग्रीवासाध्यानुगृहीतिः, स्तनयोर्वसवः , बाह्वोर्मरुतः, हृदयं पर्जन्यमाकाशमुदरं, नाभिरंतरिक्षं कट्योरिन्द्राग्नी, जघनं प्राजापत्यं, कैलासमलयावूरू, विश्वेदेवा जानुनी, जह्नु-कुशिकौ जंघाद्वयं, खुराः पितरः , पादौ वनस्पतयः अंगुलयो रोमाणि, नखाश्च मुहूर्त्तास्तेऽपि ग्रहाः केतुर्मासा ऋतवः सन्ध्याकालस्तथाच्छादनं सम्वत्सरो निमिषमहोरात्र आदित्यश्चन्द्रमाः ॥२० ॥

गायत्री को यदि एक मनुष्याकृति देवी माना जाए, तो उसके अंग-प्रत्यंगों में विविध देव-शक्तियों की स्थापना माननी होगी । गायत्री का ध्यान जब मनुष्याकृति देवी रूप में करते हैं, तो उसके दिव्य होने की धारणा की जाती है । गायत्री के अंग-प्रत्यंगों में जो शक्तियाँ निवास करती हैं, उनका ध्यान भी साधक को करना होता है । जब साधक अपने को गायत्री-शक्ति से ओत-प्रोत अनुभव करे, तब भी उसे ऐसा ही ज्ञान होना चाहिये कि मैं स्वयं उन शक्तियों से ओत-प्रोत हो रहा हूँ । मेरे अंग-प्रत्यंगों में वे ही देवतागण समाये हुए हैं, जो गायत्री के अंगों में हैं । इस भावना के कारण साधक अपने उपास्य देव की जाति में आ जाता है । कहा है कि - "देव बनकर देवता की उपासना करनी चाहिये ।" देव शक्तियाँ हमारे अंग-प्रत्यंगों में विराजमान हैं, यह भावना आत्म-श्रेष्ठता का संचार करती है और आत्म-स्थिति को देव- उपासना के योग्य बनाती है । अब गायत्री के अंगों में देव-शक्तियों की स्थापना का वर्णन देखिये ।

गायत्री के मस्तक में स्वर्ण, ललाट में रुद्र, भौंहों में मेघ, दोनों नेत्रों में चन्द्र-सूर्य, दोनों कानों में शुक्र और बृहस्पति, दोनों नथुनों में वायु, दन्त और ओष्ठों में दोनों सन्ध्याएँ, मुख में अग्नि, जिह्वा में सरस्वती, ग्रीवा में साध्य-गण, स्तनों में वसु-गण, दोनों भुजाओं में मरुद्गण, हृदय में पर्जन्य, उदर में आकाश, कटि में इन्द्राग्नि , जघन में प्रजापति, उरु में कैलाश और मलय पर्वत, जंघा में जह्नु और कुशिक, तलवों में पितृ-गण, चरण में वनस्पति-गण, अंगुलियों , रोम और नखों में मुहूर्त, ग्रह, धूमकेतु, मास, ऋतु और सन्ध्याएँ, आच्छादन, सम्वत्सर, वर्ष, दिन-रात्रि, सूर्य और चन्द्र गायत्री के निमेष हैं ।

सहस्त्रपरमां देवीं शतमध्यां दशावराम् । सहस्त्रनेत्रां गायत्रीं शरणमहं प्रपद्ये ॥२१ ॥

ॐ तत्सवितुर्वरेण्याय नमः । ॐ तत् पूर्व जयाय नमः । ॐ तत् प्रातरादित्य प्रतिष्ठाय नमः ॥२२ ॥

सायमधीयानो दिवसकृतं पापं नाशयति । प्रातरधीयानो रात्रिकृतं पापं नाशयति । तत् सायं प्रातरधीयानो ऽपापो भवति ॥२३ ॥

य इदं गायत्रीहृदयं ब्राह्मणः पठेत् अपेयपानात् पूतो भवति । अभक्ष्यभक्षणात् पूतो भवति । अज्ञानात् पूतो भवति । स्वर्ण स्तेयात् पूतो भवति । गुरु तल्पगमनात् पूतो भवति । अपंक्ति

पावनात् पूतो भवति। ब्रह्महत्यायाः पूतो भवति। अब्रह्मचारी ब्रह्मचारी भवति। इत्यनेन हृदयेनाधीतेन क्रतु सहस्रेणेष्टो भवति। षष्टि शतसहस्राणि जप्यानि फलानि भवन्ति अष्टौ ब्राह्मणान् सम्यग् ग्राहयेदर्थसिद्धिर्भवति ॥२४॥

य इदं नित्यमधीयानो ब्राह्मणः प्रयतः शुचिः सर्वपापैः प्रमुच्यते इति। ब्रह्मलोके महीयते इत्याह भगवान् याज्ञवल्क्यः ॥२५॥

॥ इति "गायत्री हृदयम्" सम्पूर्णम् ॥

गायत्री का एक हजार जप करना नित्य श्रेष्ठ है। इतना न हो सके तो मध्यम रूप से सौ जप भी किये जा सकते हैं। अन्ततः इतना भी न हो सके, तो कम से कम दस बार तो अवश्य ही करना चाहिये। गायत्री सहस्र नेत्र वाली है, उसकी हजारों आँखें हैं, वह सर्वत्र सब कुछ देखती है, उससे कुछ भी छिपा हुआ नहीं है। ऐसी सर्वत्रदर्शी ईश्वरीय शक्ति को सर्व-व्यापक समझकर अपने विचार और कार्य ऐसे रखने चाहिये, जो दिव्य हों, माता की दृष्टि में उचित, उत्तम, धर्ममय जँचें। अपने उद्देश्य, आचरण और व्यवहार को श्रेष्ठ रखना ही गायत्री की भक्ति है। सच्चा साधक वह है, जो भक्तिपूर्वक वेदमाता की शरण में जाता है।

'ॐ तत् सवितुवरेण्यं' इत्यादि पदों वाले मंत्रों को नमस्कार है, जिनके द्वारा माता का साक्षात्कार होता है। ॐ तत् आदि शब्दों के साथ किये हुए पूर्व जप को नमस्कार है, क्योंकि उस जप के द्वारा आत्म-ब्रह्म की प्राप्ति होती है। ॐ तत् सहित भगवान् आदित्य को नमस्कार है, क्योंकि उनके प्रकाश और प्रेरणा से पथ में प्रगति होती है।

सायंकाल में गायत्री का पाठ करने से, दिन में किये हुए पाप नष्ट हो जाते हैं। प्रातः पाठ करने से रात्रि में किये हुए पाप नष्ट हो जाते हैं। सायं-प्रातः दोनों पाठ करने से पापी भी निष्पाप हो जाते हैं। मद्यादि पीने, अभक्ष्य खाने, अज्ञान में डूबे रहने, चोरी करने, व्यभिचार, ब्रह्महत्या, दुराचार आदि पापों से छुटकारा मिल जाता है, ऐसा भगवान् याज्ञवल्क्य ने कहा है।

पाठ के द्वारा निष्पाप हो जाने का रहस्य यह है कि श्रद्धा और विश्वासपूर्वक इन महान् ब्रह्मविद्या का विवेचन, चिन्तन, मनन करने के कारण विवेक की जागृति होती है। मनुष्य को पाप की निरर्थकता और पुण्य की सार्थकता समझ में आ जाती है। फलस्वरूप वह कुमार्ग से विरत होकर सन्मार्ग पर चलना अपनी नीति बनाता है। अन्तःकरण में धँसे हुए अज्ञानान्धकार को बहिष्कृत करके ज्ञान का प्रकाश धारण करता है। पूर्वकृत पापों का प्रायश्चित्त करता है और भविष्य में उन्हें न करने की प्रतिज्ञा करता है। ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाने पर नये पाप हो जाना बन्द हो जाता है, पुराने प्रारब्ध बने हुए पाप धीरे-धीरे भुगतते जाते हैं, इस प्रकार वह थोड़े ही दिनों में निष्पाप बन जाता है। कुबुद्धि का परित्याग और सद्बुद्धि की धारणा ही पाप-नाश का वास्तविक कारण है। परन्तु वह कारण यदि इस ब्रह्मज्ञान के पाठ, चिन्तन, मनन से उत्पन्न हुआ है, तो उसका श्रेय इस पाठ या मनन को ही दिया जायेगा। इसलिये पाठ द्वारा पाप-निवृत्ति का वर्णन किया जाता है।

'गायत्री-हृदय' में जो विस्तृत तत्त्व-ज्ञान भरा पड़ा है, उसको भली प्रकार हृदयंगम कर लेने से आत्मा में उतना ही प्रकाश हो जाता है, उतनी ही आत्म- शुद्धि हो जाती है, जितनी कि साठ लाख गायत्री जप करने से। इस 'गायत्री-हृदय' में वर्णित तत्त्वज्ञान को आत्मसात् कर लेने का पुण्य-फल इतना अधिक है कि इसकी तुलना और किसी कार्य से नहीं की जा सकती।

गायत्री पञ्जरम्

किसी वस्तु के सम्बन्ध में विचार करने के लिए यह आवश्यक है कि उसकी कोई मूर्ति हमारे मनःक्षेत्र में हो। बिना कोई प्रतिमूर्ति बनाये मन के लिये किसी भी विषय में कुछ सोचना असम्भव है। मन की प्रक्रिया ही यह है कि पहले वह किसी वस्तु का आकार निर्धारित कर लेता है, तब उसके बारे में कल्पना-शक्ति काम करती

है । समुद्र भले ही किसी ने न देखा हो, पर जब समुद्र के बारे में कुछ सोच-विचार किया जायेगा, तब एक बड़े जलाशय की प्रतिमूर्ति मन:क्षेत्र में अवश्य रहेगी । भाषा विज्ञान का यही आधार है । प्रत्येक शब्द के पीछे एक आकृति रहती है । 'कुत्ता' शब्द जानना तभी सार्थक है, जब 'कुत्ता' शब्द उच्चारण करते ही एक प्राणी विशेष की आकृति सामने आ जाये । न जानी हुई विदेशी भाषा कोई हमारे सामने बोले, तो उसके शब्द कान में पड़ते हैं, पर वे शब्द चिड़ियों के चहचहाने की तरह निरर्थक जान पड़ते हैं । कोई भाव मन में उदय नहीं होता । कारण यही है कि उस शब्द के पीछे रहने वाली आकृति का हमें पता नहीं होता । जब तक आकृति सामने न आए, तब तक मन के लिये असम्भव है कि उस सम्बन्ध में कोई सोच-विचार करे ।

ईश्वर या ईश्वरीय शक्तियों के बारे में यही बात है । चाहे उन्हें सूक्ष्म माना जाए या स्थूल, निराकार माना जाए या साकार, इन दार्शनिक और वैज्ञानिक झमेलों में पड़ने से मन का कोई प्रयोजन नहीं । उससे यदि इस दिशा में कोई सोच-विचार का काम लेना है, तो कोई न कोई आकृति बनाकर उसके सामने उपस्थित करनी पड़ेगी, अन्यथा वह ईश्वर या उसकी शक्ति के बारे में कुछ भी नहीं सोच सकेगा । जो लोग ईश्वर को निराकार मानते हैं, वे भी 'निराकार' का कोई न कोई आकार बनाते हैं । आकाश जैसा निराकार, प्रकाश जैसा तेजोमय, अग्नि जैसा व्यापक, परमाणुओं जैसा अदृश्य । आखिर कोई न कोई आधार उस निराकार का भी स्थापित करना ही होगा । जब तक आकार की स्थापना न होगी, मन, बुद्धि और चित्त से उसका कुछ भी सम्बन्ध स्थापित नहीं हो सकेगा ।

इस महा सत्य को ध्यान में रखते हुए निराकार, अचिन्त्य, बुद्धि से अगम्य , वाणी से अतीत परमात्मा का मन से सम्बन्ध स्थापित करने के लिये भारतीय आचार्यों ने ईश्वर की आकृतियाँ स्थापित की हैं । इष्टदेवों के ध्यान की सुन्दर, दिव्य आकृति की प्रतिमायें गढ़ी हैं । उनके साथ दिव्य आयुध, दिव्य वाहन, दिव्य गुण, दिव्य स्वभाव एवं शक्तियों का सम्बन्ध किया गया है । ऐसी आकृतियों का भक्तिपूर्वक ध्यान करने से साधक उनके साथ एकीभूत होता है, दूध और पानी की तरह साध्य और साधक का मिलन होता है । भृंगी झींगुर को पकड़ ले जाती है और उसके सामने भिनभिनाती है, झींगुर उस गुञ्जन को सुनता है और इतना तन्मय हो जाता है कि उसकी आकृति तक बदल जाती है और वह झींगुर भृंगी बन जाता है । दिव्य कर्म स्वभाव वाली देवाकृति का ध्यान करते रहने से साधक में भी उन्हीं दिव्य शक्तियों का आविर्भाव होता है । जैसे रेडियो यन्त्र को माध्यम बनाकर सूक्ष्म आकाश में उड़ती फिरने वाली विविध ध्वनियों को सुना जा सकता है, उसी प्रकार ध्यान में देवमूर्ति की कल्पना करना एक आध्यात्मिक रेडियो स्थापित करना है, जिसके माध्यम से सूक्ष्म जगत् में विचरण करने वाली विविध ईश्वरीय शक्तियों को साधक पकड़ सकता है । इसी सिद्धान्त के अनुसार अनेक इष्टदेवों की अनेक आकृतियाँ साधकों को ध्यान करने के लिये बनाई गयी हैं । इन देव आकृतियों का स्वतंत्र विज्ञान है । अमुक देवता की अमुक प्रकार की आकृति क्यों रखी गयी है ? इसका एक क्रमबद्ध रहस्य है । उसकी चर्चा तो स्वतन्त्र पुस्तक में करेंगे, यहाँ तो इतना ही जान लेना पर्याप्त होगा कि अमुक प्रयोजन के लिये अमुक ईश्वरीय शक्तियों को अपनी ओर आकर्षित करने के लिये जो आकृति योगी लोगों को ठीक सिद्ध हुई है, वही आकृति उस देवता की घोषित कर दी गयी है ।

जहाँ अन्य प्रयोजनों के लिये अन्य देवाकृतियाँ हैं, वहाँ इस विश्व-ब्रह्माण्ड को ईश्वरमय देखने के लिये 'विराट् रूप' परमेश्वर की प्रतिमूर्ति विनिर्मित की गयी है । मनुष्य की सारी आत्मोन्नति और सुख-शान्ति इस बात पर निर्भर है कि उसका आन्तरिक और बाह्य जीवन पवित्र एवं निष्पाप हो, समस्त प्रकार के क्लेश, दु:ख , अभाव एवं विक्षोभों के कारण मनुष्य के शारीरिक एवं मानसिक पाप हैं । यदि वह इन पापों से बचता जाता है, तो फिर और कोई कारण ऐसा नहीं, जो इसकी ईश्वर प्रदत्त अनन्त सुख-शान्ति में बाधा डाल सके । पापों से बचने के लिये ईश्वरीय भय की आवश्यकता होती है । ईश्वर सर्वत्र व्यापक है, इस बात को जानते तो सब हैं, पर अनुभव बहुत कम लोग करते हैं । जो मनुष्य यह अनुभव करेगा कि ईश्वर मेरे चारों ओर छाया हुआ है और वह पाप का दण्ड अवश्य देता है- जिसको यह भावना अनुभव में आने लगेगी, वह पाप नहीं कर सकेगा । जिस चोर के चारों ओर सशस्त्र पुलिस घेरा डाले खड़ी हो और हर तरफ से उस पर आँखें गड़ी हुई हों, वह ऐसी दशा में भला किस प्रकार चोरी करने का साहस करेगा ?

परमात्मा की आकृति चराचरमय ब्रह्माण्ड में देखना ऐसी साधना है, जिसके द्वारा सर्वत्र परमात्मा अनुभव करने की चेतना जाग्रत् हो जाती है। यही विश्व मानव की पूजा है, इसे ही विराट् दर्शन कहते हैं। रामायण में भगवान् राम ने अपने जन्म-काल में कौशल्या को विराट् रूप दिखाया था। एक बार भोजन करते समय भी राम ने माता को विराट् रूप दिखलाया था। उत्तरकाण्ड में काकभुशुण्डि जी के सम्बन्ध में वर्णन है कि वे एक बार भगवान् के मुख में चले गये, तो वहाँ सारे ब्रह्माण्ड को देखा। भगवान् कृष्ण ने भी इसी प्रकार कई बार अपने विराट् रूप दिखाये। मिट्टी खाने के अपराध में मुँह खुलवाते समय यशोदा को विराट् रूप दिखाया, महाभारत के उद्योग पर्व में दुर्योधन ने भी ऐसा ही रूप देखा। अर्जुन को भगवान् ने युद्ध के समय में विराट् रूप दिखलाया, जिसका गीता के ११वें अध्याय में सविस्तार वर्णन किया गया है।

इस विराट् रूप को देखना हर किसी के लिये सम्भव है। अखिल विश्व ब्रह्माण्ड को परमात्मा की विशालकाय मूर्ति देखना और उसके अन्तर्गत-उसके अंग-प्रत्यंगों के रूप में समस्त पदार्थों को देखने, प्रत्येक स्थान को ईश्वर से ओत-प्रोत देखने की भावना करने से भगवद् बुद्धि जाग्रत् होती है और सर्वत्र प्रभु की सत्ता के व्याप्त होने का सुदृढ़ विश्वास होने से मनुष्य पाप से छूट जाता है। फिर उससे पाप कर्म नहीं बन सकते। निष्पाप होना इतना बड़ा लाभ है कि उसके फलस्वरूप सब प्रकार के दुःखों से छुटकारा मिल जाता है। अन्धकार के अभाव का नाम है- **प्रकाश** और दुःख के अभाव का नाम है- आनन्द। विराट् दर्शन के फलस्वरूप निष्पाप हुआ व्यक्ति, सदा अक्षय **आनन्द** का उपभोग करता है।

गायत्री परमात्मा की शक्ति है। परमात्मा की शक्ति सर्वत्र, अणु-अणु में, विश्व-ब्रह्माण्ड में व्याप्त है। जो कुछ है गायत्रीमय है। गायत्री के शरीर में ही यह जगत् है, यह भावना 'गायत्री का विराट् रूप दर्शन' कहलाती है। नीचे दिये हुए "गायत्री पञ्जर स्तोत्र" में यही विराट् दर्शन है। पञ्जर कहते हैं ढाँचे को। गायत्री का ढाँचा, सम्पूर्ण विश्व में है, यह इस स्तोत्र में बताया गया है। इस स्तोत्र का भावना सहित ध्यान करने से अन्तःलोक और बाह्य-जगत् में विराट् गायत्री के दर्शन होते हैं। उस दर्शन के फलस्वरूप पाप करने का किसी को उसी प्रकार साहस नहीं हो सकता जैसे कि पुलिस से घिरा हुआ व्यक्ति चोरी करने का प्रयत्न नहीं करता।

॥ अथ गायत्री पञ्जरम् ॥

भूर्भुवः सुविरित्येतैर्निगमत्व प्रकाशिकाम्।
महर्जनस्तपः सत्यं लोकोपरि सुसंस्थिताम्॥१॥

भूः भुवः स्वः द्वारा निगम को प्रकाशित करती है, महः, जनः, तपः, सत्यं इन लोकों से ऊपर स्थित है।

कृतगान- विनोदादि कथालापेषु तत्पराम्।
तदित्यवाङ् मनोगम्य तेजो रूपधरां पराम्॥२॥

गान आदि से विनोद और कथा आदि में तत्पर वह वाणी और मन से अगम्य होने पर भी जो तेज रूप धारण किये हुए है।

जगतः प्रसवित्रीं तां सवितुः सृष्टिकारिणीम्।
वरेण्यमित्यन्नमयीं पुरुषार्थफलप्रदाम्॥३॥

जगत् का प्रसव करने वाली को सविता की सृष्टिकर्त्री कहा है। वरेण्य का अर्थ अन्नमयी है, वह पुरुषार्थ का फल देती है।

अविद्या वर्ण वर्ज्यां च तेजोवद्गर्भसंज्ञिकाम्।
देवस्य सच्चिदानन्द परब्रह्म रसात्मिकाम्॥४॥

वह अविद्या है, वर्ण रहित है, तेजयुक्त है, गर्भ संज्ञा वाली है तथा सच्चिदानन्द परब्रह्म देव की रसमयी है।

यद्वयं धीमहि सा वै ब्रह्माद्वैतस्वरूपिणीम्।
धियो योनस्तु सविता प्रचोदयादुपासिताम्॥५॥

हम ध्यान करते हैं कि वह अद्वैत ब्रह्म स्वरूपिणी है, सविता स्वरूपा हमारी बुद्धि को उपासना के लिये प्रेरणा देती है।

तादृगस्या विराट्रूपां किरीटवरराजिताम्।
व्योमकेशालकाकाशां रहस्यं प्रवदाम्यहम्॥६॥

इस प्रकार वह विराट् रूप वाली है, वह सुन्दर किरीट धारण करती है। व्योम केश हैं, आकाश अलकें हैं, इस प्रकार इसका रहस्य कहा जाता है।

मेघ भ्रुकुटिकाक्रान्तां विधिविष्णुशिवार्चिताम्।
गुरु भार्गवकर्णां तां सोमसूर्याग्निलोचनाम्॥७॥

भौंहों से आक्रान्त मेघ हैं। ब्रह्मा, विष्णु और शिव से जो अर्चित है, गुरु, शुक्र जिसके कान हैं, सोम, सूर्य, अग्नि जिसके नेत्र हैं।

पिंगलेडाद्वयं नूनं वायुनासापुटान्विताम्।
सन्ध्यौभयोष्ठपुटितां लसद्वाग्भूपजिह्विकाम्॥८॥

इडा, पिंगला दोनों नासापुट हैं। दोनों सन्ध्या, दोनों ओष्ठ हैं, उपजिह्वा ही वाणी है।

सन्ध्याद्युमणिकण्ठां च लसद्बाहुसमन्विताम्।
पर्जन्य हृदयासक्तां वसु-सुस्तनमण्डलाम्॥९॥

उस सन्ध्या रूपी द्युमणि से कण्ठ शोभित है। बाहु शोभायुक्त हैं तथा पर्जन्य हृदय है और स्तनमण्डल वसु है।

वितताकाशमुदरं सुनाभ्यन्तरदेशकाम्।
प्रजापत्याख्यजघनां कटीन्द्राणीतिसंज्ञिकाम्॥१०॥

आकाश उदर है, अन्तरदेश नाभि है। जघन प्रजापति है, कटि इन्द्राणी है।

ऊरुमलयमेरुभ्यां सन्ति यत्रासुरद्विषः।
जानुनी जह्नु कुशिकौ वैश्वदेवसदाभुजाम्॥११॥

ऊरु मलय- मेरु है, जहाँ असुर द्वेषी देव निवास करते हैं। जानु में जह्नु कुशिक है, भुजाएँ वैश्वदेव हैं।

अयनद्वयं जंघाद्यं खुरादि पितृसंज्ञिकाम्।
पदांघ्रि नखरोमादि भूतलद्रुमलांछिताम्॥१२॥

जंघाओं के दोनों आदि स्थान अयन हैं, खुर आदि पितृ हैं, पद, अंघ्रि, नख, रोम आदि पृथ्वी तल के पेड़ आदि कहे हैं।

ग्रहराशिर्देवर्षयो मूर्तिं च परसंज्ञिकाम्।
तिथिमासस्तुवर्षाख्यं सुकेतुनिमिषात्मिकाम्॥
माया कल्पित वैचित्र्यां सन्ध्याच्छादन संवृताम्॥१३॥

ग्रह, राशि, देव, ऋषि, परसंज्ञक शशि की मूर्तियाँ हैं। तिथि, मास, ऋतु, वर्ष तथा सुकेतु आदि निमेष हैं। माया से रचित विचित्रता वाली तथा सन्ध्या के आवरण से युक्त है।

ज्वलत्कालानलप्रभां तडित्कोटिसमप्रभाम्।
कोटिसूर्य-प्रतीकाशां चन्द्रकोटि-सुशीतलाम्॥१४॥

कालाग्नि की तरह ज्वलन है, करोड़ों बिजलियों के समान प्रभायुक्त है, करोड़ों सूर्य की तरह प्रकाशवान् और करोड़ों चन्द्रमा के समान शीतल है ।

सुधामण्डलमध्यस्थां सान्द्रानन्दाऽमृतात्मिकाम् ।
प्रागतीतां मनोरम्यां वरदां वेदमातरम् ॥१५ ॥

सुधा मण्डल के मध्य में आनन्द और अमृतयुक्त है, प्राक् है, अतीत है, मनोहर है, वरदा है और वेदमाता है ।

षडंगा वर्णिता सा च तैरेव व्यापकत्रयम् ।
पूर्वोक्तदेवतां ध्यायेत्साकारगुणसंयुताम् ॥१६ ॥

इसके छः अंग हैं, यह तीनों भुवनों में व्यापक है । इन पूर्वोक्त गुणों से संयुक्त देवता का ध्यान करना चाहिये ।

पञ्चवक्त्रां दशभुजां त्रिपञ्चनयनैर्युताम् ।
मुक्ताविद्रुमसौवर्णां स्वच्छशुभ्रसमाननाम् ॥१७ ॥

पाँच मुँह हैं, दश भुजाएँ हैं, पन्द्रह नेत्र हैं और मुक्ता, विद्रुम के तुल्य सुवर्ण, सफेद तथा शुभ्र आनन हैं ।

आदित्य-मार्गगमनां स्मरेद् ब्रह्मस्वरूपिणीम् ।
विचित्र-मन्त्र-जननीं स्मरेद्विद्यां सरस्वतीम् ॥१८ ॥

वह सूर्य मार्ग से गमन करती है, उस ब्रह्म स्वरूपिणी का स्मरण करना चाहिये । उन विचित्र मन्त्रों की जननी विद्या सरस्वती का स्मरण करना चाहिये ।

॥इति गायत्री पञ्जरम् ॥

अन्यत्र भी इस प्रकार के प्रमाण पाये जाते हैं, जिनमें पिण्ड में ही ब्रह्माण्ड की स्थिति होने की पुष्टि की गयी है, देखिये-

देहेऽस्मिन् वर्तते मेरुः सप्तद्वीपसमन्वितः ।
सरितः सागराः शैलाः क्षेत्राणि क्षेत्रपालकाः ॥
ऋषयो मुनयः सर्वे नक्षत्राणि तथा ग्रहाः ।
पुण्यतीर्थानि पीठानि वर्तन्ते पीठ देवताः ॥
सृष्टिसंहारकर्त्तारौ भ्रमन्तौ शशिभास्करौ ।
नभो वायुश्च वह्निश्च जलं पृथ्वी तथैव च ॥
त्रैलोक्ये यानि भूतानि तानि सर्वाणि देहतः ।
मेरुं संवेष्ट्य सर्वत्र व्यवहारः प्रवर्त्तते ॥
जानाति यः सर्वमिदं स योगी नात्र संशयः ।
ब्रह्माण्डसंज्ञके देहे यथादेशं व्यवस्थितः ॥

- शिव संहिता

मनुष्य शरीर इस विशाल ब्रह्माण्ड की प्रतिमूर्ति है, जो शक्तियाँ इस विश्व का परिचालन करती हैं, वे सब इस मानव देह में विद्यमान हैं ।

इस शरीर में सप्तद्वीप सहित मेरु है । नदियाँ, सागर, पर्वत, खेत, किसान, ऋषि, मुनि, सब नक्षत्र, ग्रह, पुण्यतीर्थ, पीठ और पीठ-देवता विद्यमान हैं । सृष्टि और संहार करने वाले चन्द्र, सूर्य घूम रहे हैं । आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी तीनों लोकों में जितने भी भूत हैं वे सब शरीर में हैं । मेरु को संवेष्टन कर सर्वत्र व्यवहार होता है । जो भी इनको जानता है, वह योगी है । इसमें संशय नहीं कि ये सब ब्रह्माण्ड नामक देह में यथा आदेश व्यवस्थित हैं ।

स एव पुरुषस्तस्मादण्डं निर्भेद्य निर्गतः ।
सहस्त्रोर्वङ्घ्रिबाह्वक्षः सहस्राननशीर्षवान् ॥
यस्येहावयवैर्लोकान् कल्पयन्ति मनीषिणः ।
कट्यादिभिरधः सप्त सप्तोर्ध्वं जघनादिभिः ॥
भूर्लोकः कल्पितः पद्भ्यां भुवर्लोकोऽस्यनाभितः ।
हृदा स्वर्लोक उरसा महर्लोको महात्मनः ॥
ग्रीवायां जनलोकोऽस्य तपोलोकः स्तनद्वयात् ।
मूर्द्धाभिः सत्यलोकश्च ब्रह्म लोकः सनातनः ॥
तत्कट्या चातलं क्लृप्तमूरुभ्यां वितलं विभोः ।
जानुभ्यां सुतलं शुद्धं जंघाभ्यां च तलातलम् ॥
महातलं तु गुल्फाभ्यां प्रपदाभ्यां रसातलम् ।
पातालं पादतलजमिति लोकमयः पुमान् ॥

इसलिए यह भी पुरुष प्राण को भेदन कर निकल गया, जिसके हजार ऊरु, अंगुली, बाहु, नेत्र और हजार ही मुख और शिर थे तथा इस संसार में विद्वान् जिसके अवयवों के द्वारा लोकों की कल्पना करते हैं । कटि से नीचे सात और नितम्ब से ऊपर सात लोक हैं । पैरों में भू लोक की कल्पना की है, नाभि से भुवः लोक की, हृदय में स्वर्लोक की, वक्षस्थल से महः लोक, गर्दन से जनःलोक की तथा दोनों स्तनों में तपः लोक की और मूर्द्धा में सत्य-लोक की । वह ब्रह्म लोक सनातन है, उसकी कटि में अतल कल्पित किया है । ऊरुओं में वितल, घुटनों में सुतल, पिण्डलियों में तलातल, गुल्फ में महातल, पञ्जों में रसातल और पादतल में पाताल । यह लोकमय पुरुष हैं ।

इन श्लोकों का पाठ करना पर्याप्त न होगा । इस पर विचारपूर्वक, भक्ति-भावना के साथ चित्त एकाग्र किया जाना चाहिए । विराट् विश्व में अपने इष्टदेव को व्याप्त देखने की अनुभूति जब प्रत्यक्ष होने लगती है, तो प्रतिक्षण ईश्वर के दर्शन का लाभ प्राप्त करने वाले स्वर्ग का साक्षात्कार इसी जीवन में होने लगता है ।

गायत्री संहिता

आदि शक्तिरिति विष्णोस्तामहं प्रणमामि हि ।
सर्गः स्थितिर्विनाशश्च जायन्ते जगतोऽनया ॥१ ॥

यह गायत्री ही परमात्मा की आदि शक्ति है उसको मैं प्रणाम करता हूँ । इसी शक्ति से संसार का निर्माण, पालन और विनाश होता है ।

नाभि- पद्म- भुवा विष्णोर्ब्रह्मणा निर्मितं जगत् ।
स्थावरं जंगमं शक्त्या गायत्र्या एव वै ध्रुवम् ॥२ ॥

विष्णु की नाभि-कमल से उत्पन्न हुए ब्रह्मा ने गायत्री की शक्ति से जड़ तथा चेतन संसार भी बनाया ।

चन्द्रशेखर केशेभ्यो निर्गता हि सुरापगा ।
भगीरथं ततारैव परिवारसमं यथा ॥३ ॥
जगद्धात्री समुद्भूय या हृन्मानसरोवरे ।
गायत्री सकुलं पारं तथा नयति साधकम् ॥

सास्ति गंगैव ज्ञानाख्यसुनीरेण समाकुला।
ज्ञान गंगा तु तां भक्त्या वारं-वारं नमाम्यहम् ।।५ ।।

जिस प्रकार शिव के केशों से निकलने वाली गंगा ने परिवार सहित भगीरथ को पार कर दिया, उसी प्रकार संसार का पालन करने वाली गायत्री, हृदयरूपी मानसरोवर से प्रकट होकर सपरिवार साधक को भवसागर से पार ले जाती है। वही गायत्री ज्ञानरूपी जल से परिपूर्ण गंगा है। उस गंगा को मैं भक्ति से बार-बार नमस्कार करता हूँ।

ऋषयो वेद- शास्त्राणि सर्वे चैव महर्षयः।
श्रद्धया हृदि गायत्रीं धारयन्ति स्तुवन्ति च ।।६ ।।

ऋषि लोग, वेद, शास्त्र और समस्त महर्षि गायत्री को श्रद्धा से हृदय में धारण करते और उनकी स्तुति करते हैं।

ह्रीं श्रीं क्लीं चेति रूपैस्तु त्रिभिर्वा लोकपालिनी।
भासते सततं लोके गायत्री त्रिगुणात्मिका।। ७ ।।

ह्रीं, श्रीं, क्लीं इन तीनों रूपों से संसार का पालन करने वाली त्रिगुणात्मक गायत्री संसार में निरन्तर प्रकाशित होती है।

गायत्र्यैव मता माता वेदानां शास्त्रसम्पदाम्।
चत्वारोऽपि समुत्पन्ना वेदास्तस्या असंशयम् ।।८ ।।

शास्त्रों की सम्पत्ति रूप वेदों की माता गायत्री ही मानी जाती है। निश्चित ये चारों ही वेद इस गायत्री से उत्पन्न हुए हैं।

परमात्मनस्तु या लोके ब्रह्म शक्तिर्विराजते।
सूक्ष्मा च सात्त्विकी चैवं गायत्रीत्यभिधीयते ।।९ ।।

संसार में परमात्मा की जो सूक्ष्म और सात्त्विक ब्रह्मशक्ति विद्यमान है, वह ही गायत्री कही जाती है।

प्रभावादेव गायत्र्या भूतानामभिजायते।
अन्तःकरणेषु देवानां तत्त्वानां हि समुद्भवः ।।१० ।।

प्राणियों के अन्तःकरण में दैवी तत्त्वों का प्रादुर्भाव गायत्री के प्रभाव से ही होता है।

गायत्र्युपासनाकरणादात्मशक्तिर्विवर्धते ।
प्राप्यते क्रमशोऽस्य सामीप्यं परमात्मनः ।।११ ।।

गायत्री की उपासना करने से आत्मबल बढ़ता है। धीरे-धीरे जन्म- बन्धन रहित परमात्मा की समीपता प्राप्त होती है।

शौचं शान्तिर्विवेकश्चैतल्लाभ त्रयमात्मिकम्।
पश्चादवाप्यते नूनं सुस्थिरं तदुपासकम्।। १२ ।।

मन को वश में रखने वाली गायत्री के उस उपासक को उपासना के पश्चात् पवित्रता, शान्ति और विवेक- ये तीन आत्मिक लाभ प्राप्त होते हैं।

कार्येषु साहसः स्थैर्यं कर्मनिष्ठा तथैव च।
एते लाभाश्च वै तस्माज्जायन्ते मानसास्त्रयः ।।१३ ।।

कार्यों में साहस, स्थिरता और वैसी ही कर्तव्यनिष्ठा ये तीन मन सम्बन्धी लाभ उसको प्राप्त होते हैं।

पुष्कलं धन- संसिद्धिः सहयोगश्च सर्वतः।
स्वास्थ्यं वा त्रय एते स्युस्तस्माल्लाभाश्च लौकिकाः ।।१४ ।।

संतोषजनक धन की वृद्धि, सब ओर से सहयोग और स्वस्थता ये तीन सांसारिक लाभ उससे होते हैं।

काठिन्यं विविधं घोरं ह्यापदां संहतिस्तथा।
शीघ्रं विनाशतां यान्ति विविधा विघ्नराशयः ॥१५॥

नाना प्रकार की घोर कठिनाई और विपत्तियों का समूह, नाना प्रकार के विघ्नों के समूह इससे शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं।

विनाशादुक्त शत्रूणामन्तः शक्तिर्विवर्धते।
संकटानामनायासं पारं याति तया नरः ॥१६॥

उपर्युक्त शत्रुओं के विनाश से आन्तरिक शक्ति बढ़ती है। आन्तरिक शक्ति से मनुष्य सहज ही संकटों से पार हो जाता है।

गायत्र्युपासकस्वान्ते सत्कामा उद्भवन्ति हि।
तत्पूर्तयेऽभिजायन्ते सहजं साधनान्यपि ॥१७॥

निश्चय ही गायत्री के उपासक के हृदय में सदिच्छाएँ पैदा होती हैं। उनकी पूर्ति के लिये सहज में साधन भी मिल जाते हैं।

त्रुटयः सर्वथा दोषा विघ्ना यान्ति यदान्तताम्।
मानवो निर्भयं याति पूर्णोन्नति पथं तदा ॥१८॥

जब सब प्रकार के दोष, भूलें और विघ्न विनाश को प्राप्त हो जाते हैं, तब मनुष्य निर्भय होकर पूर्ण उन्नति के मार्ग पर चलता है।

बाह्यंचाभ्यन्तरं त्वस्य नित्यं सन्मार्गगामिनः।
उन्नतेरुभयं द्वारं यात्युन्मुक्तकपाटताम् ॥१९॥

सर्वदा सन्मार्ग पर चलने वाले ऐसे व्यक्ति के बाह्य और भीतरी दोनों उन्नति के द्वार खुल जाते हैं।

अतः स्वस्थेन चित्तेन श्रद्धया निष्ठया तथा।
कर्त्तव्याविरतं काले गायत्र्याः समुपासना ॥२०॥

इसलिये श्रद्धा से, निष्ठा से तथा स्वस्थ चित्त से प्रतिदिन निरन्तर ठीक समय पर गायत्री की उपासना करनी चाहिये।

दयालुः शक्ति सम्पन्ना माता बुद्धिमती यथा।
कल्याणं कुरुते ह्येव प्रेम्णा बालस्य चात्मनः ॥२१॥
तथैव माता लोकानां गायत्री भक्तवत्सला।
विदधाति हितं नित्यं भक्तानां ध्रुवमात्मनः ॥२२॥

जैसे दयालु, शक्तिशालिनी और बुद्धियुक्त माता प्रेम से अपने बालक का कल्याण ही करती है, उसी प्रकार भक्तों पर प्यार करने वाली गायत्री संसार की माता है, वह अपने भक्तों का सर्वदा कल्याण ही करती है।

कुर्वन्नपि त्रुटीर्लोके बालको मातरं प्रति।
यथा भवति कश्चिन्न तस्या अप्रीतिभाजनः ॥२३॥
कुर्वन्नपि त्रुटीर्भक्तः क्वचित् गायत्र्युपासने।
न तथा फलमाप्नोति विपरीतं कदाचन ॥२४॥

जिस प्रकार संसार में माता के प्रति भूलें करता हुआ भी कोई बालक उस माता का शत्रु नहीं होता, उसी प्रकार गायत्री की उपासना करने में भूल करने पर कोई भक्त कभी भी विपरीत फल को नहीं प्राप्त होता।

अक्षराणां तु गायत्र्या गुम्फनं ह्यस्ति तद्विधम्।
भवन्ति जागृता येन सर्वा गुह्यास्तु ग्रन्थयः ॥२५॥

गायत्री के अक्षरों का गुम्फन इस प्रकार हुआ है कि जिससे समस्त गुह्य ग्रन्थियाँ जाग्रत् हो जाती हैं।

जागृता ग्रन्थयस्त्वेताः सूक्ष्माः साधकमानसे।
दिव्यशक्तिसमुद्भूतिं क्षिप्रं कुर्वन्त्यसंशयम् ॥२६॥

जाग्रत् हुई ये सूक्ष्म यौगिक ग्रन्थियाँ साधक के मन में निःसंदेह शीघ्र ही दिव्य शक्तियों को पैदा कर देती हैं।

जनयन्ति कृते पुंसामेता वै दिव्यशक्तयः।
विविधान् वै परिणामान् भव्यान् मंगलपूरितान् ॥२७।

ये दिव्य शक्तियाँ मनुष्यों के लिये नाना प्रकार के मंगलमय सुन्दर परिणामों को उत्पन्न करती हैं।

मन्त्रस्योच्चारणं कार्यं शुद्धमेवाप्रमादतः।
तदशक्तो जपेन्नित्यं सप्रणवास्तु व्याहृतीः ॥२८॥

आलस्य रहित होकर गायत्री मन्त्र का शुद्ध ही उच्चारण करना चाहिये। जो ऐसा करने में असमर्थ हों, वे केवल प्रणव (ॐ) सहित व्याहृतियों का जाप करें।

ओमिति प्रणवः पूर्वं भूर्भुवः स्वस्तदुत्तरम्।
एषोक्ता लघु गायत्री विद्वद्भिर्वेदपण्डितैः ॥२९॥

पहले प्रणव (ॐ) का उच्चारण करना चाहिये, तत्पश्चात् भूर्भुवः स्वः का यह पञ्चाक्षरी मन्त्र (ॐ भूर्भुवः स्वः) वेदज्ञ विद्वानों ने लघु गायत्री कहा है।

शुद्धं परिधानमाधाय शुद्धे वै वायुमण्डले।
शुद्ध देहमनोभ्यां वै कार्या गायत्र्युपासना ॥३०॥

शुद्ध वस्त्रों का धारण करके शुद्ध वायुमण्डल में देह एवं मन को शुद्ध करके गायत्री की उपासना करनी चाहिये।

दीक्षामादाय गायत्र्या ब्रह्मनिष्ठाग्रजन्मना।
आरभ्यतां ततः सम्यग्विधिनोपासना सता ॥३१॥

किसी ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मण से गायत्री की दीक्षा लेकर तब विधिपूर्वक उपासना आरम्भ करनी चाहिए।

गायत्र्युपासनामुक्त्वा नित्यावश्यककर्मसु।
उक्तस्तत्र द्विजातीनां नानध्यायो विचक्षणैः ॥३२॥

गायत्री उपासना को विद्वानों ने द्विजों के लिये अनिवार्य किसी भी दिन न छोड़ने योग्य, नित्य कर्म बताया है।

आराधयन्ति गायत्रीं न नित्यं ये द्विजन्मनः।
जायन्ते हि स्वकर्मभ्यस्ते च्युता नात्र संशयः ॥३३॥

जो द्विज गायत्री की नित्य प्रति उपासना नहीं करते, वे अपने कर्तव्य से च्युत हो जाते हैं, इसमें संशय नहीं है।

शूद्रास्तु जन्मना सर्वे पश्चाद्यान्ति द्विजन्मताम्।
गायत्र्यैव जनाः साकं ह्युपवीतस्य धारणात् ॥३४।

जन्म से तो सभी शूद्र होते हैं, तत्पश्चात् मनुष्य गायत्री के सहित यज्ञोपवीत धारण करने से द्विजत्व को प्राप्त होता है।

उच्चता पतितानां च पापिनां पापनाशनम्।
जायेते कृपयैवास्याः वेदमातुरनन्तया ।।३५ ।।

पतितों को उच्चता और पापियों को उनके पापों का विनाश, ये दोनों कार्य इन वेदों की माता गायत्री की अनन्त कृपा से ही होते हैं ।

गायत्र्या या युता संध्या ब्रह्मसंध्या तु सा मता।
कीर्तितं सर्वतः श्रेष्ठं तस्यानुष्ठानमागमैः ।।३६

जो सन्ध्या गायत्री से युक्त होती है, वह ब्रह्म सन्ध्या कहलाती है । शास्त्रों ने उसका उपयोग सबसे श्रेष्ठ बताया है ।

आचमनं शिखाबंधः प्राणायामोऽघमर्षणम्।
न्यासश्चोपासनायां तु पंच कोषा मता बुधैः ।।३७ ।।

आचमन, चोटी बाँधना, प्राणायाम, अघमर्षण और न्यास, ये पाँच कोष विद्वानों ने गायत्री सन्ध्या की उपासना में स्वीकार किये हैं ।

ध्यानतस्तु ततः पश्चात् सावधानेन चेतसा।
जप्या सततं तुलसी मालया च मुहुर्मुहुः ।।३८ ।।

सावधान चित्त से ध्यानपूर्वक गायत्री मन्त्र को सात्त्विक प्रयोजन के लिये तुलसी की माला पर जपना चाहिये ।

एक वारं प्रतिदिनं न्यूनतो न्यूनसङ्ख्यकम्।
धीमान्मन्त्र शतं नूनं नित्यमष्टोत्तरं जपेत् ।।३९ ।।

प्रतिदिन कम से कम एक माला १०८ मन्त्रों का जप अवश्य ही करना चाहिये ।

ब्राह्मे मुहूर्त्ते प्राङ्मुखो मेरुदण्डं प्रतन्य हि।
पद्मासनं समासीनः सन्ध्यावंदनमाचरेत् ।।४० ।।

ब्राह्म मुहूर्त में पूर्वाभिमुख होकर, मेरुदण्ड को सीधा कर पद्मासन पर बैठकर सन्ध्यावन्दन करे ।

दैन्यरुक् शोक चिंतानां विरोधाक्रमणापदाम्।
कार्यं गायत्र्यनुष्ठानं भयानां वारणाय च ।।४१ ।।

दीनता, रोग, शोक, विरोध, आक्रमण, आपत्तियाँ और भय; इनके निवारण के लिये गायत्री का अनुष्ठान करना चाहिये ।

जायते सा स्थितिरस्मान्मनोऽभिलाषयान्विता।
यतः सर्वेऽभिजायन्ते यथा काले हि पूर्णताम् ।।४२ ।।

इस अनुष्ठान से वह स्थिति पैदा होती है, जिससे समस्त मनोवांछित अभिलाषायें यथासमय पूर्णता को प्राप्त होती हैं ।

अनुष्ठानात्तु वै तस्माद् गुप्ताध्यात्मिक-शक्तयः।
चमत्कारमया लोके प्राप्यन्तेऽनेकधा बुधैः ।।४३ ।।

इस अनुष्ठान से साधकों को संसार में चमत्कार से पूर्ण अनेक प्रकार की गुप्त आध्यात्मिक शक्तियाँ प्राप्त होती हैं ।

सपादलक्षमंत्राणां गायत्र्या जपनं तु वै।
ध्यानेन विधिना चैव ह्यनुष्ठानं प्रचक्षते ।।४४ ।।

विधि एवं ध्यानपूर्वक गायत्री के सवा लाख मन्त्रों का जप करना ही अनुष्ठान कहलाता है ।

पञ्चम्यां पूर्णिमायां वा चैकादश्यां तथैव हि।
अनुष्ठानस्य कर्त्तव्यं आरम्भः फल-प्राप्तये ।।४५।।

पञ्चमी, पूर्णमासी और एकादशी के दिन अनुष्ठान का आरम्भ करना शुभ होता है।

मासद्वयेऽविरामं तु चत्वारिंशद् दिनेषु वा।
पूरयेत्तदनुष्ठानं तुल्यसंख्यासु वै जपन् ।।४६।।

दो महीने में अथवा चालीस दिनों में बिना नागा किये तथा नित्य समान संख्याओं में जप करता हुआ उस अनुष्ठान को पूर्ण करे।

तस्याः प्रतिमां सु संस्थाप्य प्रेम्णा शोभन-आसने।
गायत्र्यास्तत्र कर्त्तव्या सत्प्रतिष्ठा विधानतः ।।४७।।

प्रेम से सुन्दर और ऊँचे आसन पर गायत्री की प्रतिमा स्थापित करके, उसकी भली प्रकार प्रतिष्ठा करनी चाहिये।

तद्विधाय ततो दीप-धूप-नैवेद्य-चन्दनैः।
नमस्कृत्याक्षतेनापि तस्याः पूजनमाचरेत् ।।४८।।

इस प्रकार से गायत्री की स्थापना करके, तदनन्तर उन्हें नमस्कार करके, दीपक, धूप, नैवेद्य और चन्दन तथा अक्षत इन सबसे पूजन करे।

पूजनानन्तरं विज्ञः भक्त्या तज्जपमारभेत्।
जपकाले तु मनः कार्यं श्रद्धान्वितमचञ्चलम् ।।४९।।

बुद्धिमानों को चाहिये कि वह पूजा के अनन्तर भक्ति से गायत्री का जप आरम्भ करें। जप के समय मन को श्रद्धा से युक्त और स्थिर कर लेना चाहिये।

कार्यतो यदि चोत्तिष्ठेन्मध्य एव ततः पुनः।
कर- प्रक्षालनं कृत्वा शुद्धैरंगैरुपाविशेत् ।।५०।।

और यदि किसी काम से साधना समय के बीच में ही उठना पड़े, तो फिर पानी से हाथ मुँह धोकर बैठे।

आद्यशक्तिर्वेदमाता गायत्री तु मदन्तरे।
शक्तिकल्लोलसंदोहान् ज्ञानज्योतिश्च संततम् ।।५१।।
उत्तरोत्तरमाकीर्य प्रेरयन्ती विराजते।
इत्येवाविरतं ध्यायन् ध्यानमग्नस्तु तां जपेत् ।।५२।।

आद्यशक्ति, वेदों की माता स्वरूप गायत्री मेरे भीतर लगातार शक्ति की लहरों के समूहों को और ज्ञान के प्रकाश को उत्तरोत्तर फैलाकर प्रेरित करती हुई विद्यमान है, इस प्रकार से निरन्तर ध्यान करता हुआ निमग्न होकर उनका जाप करे।

चतुर्विंशतिलक्षाणां सततं तदुपासकः।
गायत्रीणामनुष्ठानाद् गायत्र्याः सिद्धिमाप्नुते ।।५३।।

गायत्री का उपासक निरन्तर चौबीस लाख गायत्री के मन्त्र जप का अनुष्ठान करने से गायत्री की सिद्धि को प्राप्त करता है।

साधनायै तु गायत्र्या निश्छलेन हि चेतसा।
वरणीयः सदाचार्यः साधकेन सुभाजनः ।।५४।।

गायत्री की साधना के लिये साधक को चाहिये कि वह श्रद्धा भक्ति के साथ योग्य श्रेष्ठ आचार्य को गुरु वरण करे और गायत्री की दीक्षा लेकर साधना आरंभ करे।

लघ्वनुष्ठानतो वापि महानुष्ठानतोऽथवा।
सिद्धिं विन्दति वै नूनं साधकः सानुपातिकाम् ॥५५ ॥

लघु अनुष्ठान करने से अथवा बृहत् अनुष्ठान करने से साधक, साधना में किये श्रम के अनुपात के अनुसार सिद्धि को प्राप्त करता है ।

एक एव तु संसिद्धः गायत्री मन्त्र आदिशत्।
समस्तलोक-मन्त्राणां कार्य- सिद्धेस्तु पूरकः ॥५६ ॥

सिद्ध हुआ अकेला ही गायत्री मन्त्र संसार के समस्त मंत्रों द्वारा हो सकने वाले कार्यों को सिद्ध करने वाला माना गया है ।

अनुष्ठानावसाने तु अग्निहोत्रो विधीयताम्।
यथाशक्ति ततो दानं ब्रह्मभोजस्ततः खलु ॥५७ ॥

अनुष्ठान के अनन्तर हवन करना चाहिये, तदनन्तर शक्ति के अनुसार दान और ब्रह्मभोज कराना चाहिये ।

महामन्त्रस्य चाप्यस्य स्थाने स्थाने पदे पदे।
गूढानन्तोपदेशानां रहस्यं तत्र वर्त्तते ॥५८ ॥

इस महामन्त्र के अक्षर- अक्षर और पद- पद में रहस्य भरा हुआ है और अनन्त उपदेशों का समूह इस महामन्त्र में छिपा हुआ है ।

यो दधाति नरश्चैतानुपदेशांस्तु मानसे।
जायते ह्युभयं तस्य लोकमानन्दसंकुलम् ॥५९ ॥

जो मनुष्य इन उपदेशों को मन में धारण करता है, उसके दोनों लोक आनन्द से व्याप्त हो जाते हैं ।

समग्रामपि सामग्रीमनुष्ठानस्य पूजिताम्।
स्थाने पवित्र एवैतां कुत्रचिद्धि विसर्जयेत् ॥६० ॥

अनुष्ठान की समस्त पूजित सामग्री को कहीं पवित्र स्थान पर ही विसर्जित करना उचित है ।

सत्पात्रो यदि वाचार्यो न चेत्संस्थापयेत्तदा।
नारिकेलं शुचिं वृत्वाचार्य- भावेन चासने ॥६१ ॥

अगर श्रेष्ठ एवं योग्य आचार्य न प्राप्त हो, तो पवित्र नारियल को आचार्य भाव से वरण करके आसन पर स्थापित करे ।

प्रायश्चित्तं मतं श्रेष्ठं त्रुटीनां पापकर्मणाम्।
तपश्चर्यैव गायत्र्याः नातोऽन्यद् दृश्यते क्वचित् ॥६२ ॥

विभिन्न प्रकार की भूलों एवं पाप-कर्मों के प्रायश्चित्त के लिये गायत्री की तपश्चर्या सबसे श्रेष्ठ मानी गयी है ।

सेव्याः स्वात्मसमृद्ध्यर्थं पदार्थाः सात्त्विकाः सदा।
राजसाश्च प्रयोक्तव्याः मनोवांछित- पूर्तये ॥६३ ॥

आत्मा की उन्नति के लिये सतोगुणी पदार्थों का उपयोग करना चाहिये और मनोभिलाषाओं की पूर्ति के लिये रजोगुणी पदार्थ का उपयोग करना चाहिये ।

प्रादुर्भावस्तु भावानां तामसानां विजायते।
तमोगुणानामर्थानां सेवनादिति निश्चयः ॥६४ ॥

तमोगुणी पदार्थों के उपयोग करने से, तमोगुणी भावों की उत्पत्ति होना निश्चित है ।

मालासन-समिध्यज्ञ-सामग्र्यर्चन- संग्रहः ।
गुणत्रयानुसारं हि सर्वे वै ददते फलम् ॥६५ ॥

माला, आसन, हवन सामग्री, पूजा के पदार्थ जिस तत्त्व की प्रधानता वाले लिये जायेंगे, वे वैसे ही अपने गुणों के अनुसार फल को देते हैं ।

प्रादुर्भवन्ति वै सूक्ष्माश्चतुर्विंशति शक्तयः ।
अक्षरेभ्यस्तु गायत्र्या मानवानां हि मानसे ॥६६ ॥

मनुष्य के अन्तःकरण में गायत्री के चौबीस अक्षरों से चौबीस सूक्ष्म शक्तियाँ प्रकट होती हैं ।

मुहूर्ता योग-दोषा वा येऽप्यमंगलकारिणः ।
भस्मतां यान्ति ते सर्वे गायत्र्यास्तीव्रतेजसा ॥६७ ॥

अमंगल को करने वाले जो मुहूर्त अथवा योग दोष हैं, वे सब गायत्री के प्रचण्ड तेज से भस्म हो जाते हैं ।

एतस्मात्तु जपान्नूनं ध्यानमग्नेन चेतसा ।
जायते क्रमशश्चैव षट् चक्राणां तु जागृतिः ॥६८ ॥

निश्चय ही ध्यान में रत चित्त के द्वारा, इस जप को करने से धीरे-धीरे षट्- चक्र जाग्रत् हो जाते हैं ।

षट् चक्राणि यदैतानि जागृतानि भवन्ति हि ।
षट् सिद्धयोऽभिजायन्ते चक्रैरेतैर्नरस्य वै ।६९ ॥

जब ये षट्- चक्र जाग्रत् हो जाते हैं, तब मनुष्य को इन चक्रों के द्वारा छः सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं ।

अग्निहोत्रं तु गायत्री मन्त्रेण विधिवत् कृतम् ।
सर्वेष्ववसरेष्वेव शुभमेव मतं बुधैः ॥७० ॥

गायत्री मन्त्र से विधिपूर्वक किया गया अग्निहोत्र सभी अवसरों पर विद्वानों ने शुभ माना है ।

यदावस्थासु स्याल्लोके विपन्नासु तदा तु सः ।
मौनं मानसिकं चैव गायत्री- जपमाचरेत् ॥७१ ॥

जब कोई मनुष्य विपन्न (सूतक, रोग, अशौच आदि) अवस्थाओं में हो, तब तक मौन मानसिक गायत्री जप करे ।

तदनुष्ठान- काले तु स्वशक्तिं नियमेज्जनः ।
निम्नकर्मसु ताः धीमान् न व्ययेद्धि कदाचन ॥७२ ॥

मनुष्य को चाहिये कि वह गायत्री साधना से प्राप्त हुई अपनी शक्ति को संचित रखे । बुद्धिमान् मनुष्य कभी भी उन शक्तियों को छोटे कार्यों में खर्च नहीं करते ।

नैवानावश्यकं कार्यमात्मोद्धार- स्थितेन च ।
आत्मशक्तेस्तु प्राप्तायाः यत्र-तत्र प्रदर्शनम् ॥७३ ॥

आत्मोद्धार के अभिलाषी मनुष्य को प्राप्त हुई अपनी शक्ति का जहाँ- तहाँ अनावश्यक प्रदर्शन नहीं करना चाहिये ।

आहारे व्यवहारे च मस्तिष्केऽपि तथैव हि ।
सात्त्विकेन सदा भाव्यं साधकेन मनीषिणा ॥७४ ॥

आहार में, व्यवहार में और उसी प्रकार मस्तिष्क में भी बुद्धिमान् साधक को सात्विक होना चाहिये ।

कर्त्तव्यधर्मतः कर्म विपरीतं तु यद् भवेत् ।
तत्साधकस्तु प्रज्ञावानाचरेन्न कदाचन ॥७५ ॥

जो काम कर्त्तव्य कर्म से विपरीत हो, वह कर्म बुद्धिमान् साधक कभी नहीं करें ।

पृष्ठतोऽस्याः साधनाया राजतेऽतितरं सदा।
मनस्विसाधकानां हि बहूनां साधनाबलम् ॥७६ ॥

इस साधना के पीछे आदिकाल से लेकर अब तक के असंख्य मनस्वी साधकों का साधन बल शोभित है।

अल्पीयस्या जगत्येवं साधनायास्तु साधकः।
भगवत्याश्च गायत्र्याः कृपां प्राप्नोत्यसंशयम् ॥७७ ॥

थोड़ी ही श्रम साधना से जगत् में ही साधक भगवती गायत्री माता की कृपा को प्राप्त कर लेता है।

प्राणायामे जपन् लोकः गायत्रीं ध्रुवमाप्नुते।
निग्रहं मनसश्चैव इन्द्रियाणां हि सम्पदाम् ॥७८ ॥

मनुष्य निश्चय पूर्वक प्राणायाम सहित गायत्री को जपता हुआ मन का निग्रह और इन्द्रियों की सम्पत्ति को प्राप्त करता है।

मन्त्रं विभज्य भागेषु चतुर्षु सुबुधस्तदा।
रेचकं कुम्भकं बाह्यं पूरकं कुम्भकं चरेत् ॥७९ ॥

बुद्धिमान् व्यक्ति मन्त्र को चारों भागों में विभक्त करके, तब रेचक, कुम्भक, पूरक और बाह्य कुम्भक को करे।

यथा पूर्वस्थितञ्चैव न द्रव्यं कार्य-साधकम्।
महासाधनतोऽप्यस्मान्नाज्ञो लाभं तथाप्नुते ॥८० ॥

जिस प्रकार धन पास में रखे रहने से ही कार्य सिद्ध नहीं हो जाता, उसी प्रकार से मूर्ख मनुष्य इस महासाधना से लाभ प्राप्त नहीं कर सकता।

साधकः कुरुते यस्तु मन्त्रशक्तेरपव्ययः।
तं विनाशयति सैव समूलं नात्र संशयः ॥८१ ॥

जो साधक मन्त्र- शक्ति का दुरुपयोग करता है, उसको वह शक्ति ही समूल नष्ट कर देती है।

सततं साधनाभिर्यो याति साधकतां नरः।
स्वप्नावस्थासु जायन्ते तस्य दिव्यानुभूतयः ॥८२ ॥

जो मनुष्य निरन्तर साधना करने से साधकत्व को प्राप्त हो जाता है, उस व्यक्ति को स्वप्नावस्था में दिव्य अनुभव होते हैं।

सफलः साधको लोके प्राप्नुतेऽनुभवान् नवान्।
विचित्रान् विविधाँश्चैव साधनासिद्ध्यनन्तरम् ॥८३ ॥

संसार में सफल साधक नवीन और विचित्र प्रकार के विविध अनुभवों को साधना की सिद्धि के पश्चात् प्राप्त करता है।

भिन्नाभिर्विधिभिर्बुद्ध्या भिन्नासु कार्यपंक्तिषु।
गायत्र्याः सिद्धमन्त्रस्य प्रयोगः क्रियते बुधैः ॥८४ ॥

बुद्धिमान् पुरुष भिन्न-भिन्न कार्यों में गायत्री के सिद्ध हुए मन्त्र का प्रयोग भिन्न- भिन्न विधि से विवेकपूर्वक करता है।

चतुर्विंशतिवर्णैर्या गायत्री गुम्फिता श्रुतौ।
रहस्यमुक्तं तत्रापि दिव्यैः रहस्यवादिभिः ॥८५ ॥

वेद में जो गायत्री चौबीस अक्षरों में गूँथी गयी है, विद्वान् लोग इन चौबीस अक्षरों के गूँथने में बड़े-बड़े रहस्यों को छिपा बतलाते हैं।

रहस्यमुपवीतस्य गुह्याद् गुह्यतरं हि यत्।
अन्तर्हितं तु तत्सर्वं गायत्र्यां विश्वमातरि ॥८६ ॥

यज्ञोपवीत का जो गुह्य से गुह्य रहस्य है, वह सब विश्व-माता गायत्री में अन्तर्निहित है ।

अयमेव गुरोर्मन्त्रः यः सर्वोपरि राजते ।
बिन्दौ सिंधुरिवास्मिंस्तु ज्ञानविज्ञानमाश्रितम् ॥८७ ॥

यह गायत्री ही गुरु- मन्त्र है, जो सर्वोपरि विराजमान है । एक बिन्दु में सागर के समान इस मन्त्र में समस्त ज्ञान और विज्ञान आश्रित है ।

आभ्यन्तरे तु गायत्र्या अनेके योगसञ्चयाः ।
अन्तर्हिता विराजन्ते कश्चिदत्र न संशयः ॥८८ ॥

गायत्री के अन्तर्गत अनेक योग समूह छिपे हुए रहते हैं, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ।

धारयन् हृदि गायत्रीं साधको धौतकिल्विषः ।
शक्तीरनुभवत्युग्राः स्वस्मिन्नेवह्यलौकिकाः ॥ ८९ ॥

पाप- रहित साधक हृदय में गायत्री को धारण करता हुआ अपनी आत्मा में अलौकिक तीव्र शक्तियों का अनुभव करता है ।

एतादृश्यस्तस्य वार्ता भासन्तेऽल्पप्रयासतः ।
यास्तु साधारणो लोको ज्ञातुमर्हति नैव हि ॥९० ॥

उसको थोड़े ही प्रयास से ऐसी-ऐसी बातें विदित हो जाती हैं , जिन बातों को सामान्य लोग जानने में समर्थ नहीं होते ।

एतादृश्यस्तु जायन्ते तन्मनस्यनुभूतयः ।
यादृश्यो न हि दृश्यन्ते मानवेषु कदाचन ॥९१ ॥

उसके मन में इस प्रकार के अनुभव होते हैं, जैसे अनुभव साधारण मनुष्यों में कभी नहीं देखे जाते ।

प्रसादं ब्रह्मज्ञानस्य येऽन्येभ्यो वितरन्त्यपि ।
आसादयन्ति ते नूनं मानवाः पुण्यमक्षयम् ॥९२ ॥

ब्रह्मज्ञान के प्रसाद को जो लोग दूसरों को भी बाँटते हैं, वे मनुष्य निश्चय ही अक्षय पुण्य को प्राप्त करते हैं ।

गायत्री संहिता ह्येषा परमानन्ददायिनी ।
सर्वेषामेव कष्टानां वारणायास्त्यलं भुवि ॥९३ ॥

यह 'गायत्री-संहिता' परम आनन्द को देने वाली है । समस्त कष्टों के निवारण के लिये पृथ्वी पर यह अकेली ही पर्याप्त है ।

श्रद्धया ये पठन्त्येनां चिंतयन्ति च चेतसा ।
आचरंत्यानुकूल्येन भवबाधां तरन्ति ते ॥९४ ॥

जो लोग इसको श्रद्धा से पढ़ते हैं और ध्यानपूर्वक इसका चिन्तन, मनन करते हैं तथा अपने विचार एवं कार्यों को इसके अनुकूल बना लेते हैं, वे लोग भव- बाधाओं से तर जाते हैं ।